संपादक—

पं० गजाधरलाल जैन न्यायतीर्थ,

और

श्रीलाल जैन, काव्यतीर्थ।



मुद्रक—

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ

जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,

नं० ८ महेंद्रबासलेन श्यामबाजार कलकत्ता।



श्रीवीतरागायनमः ।

सनातन-जैन-ग्रंथ-माला

२०

श्रीमच्चामुंडरायविरचित—

चारित्रसार।

हिंदी—अनुवादसहित ।



अरिहननरजोहननरहस्यहरं पूजनार्हमर्हन्तम् ।
सिद्धान्सिद्धाष्टगुणान् रत्नत्रयसाधकान् स्तुवे साधून् ॥

मैं (ग्रंथकर्ता श्री चामुंडराय) मोहनीय कर्मको नाश करनेवाले ज्ञानावरण तथा दर्शनावरणको नाश करने वाले और अंतराय कर्मको नाश करनेवाले तथा सबके द्वारा पूजा करने योग्य ऐसे अरहंत भगवानकी स्तुति करता हूं तथा सिद्धोंके आठ गुणोंसे सुशोभित ऐसे

श्रीमज्जिनेन्द्रकथिताय सुमंगलाय लोकोत्तमाय शरणाय विनेयजंतोः ।
धर्माय कायवचनाशयशुद्धितोऽहं स्वर्गापवर्गफलदाय नमस्करोमि ॥

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते । धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया । धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥

सम्यक्त्व—पञ्चाणुव्रतवर्णनम् ।

सम्यग्दृष्टीनां चत्वारो वंदनाप्रधानभूताः, अर्हन्तः सिद्धाः साधवो धर्मश्चेति । तत्रार्हत्सिद्धसाधवो नमस्कारेणोक्ताः धर्म उच्यंते । आत्मानमिष्ट-

सिद्ध भगवानकी स्तुति करता हूं और सदा रत्नत्रयको सिद्ध करनेवाले साधुलोगोंकी स्तुति करता हूं ॥१॥

और जो अंतरंग वहिरंग लक्ष्मीको धारण करनेवाले भगवान अरहंत देवका कहा हुआ है, जो संसारमें सुमंगल रूप है। सर्वोत्तम है। शिष्य जीवोंको शरणरूप है। और स्वर्ग मोक्ष रूप फल देनेवाला है ऐसे धर्मको मैं मन वचन कायकी शुद्धता पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

इस संसारमें धर्म ही सब सुखोंका खजाना है और धर्म ही सबका हित करनेवाला है। इसधर्मको विद्वान् लोग ही सेवन करते है वा वृद्धि करते हैं। इस धर्मसेही मोक्षसुख प्राप्त होता है इसलिये इसी धर्मकेलिये मैं नमस्कार करता हूं। संसारी जीवोंको धर्मके सिवाय और कोई मित्र नहीं है। इस धर्मकी जड दया है इसलिये मैं अपना चित्त प्रतिदिन धर्ममें धारण करता हूं। हे धर्म ! मेरी रक्षा कर ॥ ३ ॥

सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतोंका वर्णन—सम्यग्दृष्टियोंके लिये प्रधान रीतिसे वंदना करने योग्य चार हैं अरहंत सिद्ध साधु और धर्म। इनमेंसे अरहंत सिद्ध और साधु तो नमस्कार

नरेंद्रसुरेंद्रमुनींद्रमुक्तिस्थाने धत्त इति धर्मः । अथवा संसारस्थान्प्राणिनो धरते धारयतीति वा धर्मः । स च सागाराऽनगारविषयभेदाद्द्विविधः । तत्र सागरधर्म उच्यते ।

दार्शनिकव्रतिकावपि सामायिकप्रोषधोपवासश्च । सचित्तरात्रिभुक्तिव्रतनिरतौ ब्रह्मचारी च ॥

आरंभाद्विनिवृत्तः परिग्रहादनुमतस्तथोद्दिष्टः । इत्येकादशनिलया जिनोदिताः श्रावका· क्रमशः ॥

व्रतादयो गुणा दर्शनादिभिः पूर्वगुणैः सह क्रमप्रवृद्धा भवंति । तत्र दार्शनिक·—संसारशरीरभोगनिर्विण्णः पंचगुरुचरणभक्तः सम्यग्दर्शनविशुद्धश्च भवति । जिनेन भगवताऽर्हता परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रंथलक्षणे मोक्षमार्गे श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । तस्य सम्यग्दर्शनस्य मोक्षपुरपथिकपाथेयस्य मुक्ति·

रूपसे कह दिये गये है अव धर्मका स्वरूप कहते हैं। जो इस आत्माको सवको इष्ट ऐसे नरेंद्र सुरेन्द्र मुनींद्र और मोक्ष स्थानमें धारण करदे उसे धर्म कहते हैं अथवा संसारी प्राणियोंको जो धारण कर उत्तम स्थानमें पहुंचादे उसे धर्म कहते हैं। वह धर्म गृहस्थ और मुनियोंके भेदसे दो प्रकारका है उसमेंसे पहिले गृहस्थधर्मको कहते हैं।

दार्शनिक, व्रती, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिव्रतनिरत, वूह्मचारी, आरंभत्यागी, परिग्रहत्यागी, अनुमतित्यागी, और उद्दिष्टत्यागी, इसप्रकार श्री जिनेन्द्रदेवने अनुक्रमसे इन ग्यारह स्थानोंमें रहनेवाले ग्यारह प्रकारके श्रावक वतलाये हैं।

इन श्रावकोंके ये व्रतादि गुण सम्यग्दर्शन आदि अपने पहिलेके गुणोंके साथ अनुक्रमसे वढते रहते हैं। इनमेंसे दर्शन प्रतिमावाला संसार और शरीरके भोगोंसे विरक्त रहता है पांचों परमेष्ठियोंके चरणकमलोंका भक्त रहता है, और सम्यग्दर्शनसे विशुद्ध रहता है भगवान अर-हंत परमेष्ठी श्रीजिनेन्द्रदेवने जो निर्ग्रंथरूप मोक्षका मार्ग वतलाया है उसमें श्रद्धान रखना सम्यग्दर्शन कहलाता है। यह सम्यग्दर्शन मोक्षनगरमें जानेवाले पथिकके लिये मार्गमें खाने-पीने वा काम आनेयोग्य पाथेय है,मुक्तिरूपी सुन्दरस्त्रीके श्रृंगार करनेके लिये मणियोंका वना

सुन्दरीविलासमणिदर्पणस्य संसारसमुद्रगर्तोवर्तमज्जनजनदत्तहस्तावलंबनस्यैकादशोपासकस्थानप्रासादाधिष्ठानस्योत्तमक्षमादिदशकुलधर्मकल्पपादपमूलस्य परमपावनस्य सकलमंगलनिलयस्य मोक्षमुख्यकरणस्याष्टांगानि भवंति । निःशंकितत्वं निःकांक्षता निर्विचिकित्सता अमूढदृष्टित्वं उपबृंहणं स्थितिकरणं वात्सल्यं प्रभावना चेति । तत्रेहलोकः परलोकः व्याधिर्मरणं अगुप्तिः अत्राणं आकस्मिक इति सप्तविधाद्भयाद्विनिर्मुक्तता, अथवाऽर्हदुपदिष्टद्वादशांगप्रवचनगहने एकमक्षरं पदं वा किमिदं स्याद्वा न वेति शंकानिरासो निशंकितत्वम् । एहलौकिकपारलौकिकेंद्रियविषय उपभोगाकांक्षानिवृत्तिः, कुदृष्ट्यंतराकांक्षानिरासो वा निःकांक्षता । शरीराद्यशुचित्वभावमवगम्य शुचीति मिथ्यासंकल्पापनयोऽथवाऽर्हत्प्रवचने इदमयुक्तं घोरं कष्टं न चेदिदं सर्वमुपपन्नमित्यशुभभावनानिरासो विचिकित्साविरहः । बहुविधेषु दुर्नयवर्त्मसु तत्त्ववदाभासमानेषु युक्त्यभावमध्यवस्य परीक्षाचक्षुषा विरहितमोहममूढदृष्टित्वम् ।

हुआ दर्पण है, संसारमहासागर रूपी गढेमें डूबे हुए मनुष्यके लिये दिये हुए हाथका सहारा है, श्रावकोंके ग्यारह स्थान व प्रतिमा रूपी राजमहलकी नीव है, उत्तम क्षमा आदि दशकुलधर्म रूपी कल्पवृक्षकी जड परम पवित्र है, समस्त मंगल द्रव्योंका स्थान है और मोक्षका मुख्य कारण है।

इस सम्यग्दर्शनके आठ अंग हैं– निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना, यह लोक, परलोक, व्याधि, मरण अगुप्ति, अरक्षा और आकस्मिक इन सातो प्रकारके भयोंसे रहित होना निःशंकित है। अथवा भगवान अरहंतदेवके कहे हुए अत्यन्त गहन ऐसे द्वादशांग शास्त्रमें एक अक्षर वा एक पदके लिये "यह है वा नहीं,, ऐसी शंका न होना निःशंकित अंग है। इसलोक परलोक और इंद्रियोंके विषय संबंधी उपभोगोंकी आकांक्षा दूर करना अथवा मिथ्यादृष्टी होनेकी आकांक्षा नहीं करना निःकांक्षित अंग है। शरीर आदिको अपवित्र समझकर "यह शरीर पवित्र है" ऐसे मिथ्या संकल्पका दूर करना अथवा अरहंत देवके कहे हुए शास्त्रोंमें जो कुछ कहा है वह सब अयुक्त है, अत्यंत कष्टदायक है तथा विलकुल असंभव है ऐसी अशुभ भावना नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग कहा जाता है। अनेक प्रकारके जो दुर्नयमार्ग (मिथ्यामार्ग) हैं जिनमें कहे हुए अतत्व वा मिथ्या

उत्तमक्षमादिभावनयात्मन आत्मीयस्य च धर्मपरिवृद्धिकरणमुपबृंहणम् । कषायोदयादिषु धर्मपरिभ्रंशकारणेषूपस्थितेषु स्वपरयोर्धर्मप्रच्यवनपरिपालनं स्थितिकरणम् । जिनप्रणीते धर्मामृते नित्यानुरागताऽथवा सद्य प्रसूता यथा गौर्वत्से स्निह्यति तथा चातुर्वर्ण्ये संघेऽकृत्रिमस्नेहकरणं वात्सल्यम् । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयप्रभावादात्मनः प्रकाशनमथवा ज्ञानतपःपूजासु ज्ञानदिनकरकिरणैः परसमयखद्योतोद्योतावरणकरणं च, महोपवासादिलक्षणेन देवेन्द्रविष्टरप्रकंपनसमर्थेन सत्तपसा स्वसमयप्रकटनं च महापूजामहादानादिभिर्धर्मप्रकाशनं च प्रभावना । एवंविधाष्टांगविशिष्टं सम्यक्त्वं तद्विकलयोरणुव्रतमहाव्रतयोर्नामापि न स्यात् । सम्यग्दर्शनमणुव्रतयुक्तं स्वर्गाय, महाव्रतयुक्तं मोक्षाय च ।

तत्व भी तत्वोंके समान जान पडते हैं । उनमे युक्तियोंका अभाव समझकर परीक्षा रूपी नेत्रोंके द्वारा अपना मोह दूर करना अर्थात् ऐसे मिथ्या मार्गमे मोहित न होना अमूढ दृष्टी अंग कहलाता है । उत्तम क्षमादि भावनाओंके द्वारा अपने आत्मा तथा कुटंब परिवार वा अन्य लोगोंके धर्म की वृद्धि करना उपबृंहण अंग कहा जाता है । धर्मसे भ्रष्ट करनेवाले कषायोंके प्रगट हो जानेपर अपनेको तथा दूसरोंको धर्मभ्रष्ट होनेसे रक्षा करना (धर्म का मार्ग छोडने न देना) स्थितिकरण अंग है । भगवान श्रीजिनेन्द्रदेवके कहे हुए धर्मरूपी अमृतमें सदा अनुराग रखना अथवा जिसप्रकार तुरंतकी प्रसूता गाय अपने वच्चेपर प्रेम करती है उसीप्रकार चारोंप्रकारके संघपर स्वाभाविक प्रेम करना वात्सल्य अंग कहा जाता है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनोंके प्रभावसे आत्माका प्रभाव प्रगट करना अथवा ज्ञान तपश्चरण और पूजाओंमें ज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके द्वारा परमत रूपी खद्योत (जुगनू वा पटवीजना) का प्रकाश ढकदेना, तथा जिसमें इंद्रादि बडे वडे देवोंके आसनोंको कंपायमान करनेकी सामर्थ्य है ऐसे बडे बडे महा उपवास आदि श्रेष्ठ तपश्चरणके द्वारा अपने जैनमतको प्रसिद्ध करना और महापूजा तथा महादान आदि कार्योंके द्वारा धर्मका प्रकाश करना प्रभावना अंग है। इसप्रकार

सम्यक्त्वमंगहीनं राज्यमिव श्रेयसे भवेन्नैव । न्यूनाक्षरो हि मंत्रो नालं विषवेदनाच्छित्यै ॥

सम्यक्त्वस्य गुणाः—संवेगो निर्वेदो निंदा गर्हा तथोपशमभक्ती । अनुकंपा वात्सल्यं गुणास्तु सम्यक्त्वयुक्तस्य ॥

उक्तं चाबद्धायुष्कविषये—सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि । दुःकुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः ॥

आठों अंगोसे परिपूर्ण सम्यग्दर्शन होता है। यदि सम्यग्दर्शन न हो तो अणुव्रत तथा महाव्रतों का नाम तक नहीं होता है। यही सम्यग्दर्शन यदि अणुव्रत सहित हो तो उससे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और यदि महाव्रत सहित हो तो उससे मोक्षसुखकी प्राप्ति होती है । जिसप्रकार अंग हीन राज्य कल्याणकारी नहीं होसकता उसीप्रकार अंग हीन सम्यग्दर्शन भी कल्याणकारी नहीं हो सकता सो ठीक ही है क्योंकि अक्षरहीन मंत्रसे कभी विषकी वेदना दूर नहीं होती।

अब आगे सम्यग्दर्शनके गुण कहते हैं— संवेग (धर्मके कामोंमें परम रुचि रखना) निर्वेद (संसारशरीरभोगोंसे विरक्त रहना) निंदा (अपनेमें गुण होतेहुए भी अपनी निंदा करते रहना) गर्हा (अपनेमें गुण होते हुए भी मनमें अपनी निंदा करते रहना) उपशम (कषायों की मंदता रखना शांतिभाव रखना) भक्ति (पंच परमेष्ठीमें गाढ भक्ति रखना) अनुकंपा (जीवदयाके भाव प्रगट करते रहना) वात्सल्य (धर्मात्माओंमें प्रेम रखना) ये आठ सम्यग्दृष्टी पुरुषके गुण हैं। सम्यग्दर्शनकी प्रशंसामें अवद्धायुष्क (जिसके सम्यग्दर्शन होगया हो और आयुकर्मका वंध न हुआ हो) के लिये लिखा है— जो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है वह अव्रती होने-पर भी नारकी तिर्यंच नपुंसक, स्त्री नहीं होता, नीचकुलमें उत्पन्न नहीं होता, विकृत (अंग उपांग हीन) नहीं होता, थोडी आयुवाला नहीं होता और दरिद्री भी नहीं होता। और भी लिखा है— इस संसाररूपी महासागरमें जो भव्य चारित्ररूपी जहाजपर चढकर मोक्षरूपी

भवाब्धौ भव्यसार्थस्य निर्वाणद्वीपयायिनः । चारित्रयानपात्रस्य कर्णधारो हि दर्शनम् ॥

दार्शनिकस्य कस्यचित्कदाचिद्दर्शनमोहोदयादतीचाराः पंच भवंति । शंकाकांक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवा इति । तत्र मनसा मिथ्यादृष्टेर्ज्ञानचारित्रगुणोद्भावनं प्रशसा, वचसा भूताभूतगुणोद्भावनं संस्तवः, एवं प्रशंसासंस्तवयोर्मानसकृतो वाक्कृतश्च भेदः, शेषाः सुगमाः । सम्यग्दर्शनसामान्यादणुव्रतिकमहाव्रतिनोरिमेऽतिचाराः ।

प्रतिको नि शल्यः पंचाणुव्रतरात्रिभोजनविरमणशीलसप्तकं निरतिचारेण यः पालयति स भवति । तत्र यथा शरीरानुप्रवेशिकांडकुंतादिप्रहरणं शरी-

द्वीपको जारहे हैं उनके लिये यह सम्यग्दर्शन खेवटियाके समान है भावार्थ सम्यग्दर्शन के विना वे कभी मोक्ष नहीं पहुंच सकते ।

किसी समय किसी सम्यग्दृष्टीके दर्शन मोहनीय कर्मके उदयसे शंका, आकांक्षा, विचिकित्सा अन्यदृष्टिप्रशंसा तथा अन्य दृष्टिसंस्तव ये पांच अतिचार भी होते हैं । मनसे मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान और चारित्र गुणोंको प्रगट करना प्रशंसा है और वचनसे उनमें होनेवाले वा न होनेवाले गुणोंको प्रगट करना संस्तव है । वस यही मनसे तथा वचनसे होनेवाली प्रशंसा और स्तुति में भेद है । वाकी के अतिचार सब सरल है सम्यग्दर्शन अणुव्रती और महाव्रती दोनों के एकसा होता है इसलिये ये अतिचार भी दोनों के ही होते हैं ।

जो शल्यरहित होकर पांच अणुव्रत रात्रि भोजनत्याग और सातों शीलोंको [तीन गुण व्रत चार शिक्षाव्रतोंको] अतिचार रहित पालन करता है वही व्रती कहलाता है । शल्य वाणको कहते हैं जिसप्रकार शरीरमें घुसाहुआ वाण अथवा भाला वरछाकी चोट जीवोंको दुःख देती है उसीप्रकार कर्मके उदय जन्य विकार होनेपर जो शल्यके (वाणके) समान शरीर और मन को दुःख देनेवाली हो उसे शल्य कहते हैं वह शल्य माया निदान और मिथ्यादर्शनके भेदसे तीन प्रकार है । बंचना, ठगना आदिको माया कहते हैं । विषय भोगोंकी इच्छा करना निदान

रिणा बाधाकंर तथा कर्मोदयविकारे शरीरमानसबाधाहेतुत्वाच्छल्यमिव शल्यम्। तत्त्रिविधं, मायानिदानमिथ्यादर्शनभेदात् माया वंचनं, निदानं विषयभोगाकांक्षा, मिथ्यादर्शनमतत्त्वश्रद्धानम्। उत्तरत्र वक्ष्यमाणेन महाव्रतिनाऽपि शल्यत्रयं परिहर्त्तव्यम्।

अभिसंधिकृतो नियमो व्रतमित्युच्यते, सर्वसावद्यनिवृत्त्यसंभवादणुव्रतं द्वींद्रियादीनां जंगमप्राणिनां प्रमत्तयोगेन प्राणव्यपरोपणान्मनोवाक्कायैश्च आगारीत्याद्यणुव्रतम्।

तस्य प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणलक्षणस्य पंचातीचारा भवंति। वंधो, वध', छेदः, अतिभारारोपणं, अन्नपाननिरोधश्चेति। तत्राभिमतदेशगमनं प्रत्युत्सुकस्य तत्प्रतिबंधहेतोः कीलादिषु रज्ज्वादिभिर्व्यतिषंगो वंध'। दंडकशावेत्रादिभिः प्राणिनामभिघातो वधः। कर्णनासिकादीनामवयवानामपनयनं

है और अतत्वोंका श्रद्धान करना अथवा तत्वोंका श्रद्धान न करना मिथ्यादर्शन है। आगे जो महाव्रतका स्वरूप कहेंगे उसको धारण करनेवाले महाव्रतीको भी तीनों शल्योंका त्याग करदेना चाहिये।

अभिप्राय पूर्वक नियम करनेको व्रत कहते हैं। गृहस्थके समस्त पापोंका त्याग होना असंभव है इसलिये जो गृहस्थ मन बचन काय इन तीनोंसे प्रमाद वा कषायसे होनेवाले दो इंद्रिय आदि त्रस जीवोंके प्राणोंके घातसे दूर रहता है अर्थात् जो मन वचन काय तीनोंसे त्रस जीवों की हिंसा करना छोड देता है उसका वह पहिला अहिंसाणुव्रत कहलाता है। प्रमादके निमित्तसे त्रस जीवोंकी हिंसाका त्याग करनेरूप अहिंसाणुव्रतके बंध वध छेद अतिभारारोपण और अन्नपाननिरोध ये पांच अतिचार होते हैं। जो (पुरुष स्त्री वा पशु) अपनी इच्छानुसार किसी स्थानको जाना चाहता हो उसे रोकनेके लिये कील खूंटा आदिमें रस्सी संकल आदि के द्वारा वांधना बंध कहलाता है। लकडी कोडा और वेंत आदिके द्वारा जीवोंको मारना वध है। कान नाक आदि अवयवोंका काटना छेद है। वैल घोडा आदि जीव अपनी शक्तिके अनुसार न्यायसे ले जाने योग्य जितना बोझ ले जा सकते हैं उससे अधिक वोझा लादना अति-

च्छेदः । न्यायादनपेताद्भारादतिरिक्तस्य भारस्य वाहनमतिलोभाद्गवादीनामतिभारारोपणं । तेषां गवादीनां कुतश्चित्कारणात् क्षुत्पिपासाबाधोत्पादनमन्नपाननिरोध इति ।

स्नेहस्य मोहस्य द्वेषस्य वोद्रेकाद्यदसत्याभिधानं ततोनिवृत्तादरो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम् । तस्य व्रतस्य पंचातिक्रमा भवंति । मिथ्योपदेशः, रहोऽभ्याख्यानं, कूटलेखक्रिया, न्यासापहारः, साकारमंत्रभेदश्चेति ।

तत्राभ्युदयनिःश्रेयसार्थेषु क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवर्त्तनमभिसंधानं वा मिथ्योपदेशः । स्त्रीपुरुषाभ्यामेकांतेऽनुष्ठितस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशनं रहोऽभ्याख्यानम् । अन्येनानुक्तं यत्किंचित्परप्रयोगवशादेवं तेनोक्तमनुष्ठितमिति वंचनानिमित्तं लेखनं कूटलेखक्रिया । हिरण्यादेर्देयद्रव्यस्य निक्षेप्तुर्विस्मृत-

भारारोपण कहलाता है । किसी भी कारणसे उन बैल घोडा आदि जानवरोंको भूख प्यास की बाधा देना अन्नपान निरोध है ।

स्नेह, मोह और द्वेषके उद्रेकसे असत्य भाषण किया जाता है उस असत्यके त्याग करनेमें आदर रखना गृहस्थके दूसरा सत्याणुव्रत कहलाता है । इस सत्याणुव्रतके भी मिथ्योपदश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमंत्रभेद ये पांच अतिचार होते हैं । अभ्युदय और मोक्ष सिद्ध करनेवाली विशेष क्रियाओंमें किसी भी अन्य पुरुषको विपरीतरूपसे प्रवृत्त कराना अथवा विपरीत अभिप्राय वतलाना मिथ्यापदेश है । स्त्री पुरुषोंके द्वारा एकांतमें की हुई विशेष क्रियाओंको प्रकाशित करदेना रहोभ्याख्यान है। जो वात किसी दूसरेने नहीं कही है उसी बातको किसीकी प्रेरणासे " उसने यह बात कही है अथवा उसने यह काम किया है' इस प्रकार ठगनेके लिये झूठे लेख लिखना कूटलेख क्रिया है। कोई पुरुष सोना चांदी आदि द्रव्य किसीके धरोहर रखगया हो और फिर अपनी रक्खी हुई संख्या भूलकर थोडा ही द्रव्य मांगता हो उसके लिये वह धरोहर रखानेवाला " अच्छा ठीक है इतना ले जाओ ' इसप्रकार आज्ञा दे तो उस धरोहर रखनेवालेके न्यासापहार अतिचार लगता है। किसी अर्थके प्रकरणसे

संख्यस्याल्पसंख्यानमाददानस्य 'एवमित्य'—नुज्ञावचनं न्यासापहारः । अर्थप्रकरणांगविकारभ्रूक्षेपादिभिः पराकूतमुपलभ्य यदाविष्करणमसूयादिनिमित्तं तत्साकारमंत्रभेद इति । अन्यपीडाकरं पार्थिवादिभयवशादवशापरित्यक्तं वा निहितं पतितं विस्मृतं वा यददत्तं ततो निवृत्तादरः श्रावक इति तृतीयमणुव्रतम् ।

अदत्तादानविरतेः पंचातीचारा भवंति । स्तेनप्रयोगः, तदाहृतादानं, विरुद्धराज्यातिक्रमः हीनाधिकमानोन्मानं, प्रतिरूपकव्यवहारश्चेति । मोषकस्य त्रिधा प्रयोजनं, मुष्णन्तं स्वयमेव प्रयुंक्ते, अन्येन वा प्रयोजयति, प्रयुंक्तमनुमन्यते वा यः स स्तेनप्रयोगः । अप्रयुक्तेनाननुमतेन च चौरेणानीतस्य ग्रहणं तदाहृतादानम् । विरुद्धं राज्यं विरुद्धराज्यं, उचितन्यायादन्येन प्रकारेणादानं ग्रहणमतिक्रमः, तस्मिन्विरुद्धराज्ये योऽसावतिक्रमः स विरुद्धराज्याति-

अथवा अंगोंके विकारसे वा भौंह चलाने आदि किसी भी कारणसे दूसरेका अभिप्राय जानकर ईर्षा और डाहके निमित्तसे उस अभिप्रायका प्रगट करदेना साकारमंत्रभेद कहलाता है ।

जो राजा आदिके भयके वशसे परवश होकर छोड दिया गया हो अथवा कोई रखगया हो वा किसीसे पडगया हो अथवा कोई भूलगया हो ऐसे दूसरेको दुःख देनेवाले विना दिये हुए द्रव्यको ग्रहण करना चोरी है उसका त्याग करना अथवा उसका त्याग करनेमें आदर रखना श्रावकके तीसरा अचौर्याणुव्रत कहलाता है । इस अचौर्याणुव्रतके स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम हीनाधिकमानोन्मान और प्रतिरूपक व्यवहार ये पांच अतिचार होते हैं । चोरको तीन तरहसे प्रेरणा की जा सकती है एक तो चोरको स्वयं प्रेरणा करना, दूसरे अन्य किसीसे प्रेरणा कराना और तीसरे चोरी करनेवालेको भला मानना इन तीनों क्रियाओंको स्तेनप्रयोग कहते हैं । जिसको चोरी करनेके लिये न तो प्रेरणा की है और न जिसकी चोरी करनेमें सहमत हुआ है ऐसे चोरके द्वारा लाये हुए द्रव्यको ग्रहण करना तदाहृतादान है । जिस राज्यमें विरुद्धता फैली हो उसे विरुद्धराज्य कहते हैं, उचित न्यायको छोडकर दूसरी तरहसे ग्रहण करना अतिक्रम कहलाता है । किसी विरुद्ध राज्यमें अतिक्रम करना अ-

क्रमः। प्रस्थादिमानं तुलाद्युन्मानमेतेन न्यूनेनान्यस्मै देयमधिकेनात्मना ग्राह्यमित्येवमादि कूटप्रयोगो हीनाधिकमानोन्मानम्। कृत्रिमैर्हिरण्यादिभिर्वंचनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहार इति। उपात्ताया अनुपात्तायाश्च परांगनायाः संगाद्विरतरतिर्विरताविरत इति चतुर्थमणुव्रतम्।

स्वदारसंतोषव्रतस्यातीचाराः पंच भवंति। परविवाहकरणं, इत्वरिका-अपरिगृहीतागमनं, इत्वरिकापरिगृहीतागमनं अनङ्गक्रीडा, कामतीव्राभिनिवेशश्चेति। तत्र सद्वेद्यस्य चारित्रमोहस्य चोदयाद्विवहनं विवाहः परस्य विवाहकरणं परविवाहकरणं ज्ञानावरणक्षयोपशमादापादितकलागुणज्ञतया चारित्रमोहस्त्रीवेदोदयप्रकर्षादंगोपांगनामोदयावष्टंभाच्च परपुरुषानेतीति इत्वरिका या गणिकात्वेन वा पुंश्चलीत्वेन परपुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता,

र्थात् उचित न्यायको छोडकर अन्याय पूर्वक लेना देना विरुद्धराज्यातिक्रम है। नापनेके सेर पायली आदिको मान कहते हैं और तौलनेके तोले सेर छटांक आदिको उन्मान कहते हैं इनको कमती वढती रखना अर्थात् कमतीसे दूसरोंको देना और वढतीसे लेना इसप्रकार छलकपटके प्रयोग करनेको हीनाधिक मानोन्मान कहते हैं। कृत्रिम सोने चांदी आदिके द्वारा ठगनेको व्यवहार करना प्रतिरूपक व्यवहार है—

उपात्त (विवाहित) तथा अनुपात्त [अविवाहित] परस्त्रियों के समागमसे विरक्त रहना सो विरताविरत श्रावकके चौथा ब्रह्माणुव्रत कहलाता है। इस स्वदारसंतोष व्रतके परविवाहकरण, इत्वरिका अपरिगृहीतागमन, इत्वरिका परिगृहीतागमन, अनंग क्रीडा और कामतीव्राभिनिवेश ये पांच अतिचार होते हैं। सातावेदनीय कर्म और चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे जो पंच अग्नि और देवोंकी साक्षी पूर्वक पाणिग्रहण किया जाता है उसे विवाह कहते हैं दूसरेका विवाह करना परविवाहकरण कहलाता है।

ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेसे जो कला गुण आदि प्राप्त हुए हैं उनके कारण तथा चारित्रमोहनीय कर्मके अंतर्गत स्त्रीवेद कर्मके विशेष उदय होनेसे और अंगोपांग नाम कर्मके उदयकी प्राप्ति होनेसे जो पर पुरुषोंके समीप जाती है उसे इत्वरिका कहते हैं वेश्या होकर अथवा

तस्यां गमनमित्वरिका-अपरिगृहीतागमनं । या पुनरेकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता, तस्यां गमनमित्वरिकापरिगृहीतागमनं । अंगं प्रजननं योनिश्च, ततो जघनादन्यत्रानेकविधप्रजननविकारेण रतिरनंगक्रीडा । कामस्य प्रवृद्धः परिणामोऽनुपरतवृत्त्यादिः कामतीव्राभिनिवेश इति । धनधान्यक्षेत्रादीनामिच्छावशात् कृतपरिच्छेदो गृहीति पंचममणुव्रतं ।

परिग्रहविरमणव्रतस्य पंचातिक्रमा भवंति । क्षेत्र-वास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धनधान्य-दासीदास-कुप्यमिति । तत्र क्षेत्रं सस्याधिकरणं, वास्तु मगारं, हिरण्यं रूप्यादिव्यवहारप्रयोजनं, सुवर्णं विख्यातं, धनं गवादि, धान्यं व्रीह्यादि, दासीदासं भृत्यस्त्रीपुरुषवर्गः, कुप्यं क्षौमकार्पासकौशेयचंदनादि, एतेषु

व्यभिचारणी बनकर परपुरुषोंके समीप जानेका जिसका स्वभाव है और जिसका कोई स्वामी नहीं है उसे इत्वरिका अपरिगृहीता कहते हैं उसमें गमन करना इत्वरिका अपरिगृहीतागमन कहलाता है। जिसका कोई एक पुरुष स्वामी हो वह परिगृहीता कहलाती है इत्वरिका परिगृहीता स्त्रीमें गमन करना इत्वरिकापरिगृहीतागमन कहलाता है। उत्पन्न होनेके स्थानको अर्थात् योनिको अंग कहते हैं उसको छोडकर किसी भी दूसरी जगह काम क्रीडा करना अनंग क्रीडा कहलाती है। कामके अत्यन्त बढे हुए परिणामोंको अर्थात् कामसेवनसे तृप्त न होना सदा उसीमें लगे रहना आदिको कामतीव्राभिनिवेश कहते हैं।

अपनी इच्छानुसार धन धान्य क्षेत्र आदिका परिमाण करलेना सो गृहस्थके पांचवां परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहलाता है। इस परिग्रहपरिमाण व्रतके क्षेत्र वास्तु, हिरण्य सुवर्ण, धन धान्य, दासी दास, और कुप्य ये पांच अतिचार होते हैं, । जिनमें धान्य पैदा होता है ऐसे खेतोंको क्षेत्र कहते हैं, मकानको वास्तु कहते हैं, रुपया आदि जिनसे संसारका व्यवहार चलता है उन्हें हिरण्य कहते हैं सोनेको सुवर्ण, गाय भैंस घोडे आदि जानवरोंको धन, गेहूं जौ आदिको धान्य, नौकर रहनेवाले स्त्रीपुरुषोंके समूहको दासी दास, और कपडा कपास, कोसा चंदन आदि घरकी

एतावानेव परिग्रहो मम नाऽतोऽन्य इति परिच्छिन्नात्प्रमाणात् क्षेत्रवास्त्वादिविषयादतिरेक अतिलोभवशात्प्रमाणातिरेक इति ।

रात्रावन्नपानखाद्यलेह्येभ्यश्चतुर्भ्यः सत्त्वानुकम्पया विरमणं रात्रिभोजनविरमणं षष्ठमणुव्रतं ।

वधादसत्याच्चौर्याच्च कामाद्ग्रन्थान्निवर्त्तनं । पंचधाऽणुव्रतं रात्र्यभुक्तिः षष्ठमणुव्रतं ॥

इत्यणुव्रतवर्णनं ।

शीलसप्तकवर्णनम् ।

स्थवीयसीं विरतिमभ्युपगतस्य श्रावकस्य व्रतविशेषो गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं शीलसप्तकमित्युच्यते । दिग्विरतिः, देशविरतिः, अनर्थदंडविरतिः सामायिकं, प्रोषधोपवासः; उपभोगपरिभोगपरिमाणं, अतिथिसंविभागश्चेति ।

सामग्रीको कुप्य कहते हैं। परिग्रहपरिमाणाणुव्रत धारण करनेवालेको इन सब चीजोंका परिमाण करलेना चाहिये कि मैं इन चीजोंको इतनी इतनी रक्खूंगा इससे अधिक नहीं। इसप्रकार परिमाण करलेनेपर अतिशय लोभके वश होकर उसपरिमाणका उलंघन करना अर्थात् खेत मकान आदिकी मर्यादा वा संख्या बढालेना परिग्रहपरिमाण वृतके अतिचार हैं।

जीवोंपर दयाकर रात्रिमें अन्न पान खाद्य और लेह्य इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करना रात्रिभोजन विरमण नामका छठ्ठा अणुवृत कहलाता है।

हिंसा असत्य चोरी कामसेवन और परिग्रह इनसे (एकदेश) विरक्त होना त्यागकरना पांचप्रकारका अणुवृत कहलाता है। तथा रात्रिभोजनका त्याग करना छठा अणुवृत कहा जाता है।

इसप्रकार अणुव्रतोंका वर्णन समाप्त हुआ।

आगे गुणव्रत तथा शिक्षावृतोंका वर्णन करते हैं—जो श्रावक अपने वृतोंको स्थिर रखना चाहता है उसे तीन गुणवृत और चार शिक्षावृत इन सातों विशेष वृतोंको और पालन करना

तत्र प्राची, अपाची, उदीची, प्रतीची, ऊर्ध्वं, अधो, विदिशश्चेति । तासां परिमाणं योजनादिभिः पर्वतादिप्रसिद्धाभिज्ञानैश्च ताश्च दिशो दुष्परिहारैः क्षुद्रजंतुभिराकुला अतस्ततो बहिर्न यास्यामीति निवृत्तिर्दिग्विरतिः । निरवशेषतो निवृत्तिं कर्तुमशक्नुवतः शक्त्या प्राणिवधविरतिं प्रत्यागूर्णस्यात्र प्राणनिमित्तं यात्रा भवतु मा वा सत्यपि प्रयोजनभूयस्त्वे परिमिताद्दिगवधेर्बहिर्न यास्यामीति तिर्यग्गतिक्रम प्रणिधानादहिंसाद्यणुव्रतधारिणोऽप्यस्य परिगणितादिगवधेर्बहिर्मनोवाक्काययोगैः कृतकारितानुमतविकल्पैर्हिंसादिसर्वनिवृत्तिरिति महाव्रतं भवति ।

चाहिये इन सातों व्रतोंको शील कहते हैं तथा दिग्विरति, देशविरति अनर्थदंडविरति, सामायिक, प्रोषधोपवास उपभोगपरिभोगपरिमाण, और अतिथिसंविभागव्रत ये उनके नाम है ।

पूर्व पश्चिम उत्तर दाक्षिण ऊर्ध्व (ऊपर) अधो (नीचे) ईशान आग्नेय नैऋत्य और वायव्य ये दश दिशाएं कहलाती है । पर्वत नदी आदि प्रसिद्ध चिन्होंके द्वारा अथवा योजनादिके द्वारा उन दशो दिशाओंका परिमाण करलेना और यह नियम करलेना कि ये सब दिशाएं जो हटाये न जा सके ऐसे छोटे छोटे जीवोंसे भरी हुई हैं इसलिये इस किये हुए परिमाणके बाहर मैं नहीं जाऊंगा इसप्रकार परिमाणके वाहर जाने आनेका त्यागकरना दिग्विरति है । जो श्रावक संपूर्ण पापोंका त्याग नहीं कर सकता इसलिये अपनी शक्तिके अनुसार प्राणियोंकी हिंसाका त्याग करना चाहता है वह यह समझता है कि प्राणोंके लिये यात्रा हो अथवा न हो भारीसे भारी प्रयोजन वा काम होनेपर भी नियमित दिशाओंके वाहर नहीं जाऊंगा ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाले तथा अहिंसा आदि पाचों अणुव्रतोंको धारण करनेवाले श्रावकके नियमित दिशाओंके परिमाणके बाहर मन बचन काय और कृत करित अनुमोदनासे हिंसादि समस्त पापोंका पूर्ण रीतिसे त्याग होजाता है इसलिये मर्यादाके वाहर उसके महाव्रतही समझा जाता है ।

१ प्रत्याख्यानावरण कर्मके उदयसे महाव्रत होता नहीं है किंतु महाव्रतके समान समझा जाता है ।

दिग्विरमणव्रतस्य पंचातीचारा भवंति। ऊर्ध्वातिक्रमः, अधोऽतिक्रमः तिर्यगतिक्रमः क्षेत्रवृद्धिः स्मृत्यंतराधानं चेति। तत्र पर्वतमरुभूम्यादीनामारोहणादूर्ध्वातिक्रमः। कूपावतरणादिरधोतिक्रमः। भूमिबिलगिरिदरीप्रवेशादिस्तिर्यगतिक्रमः प्राग्दिशो योजनादिभिः परिच्छिन्न पुनर्लोभवशात्ततोऽधिकाकांक्षणं क्षेत्रवृद्धि। इदमिदं मया योजनादिभिरभिज्ञानं कृतमिति तदभावः स्मृत्यंतराधानं। दिग्विरमणव्रतस्य प्रमादान्मोहाद्व्यासंगादतीचारा भवंति। मदीयस्य गृहांतरस्य तडागस्य वा मध्यं मुक्त्वा देशातरं न गमिष्यामीति तन्निवृत्तिर्देशविरतिः। प्रयोजनमपि दिग्विरतिवद्देशविरतिव्रतस्य।

तस्य पंचातिचारा भवंति। आनयनं, प्रेष्यप्रयोगः, शब्दानुपातः, रूपानुपातः, पुद्गलक्षेप इति। तत्रात्मना संकल्पितदेशे स्थितस्य प्रयोजनवशा

इस दिग्विरति व्रतके ऊर्ध्वातिक्रम अघोतिक्रम, तिर्यगतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यंतराधन ये पांच अतिचार होते हैं। पर्वत वा ऊंची भूमिपर चढनेमें ऊपरकी मर्यादामें उलंघन किया जा सकता है कूएमें उतरने आदिमें नीचेकी दिशाका उलंघन हो सकता है। पृथ्वीके वडे वडे विल और पर्वतोंकी कंदराओंमें जानेमें तिर्यक् अतिक्रम होता है। योजनादिके द्वारा जो सब दिशाओंका परिमाण किया था उसके आगे जानेके लिये भी लोभके कारण आकांक्षा रखना क्षेत्र वृद्धि है, मैने योजनादिकों के द्वारा इतना इतना परिमाण किया है ऐसी स्मृतिका भूल जाना स्मृत्यंतराधान है। ये सब अतिचार प्रमादसे मोहसे अथवा व्यासंगसे होते हैं।

मैं इस घरमें रहता हूं अथवा इस तालावके भीतर मकानमें रहता हूं इसलिये (इतने दिनतक अथवा इतनी देरतक) इसके वाहर अन्य देशमें नहीं जाऊंगा इसप्रकार त्याग करदेना देशविरति है। इस देशविरतिका प्रयोजन भी दिग्विरतिके समान समझना चाहिये।

इस व्रतके भी आनयन, प्रेष्यप्रयोग शब्दानुपात, रूपानुपात, और पुद्गलक्षेप ऐसे पांच अतिचार हैं। जितना देश अपने रहनेके लिये संकल्प कर रक्खा है उसमें रहकर भी किसी प्रयोजनसे (मर्यादाके वाहरसे) "तुम यह लेआओ" ऐसी आज्ञादेना आनयन है। जितना देश नियत कर रक्खा है उसके वाहर स्वयं न जाकर भी किसी दूसरेको भेजकर ही अपना प्रयोजन सिद्ध कर

यत्किंचिदानयेत्याज्ञापनमानयनं। परिच्छिन्नदेशाद्बहिः स्वयमगत्वाऽन्यप्रेष्यप्रयोगेणवामिप्रेतव्यापारसाधनं प्रेष्यप्रयोगः । व्यापारकरान्पुरुषानुद्दिश्याभ्युत्कासिकादिकरणं शब्दानुपातः। मम रूपं निरीक्ष्य व्यापारमचिरान्निष्पादयंतीति स्वांगदर्शनं रूपानुपातः। कर्मकरानुद्दिश्य लोष्टपाषाणादिपातः पुद्गलक्षेप इति। दिग्विरतिः सार्वकालिकी। देशविरतर्यथाशक्तिकालनियमेनेति।

प्रयोजनं विना पापादानहेतुरनर्थदंडः। स च पंचविधः। अपध्यानं, पापोपदेशः, प्रमादाचरितं, हिंसाप्रदानं, अशुभश्रुतिरिति। तत्र जयपराजयवधवंधांगछेदसर्वस्वहरणादिकं कथं स्यादिति मनसः चिंतनमपध्यानम्। पापोपदेशश्चतुर्विधः। क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, वधकोपदेशः, आरंभकोपदेशश्चेति। तत्रास्मिन्नदेशे दासीदासाश्च सुलभास्तानमून्देशान्नीत्वा विक्रये कृते महानर्थलोभो भविष्यतीति क्लेशवणिज्या। गोमहिष्यादीन्पशूनत्र गृही-

लेना प्रेष्यप्रयोग है। मर्यादाके वाहर व्यापार करनेवाले आदि पुरुषोंकी ओर लक्ष्य रखकरही अर्थात् उन्हें खास जतलानेकेलिये ही खांसना मठारना आदि शब्दानुपात है मर्यादाके वाहर काम करनेवाले लोग मेरे रूपको मुझे देखकर कामको वहुत जल्दी कर डालेंगे यही समझकर अपना शरीर दिखाना रूपानुपात है। अपने नौकर वा काम करनेवालोंको समझानेके लिये ढेला पत्थर आदि फेंकना पुद्गलक्षेप है। दिग्विरति व्रत जन्मभरकेलिये होता है और देशविरति अपनी शक्तिके अनुसार कालकी मर्यादाको लेकर होता है।

विनाही प्रयोजनके जितने पाप लगते हों उन्हें अनर्थदंड कहते हैं। अनर्थदंड पांच हैं अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादाचरित, हिंसाप्रदान, और अशुभश्रुति। हारना, जीतना, मारना, बांधना अंगोंको काटना सब धनका हरण हो जाना आदि कैसे हो इसप्रकार मनसे चिंतवन करना अपध्यान है। पापोपदेश चारप्रकारका है क्लेशवणिज्या, तिर्यग्वणिज्या, बधकोपदेश और आरंभकोपदेश। अमुकदेशमें दासी दास वहुत मिलते हैं उन्हें वहांसे लेजाकर वेचनेमें वहुतसे धनका लाभ होगा इसको क्लेशवणिज्या कहते हैं। गाय भैंस आदि पशुओंको यहांसे

त्वाऽन्यत्र देशे व्यवहारे कृते सति भूरि वित्तलाभ इति तिर्यग्वणिज्या । वागुरिकसौकरिकशाकुनिकादिभ्यो मृगवराहशकुन्तप्रभृतयोऽमुष्मिन्प्रदेशे संतीति वचनं वधकोपदेशः । आरंभकेभ्यः कृषिवलादिभ्यः क्षित्युदकज्वलनपवनवनस्पत्यारंभोऽनेनोपायेन कर्तव्य इत्याख्यानमारंभकोपदेशः । इत्येवं प्रकारं पापसंयुक्तं वचनं पापोपदेशः । प्रयोजनमंतरेण भूमिकुट्टनसलिलसेचनाग्निविध्यापनवातप्रतिघातवनस्पतिच्छेदनाद्यवद्यकर्म प्रमादाचरितं विषशस्त्राग्निरज्जुकशादंडादिहिंसोपकरणप्रदानं हिंसाप्रदानं । रागादिप्रवृद्धितो दुष्टकथाश्रवणश्रावणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुतिरिति । एतस्मादनर्थदंडाद्विरतिः कार्या ।

अनर्थदंडविरमणव्रतस्य पंचातीचारा भवंति । कंदर्पः, कौत्कुच्यं, मौखर्यं, असमीक्ष्याधिकरणं, उपभोगपरिभोगानर्थक्यमिति । चारित्रमोहोदयापा-

ले जाकर दूसरे देशमें वेचनेसे वहुतसा नफा मिलेगा इसको तिर्यग्वणिज्या कहते हैं। हिरण आदि पशु मारनेवालोंको यह कहना कि अमुक देशमें हिरण वहुत हैं। सूअर मारनेवालों को यह कहना कि अमुक देशमें सूअर वहुत हैं और पक्षी मारनेवालोंको यह कहना कि अमुक देशमें पक्षी बहुत हैं सो बधकोपदेश है। किसान आदि आरंभ करनेवालोंको यह उपदेश देना कि पृथ्वीका आरंभ [जोतना खोदना आदि] इसप्रकारसे करना चाहिये तथा जल अग्नि वायु वनस्पति आदिका आरंभ इस उपायसे करना चाहिये ऐसे उपदेश वा व्याख्यान को आरंभकोपदेश कहते हैं। इसप्रकार पापरूप वचन कहना पापोपदेश है। विना ही प्रयोजनके पृथ्वीको खोदना, पानी सींचना, अग्नि जलाना, वायु रोकना, वनस्पतियोंको काटना आदि पापकर्मोंको प्रमादाचरित कहते हैं। विष, शस्त्र, अग्नि, रस्सी, चाबुक, लाठी आदि हिंसा करनेवाली चीजोंको देना हिंसादान है। राग द्वेष आदिके उद्रेकसे दुष्ट कथाओंको सुनना शिक्षादेना फैलाना आदि अशुभश्रुति है। इन पांचों अनर्थ दंडोंका त्याग अवश्य करना चाहिये इसको अनर्थदंड विरति कहते हैं।

इस अनर्थदंड व्रतके भी कंदर्प कौत्कुच्य मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोग-

दिताद्रागोद्रेकाद्धो हाससंयुक्तोऽशिष्टवाक्प्रयोगः स कंदर्पः । रागस्य समावेशाद्धास्यवचनमविशिष्टवचनमित्येतदुभयं परस्मिन् दुष्टेन कायकर्मणा युक्तं कौत्कुच्यं । अशालीनतया यत्किंचनानर्थकं बहु प्रलपनं तन्मौखर्यं । असमीक्ष्याधिकरणं त्रिविधं मनोवाक्कायविषयभेदात् तत्र मानसं परानर्थककाव्यादि चिंतनं । वाग्भवं निष्प्रयोजनकथाव्याख्यानं परपीडाप्रधानं यत्किंचन वक्तृत्वं च । कायिकं प्रयोजनमन्तरेण गच्छंस्तिष्ठन्नासीनो वा सचित्ताचित्तपत्रपुष्पफलच्छेदनभेदनकुट्टनक्षेपणादीनि कुर्यात्, अग्निविषक्षारादिप्रदानं चारभेत । इत्येवमादि तदेतत्सर्वमसमीक्ष्याधिकरणं । यस्य यावतार्थेनोपभोगपरिभोगौ परिकल्पितौ तस्य तावानेवार्थ इत्युच्यते, ततोऽन्यस्याधिक्यमानर्थक्यं तदुपभोगपरिभोगानर्थक्यं ।

परिभोगानर्थक्य ये पांच अतिचार है। चारित्र मोहनीय कर्मके उदयसे जो रागका उद्रेक होता है उससे हंसी मिलेहुए अशिष्ट वचनोंके कहनेको कंदर्प कहते हैं। रागकी तीव्रताके कारण दूसरेके लिये शरीरकी दुष्ट क्रिया सहित (शरीरके खोटे विकारों सहित) हंसी मिले हुए वचन तथा साधारण वचन इन दोनोंका कहना कौत्कुच्य है। सभ्यताके वाहर जो कुछ अनर्थक और वहुतसा वकवाद करना है वह मौखर्य कहलाता है। असमीक्ष्याधिकरण तीन प्रकार है मनके द्वारा किया हुआ वचनके द्वारा किया हुआ और शरीरके द्वारा किया हुआ। दूसरेका अनर्थ करनेवाले काव्य आदिकोंका चिंतवन करना मनके द्वारा किया हुआ असमीक्ष्याधिकरण है। विना ही प्रयोजनके दूसरेको पीडा देनेकी प्रधानता रखनेवाली कथाओंका व्याख्यान करना अथवा दूसरोंको पीडा देनेकी प्रधानता रखनेवाले व्याख्यान देना वचनके द्वारा किया हुआ असमीक्ष्याधिकरण है। विनाही प्रयोजनके चलते हुए खडे होकर अथवा वैठकर सचित्त वा अचित्त पत्ते फूल आदिको छेदना भेदना, कूटना, फेंकना तथा अग्नि विष खार आदि का देना तथा और भी ऐसी ही क्रियाओंको विना प्रयोजन करना शरीर कृत असमीक्ष्याधिकरण है। जिसका जितने धनसे वा जितनी चीजोंसे उपभोग परिभोग हो सकता है वह तो

सम्यगेकत्वेनायनं गमनं समयः, स्वविषयेभ्यो विनिवृत्त्य कायवाङ्मनःकर्मणामात्मना सह वर्तनाद्द्रव्यार्थेनात्मन एकत्वगमनमित्यर्थः । समय एव सामायिकं, समयः प्रयोजनमस्येति वा सामायिकं । तच्च नियतकाले नियतदेशे च भवति । निर्व्याक्षेपमेकांतं भवनं वनं चैत्यालयादिकं च देशं मर्यादीकृत्य केश बंधं मुष्टिबंधं वस्त्रबंधं पर्यंकमकरमुखायासनं स्थानं च कालमवधिं कृत्वा शीतोष्णादिपरीषहविजयी, उपसर्गसहिष्णुर्मौनी हिंसादिभ्यो विषयकषायेभ्यश्च विनिवृत्त्य सामायिके वर्तमानो महाव्रती भवति । हिंसादिषु सर्वेष्वनासक्तचित्तोऽभ्यंतरप्रत्याख्यानसंयमघातिकर्मोदयजनितमंदाविरतिपरिणामे सत्यपि

उसका अर्थ कहलाता है उससे आधिक संग्रह करना अनर्थक कहलाता है इसप्रकार प्रयोजनसे आधिक सामग्रियोंका इकट्ठा करना उपभोगपरिभोगानर्थक्य है।

अच्छीतरह प्राप्त होना अर्थात् एकान्तरूपसे आत्मामें तल्लीन हो जाना समय है। मन बचन कायकी क्रियाओंका अपने अपने विषयसे हटकर आत्माके साथ तल्लीन होनेसे द्रव्य तथा अर्थ दोनोंसे आत्माके साथ एक रूप होजाना ही समयका अभिप्राय है। समयको ही सामायिक कहते हैं अथवा समयही जिसका प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं। वह सामायिक नियत देश और नियत समयमें ही किया जाता है। जिसमें कोई उपद्रव न हो और एकांत हो ऐसे मकान बन तथा चैत्यालय आदि सामायिककेलिये योग्य देश हैं। ऐसे किसी देशमें केशोंका बांधना, मुष्टिका बांधना वस्त्रोंका बांधना पर्यंक आसन, मकरमुखासन आदि अनेक आसनोंमेंसे किसी एक आसनसे वैठना इन सवकी तथा उस स्थानकी मर्यादा नियतकर सामायिक करना चाहिये। समयकी मर्यादा वांधकर भी सामायिक करना चाहिये और उतने समयतक शीत उष्ण आदिकी परीषह यदि आजांय तो उन्हें जीतना चाहिये। उससमय उपसर्गोंको भी सहन करना चाहिये मौन धारण करना चाहिये और विषय कषायोंसे दूर होकर सामायिक करना चाहिये इसतरह सामायिक करनेवाला गृहस्थ महाव्रती गिना जाता

महाव्रतमित्युपचर्यते । एवं च कृत्वाऽभव्यस्यापि निर्ग्रंथलिंगधारिण एकादशांगाध्यायिनो महाव्रतपरिपालनादसंयमभावस्याप्युपरिमग्रैवेयकविमानवासितोत्पन्ना भवति । एवं भव्योऽपि निर्ग्रंथरूपधारी सामायिकवशादहमिंद्रस्थानवासी भवति चेत्किं पुनः सम्यग्दर्शनपूतात्मा सामायिकमापन्न इति ।

सामायिकव्रतस्य सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानस्य पंचातीचारा भवंति । कायदुःप्रणिधानं, वाग्दु प्रणिधानं, मनोदुःप्रणिधानं, अनादरः, स्मृत्यनुपस्थापनं चेति । तत्र दुष्टं प्रणिधानं, दुःप्रणिधानं, अन्यथा वा प्रणिधानं दुःप्रणिधानं, क्रोधादिपरिणामवशाद्दुष्टं प्रणिधानं भवति, शरीरावयवानामनिभृतावस्थानं कायदुःप्रणिधानम् । वर्णसंस्कारे भावार्थे चागमकत्वं चापलादि वाग्दुःप्रणिधानम् । मनसोऽनर्पितत्वं मनोदुःप्रणिधानं, इति कर्तव्यता प्रत्यसा-

है। यद्यपि उस समय उस सामायिक करनेवालेका चित्त हिंसादि समस्त पापोंमेंसे किसी भी पापमें आसक्त नहीं रहता तथापि संयमको घात करनेवाले अंतरंग कारण प्रत्याख्यानावरण कर्मके उदय होनेसे मंद मंद अविरति रूप (त्याग न करनेरूप) परिणाम होते हैं। तथापि उसे उपचारसे महाव्रत कहते हैं। इसप्रकार सामायिक करनेबाला यदि अभव्य भी हो और वह निर्ग्रंथरूप धारणकर ग्यारह अंगका पाठी हो तो वास्तवमें असंयम भाव धारण करने पर भी वाह्य महाव्रतोंके पालन करनेसे वह उपरिम ग्रैवेयकके विमानोंमें अहमिंद्र उत्पन्न हो सकता है। इसीतरह भव्य जीव भी वाह्य निर्ग्रंथ लिंग धारणकर केवल सामायिक धारण करनेसे अहमिंद्रोंके स्थानमें जाकर उत्पन्न हो जाता है यदि वही भव्य जीव सम्यग्दर्शनसे अपने आत्माको पवित्र करले और फिर सामायिक धारण करे तो फिर उसकी क्या वात है! भावार्थ वह तो मुक्त होता ही है।

समस्त पापरूप योगोंका त्याग करना ही सामायिक है ऐसे इस सामायिकके कायदुःप्रणिधान, वाग्दुःप्रणिधान, मनोदुःप्रणिधान, अनादर, और स्मृत्यनुपस्थापन ये पांच अतिचार हैं। दुष्ट प्रणिधान अथवा दुष्ट प्रवृत्तिको दुःप्रणिधान कहते हैं अथवा अन्यथा रूप प्रवृत्ति करना

कल्यायथा कथंचित्प्रवृत्तिरनुत्साहोऽनादरः । अनैकाग्र्यमसमाहितमनस्कता स्मृत्यनुपस्थापनं, अथवा रात्रिंदिवं प्रामादिकस्य संचिंत्यानुपस्थापनं स्मृत्यनुपस्थापनं । मनोदु प्रणिधानस्मृत्यनुपस्थापनयोरयं भेदः, क्रोधाद्यावेशात्सामायिकौदासीन्येन वा चिरकालमवस्थापनं मनसो मनोदु प्रणिधानं, चिंतायाः परिस्पंदनादैकाग्र्येणानवस्थापनं स्मृत्यनुपस्थापनमिति विस्पष्टमन्यत्वं ।

प्रोषधः पर्वपर्यायवाची, शब्दादिग्रहणं प्रतिनिवृत्तौत्सुक्यानि पंचापीन्द्रियाणि उपेत्य तस्मिन्वसंतीत्युपवासः । उक्तं च—

भी दुःप्रणिधान है। क्रोधादि कषायरूप परिणामोंके निमित्तसे दुष्ट प्रवृत्ति वा दुःप्रणिधान होता है। हाथ पैर आदि शरीरके अवयवोंको निश्चल न रखना काय दुःप्रणिधान है, अक्षरों के उच्चारणमें अथवा भाव वा अर्थमें प्रमाणता न होना उच्चारणमें वा अर्थमें चपलताका होना वाग्दुःप्रणिधान है। सामायिकमें मन न लगाना मनोदुःप्रणिधान है। सामायिकमें करने योग्य कर्तव्य कर्मोंको पूर्ण न करना उनको जिस तिस तरह करना अथवा सामायिक वा सामायिक की क्रियाके करनेका उत्साह न रखना अनादर है। चित्तको एकाग्र न रखना अथवा चित्तमें समाधानता न रखना स्मृत्यनुपस्थापन है। अथवा अत्यंत प्रमादी होनेके कारण रातदिन चिंतवन करते हुए भी स्मरण न रहना स्मृत्यनुपस्थापन है। मनोदुःप्रणिधान और स्मृत्यनुपस्थापन इन दोनोंमें यह भेद है कि क्रोधादि कषायोंके आवेशसे अथवा सामायिकमें उदासीनता रखने के कारण बहुत थोडी देरतक सामायिकमें चित्त लगाना मनोदुःप्रणिधान है और चिंतवनके परिस्पंदन होनेसे अर्थात् बदलजानेसे चित्तको एकाग्र न रखना—स्थिर न रखना स्मृत्यनुपस्थान है। इसप्रकार दोनों अतिचारोंकी भिन्नता स्पष्ट है।

प्रोषध शब्दका अर्थ पर्व है। कान आदि पांचों इंद्रियोंकी अपने शब्द आदि विषयोंके ग्रहण करनेकी उत्सुकता छोडकर आत्मामें आकर निवास करनेको उपवास कहते हैं। लिखा भी है

उपेत्याक्षाणि सर्वाणि निवृत्तानि स्वकार्यतः । वसंति यत्र स प्राज्ञैरुपवासोऽभिधीयते ॥

पर्वणि चतुर्विधाऽऽहारनिवृत्तिः प्रोषधोपवासः, निरारंभः श्रावकः स्वशरीरसंस्कारकारणस्नानगंधमाल्याभरणादिभिर्विरहितः शुचावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथाश्रवणश्रावणचिन्तनावहितांतःकरणः सन्नुपवसेत् ।

प्रोषधोपवासस्य पंचातीचारा भवंति अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानं, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणं, अनादरः, स्मृत्यनुपस्थापनं चेति । तत्र जंतवः संति न संति वेति प्रत्यवेक्षणं चक्षुषोर्व्यापारो मृदुनोपकरणेन यत्क्रियते प्रयोजनं तत्प्रमार्जनं, अप्रत्यवेक्षितायां भुवि मूत्रपुरीषोत्सर्गोऽप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गः अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितस्यार्हदाचार्यादिपूजोपकरणस्य गंधमाल्यधूपादेरात्मपरिधानाद्यर्थस्य वस्त्रपात्रादेश्चादा-

'उपेत्याक्षाणीत्यादि' अर्थात् समस्त इंद्रियां अपने अपने कार्योंसे निवृत्त होकर आत्मामें आकर निवास करे उसे विद्वान् लोग उपवास कहते हैं।

पर्वके दिन चारोंप्रकारके आहारका त्याग करना प्रोषधोपवास है। उस दिन श्रावकको सब तरहके आरंभ छोडदेना चाहिये अपने शरीरका संस्कार करनेवाले शोभा वढानेवाले स्नान, गंध, माला, और आभरण आदिकोंका त्याग करदेना चाहिये तथा किसी पवित्र जगह में, साधुओंके निवासस्थानमें, चैत्यालयमें, अथवा अपने खास प्रोषधोपवासके घरमें रहकर अपने अंतःकरणमें धर्मकथाओंको सुनते और चिंतवन करते रहना चाहिये।

इस प्रोषधोपवास के अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण अनादर और स्मृत्यनुपस्थापन ये पांच अतिचार हैं। यहांपर जीव हैं वा नहीं हैं इसप्रकार आंख से देखनेको प्रत्यवेक्षण कहते हैं। किसी भी कोमल उपकरणसे जीवोंके वचानेको प्रमार्जन कहते हैं। जो पृथ्वी न तो आंख से देखी है और न किसी उपकरणसे शुद्धकी है उसमें मूत्र पुरीष करना (पेशाव करना अथवा शौच वा टट्टी जाना) अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग कहलाता है। अरहंत वा आचार्य आदि परमेष्ठियोंकी पूजाके

नमप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादानं । अप्रत्येक्षिताप्रमार्जितस्य प्रावरणादेः संस्तरणस्योपक्रमणप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमणं । क्षुत्पीडितत्वादावश्यकेष्वनुत्साहोऽनादरः । स्मृत्यनुपस्थापनं व्याख्यातमेव ।

उपेत्यात्मसात्कृत्य भुज्यत इत्युपभोगः, अशनपानगंधमाल्यादि सकृद् भुक्त्वा पुनरपि भुज्यत इति परिभोगः, आच्छादनप्रावरणालंकारशयनासनगृहयानवाहनादि तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणं । भोगपरिसंख्यानं पंचविधं, त्रसघातप्रमादबहुवधानिष्टानुपसेव्यविषयभेदात् । तत्र मधुमांसं सदा परिहर्तव्यं त्रसघातं प्रति निवृत्तचेतसा मद्यमुपसेव्यमानं कार्याकार्यविवेकसंमोहकरमिति तद्वर्जनं । प्रमादविरहाय केतक्यर्जुनपुष्पादीनि बहुजंतुयोनि-

जो वर्तन आदि उपकरण है अथवा गंध माला धूप आदि पूजाकी सामग्री है अथवा अपने पहिननेके कपडे वा बर्तन आदि सामग्री है उन सबकों विना देखे विना प्रमार्जन किये (शोधे) ग्रहण करना अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान है। इसी तरह विना देखे विना प्रमार्जन किये ओढनेके वस्त्रोंको रखना, विछोना विछाना (प्रोषधोपवासके दिन चटाई आदि विछाना) अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण कहलाता है। भूंखकी अधिक बाधा होनेसे (अथवा और किसी कारणसे) देवपूजा आदि आवश्यक कर्मोंमें उत्साह न रखना अनादर है । स्मृत्यनुपस्थापनकी व्याख्या पहिले कर ही चुके हैं।

जो अपने पास लाकर भोगा जाय उसको उपभोग कहते हैं। भोजन पीनेकी चीजें गंध माला आदि सब उपभोग हैं। एकवार भोग करके भी फिर दुवारा तिवारा जिसको उपभोग किया जाय उसको परिभोग कहते हैं। ओढने विछाने पहननेके कपडे आभूषण, शय्या, आसन घर, रथ पालकी आदि सवारी और घोडे हाथी आदि सवारीके जानवर ये सब परिभोग हैं। इन उपभोग परिभोग दोनोंका परिमाण करना उपभोग परिभोग परिमाण कहलाता है। भोगोंका त्याग त्रसघात, (जिसमें त्रस जीवोंको घात हो) प्रमाद (जिसमें प्रमाद वा वेहोशी हो)

स्थानानि, आर्द्रशृंगवेरमूलकहरिद्रानिंबकुसुमादीन्यनंतकायव्यपदेशार्हाणि एतेषामुपसेवनेन बहुघातोऽल्पफलमिति तत्परिहारः श्रेयान् । यानवाहनाभरणादिष्वेतावदेवेष्टमतोऽन्यदनिष्टमित्यनिष्टान्निवर्तनं कर्त्तव्यं । न हि मतमभिसंधिनियमाभावे सतीष्टानामपि चित्रवस्त्रवेषाभरणादीनामनुपसेव्यानां परित्यागः कार्यो यावज्जीवं । अथ न शक्तिः कालपरिच्छेदेन वस्तुपरिमाणेन च शक्त्यनुरूपं निवर्त्तनं कार्यं ।

बहुवध (जिसमें बहुतसे स्थावर जीवोंका घात हो) अनिष्ट (जो इष्ट न हो) अनुपसेव्य (जो सेवन करने योग्य न हो) इनके विषय भेदसे पांच तरह किया जाता है। जिसके हृदयमें त्रस जीवोंकी हिंसाका त्याग है उसे मधु (शहद) और मांस सदाके लिये छोड देना चाहिये। मद्यके (शरावके) सेवन करनेवाला मोहित वा वेहोश हो जाता है। उसे कार्य अकार्यका कुछ ज्ञान नहीं रहता। इसलिये प्रमाद दूर करनेके लिये मद्यका त्याग करना आवश्यक है । केतकीके फूल अर्जुन वृक्षके फूल तथा और भी ऐसे फूलोंमे अनेक छोटे छोटे जीव पैदा होते रहते हैं । वे फूल छोटे छोटे जीवोंके पैदा होनेके स्थान हैं गीला अदरक गीली मूली गीली हल्दी गीले नीमके फूल आदि चीजोंमें अनंतकाय जीव रहते हैं इन सब चीजोंके सेवन करनेसे फल तो बहुत थोडा होता है और घात बहुतसे जीवोंका होता है। इसलिये इनका त्याग कर देना ही कल्याण कारी है। रथ पालकी आदि सवारीकी चीजें, हाथी घोडे आदि सवारीके जानवर तथा आभूषण आदि चीजोंमेंसे मुझे इतना इतना रखना ही अभीष्ट है इतनेके सिवाय सब अनिष्ट है यही समझकर अनिष्टका त्याग अवश्य कर देना चाहिये। जब तक प्रतिज्ञा पूर्वक नियम न किया जाय तबतक व्रत कभी नहीं कहला सकता इसलिये जो पदार्थ इष्ट है अर्थात् अपने नियत किये हुए परिमाणमें आगये हैं उनमें भी अनेक रंगके वस्त्र चित्र विचित्र पोशाक और चित्र विचित्र आभरण आदि जो सेवन करनेके अयोग्य है उनका त्याग भी जीवन पर्यंत

उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रतस्यातीचाराः पंच भवंति । सचित्ताहारः, सचित्तसंबंधाहारः, सचित्तसन्मिश्राहारः, अभिषवाहारः, दुःपक्वाहारश्चेति । तत्र चेतनावद्द्रव्यं सचित्तं हरितकायः तदभ्यवहरणं सचित्ताहारः । सचित्तवतोपश्लिष्टः सचित्तसंबंधाहारः । सचित्तेन व्यतिकीर्णः सचित्तसन्मिश्राहारः । सौवीरादिद्रवो वा वृष्यं वाऽभिषवाहारः । सांतस्तंदुलभावेनातिक्लेदनेन वा दुष्टः पक्वो दुःपक्वाहारः । संबंधमिश्रयोरयं भेदः संसर्गमात्रं संबंधः, सूक्ष्म-

तकके लिये कर देना चाहिये । यदि जन्म भरके त्याग करनेके लिये शक्ति न हो अथवा अधिक पदार्थोंके त्याग करनेकी शक्ति न हो तो कालका परिमाण नियत कर तथा उन पदार्थोंका परिमाण नियत कर अपनी शक्तिके अनुसार त्याग कर देना चाहिये ।

इस उपभोग परिभोग परिमाणके सचित्ताहार, सचित्तसंबंधाहार, सचित्तसन्मिश्राहार अभिषवाहार और दुःपक्वाहार ये पांच आतिचार हैं । जिसमें चेतना हो ऐसे हरितकाय वनस्पति आदि द्रव्योंको सचित्त कहते हैं ऐसे द्रव्योंका भोजन करना सचित्ताहार कहलाता है । जिस भोजनका सचित्तवाले द्रव्यके साथ संबंध वा संसर्ग होगया हो उसे सचित्त संबंधाहार कहते हैं । जिस भोजनमें सचित्त द्रव्य मिलगया हो उसे सचित्तसान्मिश्राहार कहते हैं । जो सोवीर आसव आदि पतले वा पौष्टिक पदार्थ हैं उन्हें अभिषवाहार कहते हैं । जो पककर भी चांवल ही ऐसे बने रहनेसे अथवा अधिक पककर गल जानेसे जिनका पाक दुष्ट पाक कहलाता हो अर्थात् जिस भोजनका पाक ठीक न हुआ हो (अधिक पकगया हो वा थोडा पका हो) उसे दुःपक्वाहार कहते हैं । सचित्त संबंध और सचित्त सन्मिश्र इन दोनोंमें यह भेद है कि जिसके साथ केवल सचित्तका संबंध हुआ हो वह तो सचित्त संबंध है और जिसमें सूक्ष्म जंतु इसप्रकार मिल गये हों कि जिन्हें कभी अलग नहीं कर सकते ऐसे भोजनको सचित्त सन्मिश्र कहते हैं । इन ऊपर लिखे हुए सबतरहके भोजन करनेसे अपना उपयोग सचित्त रूप होता है, इंद्रियोंका मद

जंतुव्याकीर्णत्वाद्विमार्गीकर्तुमशक्यः सन्मिश्रः। एतेषामभ्यवहरणे सचित्तोपयोग इंद्रियमदवृद्धिर्वातादिप्रकोपो वा स्यात्। तत्प्रतीकारविषये पापलेपो भवति। अतिथयश्चैनं परिहरेयुरिति।

संयममविनाशयन्नततीत्यतिथिरथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथिरनियतकालगमनमित्यर्थः। अतिथये संविभागोऽतिथिसंविभागः, स चतुर्विधः भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्। उक्तं हि—

प्रतिग्रहोच्चस्थाने च पादक्षालनमर्चनम्। प्रमाणो योगशुद्धिश्च भिक्षाशुद्धिश्च ते नव ॥ १ ॥

उक्तं हि—

श्रद्धा शक्तिरलुब्धत्वं भक्तिर्ज्ञानं दया क्षमा। इति श्रद्धादयः सप्त गुणाः स्युर्गृहमेधिनाम् ॥ १ ॥

वढता है और वायु आदि दोषोंका प्रकोप होता है तथा उनके प्रतीकार करनेमें भी (उन रोगोंका इलाजकरनेमें भी) पापका लेप होता है अर्थात् पाप वढता है और अतिथि वा साधु लोग भी इन सब चीजोंको छोड देते हैं। (इसलिये ये सव उपभोग परिभोग परिमाणके अतिचार हैं)

जो संयमको नाश न करते हुए विहार करें उन्हें अतिथि कहते हैं अथवा जिनकी कोई तिथि नियत न हों अथात् अनियमित समयमें गमन करते हों उन्हें आतिथि कहते हैं (मुनियोंकी भिक्षामें उत्सव पर्व आदि कोई भी वाधक नहीं होते इसीलिये उनकी भिक्षाके लिये कोई तिथी नियत नहीं रहती वे भिक्षाके लिये कव आवेंगे ऐसा किसीको भी मालूम नहीं रहता) ऐसे आतिथिके लिये दान देना अतिथिसंविभाग व्रत कहलाता है। यह दान भिक्षा उपकरण औषध और प्रतिश्रय (आश्रय वा वसातिका)के भेदसे चार प्रकारका है

अन्य शास्त्रोंमें लिखा है—प्रतिग्रहोचस्थानेत्यादि।

अर्थात् प्रतिग्रह, उचस्थान, पादप्रक्षालन पूजन, प्रणाम, मनको शुद्धरखना, वचनको

एवंविधनवविधपुण्यैः प्रतिपत्तिकुशलेन सप्तगुणैः समन्वितेन मोक्षमार्गमभ्युद्युतायातिथये संयमपरायणाय शुद्धचेतसाऽऽश्चर्यपंचकादिकमनिच्छता निरवद्या भिक्षा देया। धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि दातव्यानि। औषधं ग्लानाय वातपित्तश्लेष्मप्रकोपहताय योग्यमुपयोजनीयं प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्य इति।

अतिथिसंविभागव्रतस्य पंचातीचारा भवंति। सचित्तनिक्षेपः, सचित्तपिधानं, परव्यपदेशः, मात्सर्यं, कालातिक्रमश्चेति। तत्र सचित्ते पद्मपत्रादौ निधानं सचित्तनिक्षेपः। सचित्तेनावरणं सचित्तपिधानं। अयमत्र दाता दीयमानोऽप्ययमस्येति समर्पणं परव्यपदेशः। प्रयच्छतोऽपि सत आदरमंतरेण

शुद्ध रखना कायको शुद्ध रखना, और शुद्धभिक्षा देना ये नौ प्रकारकी भक्ति वा विधि कहलाती है। इसीतरह—श्रद्धाशक्तिरलुब्धत्वमित्यादि—

अर्थात्—श्रद्धा, शक्ति, लोभ न करना, भक्ति, ज्ञान, दया और क्षमा ये श्रद्धा आदि सात दान देने वाले गृहस्थोंके गुण हैं।

इसप्रकार नौतरहका भक्ति वा नौ तरहके पुण्य अथवा विधिके पालन करनेमें जो अत्यंत कुशल है और श्रद्धा आदि सातो गुण जिसमें मौजूद हैं ऐसे गृहस्थको जो मोक्षमार्गके धारण करनेमें सदा तत्पर है और संयम पालन करनेमें सदा तल्लीन है ऐसे अतिथि साधुके लिये शुद्ध चित्तसे पंचाश्चर्य आदि किसी की भी इच्छा न रखकर निर्दोष भिक्षा देना चाहिये। इसीतरह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रकी वृद्धि करनेवाले धर्मोपकरण (पीछी शास्त्र कमंडलु आदि) देने चाहिये जो साधु वात पित्त कफ आदिके प्रकोपसे पीडित हैं ऐसे रोगी मुनिके लिये औषधि देनी चाहिये तथा परमधर्मकी श्रद्धा पूर्वक वसतिका वनवा देनी चाहिये।

इसी अतिथि संविभाग व्रतके सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य, और कालातिक्रम ये पांच अतिचार हैं। आहार देने योग्य भोजनको कमलके पत्ते आदि सचित्त पदार्थपर रखना सचित्तनिक्षेप है। कमलके पत्ते आदि सचित्त पदार्थसे भोजनोंको

दानं मात्सर्यं । अनगाराणामयोग्ये काले भोजनं कालातिक्रम इति । पात्रदाने स्वस्य परस्य चोपकारः, स्वोपकारः, पुण्यसंचयः, परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धिः । तच्च दानं पारंपर्येण मोक्षकारणं साक्षात्पुण्यहेतुः । विधिविशेषाद्द्रव्यविशेषाद्दातृविशेषात्पात्रविशेषाद्दानविशेषः । तत्र प्रतिग्रहोच्चदेशस्थापनमित्येवमादीनां क्रियाणामादरेण करणं विधिविशेषः । दीयमानेऽन्नादौ प्रतिग्रहीतुस्तपःस्वाध्यायपरिवृद्धिकरणत्वाद्द्रव्यविशेषः । प्रतिगृहीतृजनेऽभ्यस्ततया त्यागोऽविषादो दित्सतो ददतो दत्तवतश्च प्रीतियोग, कुशलाभिसंधितावसुधारासुरप्रशंसादिदृष्टफलानपेक्षिता, निरुपरोधत्वमनिदानत्वे श्रद्धादिगुणसमन्वि-

ढकना सचित्तपिधान है । 'इस पदार्थका देनेवाला दाता यह है तथा यह जो भोजन दिया जा रहा है वह इसका है' इस प्रकार कहकर आहार देना परव्यपदेश है । आहार देते हुए भी विना आदरके देना मात्सर्य है । जो समय मुनियोंकी भिक्षाका नहीं है उसमें भोजन करना कालातिक्रम है । पात्र दान देनेमें अपना उपकार भी होता है और दूसरेका भी उपकार होता है। पुण्यकी वृद्धि होना अपना उपकार है और सम्यग्ज्ञानकी वृद्धि होना परोपकार है। वह पात्रदान परंपरासे मोक्षका कारण और साक्षात् पुण्य बढानेका हेतु है।

विधिकी विशेषता होनेसे द्रव्यकी विशेषता होनेसे दाताकी विशेषता होनेसे और पात्रकी विशेषता होनेसे दानमें भी विशेषता हो जाती है । प्रतिग्रह उच्चस्थान आदि नवधा भक्तिकी क्रियाएं हैं उन्हें आदर पूर्वक करना विधिकी विशेषता कहलाती है । भिक्षामें जो अन्न दिया जाय वह यदि आहार लेनेवाले साधुके तपश्चरण स्वाध्याय आदिको बढानेवाला हो तो वही द्रव्यकी विशेषता कहलाती है। आहार देनेवालेका अभ्यास पूर्वक दान देना, दान देनेमें किसी तरहका विषाद न करना जो दान देनेकी इच्छा रखता है जो दान देता है और जिसने दान दिया है उसके प्रति सदा प्रेम प्रगट करना, अपने दान देनेकी कुशलता संसारमें प्रसिद्ध हो, मेरे घर रत्नोंकी वर्षा हो, देव लोग भी मेरी प्रशंसा करें इत्यादि प्रत्यक्ष फलोंकी इच्छा न रख

तत्वमित्येवमादि दातृविशेषः । मोक्षकारणगुणसंयोगः पात्रविशेषः । ततश्च फलविशेषः ।

सत्पात्रोपगतं दानं सुक्षेत्रगतबीजवत् । फलाय यदपि स्वल्पं तदनल्पाय कल्पते ॥ १ ॥

तथा च—दानफलविशेषेणोत्तमभोगभूमौ दशविधकल्पवृक्षजनितसुखफलं श्रीषेणोऽन्वभूत् ।

तथा च—दानानुमोदेन रतिवररतिवेगाख्यं कपोतमिथुनं विजयार्द्धप्रतिबद्धगांधारविषयसुसीमानगराधिपतेरादित्यगते रतिवरचरो हिरण्यवर्मनामा नं-

ना, दान देते हुए किसीको नहीं रोकना निदान नहीं करना, और श्रद्धादि सातों गुणोंको धारण करना तथा और भी ऐसे ही ऐसे गुणोंको धारण करना दाताकी विशेषता कहलाती है मोक्षके कारण जो गुण हैं उनको धारण करना पात्रकी विशेषता है इसप्रकार विधि द्रव्य दाता और पात्रकी विशेषता होनेसे दानमें विशेषता होती है और दानमें विशेषता होनेसे उसके फलमें विशेषता होती है । सत्पात्रोपगतं दानमित्यादि

अर्थात्–जिस प्रकार अच्छे क्षेत्रमें छोटासा भी बीज वोया जाता है तो भी उसपर अनेक बडे बडे फल लगते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ पात्रको यदि थोडासा भी दान दिया जाय तो भी उसका बडा भारी फल प्राप्त हुआ करता है ।

दानके फलकी विशेषतासे ही श्रीषेणने उत्तम भोग भूमिमें जन्म लेकर दश प्रकारके कल्प वृक्षोंसे उत्पन्न हुए अपूर्व सुखका अनुभव किया था ।

इसी प्रकार दानकी अनुमोदना करनेसे रतिवर कबूतर और रतिवेगा कबूतरीने भी सुखोंका अनुभव किया था । रतिवर कबूतर तो दानकी अनुमोदनासे विजयार्द्ध पर्वतपर वसनेवाले गांधार देशकी सुसीमा नगरीके राजा आदित्य गतिके हिरण्यवर्मा नामका पुत्र हुआ और रतिवेगा कबूतरी उसी विजयार्द्ध पर्वतपर गिरि नामके देशके भोगपुर नामके नगर

दनोऽभूत्। तस्मिन्नेव गिरौ गिरिविषये भोगपुरपतेर्वायुरथस्य रतिवेगचरी प्रभावत्याख्या तनयाऽभूत्। एवं हिरण्यवर्मा प्रभावती च जातिकुलसाधितविद्याप्रभावेण सुखमन्वभूतां। उक्तहिंसादिपंचदोषविरहितेन द्यूतमद्यमांसानि परिहर्तव्यानि। तथा चोक्तं महापुराणे—

हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात्। द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट संत्यमी मूलगुणाः॥

कितवस्य सदा रागद्वेषमोहवंचनानृतानि प्रजायंतेऽर्थक्षयोपि भवति जनेष्वविश्वसनीयश्च, सप्तव्यसनेषु प्रधानं द्यूतं तस्मात्तत्परिहर्तव्यं।

तथा च—भरतेऽस्मिन्कुलालविषये श्रावस्तिपुराधिपतिः सुकेतुमहाराजो महाभोगी द्यूतव्यसनाभिहतः स्वकीयं कोशं राष्ट्रमंत पुरं च द्यूते हारयित्वा

के राजा वायु रथकी प्रभावती नामकी पुत्री हुई थी। इन दोनोंका परस्पर विवाह हुआ था और दोनोंका जाति कुल आदिके द्वारा सिद्ध हुई अनेक विद्याएं प्राप्त थीं इसलिये उन विद्याओंके प्रभावसे उन दोनोंने अनेक तरहके सुखोंका अनुभव किया था।

ऊपर जो हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप बतलाये हैं उनका त्याग (एक देश त्याग) करनेवाले श्रावकको जूआ खेलना, मद्यसेवन करना और मांस भक्षण करनेका भी त्याग कर देना चाहिये यही महापुराणमें भी लिखी है। हिंसासत्यस्तेयादित्यादि।

अर्थात् स्थूल हिंसा, स्थूल असत्य, स्थूल चोरी, स्थूल अब्रह्म और स्थूल परिग्रहसे विरक्त होना तथा जूआ मांस और मद्यका त्याग करना ये आठ गृहस्थोंके मूलगुण कहलाते हैं। जूआ खेलनेसे सदा राग द्वेष मोह ठगी झूठ आदि पैदा होते रहते हैं धनका नाश भी होता है और जूआ खेलनेवाला लोगोंमें अविश्वास पात्र गिना जाता है। इसके सिवाय यह जूआ खेलना सातों व्यसनोंमें सबसे प्रधान है। सबसे मुख्य है इसलिये जूआ खेलनेका त्याग अवश्य करदेना चाहिये। देखो इसी भरतक्षेत्रके कुलाल नामके देशमें श्रावस्तिपुर नगरका राजा महाराज सुकेतु बडा ही ऐश्वर्यशाली और सुखी राजा था परंतु जूआ खेलनेके व्यसनमें पडकर वह अपना सब खजाना हार गया, सब राज्य हार गया और सब अंतःपुर हार गया तथा उसे अ-

महादुःखाभिभूतोऽभूत् । तथा च युधिष्ठिरोऽपि द्यूतेन राज्याद्भ्रष्टः कष्टां दशामवाप ।

मांसान्निवृत्तिरहिंसाव्रतपरिपालनार्थं, मांसाशिनं साधवो विनिंदंति प्रेत्य च दुःखभाग्भवति । तथा चान्यैरुक्तं—

मां स भक्षयति प्रेत्य यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदंति मनीषिणः ॥

मांसं प्राणिशरीरं प्राप्यंगस्य च विदारणेन विना । तन्नाप्यते ततस्तत्त्यक्तं जैनैः सदा सर्वैः ॥

तथा हि—कुंभनाम्नो नरपतेर्भीमो नाम महानसिकस्तिर्यग्मांसमलभमानो मृतशिशुमांसं सर्वसंभारेण सन्मिश्रं कृत्वा कुंभस्य दत्तवान् । ततः प्रभृति सोऽपि नरमांसलोलुपः संजातः । तज्ज्ञात्वा प्रकृतयो राज्यस्यायमयोग्य इति तं परिहृतवत्यः । तथा च विंध्यमलयकूटजवने किरातमुख्यः खदिरसारः

नेक तरहके महादुःख भोगने पडे । इसी तरह राजा युधिष्ठिरको भी जूआ खेलनेसे राज्यसे भ्रष्ट होना पडा तथा बडी ही दुःखमयी अवस्था भोगनी पडी ।

अहिंसा व्रतकी रक्षा करनेके लिये मांसका त्याग करना भी आवश्यक है मांस भक्षण करनेवालेकी साधुलोग भी निंदा करते हैं और परलोकमें भी उसे वहुतसे दुःख भोगने पडते हैं । इसी वातको अन्य लोगोंने भी कहा है—मांसं भक्षयति प्रेत्येत्यादि ।

अर्थात्— वुद्धिमान लोग मांस शब्दका अर्थ यही वतलाते हैं कि इस जन्ममें मैं जिसका मांस खाता हूं वह भी परलोकमें मुझे अवश्य खायगा (मांस अर्थात् वह मुझे खायगा यही मांस शब्दका अर्थ हैं) मांस प्राणियोंका शरीर है प्राणियोंके शरीरको विदारण किये विना वह मिल नहीं सकता इसलिये सभी जैनी लोग उस मांसका परित्याग सदाके लिये करदेते हैं ॥

देखो राजा कुंभके भीम नामका रसोइया था किसी एकदिन उसे तिर्यंचका मांस नहीं मिला इसलिये उसने एक मरे हुए वालकका मांस पकाया और उसमें सब मसाले डालकर राजा कुंभको दिया । उसेभी वह वहुत अच्छा लगा और तवसे ही वह मनुष्योंके मांस खानेका

समाधिगुप्तमुनिं दृष्ट्वा प्रणतस्तस्मै धर्मलाभ इत्युक्ते कोऽसौ धर्मः, कोऽसौ लाभ इत्युक्तपरिप्रश्ने मांसादिनिवृत्तिर्धर्मस्तत्प्राप्तिर्लाभस्ततः स्वर्गादिसुखं जायत इत्युक्तवति मुनौ तत्सर्वं परिहर्तुमहमशक्त इति वचने तदाकूतमवधार्य त्वया काकमांसं पूर्वं किं भक्षितमुत न चेत्युक्तेऽकृतभक्षणोऽहमिति प्रतिवचने यद्येवं तदभक्षणव्रतं त्वया गृह्यतामित्युपदेशेन तत्परिगृह्यास्थितः गतवतः कालांतरे तस्यामये समुत्पन्ने सति वैद्येन काकमांसभक्षणादस्य व्याधेरुपशमो भविष्यतीत्युक्ते कंठगतेष्वपि प्राणेषु मया न कर्तव्यं तत्काकमांसोपभोगविरमणव्रतं तपोधनसमीपे परिगृहीतं, संकल्पभंगे कुतः सत्पुरुषता? ततः काकमांसा-

लोलुपी होगया यह वात वहांकी प्रजाको मालूम हुई और " अब यह राज्यके अयोग्य है " यह समझकर उसे राज्यसे अलग कर दिया।

इसीतरह विंध्याचलके मलयकुटज वनमें खादिरसार नामका भीलोंका राजा था उसने किसी एक दिन समाधिगुप्त नामके मुनिराजके समीप जाकर उन्हें प्रणाम किया, मुनिराजने भी उत्तरमें ' धर्मलाभ हो, ऐसा कहा। इसपर खादिरसार ने पूछा कि धर्म क्या है और लाभ किसे कहते हैं? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि मांसादिकका त्याग करना धर्म है और उसका प्राप्ति होना लाभ है धर्मकी प्राप्ति होनेसे अर्थात् धर्म पालन करनेसे स्वर्गआदिके सुख प्राप्त होते हैं। इसपर खादिरसारने कहा कि मैं उन सबका (सबतरहके मांसका) त्याग नहीं कर सकता। तब मुनिराजने उसका अभिप्राय समझकर पूछा कि क्या तूने पहिले कभी कौएका मांस खाया है या नहीं? इसके उत्तरमें खादिरसारने कहा कि आजतक मैंने कौएका मांस कभी नहीं खाया है। यह सुनकर मुनिराजने कहा कि अच्छा जब तैंने कौएका मांस आजतक नहीं खाया है तो अब उसके न खानेका व्रत स्वीकार कर। इसप्रकार मुनिराजके उपदेशसे उसने व्रत स्वीकार किया और मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चला गया। उसके बाद किसी एक समय उसी खादिरसारको कोई रोग होगया उसपर वैद्योंने उपाय बताया कि कौएका मांस खा-

भ्यवहरणं न करिष्यामीति प्रतिज्ञाने समुपलक्षिततदीयाकूतस्तं मांसमुपभोजयितुं सौरपुराधिपतिः शूरवीरनामा तस्य मैथुनः समागच्छन् वनगहनगतवट-तरोरधः काचिदमिरुदतीं समीक्ष्य ' कथय कैन हेतुना रोदिष्येका त्वं ' इत्यनुयुक्ता साऽवोचदहं यक्षी । तव श्यालकं बलवदामयपरिपीडितं मांसभक्षण-विरमणव्रतफलेन मे भविष्यतमधिपतिं भवानद्य मांसभोजनेन नरकगतिभागिनं कर्तुं प्रारभत इति रोदनमनुभवामीति तयोदितः ' श्रद्धेहि ' तदहं न कारयिष्यामीति व्याहृत्य गत्वा तमवलोक्य शरीरामयनिराकरणहेतुस्त्वया मासोपयोगः क्रियतामिति प्रियश्यालकवचनश्रवणेन ' त्वं प्राणसमो बंधुः श्रेय

नेसे इसका रोग शांत हो जायगा। इसपर खदिरसारने प्रतिज्ञा की कि कंठगत प्राण हो जाने पर भी मैं यह काम नहीं कर सकता। मैंने मुनिराजके समीप कौएके मांसके त्याग करनेका व्रत स्वीकार किया है। अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेसे सत्पुरुषपना कैसे रहसकता है? इसलिये मैं कौएका मांस कभी नहीं खाऊंगा। जब खदिरसारने ऐसी प्रतिज्ञा की तब उसका अभिप्राय जानकर उसे कौएका मांस खिलानेके लिये सौरपुर नगरका राजा शूरवीर नामका उसका बहनोई अपने नगरसे आने लगा। उसने गहन वनमें वडके वृक्षके नीचे एक स्त्रीको रोते हुए देखा और उससे पूछा कि " बतला तू अकेली बैठी हुई यहां क्यों रो रही है" उसके उत्तरमें उस स्त्रीने कहा कि मैं " यक्षी हूं। तेरा साला जो बहुत अधिक वीमार है और जिसने कौएके मांस भक्षण करनेके त्याग करनेका व्रत लिया है वह उस व्रतके फलसे मरकर मेरा पति होनेवाला है परन्तु तुम लोग जाकर उसे कौएका मांस खिलाकर उसे नरकमें भेजनेका काम कर रहे हो इसीलिये मैं रो रही हूं।" उस स्त्रीकी यह वात सुनकर उससे शूरवीर ने कहा कि तू विश्वास रख मैं यह काम नहीं करूंगा अर्थात् उसे कौएका मांस नहीं खिलाऊंगा ' ऐसा कहकर वह अपने सालेके पास पहुंचा उसे देखकर वह कहनेलगा कि " शरीरका रोग दूर करनेके लिये तुझे मांसका उपयोग करना चाहिये' अपने प्यारे बहनोई वा सालेके वचन सुन कर खदिरसारने

एव मे कथयितुमर्हसि, न हितार्थवचनमेतन्नरकगतिप्रापणहेतुत्वादेवं म्रियमाणोऽपि म्रिये न तु प्रतिज्ञाहानिं करोमि ' इति निगदितस्तदभिप्रायविधारणा- स्स तस्मै यक्षीनिरूपितवृत्तांतमकथयत् । सोऽपि तदाकर्णनादहिंसादिश्रावकव्रतमविकलमादाय जीवितांते सौधर्मकल्पे देवोभवत् । शूरवीरश्च तस्य प- रलोकक्रियावसान उपगच्छन् यक्षीं निरीक्ष्य 'कथय स किं मे मैथुनस्तव पतिरजायतेति' परिपृष्टा साऽवोचत् । स्वीकृतसमस्तव्रतमहत्स्यामुख्यव्यंतरगति- परांमुखस्य सौधर्मकल्पे समुत्पत्तिरासीत्, ततो मद्विपत्वप्रच्युतः प्रकृष्टदिव्यभोगमनुभवतीति हृदयगततद्वचनार्थनिश्चितमतिरहो व्रतप्रभावः समभिल- षितफलप्रदानसमर्थ इति समाधिगुप्तिमुनिसमीपे परिगृहीतश्रावकव्रतो बभूव । खदिरसारो द्विसागरोपमकालं दिव्यभोगमनुभूय समनुष्ठितभोगनिदानः स्व-

कहा कि " हे शूरवीर तू मेरे प्राणोंके समान प्यारा भाई है तुझे मेरे कल्याण करनेवाले ही व- चन कहने चाहिये परन्तु ये तुम्हारे वचन मेरा कल्याण करनेवाले नहीं है क्योंकि ये वचन मुझे नरक गतिमें लेजानेवाले हैं । इस प्रकार यदि मुझे मरना पडेगा तो मर ज़ाऊंगा परंतु अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोडूंगा' इस प्रकार उसका वचन सुनकर और उसका अभिप्राय जानकर शूरवीरने उसके लिये उस यक्षीका कहा हुआ सब हाल कहा । उसे सुनकर खदिरसारने भी अहिंसा आदि श्रावकके संपूर्ण व्रत धारण कर लिये और आयुके अंतमें मरकर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ । इधर शूरवीरने उसकी अंतिम सब क्रियाएं की और फिर अपने नगरको चलने लगा। मार्गमें वही यक्षी फिर मिली उससे उसने पूछा कि 'कह, मेरा साला तेरा पति हुआ ?' इसके उत्तरमें उस यक्षीने कहा कि 'उसने श्रावकके समस्त व्रत स्वीकार कर लिये थे इसलिये वह व्यंतर देवोंकी गौण गतिमें उत्पन्न नहीं हुआ किंतु गौण देव गतिसे विमुख होकर सौधर्म स्वर्गमें उत्तम देव हुआ है इसलिये वह मेरे पति होनेसे छूट गया है और उत्तम दिव्य भोगोंका अनुभव कर रहा है। यक्षीकी यह वात सुनकर वह अपने हृदयमें विचार करने लगा कि 'देखो व्रतोंका प्रभाव कैसा है ? यह व्रतोंका प्रभाव इच्छानुसार समस्त फल देनेमें समर्थ है' यही

जीविताते-तत- प्रच्युतः प्रत्यंतपुरे सुमित्रनामा मित्रराजः पुत्रोऽभूत् । निर्दर्शनतपः कृत्वा व्यंतर आसीत्ततः कुणिकनरपतेः श्रीमतिदेव्यांश्च श्रेणिकोऽभूदिति । एवं दृष्टादृष्टफलस्याप्यहितं मांसं ।

मद्यपस्य हिताहितविवेकता वाच्यावाच्यता गम्यागम्यता कार्याकार्यं च नास्ति । मद्यमुपसेविनो जनस्य स्मृतिं विनाशयति, विनष्टस्मृतिकः किं न करोति, किं न भाषते, कमुन्मार्गं न गच्छति, सर्वदोषाणामास्पदं तदेव तस्याख्यानं ।

निश्चयकर उसने श्रीसमाधिगुप्त मुनिके समीप श्रावकके समस्त व्रत स्वीकार कर लिये। इधर खदिरसारने दो सागर तक दिव्य भोगोंका अनुभव किया और भोगोंका निदानकर आयु पूरी होने पर वहांसे च्युत हुआ तथा प्रत्यंतपुर नामके नगरमें सुमित्र नामका मित्र राजाका पुत्र उत्पन्न हुआ। वहांपर उसने सम्यग्दर्शन रहित होकर तपश्चरण किया और मरकर व्यंतर देव हुआ फिर वहांसे आकर राजा कुणिककी रानी श्रीमती देवीके श्रेणिक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे यह सिद्ध है कि मांस भक्षण करनेका प्रत्यक्ष फल भी बुरा है और परोक्ष फल भी बुरा है।

मद्य सेवन करने वालोंको (शराब आदि नशेकी चीजें खाने पीने वालोंको) तो हित अहितका कुछ विचार नहीं रहता। क्या कहना चाहिये क्या नहीं, कहां जाना चाहिये कहां नहीं तथा क्या करना चाहिये क्या नहीं? आदि किसी बातका ध्यान नहीं रहता है। जो मनुष्य मद्य सेवन करता है उसकी स्मरण शक्ति सब नष्ट हो जाती है और जिसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है वह कौनसा पापकार्य नहीं कर सकता कौनसा वचन नहीं कह सकता और कौनसे कुमार्गमें नहीं जा सकता? अभिप्राय यह है कि मद्यका सेवन करना सब दोषोंका स्थान है। इसी बातको दिखलानेवाली एक कथा यहां पर लिखी जाती है।

तथा हि—कश्चित् ब्राह्मणो गुणी गंगास्नानार्थं गच्छन्नटवीप्रदेशे प्रहसनशीलेन मदिरामदोन्मत्तेन कांतासहितशवरेण संनिरुध्य मांसभक्षणसुरापानशवरीसंसर्गेषु भवताऽन्यतमं अंगीकरणीयमन्यथा भवंतं व्यापादयामीत्युक्तः; किंकर्तव्यतामूढः, प्राण्यंगत्वान्मांसभक्षणे पापोपलेपो भवति, शवरीसंसर्गे जातिनाशः संजायते, पिष्टोदकगुडधातक्यादिसमुत्पन्न निरवद्यं मद्यमिदं पिबामीति पीत्वा विनष्टस्मृतिरगम्यगमनमभक्ष्यभक्षणं च कृतवान्। तथा हि—मद्यपायिनामपराधाद्द्वीपायनमुनिकोपाद्भस्मीभूतायां द्वारवत्यां विनष्टा यादवा इति।

मत्तो हिनस्ति सर्वं मिथ्या प्रलपति विवेकविकलतया। मातरमपि कामयते सावद्यं मद्यमत्त एव ॥

कोई एक ब्राह्मण बडा ही गुणवान था। वह गंगा नहानेके लिये चला, मार्गमें वह एक जंगलमें होकर जा रहा था कि इतनेमें हंसी मजाक करनेवाले और मद्यके मदसे उन्मत्त हुए एक भीलनें आकर उसे रोक लिया। भीलके साथ उसकी स्त्री भी थी। भीलने उस ब्राह्मणको रोक कर कहा कि 'तुम या तो मांस भक्षण करो, या मद्य सेवन करो (शराव पीओ) अथवा इस स्त्रीके साथ संसर्ग करो यदि इन तीनोंमेंसे तुम कोई भी काम न करोगे तो मैं तुम्हें मार डालूंगा' ब्राह्मण देवता उस भीलकी यह वात सुनकर वडे विचारमें पड गये सोचने लगे कि 'मांस प्राणियोंका अंग है उसके भक्षण करनेसे बडाभारी पाप लगेगा और इस भीलनीके साथ संसर्ग करनेसे जातिका नाश हो जायगा। हां यह मद्य केवल आटा पानी गुड और धायके फूल आदिसे बना है इसलिये यह निर्दोष है इसके पीनेमें कोई दोष नहीं है, यही समझ कर उसने वह मद्य पी डाला। जब वह वेहोश हुआ और उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो गई तब उसने अगम्यगमन (उस भीलनीके साथ संसर्ग) भी किया अभक्ष्य भक्षण (मांसका भक्षण) भी किया। देखो मद्य पीनेवालोंके अपराधसे ही द्वीपायन मुनिको क्रोध हुआ था तथा उसी क्रोधसे द्वारावती नगरी सब जल गई थी और यादव लोग सब नष्ट हो गये थे। मत्तो हिनस्ति सर्वमित्यादि—

अर्थात्— शरावके नशेमें मदोन्मत्त होकर यह जीव सब जीवोंकी हिंसा करता है, विवेक

सामायिकः संध्यात्रयेऽपि भुवनत्रयस्वामिनं वंदमानो वक्ष्यमाणव्युत्सर्गतपसि कथितक्रमेण ।
द्विनिषण्णं यथाजातं द्वादशावर्तमित्यपि । चतुर्नति त्रिशुद्धं च कृतिकर्म प्रयोजयेत् ॥
अस्य सामायिकस्यानंतरोक्तशीलसप्तकांतर्गतं सामायिकं व्रतं व्रतिकस्य शीलं भवतीति ।
प्रोषधोपवासः मासे मासे चतुर्ष्वपि पर्वदिनेषु स्वकीयां शक्तिमनिगूह्य प्रोषधनियमं मन्यमानो भवतीति व्रतिकस्य यदुक्तं शीलं प्रोषधोपवासस्तदस्य व्रतमिति

रहित होकर मिथ्या प्रलाप करता है और माताके साथ भी काम वासना प्रगट करता है, इस-लिये मद्यका सेवन सब पापोंसे भरा हुआ है।

अब आगे शेष प्रतिमाएं बतलाते हैं—सामायिक सवेरे दुपहर और शाम तीनों समय करना चाहिये और वह तीनों लोकोंके स्वामी भगवान जिनेंद्रदेवको नमस्कारकर आगे जो व्युत्सर्ग नामका तपश्चरण कहेंगे उसमें कहे हुए क्रमके अनुसार करना चाहिये। द्विनिषणं इत्यादि—

अर्थात् खडे होकर अथवा बैठकर इन दो ही आसनोंसे उत्पन्न हुए बच्चेके समान निर्वि-कार होकर चारो दिशाओंमें बारह आवर्त करना चाहिये। चारो दिशाओंमें चार नमस्कार करना चाहिये, मन वचन काय तीनोंको शुद्ध रखना चाहिये और इस तरह अपना कर्तव्य कर्म करना चाहिये।

पहिले जो सात शीलोंके अंतर्गत सामायिक कहा है वही सामायिक इस सामायिक प्रतिमा पालन करनेवाले श्रावकके व्रत हो जाता है और दूसरा व्रत प्रतिमा पालन करनेवालेके वही सामायिक शील रूपसे रहता है।

प्रोषधोपवास प्रत्येक महीनेके चारों पर्वोंमें अपनी शक्तिको न छिपाकर तथा प्रोषधके सब नियमोंको मानकर करना चाहिये। व्रती श्रावकके जो प्रोषधोपवास शीलरूपसे रहता था वही

सचित्तव्रतो दयामूर्तिर्मूलफलशाखाकरीरकंदपुष्पबीजादीनि न भक्षयत्यस्योपभोगपरिभोगपरिमाणशीलव्रतातिचारो व्रतं भवतीति ।

रात्रिभक्तव्रतः रात्रौ स्त्रीणां भजनं रात्रिभक्तं तद्व्रतयति सेवत इति रात्रिव्रतातिचारा रात्रिभक्तव्रतः दिवाब्रह्मचारीत्यर्थः । ब्रह्मचारी शुक्रशोणितबीजं रसरुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रसप्तधातुमयमनेकस्रोतोबिलं मूत्रपुरीषभाजनं कृमिकुलाकुलं विविधव्याधिविधुरमपायप्रायं कृमिभस्मविष्ठापर्यवसानमंगमित्यनंगाद्विरतो भवति ।

आरंभविनिवृत्तोऽसिमसिकृषिवाणिज्यप्रमुखादारंभात्प्राणातिपातहेतोर्विरतो भवति । परिग्रहविनिवृत्तः क्रोधादिकषायाणामार्तरौद्रयोर्हिंसादिपंचपापानां

प्रोषधोपवास इस चौथी प्रतिमावालेके व्रतरूपसे रहता है।

सचित्त विरत प्रतिमावाला दयाकी मूर्ति होता है और वह मूल, फल, शाखा, करीरकंद, पुष्प, और बीज आदिकोंको कभी नहीं खाता है। उपभोग परिभोग परिमाण शीलके जो अतिचार हैं उनका त्याग ही इस पांचवीं प्रतिमावालेके व्रत कहलाता है।

छठी प्रतिमाका रात्रिभक्त वृत नाम है । रात्रि में ही स्त्रियोंके सेवन करनेका वृत लेना अर्थात् दिनमें वृह्मचारी रहनेकी प्रतिज्ञा लेना रात्रिभक्त वृत प्रतिमा है । रात्रिभोजनत्यागके अतिचार त्याग करना ही रात्रिभक्त वृत है।

सातवीं प्रतिमाका नाम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है इस प्रतिमाका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी समझता है कि यह शरीर शुक्र शोणित से (पिताके वीर्य और माताके रुधिरसे) बना हुआ है, रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा और शुक्र (वीर्य) इन सातों धातुओं से भरा हुआ है अनेक इन्द्रिय ही इसके विल हैं। मल मूत्रका यह पात्र (वर्तन) है अनेक छोटे कीडों के समूहोंसे भरा हुआ है अनेक तरहके रोगोंसे व्याप्त है प्रायः नश्वर है अथवा नाश करनेवाला है और अंतमें या तो इसमें अनेक कीडे पड जांयगे जलादिया जायगा अथवा कोई खाकर विष्ठा बनादेगा। इसप्रकार शरीरको समझकर वह कामदेवसे सदा विरक्त रहता है।

भयस्य च जन्मभूमिः, दूरोत्सारितधर्म्यशुक्ल. परिग्रह इति मत्वा दशविधवाह्यपरिग्रहाद्विनिवृत्तः स्वच्छः संतोषपरो भवति ।

अनुमतिविनिवृत्त आहारादीनामारंभाणामनुमननाद्विनिवृत्तो भवति ।

उद्दिष्टविनिवृत्तः स्वोद्दिष्टपिंडोपधिशयनवसनादेर्विरतः सनेकशाटकधरो भिक्षाशनः पाणिपात्रपुटेनोपविश्य भोजी रात्रिप्रतिमादितपःसमुद्यत आतापनादियोगरहितो भवति ।

आठवीं प्रतिमा आरंभत्याग है इस प्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक प्राणियोंकी हिंसा होनेके कारण असि मसि कृषि वाणिज्य आदि आरंभोंसे विरक्त रहता है अर्थात् उनका त्याग करदेता है।

नोवीं प्रतिमाका नाम परिग्रह त्याग है इस प्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक समझता है कि यह परिग्रह क्रोधादि कषायोंकी, आर्त रौद्र अशुभ ध्यानोंकी, हिंसा आदि पांचों पापोंकी और डर की जन्मभूमि है अर्थात् ये सब परिग्रहसे ही उत्पन्न होते हैं तथा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान इस परिग्रहसे दूर भाग जाते हैं यही समझकर वह दशप्रकारके बाह्य परिग्रहोंका त्याग करदेता है और सब परिग्रहसे अलग तथा विशुद्ध होकर संतोष धारण करनेमें तल्लीन हो जाता है।

दशवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग प्रतिमा है। इस प्रतिमाका धारण करनेवाला श्रावक आहार आदि आरंभकार्योंमें सम्मति देनेका त्याग करदेता है।

ग्यारहवीं प्रतिमाका नाम उद्दिष्टत्याग प्रतिमा है इस प्रतिमाको धारण करनेवाला श्रावक अपने निमित्त बनाये हुए भोजन उपाधि शय्या और वस्त्र आदिका त्याग करदेता है। केवल एक चादर धारण करता है भिक्षावृत्तिसे भोजन करता है तथा बैठकर पाणिपात्रसे ही

अणुव्रतिमहाव्रतिनौ समितियुक्तौ संयमिनौ भवतः समितिं विना विरतौ । तथा चोक्तं वर्गणाखंडस्य बंधनाधिकारे—

संजमविरदीणं को भेदो, ससमिदिमहव्वयाणुव्वयाइं संजमो, समदीहिं विणा महव्वयाणुव्वयाइं विरदी । इति ।

आद्यास्तु षट् जघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनु त्रयः । शेषौ द्वावुत्तमावुक्तौ जैनेषु जिनशासने ॥

असिमषिकृषिवाणिज्यादिभिर्गृहस्थानां हिंसासंभवेऽपि पक्षचर्यासाधकत्वैर्हिंसाऽभाव- क्रियते । तत्राहिंसापरिणामत्वं पक्षः । धर्मार्थं देवतार्थं मंत्रसि-

भोजन करता है। वह रात्रिप्रतिमा आदि तपश्चरण करनेमें तत्पर रहता है परन्तु आतापन आदि योगोंको धारण नहीं करता।

यदि अणुव्रती और महाव्रती दोनो ही समितियोंको पालन करें तो संयमी कहलाते हैं यदि ये दोनोंही समितियोंको पालन न करें तो विरत अथवा व्रती कहलाते हैं। यही बात वर्गणाखंडके बंधनाधिकारमें लिखी है—

संजमविरदीण को भेदो ससमिदिमहव्वयाणुव्वयाइं संजमो समदीहिं विणा महव्वयाणुव्वयाइं विरदी ।

अर्थात्— संयम और विरति (अथवा व्रती) में क्या भेद है? जो समितियों के साथ साथ महाव्रत और अणुव्रत हों तो संयम समझना चाहिये। यदि समितियोंके विना ही महाव्रत और अणुव्रत हों तो विरति अथवा व्रत समझना चाहिये

जिनागम और जैनियोंमें इन ग्यारह प्रतिमामें से पहिलेकी छह प्रतिमा जघन्य मानी जाती हैं इनके वादकी तीन अर्थात् सातवी आठवी और नौवीं प्रतिमाएं मध्यम मानी जाती हैं और वाकीकी दशवीं ग्यारहवीं प्रतिमाएं उत्तम मानी जाती हैं।

यद्यपि असि मषी कृषि वाणिज्य आदि आरंभ कर्मोंसे गृहस्थोंके हिंसा होना संभव है तथापि पक्ष चर्या और साधकपना इन तीनोंसे हिंसाका निवारण किया जाता है। इनमेंसे

द्वयर्थमौषधार्थमाहारार्थं स्वभोगार्थं च गृहमेधिनो हिंसां न कुर्वंति । हिंसासंभवे प्रायश्चित्तविधिना विशुद्धः सन् परिग्रहपरित्यागकरणे सति स्वगृहं धर्मं च वंश्याय समर्प्य यावद् गृहं परित्यजति तावदस्य चर्या भवति । सकलगुणसंपूर्णस्य शरीरकंपनोच्छ्वासनोन्मीलनविधिं परिहरमाणस्य लोकाग्रमनसः शरीरपरित्याग- साधकत्वमेवं पक्षादिभिस्त्रिभिर्हिंसाद्युपचितं पापमपगतं भवति ।

जैनागमे चत्वार आश्रमाः—उक्तं चोपासकाध्ययने ।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः । इत्याश्रमास्तु जैनानां सप्तमांगाद्विनिःसृताः ॥

सदा अहिंसारूप परिणाम करना पक्ष है गृहस्थी लोग धर्मकेलिये, किसी देवताकेलिये, किसी मंत्रको सिद्ध करनेके लिये ओषधिके लिये आहारके लिये और अपने भोगोपभोगके लिये कभी हिंसा नहीं करते हैं। यदि किसी कारणसे हिंसा होगई हो तो विधिपूर्वक प्रायश्चित्त कर विशुद्धता धारण करते हैं। तथा परिग्रहका त्याग करनेके समय अपना घर और धर्म अपने वंशमें उत्पन्न हुए पुत्र आदिको समर्पणकर जबतक वे घरको परित्याग करते हैं तबतक उनके चर्या कहलाती है।

इसीतरह जिसमें संपूर्ण गुण विद्यमान हैं, जो शरीरका कंपना, उच्छ्वासलेना, नेत्रोंका खोलना आदि क्रियाओंका त्याग कर रहा है और जिसका चित्त लोकके ऊपर विराजमान सिद्धोंमें लगा हुआ है ऐसे समाधिमरण करनेवालेका शरीर परित्याग करना साधकपना कहलाता है। इसप्रकार पक्ष चर्या और साधकत्व इन तीनोंसे गृहस्थीके हिंसा आदिसे इकट्ठे किये हुए पाप सब नष्ट हो जाते हैं।

जैन शास्त्रोंमें चार आश्रम हैं। उपासकाध्ययनमें भी लिखा है—ब्रह्मचारी इत्यादि।

अर्थात् ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और भिक्षुक ये जैनियोंके चार आश्रम सातवें उपासकाध्ययन अंगसे निकले हैं।

तत्र ब्रह्मचारिणः पंचविधाः—उपनयावलंबादीक्षागूढनैष्ठिकभेदेन । तत्रोपनयब्रह्मचारिणो गणधरसूत्रधारिणः समभ्यस्तागमा गृहधर्मानुष्ठायिनो भवंति । अवलंबब्रह्मचारिणः क्षुल्लकरूपेणागममभ्यस्य परिगृहीतगृहावासा भवंति । अदीक्षाब्रह्मचारिणः वेषमंतरेणाभ्यस्तागमा गृहधर्मनिरता भवंति । गूढब्रह्मचारिणः कुमारश्रमणाः संतः स्वीकृतागमाभ्यासा बंधुभिर्दुःसहपरीषहैरात्मना नृपतिभिर्वा निरस्तपरमेश्वररूपा गृहवासरता भवंति । नैष्ठिकब्रह्मचारिणः समाधिगतशिखालक्षितशिरोलिंगाः गणधरसूत्रोपलक्षितोरोलिंगाः, शुक्लरक्तवसनखंडकौपीनलक्षितकटीलिंगाः स्नातका भिक्षावृत्तयो देवतार्चनपरा भवंति ।

इनमें भेदसे ब्रह्मचारी पांच प्रकारके होते हैं उपनय, अवलंब, अदीक्षा, गूढ और नैष्ठिक। जो गणधर सूत्रको धारण कर अर्थात् मौंजीबंधनविधिके अनुसार यज्ञोपवीतको धारण कर उपासकाध्ययन आदि शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थ धर्म स्वीकार करते हैं उन्हें उपनय ब्रह्मचारी कहते हैं । जो क्षुल्लकका रूप धारणकर शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उन्हें अवलंब ब्रह्मचारी कहते हैं। जो विनाही ब्रह्मचारीका भेष धारण किये शास्त्रोंका अभ्यास करते हैं और फिर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उन्हें अदीक्षा ब्रह्मचारी कहते हैं। जो कुमार अवस्थामें ही मुनि होकर जैनशास्त्रोंका अभ्यास करते हैं तथा पिता भाई आदि कुटुम्बियोंके आग्रहसे अथवा घोर परीषहोंके सहन न करनेसे किंवा राजाकी किसी विशेष आज्ञासे अथवा अपने आप ही जो परमेश्वर भगवान अरहंतदेवकी दिगंबर अवस्था छोडकर गृहस्थधर्म स्वीकार करते हैं उन्हें गूढ ब्रह्मचारी कहते हैं। समाधि धारण करते समय शिखा (चोटी) धारण करनेसे जिसके मस्तकका चिन्ह प्रगट हो रहा है यज्ञोपवीत धारण करनेसे जिसका उरोलिंग (वक्षस्थलका चिन्ह) प्रगट हो रहा है सफेद अथवा लाल वस्त्रके टुकडेकी लंगोटी धारण करनेसे जिसकी कमरका चिन्ह प्रगट हो रहा है जो सदा भिक्षा वृत्तिसे अपना निर्वाह करते हैं जो स्नातक वा व्रती हैं और जो सदा जिनपूजा आदि करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं।

गृहस्थस्येज्या, वार्ता, दत्ति:, स्वाध्याय:, संयम:, तप इत्यार्यषट्कर्माणि भवंति । तत्रार्हत्पूजेज्या, सा च नित्यमहश्चतुर्मुखं कल्पवृक्षोऽष्टाह्निक ऐन्द्रध्वज इति । तत्र नित्यमहो नित्यं, यथाशक्ति जिनगृहेभ्यो निजगृहाद् गंधपुष्पाक्षतादिनिवेदनं, चैत्यचैत्यालयं कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासनदानं मुनिजनपूजनं च भवति । चतुर्मुखं मुकुटबद्धैः क्रियमाणा पूजा सैव महामहः सर्वतोभद्र इति । कल्पवृक्षोऽर्थिनः प्रार्थितार्थैः संतर्प्य चक्रवर्तिभिः क्रियमाणो मह । अष्टाह्निकं प्रतीतं । ऐन्द्रध्वज इन्द्रादिभिः क्रियमाणः बलिस्नपनं संध्यात्रयेपि जगत्त्रयस्वामिनः पूजाभिषेककरणं । पुनरप्येषा विकल्पा अन्येऽपि पूजाविशेषाः सन्तीति । वार्त्ताऽसिमषिकृषिवाणिज्यादिशिल्पकर्मभिर्विशुद्धवृत्त्याऽर्थोपार्जनमिति । दत्तिः दयापात्रसमसकलभेदाच्चतुर्विधा । तत्र दयाद-

इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप ये छह गृहस्थोंके आर्य कर्म कहलाते हैं । इनमें भी अरहंत भगवानकी पूजा करना इज्या कहलाती है, उस इज्याके नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, अष्टाह्निक, और ऐंद्रध्वज ये पांच भेद हैं । प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार अपने घरसे गंध पुष्प अक्षत आदि ले जाकर जिनभवनके लिये चढाना अथवा जिन भवनमें अरहंत देवकी पूजा करना, जिन भवन अथवा जिन प्रतिमाका कराना, तथा जिन प्रतिमा वा जिन भवनके लिये राज्यके नियमानुसार सनदपत्र लिखकर गांव खेत आदि समर्पण करना तथा मुनिलोगोंकी पूजा करना आदिको नित्यमह कहते हैं । मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे चतुर्मुख कहते हैं महामह और सर्वतोभद्र भी इसीके नामांतर हैं । समस्त याचकोंको उनकी इच्छानुसार धनसे संतुष्टकर जो चक्रवर्तीके द्वारा पूजा की जाती है उसे कल्पवृक्ष कहते हैं । अष्टान्हिक पूजा प्रसिद्ध ही है अर्थात् नंदीश्वर पर्वके दिनोंमें जो पूजा की जाती है उसे अष्टान्हिक कहते हैं । इंद्र प्रतींद्र आदिके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे ऐंद्रध्वज कहते हैं इनके सिवाय बलि अर्थात् नैवेद्य समर्पण स्नपन अर्थात् अभिषेक तीनों समय तीनो लोकोंके स्वामी भगवान जिनेंद्र देवकी पूजा करना अभिषेक करना आदि भेद तथा और भी पूजाके

तिरनुकंपयाऽनुग्राह्येभ्यः प्राणिभ्यस्त्रिशुद्धिभिरभयदानं । पात्रदत्तिर्महातपोधनेभ्यः प्रतिग्रहार्चनादिपूर्वकं निरवद्याहारदानं ज्ञानसंयमोपकरणादिदानं च । समदत्तिः स्वसमक्रियाय मित्राय निस्तारकोत्तमाय कन्याभूमिसुवर्णहस्त्यश्वरथरत्नादिदानं, स्वसमानाभावे मध्यमपात्रस्यापि दानं । सकलदत्तिरात्मीयस्वसंततिस्थापनार्थं पुत्राय गोत्रजाय वा धर्मं धनं च समर्प्य प्रदानमन्वयदत्तिश्च सैव । स्वाध्यायस्तत्त्वज्ञानस्याध्ययनमध्यापनं स्मरणं च संयमः पंचाणुव्रतप्रवर्तनं । तपोऽनशनादिद्वादशविधानुष्ठानं ।

विशेष भेद बहुतसे होते हैं ॥ असि (तलवार आदि शस्त्र) मषि (स्याही लिखनेका काम) कृषि (खेती) वाणिज्य (व्यापार) आदि शिल्प कर्मोंके द्वारा अपनी शुद्ध प्रवृत्ति रखकर धन उपार्जन करना वार्ता है। दान देनेको दत्ति कहते हैं। वह दयादत्ति, पात्र दत्ति, समदत्ति और सकलदत्तिके भेदसे चार प्रकार है जिनपर अनुग्रह करना आवश्यक है ऐसे दुखी प्राणियोंको दया पूर्वक मन वचन कायकी शुद्धतासे अभय दान देना दयादत्ति है । महा तपश्चरण करने वाले मुनियोंको प्रतिग्रह पूजन आदि नवधा भक्ति पूर्वक निर्दोष आहार देना तथा ज्ञान संयमके शास्त्र पीछी कमंडलु आदि उपकरण देना पात्र दान वा पात्र दत्ति है। अपने समान क्रियाओंको करनेवाले मित्रोंकेलिये उत्तम निस्तारक वा गृहस्थाचार्यकेलिये कन्या, भूमि, सुवर्ण हाथी, घोडा, रथ रत्न आदि देना, यदि अपने समान क्रिया करनेवाले न मिलें तो मध्यम पात्र केलिये ही कन्या आदि देना समदत्ति है। अपनी निजकी संतान सदा कायम रखनेके लिये पुत्रको अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए किसी पुरुष को अपना धन और धर्म समर्पण कर देना सकल दत्ति है अन्वयदत्ति भी इसी का नाम है। तत्त्वज्ञानको पढना पढाना स्मरण करना आदि स्वाध्याय है पाचों अणुव्रतोंमें अपनी प्रवृत्ति रखना संयम है और उपवास आदि बारह तरहका तपश्चरण करना तप है।

इत्यार्यषट्कर्म्मनिरता गृहस्था द्विविधा भवंति। जातिक्षत्रियास्तीर्थक्षत्रियाश्चेति। तत्र जातिक्षत्रियाः क्षत्रियब्राह्मणवैश्यशूद्रभेदाच्चतुर्विधाः। तीर्थक्षत्रियाः स्वजीवनविकल्पादनेकधा भिद्यंते।

वानप्रस्था अपरिगृहीतजिनरूपा वस्त्रखंडधारिणो निरतिशयतपःसमुद्यता भवन्ति।

भिक्षवो जिनरूपधारिणस्ते बहुधा भवंति। अनगारा यतयो मुनय, ऋषयश्चेति। तत्रानगाराः सामान्यसाधव उच्यते। यतय उपशमक्षपकश्रेण्यारूढा भण्यन्ते। मुनयोऽवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च कथ्यन्ते। ऋषयः—ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधाः, राजब्रह्मदेवपरमभेदात्। तत्र राजर्षयो विक्रियाऽक्षीण-

इस प्रकार आर्योंके जो छह कर्म हैं उनमें तत्पर रहनेवाले गृहस्थ कहलाते हैं और वे दो प्रकारके होते हैं जाति क्षत्रिय और तीर्थक्षत्रिय। क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य और शूद्रके भेदसे जाति क्षत्रिय चार प्रकारके हैं और अपनी जीविकाके भेदसे तीर्थ क्षत्रिय अनेक प्रकारके हैं। जिन्होंने भगवान अरहंत देवका दिगंबर रूप धारण नहीं किया है और जो खंडवस्त्रोंको धारण कर निरातिशय तपश्चरण करनेमें तत्पर रहते हैं उन्हें वानप्रस्थ कहते हैं। भगवान अरहंत देवकी दिगंबर अवस्थाको धारण करनेवाले भिक्षु कहलाते हैं उनके अनगार यति मुनि और ऋषिके भेदसे बहुतसे भेद होते हैं। साधारण साधुओंको अनगार कहते हैं। जो उपशमश्रेणी तथा क्षपकश्रेणीमें विराजमान हैं उन्हें यति कहते हैं। अवधि ज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी और केवलज्ञानियोंको मुनि कहते हैं। जिन्हें ऋद्धियां प्राप्त हो चुकी हैं उन्हें ऋषि कहते हैं राजर्षि ब्रह्मर्षि देवर्षि और परमर्षिके भेदसे ऋषि चार प्रकारके होते हैं। जिन्हें विक्रिया ऋद्धि और अक्षीण-ऋद्धि प्राप्त हो चुकी है उन्हें राजर्षि कहते हैं बुद्धि और ओषधि ऋद्धिको धारण करनेवाले ब्रह्मर्षि हैं आकाशगामिनी ऋद्धिको धारण करनेवाले देवर्षि हैं और केवल ज्ञानी परमर्षि कहलाते हैं। लिखा भी है— देशप्रत्यक्ष इत्यादि।

र्द्धिप्राप्ता भवंति । ब्रह्मर्षयो बुद्ध्यौषधिऋद्धियुक्ताः कीर्त्यन्ते । देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसंयुक्ताः कथ्यन्ते । परमर्षयः केवलज्ञानिनो निगद्यन्ते ।

अपि च—देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिह मुनिः स्यादृषिः प्रोद्गतर्द्धि—रारूढश्रेणियुग्मोऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुरुक्तः ।
राजा ब्रह्मा च देवः परम इति ऋषिर्विक्रियाऽक्षीणशक्ति-प्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण ॥

उक्तैरुपासकैर्मारणान्तिकी सल्लेखना प्रीत्या सेव्या । स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां बलानामुच्छ्वासनिःश्वासस्य च कदलीघातस्वपाकच्युति-कारणवशात्संक्षयो मरणं, तच्च द्विविधं, नित्यमरणं तद्भवमरणं चेति । तत्र नित्यमरणं समये समये स्वायुरादीनां निवृत्तिः । तद्भवमरणं भवांतरप्रा-

अर्थात— यति मुनि ऋषि और अनगार ये चार मुख्य भेद हैं । सामान्य साधुओंको अनगार कहते हैं, जो उपशमश्रेणी अथवा क्षपकश्रेणीपर आरूढ हैं उनको यति कहते हैं अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियोंको मुनि कहते हैं और जिनको ऋद्धियां प्राप्त हुई हैं उन्हें ऋषि कहते हैं । ऋषियोंके चार भेद हैं राजर्षि ब्रह्मर्षि देवर्षि और परमर्षि । जिनको विक्रिया ऋद्धि और अक्षीण ऋद्धि प्राप्त हुई है उनको राजर्षि कहते हैं, बुद्धि और ओषधि ऋद्धि को धारण करनेवाले ब्रह्मर्षि कहलाते हैं जिन्हें आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हुई है उन्हें देवर्षि कहते हैं और केवलज्ञानी सर्वज्ञदेवको परमर्षि कहते हैं ।

ऊपर जिनका वर्णन किया जा चुका है ऐसे श्रावकोंको मरण समयमें होनेवाली सल्लेखना बडे प्रेमसे सेवन करनी चाहिये । कदली घात होनेके कारण अथवा अपना पाक पूर्ण हो जाने के कारण अपने परिणामोंसे प्राप्त हुई आयुका स्पर्शन आदि इंद्रियोंका, मन वचन काय बलों का और श्वासोच्छ्वासका नाश होना मरण है । वह मरण दो प्रकारका है एक नित्यमरण और दूसरा तद्भव मरण । प्रत्येक समयमें जो आयु कर्मके निषेक खिरते रहते हैं उसको नित्यमरण कहते हैं तथा जिसमें पहिलेका भव नाश होकर अगले भवकी प्राप्ति हो उसे तद्भवमरण कहते

स्तिरनन्तरोपश्लिष्टपूर्वभवविगमनं । अत्र पुनस्तद्भवमरणं ग्राह्य, मरणान्तः प्रयोजनमस्या इति मारणांतिकी । बाह्यस्य कायस्याभ्यंतराणां कषायाणां तत्कारणहापनया क्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि निःप्रतिक्रियायां धर्मार्थं तनुत्यजनं सल्लेखना । ततो नित्यप्रार्थितसमाधिमरणे यथाशक्ति प्रयत्नं कृत्वा शीतोष्णाद्युपश्लेषे सति तपःस्थो यथा शीतोष्णादौ हर्षविषादं न करोति तथा सल्लेखनां कुर्वाणः शीतोष्णादौ हर्षविषादमकृत्वा स्नेहं संगवैरादिकं परिग्रहं च परित्यज्य विशुद्धचित्तः स्वजनपरिजने क्षन्तव्यं निःशल्यं च प्रियवचनैर्विधाय विगतमानकषायः कृतकारितानुमतमेनः सर्वमा-

हैं। यहां मारणांतिकी सलेखनामें तद्भवमरण ग्रहण करना चाहिये। मरणांत ही जिसका प्रयोजन हो उसको मारणांतिकी कहते हैं। अनुक्रमसे उनके कारणोंको घटाते हुए वाह्य शरीरको और अंतरंग कषायोंको अच्छी तरह कृष करना घटाना सल्लेखना है। किसी उपसर्गके आजानेपर अथवा घोर दुर्भिक्ष पडनेपर अथवा जिसको कोई उपाय नहीं ऐसा वुढापा आजानेपर धर्मके लिये (अपना संचित धर्म बनाये रखनेके लिये) शरीरका त्याग करना सल्लेखना है। गृहस्थको समाधिमरणके लिये सदा प्रार्थना करते रहना चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार सदा उसकेलिये प्रयत्न करते रहना चाहिये। यदि समाधिमरणके समय शीत उष्ण आदि परीषहें आजांय तो उस समय तपश्चरणमें लीन हो जाना चाहिये और शीत उष्ण आदिमें (ठंडी गरमीमें) कभी हर्ष विषाद नही करना चाहिये। इस प्रकार सल्लेखनाको धारण करते हुए गृहस्थको शीत उष्ण आदिमें हर्ष विषाद नही करना चाहिये। स्नेह संग परिग्रह और वैर आदिका परित्यागकर चित्तको अत्यंत शुद्ध रखना चाहिये, कुटुंबी परिवारके लोगोंको क्षमा कर देना चाहिये और प्रिय वचनोंके द्वारा सबसे क्षमा कराकर सबको शल्य रहित कर देना चाहिये, मान कषायको दूर कर किये हुए कराये हुए और अनुमोदना किये हुए समस्त पापोंकी आलोचना करनी चाहिये तदनंतर गुरुके समीप (गुरुसे) मरण पर्यंत तकके लिये महाव्रत

लोच्य गुरौ महाव्रतमामरणमारोप्यारतिदैन्यविषादभयकालुष्यादिकमपहाय सत्त्वोत्साहमुदीर्य श्रुतामृतेन मनः प्रसाद्य क्रमेणाहारं परिहाय ततः स्निग्धपानं तदन्तरं खरपानं तदनु चोपवासं कृत्वा गुरोः पादमूले पंचनमस्कारमुच्चारयन्पंचपरमेष्ठिनां गुणान्स्मरन्सर्वयत्नेन तनुं त्यजेदिति सल्लेखना संयतस्यापि।

अथ सल्लेखनाया मरणविशेषोत्पादनसमर्थाया असंक्लिष्टचित्तेनारब्धायाः पंचातीचारा भवन्ति। जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुरागः, सुखानुबन्ध, निदानं चेति। तत्र शरीरमिदमवश्यं हेयं जलबुद्बुदवदनित्यमस्यावस्थानं कथं स्यादित्यादरो जीविताशंसा। आशंसाऽऽकांक्षणमभिलाष इ-

धारण करना चाहिये और अरति, दीनता, विषाद, भय, और कलुषता आदिको दूर कर देना चाहिये, अपना बल और उत्साह प्रगट कर शास्त्ररूपी अमृतके द्वारा मनको प्रसन्न वा शुद्ध करना चाहिये और अनुक्रमसे आहारका त्यागकर तथा छाछ पीकर निर्वाह करना चाहिये। तदनंतर छाछका भी त्यागकर गर्म पानीपर रहना चाहिये और फिर गर्म जलका भी त्याग कर उपवास करना चाहिये। अंतिम समयमें गुरुके चरण कमलोंके समीप रहकर पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करना चाहिये, पांचों परमेष्ठियोंके गुणोंका स्मरण करना चाहिये और सब तरहके यत्नोंसे शरीरका त्याग करना चाहिये। यह सल्लेखना संयमीके भी होती है।

विशेष मरणको उत्पन्न करनेवाली यह सल्लेखना यदि असंक्लेश परिणामोंसे भी आरंभकी जाय तो भी उसके जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबंध और निदान ये पांच अतिचार होते हैं। यह शरीर अवश्य ही त्याग करने योग्य है और जलके बुद्बुदेके समान अनित्य है इसलिये यह किस तरह ठहर सकेगा इस प्रकार शरीरके ठहरनेमें आदर रखना जीविताशंसा है। आशंसा, आकांक्षा, और अभिलाषा इन सबका एक ही अर्थ है। भावार्थ—जीवित रहनेकी अभिलाषा वा इच्छा करनेको जीविताशंसा कहते हैं। रोगोंके उपद्रवोंसे व्याकुल हो

त्यनर्थान्तरं । रोगोपद्रवाकुलतया प्राप्तजीवनसंक्लेशस्य मरणं प्रति चित्तप्रणिधानं मरणाशंसा । व्यसने सहायत्वमुत्सवे संभ्रम इत्येवमादि सुकृतं बाल्ये सह पांसुक्रीडनमित्येवमादीनामनुस्मरणं मित्रानुरागः । एवं मया भुक्तं शयितं क्रीडितमित्येवमादि प्रीतिविशेषं प्रति स्मृतिसमन्वाहारः सुखानुबन्धः । विषयसुखोत्कर्षाभिलाषभोगाकांक्षतया नियतं चित्तं दीयते तस्मिन् तेनेति वा निदानमिति ॥

इति श्रीमच्चामुण्डरायप्रणीते भावनासंग्रहे चारित्रसारे सागारधर्मः समासोऽयं ॥

कर प्राप्त हुऐ जीवनमें संक्लेशता धारण कर मरनेके लिये चित्तमें विचार करना (जल्दी मरजानेकी इच्छा करना) मरणाशंसा है। मेरे मित्रोंने मेरे व्यसनोंमें इस प्रकार सहायताकी थी मेरे उत्सवमें इस प्रकार उत्साह दिखलाया था तथा ऐसे ऐसे बहुतसे काम किये थे, बालकपनमें मेरे साथ रेतमें खेले थे इस प्रकार उनके कार्योंका वार वार स्मरण करना मित्रानुराग है। इस जन्ममें मैंने इस प्रकार खाया है ऐसी ऐसी शय्याओं पर सोया हूं ऐसी ऐसी क्रीडाकी है इस प्रकार जिन जिनमें विशेष प्रेम था उनका वार वार स्मरण करना सुखानुबंध है। विषय सुखोंकी अत्यन्त अभिलाषा होनेके कारण अथवा भोगोंकी आकांक्षा होनेके कारण उन्हीं भोगोपभोगोमें चित्तका सदा लगा रहना अथवा उन्हीं भोगोपभोगोंके द्वारा चित्तमें सदा चिंतवन बना रहना निदान है। इसप्रकार सल्लेखनाके पांच आतिचार हैं।

इसप्रकार श्रीचामुंडरायप्रणीत भावना संग्रहके अंतर्गत चारित्रसारमें सागारधर्मका निरूपण समाप्त हुआ।

षोडशभावनाप्रकरणम् ।

उक्तैरेकादशोपासकैर्वक्ष्यमाणदशधर्माधारैश्च मनुष्यगतौ केवलज्ञानोपलक्षितजीवद्रव्यसहकारिकारणसंबंधप्रारंभस्यानंतानुपमप्रभावस्याचिन्त्यविशेपविभूतिकारणस्य त्रैलोक्यविजयकरस्य तीर्थंकरनामगोत्रकर्मणः कारणानि षोडशभावना भावयितव्या इति । तद्यथा-दर्शनविशुद्धता, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचारः, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः, संवेगः, शक्तितस्त्यागः, शक्तितस्तपः, साधुसमाधि , वैयावृत्यकरणं, अर्हद्भक्तिः, आचार्यभक्तिः, बहुश्रुतभक्ति', प्रवचनभक्तिः, आवश्यकापरिहाणिः, मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्यमिति । तत्र जिनोपदिष्टे नैर्ग्रंथ्ये मोक्षवर्त्मनि रुचिः सम्यग्दर्शनं, विशुद्धिं विना दर्शनमात्रादेव तीर्थं-

आगे सोलह भावनाएं लिखते हैं—इस संसारमें तीर्थंकर नाम कर्म और गोत्रकर्म मनुष्य गतिमें उत्पन्न हुए केवल ज्ञानी जीवोंके सहकारी कारणोंके संबंधको प्रारंभ करनेवाला है अर्थात् तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होजाने से फिर केवल ज्ञान उत्पन्न होनेकी सामग्री अपने आप मिल जाती है उस कर्मका उदय ही सब सामग्री इकट्ठी कर देता है इसके सिवाय उस कर्मके उदय का प्रभाव अनंत और उपमारहित है, वह स्वयं जिसका चिंतवन भी नहीं किया जा सकता ऐसी विशेष विभूतिका कारण है और तीनों लोकोंका विजय करनेवाला है इसलिये ऊपर जिन ग्यारह प्रकार के श्रावकोंका वर्णन कर चुके हैं उन्हें आगे कहे हुए उत्तमक्षमा आदि दश धर्मों को धारणकर उस तीर्थंकर नाम कर्म और गोत्र कर्मकी कारणभूत सोलह भावनाओंका चिंतवन करना चाहिये । आगे उन्हीं सोलह भावनाओं को बतलाते हैं । दर्शनविशुद्धता, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना और प्रवचनवात्सल्य ये सोलह भावनाएं हैं । भगवान अर्हंतदेवके कहे हुये निर्ग्रंथ रूप मोक्ष मार्गमें श्रद्धा प्रतीति वा विश्वास रखना सम्यग्दर्शन है । उसकी विशुद्धिके

करनामकर्मबंधो न भवति, त्रिमूढापोढाष्टमदादिरहितत्वात् । उपलब्धनिजस्वरूपस्य सम्यग्दर्शनस्य प्रथमद्वितीयोपशमकवेदकक्षायिकान्यतमविशिष्टस्य ज्ञानदर्शनतपश्चारित्रेषु तद्वत्सु च विनये, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगयुक्तत्वे, साधुभ्यः प्रासुकप्रदाने, द्वादशविधतपसि, साधूनां समाधिवैयावृत्यकरणे, अर्हत्सु व्रतशीलावश्यकसंपन्नाचार्येषु च बहुश्रुतेषु प्रवचने च भक्तौ, प्रवचनप्रभावने, प्रवचनवत्सलत्वे प्रवर्त्तनं विशुद्धता । एकाऽपि सा दर्शनविशुद्धता तीर्थंकरनामबंधस्य कारणं भवति, शेषभावनानां तत्रैवान्तर्भावादिति दर्शनविशुद्धता व्याख्याता । सम्यग्दर्शनादिषु मोक्षसाधनेषु तत्साधकेषु गुर्वादिषु च स्व-

विना केवल सम्यग्दर्शन होने मात्रसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध नहीं होता । वह विशुद्ध सम्यग्दर्शन चाहे प्रथमोपशमिक हो चाहे द्वितीयोपशमिक हो, चाहे क्षायोपशमिक हो और चाहे क्षायिक हो परंतु उसमें तीन मूढता और आठों मदोंसे रहित होनेके कारण अपने आत्माका निजस्वरूप प्रत्यक्ष होना चाहिये ऐसे विशुद्ध सम्यग्दर्शनसे तीर्थंकर नाम कर्मका बंध होता है । आगे उसकी विशुद्धता वतलाते हैं । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, तपश्चरण और चारित्रकी विनय करनेमें अर्थात् इनको पालन करनेमें तथा इनको पालन करनेवाले मुनियोंकी विनय करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, अपना उपयोग निरंतर ज्ञानरूप होनेमें तथा संवेग धारण करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, साधुओंको प्रासुक आहार आदिके दान देनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, बारह प्रकारके तपश्चरण करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना, साधु समाधि और वैयावृत्य करनेमें प्रवृत्ति रखना, अरहंतकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, व्रत शील और आवश्यकोंको पालनकरनेवाले आचार्योंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, उपाध्यायोंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना और शास्त्रोंकी भक्तिमें प्रवृत्ति रखना, जिनमार्गकी प्रभावना और साधर्मियोंके साथ गाढ प्रेम करनेमें अपनी प्रवृत्ति रखना वह सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता कहलाती है । ऐसी सम्यग्दर्शनकी विशुद्धता अकेली ही तीर्थंकर नाम कर्मके बंधका कारण होती है, क्योंकि वाकीकी पंद्रह भावनाएं भी सब

योगवृत्या सत्कार आदरः कषायनोकषायनिवृत्तिर्वा विनयसम्पन्नता। अहिंसादिषु व्रतेषु तत्परिपालनार्थेषु च क्रोधवर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः कायवाङ्मनसा शीलव्रतेष्वनतिचार इति। मत्यादिविकल्पं ज्ञानं जीवादिपदार्थस्वतत्वविषयं प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणमज्ञाननिवृत्त्यव्यवहितफलं हिताहितानुभयप्राप्तिपरिहारोपेक्षाव्यवहितफलं यत्तस्य भावनायां नित्ययुक्तताऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग इति। शारीरं मानसं च बहुविकल्पं प्रियविप्रयोगाप्रियसंयोगेप्सितालाभादिजनितं संसारदुःखं यदतिकष्टं ततो नित्यभीरुता संवेग इति। आहारो दत्तः पात्राय तस्मिन्नहनि तत्प्रीतिहेतुर्भवति, अभयदानमुपपादितमेकभवव्य-

उसी एक दर्शन विशुद्धिमें ही शामिल हो जाती हैं। इस प्रकार दर्शन विशुद्धताका व्याख्यान किया अब आगे अनुक्रमसे शेष भावनाओंको कहते हैं।

अपनी योग्यताके अनुसार मोक्षके कारण रूप सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्रका आदर सत्कार करना तथा इन सम्यग्दर्शन आदि मोक्षके कारणोंको पालन करनेवाले गुरु आदिकोंका अपनी योग्यताके अनुसार आदर सत्कार करना अथवा कषाय नोकषायोंका त्याग कर देना विनयसंपन्नता है। अहिंसा आदि व्रतोंमें तथा उन व्रतोंका पालन वा रक्षा करनेवाले शीलोंमें अथवा क्रोधादि कषायोंके त्याग करनेमें मन वचन कायकी निर्दोष प्रवृत्ति होना शील व्रतेष्वनतीचार है। भावार्थ—शील और व्रतोंका अतिचार रहित निर्दोष पालन करना शील व्रतेष्वनतिचार कहलाता है। मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवल आदिको ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीतिसे आत्मतत्त्वके विषयभूत जीवादि पदार्थोंका ज्ञान होना अथवा ज्ञान होनेके बाद ही उनकी अज्ञानताका दूर होना उस ज्ञानका फल है अथवा हितकी प्राप्ति अहितका परिहार और जो हिताहित दोनोंसे रहित है उसकी उपेक्षा करना यही उस ज्ञानका तत्कालीन फल है ऐसे ज्ञानकी भावना करनेमें सदा लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। संसारके दुःख शारीरिक और मानसिक आदिके भेदसे अनेक तरहके होते हैं तथा अपने इष्ट जनोंका वियोग हो जाना, अनिष्ट पदार्थोंका संयोग हो जाना और इच्छानुसार पदार्थोंका न मि-

सन्नोदनकरं, सम्यग्ज्ञानदानं पुनरनेकभवशतसहस्रदुःखोत्तारणकारणमतस्त्रित्रिविधाहाराभयज्ञानदानभेदेन यथाविधि प्रतिपाद्यमानं त्याग इत्युच्यते। शरीरमिदं दुःखकारणमनित्यमशुचि नास्य यथेष्टं भोगविधिना परिपोषो युक्तः, अशुच्यपीदं गुणरत्नसंचयोपकारीति विचिन्त्य विनिवृत्तविषयसुखाभिषंगस्य कार्यं प्रत्येतद्भृतकमिव नियुंजानस्य यथाशक्तिमार्गाविरोधकाय क्लेशानुष्ठानं तप इति। यथा भाण्डागारे समुत्थिते दहने तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारित्वात्तथानेकव्रतसमृद्धस्य मुनिगणस्य तपसः कुतश्चित्प्रत्यूहे समुपस्थिते तत्संधारणं साधुसमाधिरिति। गुणवतः साधुजनस्य संनिहिते दुःखे निरवद्येन वि-

लना आदि अनेक तरहसे उत्पन्न होते हैं इसके सिवाय वे इस जीवको अत्यंत कष्ट देनेवाले हैं इसलिये ऐसे संसारके दुःखोंसे सदा डरते रहना संवेग कहलाता है। पात्रके लिये दिया हुआ आहारदान केवल उसीदिन उसको संतुष्ट करनेका कारण होता है। तथा अभयदान देनेसे उसके एक भवके दुःख दूर होते हैं और सम्यग्ज्ञानका दान देना अनेक भवोंके सैकडों हजारों दुःखों से पार कर देना है इसलिये विधिपूर्वक आहारदान अभयदान और ज्ञानदान देना त्याग कहा जाता है। यह शरीर अनेक दुःखोंका कारण है तथा अनित्य और अपवित्र है इसलिये इसकी इच्छानुसार भोगोपभोगके द्वारा इसको पुष्ट करना ठीक नहीं है। यद्यपि यह अपवित्र है तथापि रत्नत्रयरूप गुणोंके संचय करनेमें कुछ उपकार अवश्य करता है यही समझकर जिसने विषय सुखोंका संबंध बिलकुल छोड दिया है और जो इस शरीरको सेवकके समान अपने आत्मकल्याण करने रूप कार्यमें सदा लगाये रहता है ऐसे साधुका अपनी शक्तिके अनुसार मोक्षमार्गका विरोध न करनेवाला उपवासादिक द्वारा काय क्लेश सहन करना तप है। जिस प्रकार किसी भांडागारमें (चीजोंसे भरे हुए कोठेमें) अग्नि लग जाय तो उसे लोग बुझा देते हैं क्योंकि उस अग्निके बुझा देनेसे बहुतसा उपकार होता है उसी प्रकार अनेक व्रत आदि गुणोंसे सुशोभित ऐसे मुनियोंके समूहके लिये अथवा किसी एक तपस्वीके लिये यदि किसी

विना तदपहरणं बहुप्रकारं वैयावृत्यमिति । अर्हदाचार्येषु केवलश्रुतज्ञानदिव्यनयनेषु परहितकरप्रवृत्तिषु स्वपरसमयविस्तरनिश्चयज्ञेषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च श्रुतदेवतासंनिधिगुणयोगदुरासदे मोक्षपदप्रासादारोहणसुरचितसोपानभूते भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिस्त्रिधा कल्प्यत इति । षडावश्यकक्रियाः, सामायिकं, चतुर्विंशतिस्तवः, वंदना, प्रतिक्रमणं, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्गश्चेति । तत्र सामायिकं सर्वसावद्ययोगनिवृत्तिलक्षणं, चित्तस्यैकत्वेन ज्ञानेन प्रणिधानं वा

कारणसे उनके व्रतादिकोंमें कोई विघ्न आजाय तो उसको दूर करना साधु समाधि है। अनेक गुणोंको धारण करनेवाले साधुओंको कोई दुःख उपस्थित हो जाने पर निर्दोष विधिसे उस दुखको दूर करना तथा अनेक तरहसे सेवा चाकरी करना वैयावृत्य है। केवल ज्ञानरूपी दिव्य नेत्रोंको धारण करनेवाले अरहंतमें विशुद्ध भावोंसे प्रेम रखना अर्हद्भक्ति है। श्रुतज्ञानरूपी दिव्य नेत्रोंको धारण करनेवाले आचार्योंमें विशुद्ध भावोंसे प्रेम रखना आचार्य भक्ति है। जिनकी प्रवृत्ति सदा दूसरोंका हित करनेवाली है और जो अपना आगम तथा परके आगमोंके विस्तार रीतिसे जाननेके कारण निश्चयनयसे कहे जाने योग्य वास्तविक तत्वोंके जानकार हैं ऐसे उपाध्यायोंमें विशुद्ध भावोंसे अनुराग वा प्रेम रखना उपाध्याय भक्ति है तथा मोक्षपदरूपी राज भवनके चढनेके लिये जो सीढियोंके समान बनाया गया है और श्रुत देवताके समीप रहनेवाले गुणोंके संयोगसे जो अत्यंत दुरासद वा कठिन [कठिनतासे जानने योग्य] है ऐसे शास्त्रोंमें विशुद्ध भावोंसे अनुराग वा प्रेम रखना प्रवचन भक्ति कहलाती है। यह चारो ही प्रकारकी भक्ति मन वचन काय तीनोंसे करनी चाहिये। इन तीनोंसे करनेके कारण वह तीन प्रकारकी कही जाती है। सामायिक, चतुर्विंशातिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक क्रियाएं कहलाती हैं। पापरूप समस्त योगोंका त्याग करना अथवा एक ज्ञानके द्वारा चित्तको निश्चल रखना अथवा शत्रु, मित्र, मणि, पाषाण, सुवर्ण, मिट्टी, जीना, मरना और लाभ

शत्रुमित्रमणिपाषाणसुवर्णमृत्तिकाजीवितमरणलाभालाभादिषु रागद्वेषाभावो वेति । चतुर्विंशतिस्तवस्तीर्थकरपुण्यगुणानुकीर्त्तनमिति । वंदना त्रिशुद्धिद्वयासनथतु शिरोवनतिर्द्वादशावर्तना चेति, तत्प्रपंचस्तूत्तरत्र वक्ष्यते । प्रतिक्रमणमतीते दोषनिवर्त्तनमिति । प्रत्याख्यानमनागतदोषापोहनमिति । कायोत्सर्गः परमितकालविषयशरीरममत्वनिवृत्तिरिति । एतासां षण्णा क्रियाणां यथाकालं प्रवर्त्तनमनौत्सुक्यमावश्यकापरिहाणिरिति । ज्ञानतपो जिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावनेति । प्रकृष्टं वचनं प्रवचनं, प्रकृष्टस्य वा वचनं प्रवचनं, सिद्धांतो द्वादशांगमित्यनर्थान्तरं, तत्र भवा देशमहाव्रतिनः, असंयतसम्यग्दृष्टयश्च प्रवचनमित्युच्यते, तेष्वनुराग आकांक्षा ममेदं भावः प्रवचनवत्सलत्वं । तेनैकेनापि तीर्थकरनामकर्मबंधो भवति । कुतः पंचमहाव्रताद्यागमा-

अलाभ आदिमें रागद्वेषका त्याग करना सामायिक है। चौवीस तीर्थकरोंके पुण्यरूप गुणोंका कीर्तन करना चतुर्विंशतिस्तव है। मन वचन कायको शुद्ध रख कर खडे हो कर अथवा बैठकर चारो दिशाओंमें चार शिरोनति करना तथा बारह आवर्त करना आदि वंदना है। इस वंदनाको आगे विस्तारके साथ लिखेंगे। अतीत दोषोंको दूर करना प्रतिक्रमण है और आगे होनेवाले दोषोंका परित्याग करना प्रत्याख्यान है। परिमित समयके लिये शरीरसे ममत्व छोडना कायोत्सर्ग है। इन छहो क्रियाओंको अपने यथायोग्य समय पर करना किसी तरहका प्रमाद न करना आवश्यकापरिहाणि है। ज्ञान तपश्चरण और जिनपूजा आदि क्रियाओंके द्वारा धर्मको प्रकाशित करना मार्ग प्रभावना है। सवसे उत्तम वचनोंको प्रवचन कहते हैं। अथवा सवसे उत्तम पुरुषके वचनोंको प्रवचन कहते हैं सिद्धांत अथवा द्वादशांग आदि उसीके नामांतर हैं। उन सिद्धांत शास्त्रोंके अनुसार होनेवाले देशव्रती, महाव्रती और असंयत सम्यग्दृष्टियोंको भी प्रवचन कहते हैं उन सबमें अनुराग रखना, आकांक्षा रखना, उनमें ममत्वबुद्धि रखना प्रवचनवत्सलत्व कहलाता है। इस एक ही प्रवचन वत्सलत्वसे तीर्थकर नामकर्मका बंध हो जाता है क्यों कि पंच महाव्रत आदि शास्त्रोंमें कहे हुए पदार्थोंमें जो उत्कृष्ट अनुराग है वह दर्शनविशुद्धि

वंनिवमस्योत्कृष्टानुरागस्य दर्शनविशुद्धयादिपंचदशस्वविनाभावात्। एवं षोडश भावनाः स्युः। एकैकस्यां भावनायामविनाभाविन्य इतरपंचदश भावनाः वेन सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि वा तीर्थंकरनामकर्मास्रवकारणानि भवंति। असंयतसम्यग्दृष्टित अपूर्वकरणस्य षट्-सप्त भागा यावत्।

इति श्रीचामुण्डरायप्रणीते चारित्रसारे षोडशभावनावर्णनं समाप्तं।

आदि पंद्रहों भावनाओंसे अविनाभावी है। भावार्थ—प्रवचनवत्सलत्वके साथ साथ दर्शनविशुद्धि आदि पंद्रह भावनाएं अवश्य रहती हैं इसका भी कारण यह है कि विना उन पंद्रह भावनाओं के प्रवचनवत्सलत्व हो ही नहीं सकता। इस तरह ये सोलह भावनाएं हैं। इनमें प्रत्येक भावना शेष पंद्रहों भावनाओंकी अविनाभाविनी है अर्थात् जहां एक भावना रहती है वहां वाकीकी पंद्रह भी अवश्य रहती हैं क्योंकि शेष पंद्रहोंके विना कोई भी एक नहीं हो सकती। इसलिये अच्छी तरह चिंतवनकी हुई ये सोलह भावनाएं पृथक् पृथक् अथवा सब मिलकर तीर्थंकर नाम कर्मके आस्रव होनेमें कारण होती हैं। असंयत सम्यग्दृष्टीसे लेकर अपूर्व करण गुणस्थानके छह सात भाग तक तीर्थंकर नाम कर्मका बंध हो सकता है।

इस प्रकार श्रीचामुंडरायप्रणीत चारित्रसारमें सोलह
भावनाओंका वर्णन समाप्त हुआ।

अनगारधर्मवर्णनम्।

इदानीमनगारधर्म उच्यते, स चोत्तमक्षमामार्दवाऽऽर्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यभेदेन दशविधः। उत्तमग्रहणं ख्यातिपूजादिनि—

आगे अनगार धर्मका वर्णन किया जाता है—

अब आगे अनगार धर्म अर्थात् मुनियोंके धर्मका वर्णन करते हैं। वह मुनियोंका धर्म उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यके भेदसे

त्यर्थ, तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते, उत्तमक्षमा उत्तममार्दवमित्यादि। मोक्षमार्गे प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहारार्थं दशविधधर्माख्यानं।

तपोवृंहणकारणशरीरस्थितिनिमित्तं निरवद्याहारान्वेषणार्थं परगृहाण्युपसर्पतो भिक्षोर्दुष्टजनाक्रोशनोत्प्रहसनाऽवज्ञाऽनुताडनशरीरव्यापादनादीनां क्रोधोत्पत्तिनिमित्तानां संनिधाने कालुष्याभावः क्षमेत्युच्यते। उत्तमक्षमाया व्रतशीलपरिरक्षणमिहामुत्र दुःखानभिष्वंगः सर्वस्य जगतः सन्मानसत्कारलाभप्रसिद्ध्यादिश्च गुणस्तत्प्रतिपक्षस्य क्रोधस्य धर्मार्थकाममोक्षप्रणाशनं दोष इति विचिन्त्य क्षंतव्यं। क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावाभावानुचिंतनात्परैः प्रयुक्त-

दश प्रकारका है। इसमें जो उत्तम शब्द है वह अपनी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा आदिकी निवृत्ति केलिये है अर्थात् यदि अपनी प्रतिष्ठा बढानेके लिये या प्रसिद्ध होनेके लिये कोई पुरुष क्षमा धारण करे तो वह उत्तम क्षमा नहीं है, अथवा वह मुनियोंके धर्ममें गिनी जाने योग्य उत्तम क्षमा नही है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, और उत्तम ब्रह्मचर्य इस प्रकार उत्तम शब्द प्रत्येकके साथ लगाना चाहिये। जो पुरुष मोक्षमार्गमें अपनी प्रवृत्ति कर रहा है उसका प्रमाद दूर करने के लिये इन दश प्रकारके धर्मोंका निरूपण किया जाता है।

जो भिक्षु वा मुनि तपश्चरणको बढानेका कारण और शरीरको ठहरानेका निमित्तकारण ऐसे निर्दोष आहारको ढूढनेके लिये दूसरेके घर जाते हैं उन्हें देखकर यदि कोई दुष्ट लोग उन्हें गाली दें, बुरे वचन कहें, उनका अपमान करें वा ताडन करें अथवा शरीरका नाश करने के लिये ही (जानसे मार डालनेके लिये ही) तैयार हों, ये सब तथा इनके सिवाय और भी क्रोध उत्पन्न करनेके निमित्त कारण मिल जायं तो भी जो मुनि अपने हृदयमें किसी तरहका संक्लेश परिणाम नहीं करते वह उनकी क्षमा कहलाती है। व्रत और शीलोंकी रक्षा करना, इस लोक और परलोकके दुःख दूर होना तथा समस्त संसारसे सन्मान और सत्कारकी प्राप्ति होना

स्य क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावानुचिंतनात्तावद्विद्यंते मय्येते दोषाः किमत्रासौ मिथ्या ब्रवीतीति क्षंतव्यं । अभावचिंतनादपि नैते मयि विद्यन्ते दोषा अज्ञानादसौ ब्रवीतीति क्षमा कार्या । अपि च बालस्वभावचिन्तनं प्रत्यक्षपरोक्षाक्रोशनताडनमारणधर्मभ्रंशनानामुत्तरोत्तररक्षणार्थं, तद्यथा—परोक्षमाक्रोशति बाले क्षन्तव्यमेवं स्वभावा हि बाला भवन्ति, दिष्टया च स मां परोक्षमाक्रोशति न च प्रत्यक्षमेतदपि बालेष्विति लाभो मन्तव्य एव । प्रत्यक्षमाक्रोशति सोढव्यं, विद्यत एतद्बालेषु दिष्टया च मा प्रत्यक्षमाक्रोशति, यन्न ताडयत्येतदपि बालेष्विति लाभ एव मंतव्यः । ताडयत्यपि मर्पितव्यं, दिष्टया

और समस्त संसारमें प्रसिद्ध होना आदि उत्तम क्षमाके गुण हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका नाश होना आदि उस उत्तम क्षमाके प्रतिपक्षी क्रोधके दोष हैं यही समझकर क्षमा धारण करना चाहिये । तथा क्रोधके जो जो निमित्त कारण हैं उनका अपने आत्मामें भाव (अस्तित्व) और अभाव चिंतवनकर क्षमा धारण करना चाहिये । दूसरे दुष्ट लोग जो क्रोध होनेका निमित्त कारण बतलाते हैं वह यदि अपने आत्मामें हो तो उसके अस्तित्वका चिंतवन करना चाहिये अर्थात् यह जो कहरहा है वे सब दोष मुझमें विद्यमान हैं फिर यह मिथ्या थोडे ही कहता है यही विचारकर उसे क्षमा कर देना चाहिये । यदि उसके कहे हुए दोष अपने आत्मामें न हों तो उनके अभावका चिंतवन करना चाहिये अर्थात् यह जिन दोषोंको कह रहा है वे मेरे आत्मामें नहीं है यह केवल अपने अज्ञानसे ऐसा कहता है यही समझकर उसे क्षमा कर देना चाहिये । अथवा उसके स्वभावको बालकोंके स्वभावके समान चिंतवन करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि परोक्ष, प्रत्यक्ष, आक्रोशन, ताडन, मारण और धर्मभ्रंशन की उत्तरोत्तर रक्षा तो होती है ? इनकी उत्तरोत्तर रक्षा किस प्रकार होती है यही बात आगे दिखलाते हैं—यदि कोई बालक परोक्षमें गाली दे अथवा बुरे वचन कहे तो उसे क्षमा करते ही हैं क्योंकि बालकोंका ऐसा स्वभाव होता ही है । यह मनुष्य भी मेरे अशुभ

च मां ताडयति न प्राणैर्वियोजयति एतदपि बालेष्विति लाभ एव मन्तव्यः। प्राणैर्वियोजयत्यपि तितिक्षा कर्तव्या, दिष्टया च मां प्राणैर्वियोजयति मदधीनाद्धर्मान्न भ्रंशयतीति। किंचान्यन्ममैवापराधोऽयं यत्पुराऽऽचरितं तन्महद्दुष्कर्म तत्फलमिदमाक्रोशवचनादिनिमित्तमात्रं परोऽयमत्रेति सोढव्यमिति।

कर्मके उदयसे परोक्षमें गाली देता है या बुरे वचन कहता है प्रत्यक्षमें तो कुछ नहीं कहता, बालक तो प्रत्यक्षमें भी गाली देते या बुरे वचन कहते हैं। इसने प्रत्यक्षमें कुछ नहीं कहा यही मेरे लिये बडा भारी लाभ है (इस प्रकार समझ कर क्षमा कर देना चाहिये)। यदि वह प्रत्यक्षमें ही आकर गाली दे या बुरे वचन कहे तो भी यह समझ कर उसे सहन करना चाहिये कि ऐसा करना भी बालकोंका स्वभाव है यह मेरे ही अशुभ कर्मके उदयसे प्रत्यक्षमें आकर मुझे गाली देता है बालक तो मारते भी हैं यह मुझे मारता नहीं, यही बडा लाभ है। ऐसा मान कर उसे क्षमा कर देना चाहिये। यदि वह ताडन भी करे मारे तो भी यह विचार करना चाहिये कि मेरे ही अशुभ कर्मके उदयसे यह मुझे मारता या ताडन करता है मुझे जानसे तो नहीं मारता, बालक तो जानसे भी मारडाला करते हैं इसने मुझे जानसे नहीं मारा यही मेरे लिये बडा लाभ है (यही समझ कर उसे क्षमा कर देना चाहिये) यदि वह प्राण भी ले, जानसे भी मारे तो भी क्षमा ही धारण करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि मेरे अशुभ कर्मके उदयसे यह मेरे प्राण लेता है मेरे आधीन जो धर्म है उससे मुझे भ्रष्ट तो नहीं करता ?। इन सब बातोंके सिवा उस साधुको यह भी चिंतवन करना चाहिये कि यह अपराध तो मेरा ही है पहिले जन्ममें मैंने ऐसे ऐसे बडे भारी पाप कर्म किये थे उन्हींका यह फल है ये बुरे वचन अथवा ताडन आदि तो केवल निमित्तमात्र है दुःख तो केवल अपने कर्मके उदयसे होता है यह मनुष्य तो मेरे आ-

उत्तमजातिकुलरूपविज्ञानैश्वर्यश्रुतजपतपोलाभवीर्यस्यापि तत्कृतमदावेशाभावात्परप्रयुक्तपरिभवनिमित्ताभिमानाभावो मार्दवं माननिर्हरणमवगन्तव्यम्। मार्दवोपेतं गुरवोऽनुगृह्णन्ति, साधवोऽपि साधु मन्यन्ते। ततश्च सम्यग्ज्ञानादीनां पात्रं भवति, अतः स्वर्गापवर्गफलावाप्तिर्मानमलिनमनसि व्रतशीलानि नावतिष्ठन्ते, साधवश्चैनं परित्यजन्ति, तन्मूलाः सर्वा विपत्तय इति।

योगस्य कायवाङ्मनोलक्षणस्या वक्रताऽऽर्जवमित्युच्यते। ऋजुहृदयमधिवसन्तो गुणा मायाभावं नाश्रयन्ते, मायाविनो न विश्वसिति लोकः, गर्हिता च गतिर्भवतीति।

त्मासे पर है इसलिये यह तो दुख दे ही नहीं सकता यही समझ कर दुखोंको सहन करना चाहिये और क्षमा धारण करना चाहिये।

उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम रूप, उत्तम विज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य, उत्तम श्रुतज्ञान, उत्तम जप, उत्तम तप, उत्तम लाभ और उत्तम वीर्य आदिकी प्राप्ति होने पर भी उनसे उत्पन्न होनेवाले मदका आवेश न होनेसे दूसरेके द्वारा किये हुए तिरस्कार आदिका निमित्त मिलने पर भी अभिमान न करना नम्रतासे रहना मार्दव है इसीका दूसरा नाम माननिर्हरण (अभिमानको मर्दन करना दूर करना) है। जो मनुष्य मार्दव गुणको धारण करता है उस पर गुरु भी अनुग्रह करते हैं और साधु लोग भी उसे श्रेष्ठ मानते हैं तथा ऐसा होनेसे अर्थात् गुरुका अनुग्रह होनेसे और साधुओंके द्वारा श्रेष्ठ माने जानेसे वह मोक्षके कारण भूत सम्यग्ज्ञान आदिका उत्तम पात्र बन जाता है और सम्यग्ज्ञानादिके उत्तम पात्र हो जानेसे उसे शीघ्र ही स्वर्ग और मोक्ष फलकी प्राप्ति हो जाती है। इसके विपरीत जिसका हृदय अभिमानसे मलिन है उसके व्रत शील आदि कभी नहीं ठहर सकते, साधु लोग भी उसे छोड देते हैं और संसारकी समस्त विपत्तियां अभिमानके ही कारण उत्पन्न होती हैं। इसीलिये मार्दव धर्म धारण करना श्रेष्ठ है।

मन वचन काय इन तीनों योगोंको सरल रखना छल कपट न करना आर्जव कहलाता है।

प्रकर्षप्राप्तलोभनिवृत्ति:, शौचमित्युच्यते । शुच्याचारमिहापि सन्मानयन्ति सर्वे, विश्रंभणादयश्च गुणास्तमधितिष्ठन्ति । लोभभावनाक्रान्तहृदये नाऽवकाशं लभन्ते गुणा: स च लोभो जीविताऽऽरोग्येन्द्रियोपभोगविषयभेदाच्चतुर्विध:, स्वपरविषयाभावात्स प्रत्येकं द्विधा भिद्यते। स्वजीवितलोभ:, परजीवितलोभ:, स्वारोग्यलोभ:, परारोग्यलोभ:, स्वेन्द्रियलोभ:, परेन्द्रियलोभ:, स्वोपभोगलोभ:, परोपभोगलोभश्चेति, अतस्तन्निवृत्तिलक्षणं शौचं चतुर्विधमिति ।

जिसका हृदय सरल है उसमें अनेक गुण आकर निवास करते हैं तथा जिसके हृदयमें छल कपट है उसमें एक भी गुण नहीं ठहर सकता, छल कपट करनेवालेका संसारमें कोई भी विश्वास नहीं करता और परलोकमें भी उसे निंद्य गतिमें जन्म लेना पडता है। इसलिये आर्जव धर्मका पालन करना सबसे उत्तम है।

अत्यंत लोभका त्याग कर देना लोभकी प्रकर्षता न रखना शौच है। जिसके आचरण पवित्र हैं उसका इस लोकमें भी सब लोग आदर सत्कार करते हैं और विश्वास आदि समस्त गुण आकर उसमें निवास करते हैं। जिसके हृदयमें लोभकी भावना भरी रहती है, उसके हृदयमें किसी भी गुणको जगह नहीं मिलती । वह लोभ जीवित, आरोग्य, इंद्रिय और उपभोगके विषयोंके भेदसे चार प्रकारका है, तथा स्वविषय और परविषयके भेदसे प्रत्येकके दो दो भेद होते हैं जैसे स्वजीवित लोभ–अपने जीवित रहनेका लोभ करना, परजीवितलोभ–पुत्र पौत्र आदि परके जीवित रहनेका लोभ करना, स्वारोग्यलोभ–अपने आरोग्य रहनेका लोभ करना, परारोग्यलोभ–दूसरेके आरोग्य रहनेका लोभ करना, स्वेंद्रियलोभ–अपनी इंद्रियोंके बनी रहनेका लोभ, परेंद्रियलोभ–दूसरेकी इंद्रियोंको बनी रहनेका लोभ, स्वोपभोगलोभ–अपनी भोगोपभोग सामग्रीके बनी रहनेका लोभ, परोपभोगलोभ–दूसरेकी भोगोपभोग सामग्रीके बनी रहनेका लोभ। इस प्रकार चार प्रकारका लोभ है इसलिये उसका त्याग करने रूप शौच भी चारही प्रकारका कहा जाता है।

सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुर्वचनं सत्यमित्युच्यते । सत्यसद्भावो दशविधः, नामरूपस्थापनाप्रतीत्यसंवृतिसंयोजनाजनपददेशभावसमयसत्यभेदेन । तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यासत्यप्यर्थे यद्व्यवहारार्थं संज्ञाकरणं तन्नामसत्यं, इन्द्र इत्यादि । यदर्थासन्निधानेऽपि रूपमात्रेणोच्यते तद्रूपसत्यं, यथा चित्रपुरुषादिषु असत्यपि चैतन्योपयोगादावर्थे पुरुष इत्यादि । असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थं स्थापितं द्यूताक्षसारिकानिक्षेपादिषु तत्स्थापनासत्यं, चंद्रप्रभप्रतिमा इति साद्यनादीनौपशमिकादीन् भावान् प्रतीत्य यद्वचनं तत्प्रतीत्यसत्यं, दीर्घोऽयं पुरुषस्ताल इत्यादि । यल्लोके संवृत्या गीतं वचस्तत्संवृतिसत्यं, यथा पृथिव्या-

श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये उत्तम वचन कहना सत्य है। वह सत्य नाम, रूप, स्थापना, प्रतीत्य, संवृति, संयोजना, जनपद, देश, भाव, और समय सत्यके भेदसे दश प्रकारका है। सचेतन वा अचेतन पदार्थका चाहे वह अर्थ न भी निकलता हो तो भी केवल व्यवहार चलानेके लिये जो किसीकी संज्ञा रक्खी जाती है उसको नामसत्य कहते हैं। जैसे किसी पुरुषका अथवा किसी अचेतन पदार्थका केवल व्यवहारमें पहिचाननेकेलिये कोई इंद्र नाम रखले तो वह नामसत्य कहलाता है। पदार्थके उपस्थित न रहनेपर भी केवल उसके रूपको देखकर उस पदार्थका नाम कहना रूपसत्य है जैसे किसी पुरुषके बनाये हुए चित्रमें यद्यपि चैतन्यका संयोग नहीं है तथापि उसे पुरुष कहना रूपसत्य है। पदार्थके नहीं होते हुए भी किसी कार्यके लिये उसकी स्थापना करना स्थापनासत्य है जैसे चंद्रप्रभकी प्रतिमामें चंद्रप्रभकी स्थापना करना । सादि अथवा परंपरा गत अनादि जो औपशमिकादि भाव हैं उनकी अपेक्षासे वचन कहना प्रतीत्यसत्य है । जैसे औदायिक भावोंसे उत्पन्न हुए किसी लंबे पुरुषको "यह पुरुष लंबा है" यह ताडका वृक्ष बहुत लंबा है आदि कहना। लोकमें रूढ शब्दोंको कहना संवृत्तिसत्य है जैसे कमल, पृथिवी आदि अनेक कारणोंसे उत्पन्न होता है तथापि उसे केवल कीचडसे उत्पन्न होनेके कारण पंकज कहना संवृत्ति सत्य है। सुगंधित धूप, चूर्ण वासना और उवटन, लेप आदि द्रव्योंमें पडनेवाली

यनेककारणत्वेऽपि सति पंके जातं पंकजमित्यादि। धूपचूर्णवासनानुलेपनप्रघर्षादिषु पद्ममकरहंससर्वतोभद्रक्रौंचव्यूहादिषु वाऽचेतनेतरद्रव्याणां यथाभागविधानं संनिवेशाविर्भावकं यद्वचस्तत्संयोजनासत्यं। द्वात्रिंशज्जनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकं यद्वचस्तज्जनपदसत्यं, राजाराणकमित्यादि। ग्रामनगरराजगणपाखंडजातिकुलादिधर्माणामुपदेशकं यद्वचस्तद्देशसत्यं, ग्रामो वृत्याऽऽवृत इत्यादि। छद्मस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य संयतासंयतस्य वा स्वगुणपरिपालनार्थं प्रासुकमिदमप्रासुकमित्यादि यद्वचस्तद्भावसत्यं। प्रतिनियतषट्द्रव्यपर्यायाणामागमगम्यानां याथात्म्याऽऽविष्करणं यद्वचस्तत्समयसत्यं, समयोत्तरवृद्धया बालो युवा पल्योपम इत्यादि। सत्यवाचि प्रतिष्ठिताः सर्वगुणसम्पदः, अनृताभिभाषिणं बन्धवोऽप्यवमन्यन्ते, मित्राणि च विरक्तभावमुपयान्ति, विषाग्न्युदकादीन्यप्येनं न सहन्ते, जिह्वाच्छेदसर्वस्वहरणादिव्यसनभाग्भवतीति।

चीजोंका अलग अलग विभाग कहना तथा पद्मव्यूह, मकरव्यूह, हंसव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह और क्रौंचकव्यूह आदिकी रचनाका अनुक्रम कहना संयोजनासत्य कहलाता है। आर्य अनार्य आदिके भेदसे जो बत्तीस देश हैं उनमें धर्म अर्थ काम मोक्षको बतलानेवाले अलग अलग शब्द वा वचनोंको कहना जनपद सत्य है जैसे किसी देशमें राजा कहते हैं किसी देशमें राणा कहते हैं। गांव, नगर, राज, गण, पाखंड, जाति, तथा कुल आदिके धर्मोंका उपदेश करनेवाले उनका स्वरूप बतलानेवाले वचनोंको देशसत्य कहते हैं जैसे जो बाडसे घिरा हो उसे गांव कहते हैं। अल्प ज्ञानियोंके द्रव्योंके यथार्थ स्वरूपका दर्शन नहीं होता है तथापि संयमी मुनि अथवा संयतासंयत श्रावक अपने गुणोंका पालन करनेके लिये 'यह प्रासुक है, यह अप्रासुक है' इत्यादि जो वचन कहते हैं उन्हें भावसत्य कहते हैं। शास्त्रोंसे ही जानने योग्य ऐसे प्रतिनियत छह द्रव्य और उनकी पर्यायोंका यथार्थ स्वरूप प्रगट करना समयसत्य है। जैसे उत्तरोत्तर समयोंकी वृद्धि होनेसे बालक युवा होता है। इतनेको पल्योपम कहते हैं। इस तरह दश प्रकारका सत्य है। सत्य वचनोंमें सब तरहके गुण और संपदाएं भरी रहती हैं और झूठ बोलनेवालेको अपने सगे भाई भी तिरस्कार करते हैं, मित्र भी उससे विरक्त हो जाते हैं। विष अग्नि

१ संयमो द्विधा—उपेक्षाऽपहृतभेदेन । तत्र देशकालविधानज्ञस्य परानुपरोधेनोत्कृष्टकायस्य कायवाङ्मनःकर्मयोगानां कृतनिग्रहस्य त्रिगुप्तिगुप्तस्य राग-द्वेषानभिष्वङ्गलक्षण उपेक्षासंयम । अपहृतसंयमस्य समितयः कार्यास्ता उच्यन्ते, ईर्याभाषैषणाऽऽदाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः । तत्रेर्यासमितिर्नामक-र्मोदयाऽऽपादितविशेषैकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदेन चतुर्द्विर्द्विर्द्विश्चतुर्विकल्पचतुर्दशजीवस्थानादिविधानवेदिनो मुनेर्धर्मार्थं प्रयतमानस्य सवितर्युदिते चक्षुषोर्वि-षयग्रहणसामर्थ्यमुपजनयतः मनुष्यहस्त्यश्वशकटगोकुलादिचरणपातोपहतावश्याय प्रालेयमार्गेऽनन्यमनसः शनैर्न्यस्तपादस्य संकुचितावयवस्योत्सृष्टपार्श्व-

और जल आदि जड पदार्थ भी मिथ्या भाषण करनेवालेको सहन नहीं कर सकते तथा जीभ का काटा जाना और समस्त धनका हरण हो जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं ।

संयम दो प्रकारका है—एक उपेक्षा संयम और दूसरा अपहृत संयम । जो मुनि देश और कालके विधानोंके जानकार हैं अन्य किसीकी रोक टोक न होनेसे जिनका शरीर अति उत्तम है, जो मन वचन कायके तीनो योगोंका निग्रह अच्छी तरह करते हैं और तीनो गुप्तियोंका पालन वहुत अच्छी तरह करते हैं, ऐसे मुनियोंके राग द्वेषका अभाव होना उपेक्षा संयम है । अ-पहृत संयमी मुनिको समितियोंको पालन करना चाहिये । आगे उन्हीं समितियोंको कहते हैं— ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पांच समिति हैं संक्षेपसे जीवोंके चौदह भेद हैं स्थूल एकेंद्रिय पर्याप्तक, स्थूल एकेंद्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेंद्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेंद्रियअप-र्याप्तक ये चार तो एकेंद्रियके भेद, द्वींद्रिय पर्याप्तक द्वींद्रिय अपर्याप्तक ये दो दोइंद्रियके भेद, त्रींद्रिय पर्याप्तक त्रींद्रिय अपर्याप्तक ये दो त्रींद्रियके भेद, चौइंद्रिय पर्याप्तक चौइंद्रिय अपर्याप्तक ये दो चौइंद्रियके भेद, पचेंद्रिय सैनी पर्याप्तक पचेंद्रिय सैनी अपर्याप्तक पचेंद्रिय असैनी पर्या-प्तक पंचेंद्रिय असैनी अपर्याप्तक ये चार पंचेंद्रिय के भेद ये इस प्रकार चौदह भेद हैं और ये सब अपने अपने नामकर्मके विशेष उदयसे प्राप्त होते हैं । जो मुनि इन चौदह जीव स्थानोंके भेदों

दृष्टेर्युगमात्रपूर्वनिरीक्षणावहितलोचनस्य स्थित्वा दिशो विलोकयतः पृथिव्याद्यारंभाभावादीर्यासमितिरित्याख्यायते । हितमितासंदिग्धाभिधानं भाषासमितिः मोक्षपदप्रापणप्रधानफलं हितं, तद्द्विविधं, स्वहितं, परहितं चेति । मितमनर्थकबहुप्रलपनरहितं । स्फुटार्थं व्यक्ताक्षरं वाऽसंदिग्धत्वं । तस्याः प्रपंचो मिथ्याभिधानासूयाप्रियसंभेदाल्पसारशंकितभ्रांतसकषायपरिहासयुक्तासभ्यशपननिष्ठुरधर्मविरोधिदेशकालविरोध्यतिसस्तवादित्राग्दोषविरहिताभिधानं । अन-

को अच्छी तरह जानते हैं जो केवल धर्मके लिये ही गमन करते हैं सो भी सूर्यके उदय होजाने पर तथा जिनके नेत्रोंमें अपने विषय ग्रहण करनेकी सामर्थ्य है वेही गमन करते हैं मनुष्य, हाथी घोडे गाडियों और गाय भैंस आदिके खुरोंसे जिसकी ठंडक निकल गई है ऐसे ठंडे मार्गमें उसीमें अपना चित्त लगाकर धीरे धीरे अपने चरण रखते हुए शरीरको सकुंचित कर अगल बगलसे दृष्टि हटाकर केवल आगेकी चार हाथ जमीन पर अपनी दृष्टि डालते हुए चलते हैं यदि किसी दूसरी ओर या सामने भी अधिक दूरतक देखने की आवश्यकता होती है तो खडे होकर देखते हैं। उनके इस प्रकार चलनेमें पृथ्वी आदिका कोई आरंभ नहीं होता इसलिये उसे ईर्यासामिति कहते हैं। हितमित और संदेहरहित वचनोंको भाषा समिति कहते हैं। मोक्ष पदकी प्राप्ति रूप जो प्रधान वा मुख्य फल मिलता है उसको हित कहते हैं। वह दो प्रकारका है—एक अपना हित करना और दूसरा अन्य लोगोंका हित करना। अनर्थक वचन न कहना तथा बहुतसा बकवाद न करना मित है। जिसका अर्थ स्पष्ट हो अक्षर साफ हो और कोई तरहका संदेह न हो वह संदेहरहित कहलाता है। मिथ्या वचन कहना किसीको ईर्ष्या उत्पन्न करनेवाले वा अप्रिय (बुरे) लगने वाले वचन कहना।किसीके चित्तमें अंतर डालनेवाले, जिनका सार बहुत संक्षेपसे कहा गया है, जिनके सुननेसे शंका उत्पन्न हो जाय, भ्रम उत्पन्न हो जाय ऐसे वचन कहना, कषाय, और हंसीमिले हुए वचन कहना असभ्य सौगंध और कठोरतासे वचन

गारस्य मोक्षैकप्रयोजनस्य प्राणिदयातत्परस्य कायस्थित्यर्थं प्राणयात्रानिमित्तं तपोवृंहणार्थं च चर्यानिमित्तं पर्यटत. शीलगुणसंयमादिक संरक्षत: ससार-शरीरभोगनिर्वेदत्रयं भावयतो दृष्टवस्तुयाथात्म्यस्वरूपं चिन्तयतो देशकालसारथ्यादिविशिष्टमगर्हितमभ्यवहरणं नवकोटिपरिशुद्धमेषणसमितिः । षड्जीवनि-कायस्योपद्रव उपद्रवणं, अंगच्छेदनादिव्यापारो विद्रावणं, संतापजननं परितापनं, प्राणिप्राणव्यपरोपणमारंभः, एवमुपद्रवणविद्रावणपरितापनारंभक्रियया निष्पन्नमन्नं स्वेन कृतं परेण कारितं वाऽनुमनितं वाऽधःकर्म (जनितं) तत्सेविनोऽनशनादितपांस्यआवकाशादियोगा वीरासनादियोगविशेषाश्च भिन्नभा-

कहना धर्मविरोधी देशविरोधी और कालविरोधी वचन कहना तथा किसीकी अधिक स्तुति करना आदि दोषोंसे रहित वचन कहना भाषा समितिका विस्तार है। मोक्ष प्राप्त करना ही जिनका एक मुख्य प्रयोजन है जो प्राणियोंकी दया करनेमें ही सदा तत्पर रहते हैं शरीरकी स्थितिकेलिये वा प्राणोंकी यात्राकेलिये अथवा तपश्चरणकी वृद्धिके लिये जो चर्याकेलिये (आहारके लिये) विहार करते हैं शील गुण और संयमादिकी रक्षा करते रहते हैं संसार शरीर और भोग इन तीनोंसे उत्पन्न हुए वैराग्यका सदा चिंतवन करते रहते हैं और जो देखे हुए पदार्थों के यथार्थ स्वरूपका विचार करते रहते हैं ऐसे परिग्रह रहित मुनि देश काल आदिकी सामग्री सहित तथा नौकरोडविशुद्धियों सहित जो निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं उसको एषण समिति कहते हैं। षट्कायके (छह प्रकारके) जीव समूहोंके लिये उपद्रव होना उपद्रवण है, जीवोंके अंगछेद आदि व्यापारको विद्रावण कहते हैं, जीवोंको संताप (मानसिक वा अतरंग पीडा) उत्पन्न होनेको परितापन कहते हैं प्राणियोंके प्राण नाश होनेको आरंभ कहते हैं इसप्रकार उपद्रवण, विद्रावण, परितापन, आरंभ क्रियाओंके द्वारा जो आहार तैयार किया गया हो, जो अपने हाथसे किया है दूसरेसे कराया हो अथवा करते हुएकी अनुमोदना की हो, अथवा जो नीच कर्मोंसे (नीच कर्मोंके द्वाराकी हुई कमाईसे) बनाया गया हो ऐसे आहारको ग्रहण करनेवाले मुनियों

जनभरितामृतवत्प्रक्षरन्ति, ततश्च तदभक्ष्यमिव परिहरतो भिक्षोः परकृतप्रशस्तप्रासुकाऽऽहारग्रहणेपि षट्चत्वारिंशद्दोषा भवन्ति। तद्यथा—षोडशविधा उद्गमदोषाः, षोडशविधा उत्पादनदोषाः, दशविधा एषणादोषाः संयोजनाप्रमाणांगारधूमदोषाश्चत्वारः, एतैर्दोषैः परिवर्जितमाहारग्रहणमेषणासमितिरिति।

तथा चोक्तमपरग्रंथे—अद्धाकम्मुद्देसिय अज्झोवज्झेय पूदि मिस्सेय। ठविदे वलि पाहुडिय पादुकारेय कीदेय॥

पामिच्छे परियट्टे अभिहडमुभिन्न मालमारोहे। अच्छिज्जे अणिसिद्धे उग्गमदोसो दु सोलसमो॥

के उपवास आदि तपश्चरण, अभ्रावकाश आदि योग और वीरासन आदि विशेष योग सब फूटे वर्तनमें भरे हुए अमृतके समान निकल जाते हैं-नष्ट हो जाते हैं। इसलिये मुनिराज ऐसे आहारको अभक्ष्यके समान त्याग कर देते हैं और दूसरेके द्वारा किया हुआ, प्रशस्त (निर्दोष) और प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं इस प्रकार प्रासुक और निर्दोष आहार ग्रहण करते हुए भी उनके छ्यालीस दोप होते हैं सोलह प्रकारके उद्गमदोष, सोलह प्रकारके उत्पादन दोष, दश प्रकारके एषण दोष और संयोजन, अप्रमाण, अंगार तथा धूम चार ये दोष इस प्रकार छ्यालीस दोष होते हैं। इन सब दोषोंको टालकर आहार ग्रहण करना एषण समिति है। यही वात किसी दूसरे ग्रंथमें लिखी है—यथा—अद्धा कम्मुद्देसिय इत्यादि।

इन गाथाओंमें सोलह उद्गम दोष बतलाये हैं जिन्हें टाल कर मुनि आहार लेते हैं। इनके सिवाय एक अधः कर्म दोष बतलाया है जो छ्यालीस दोषोंसे वाहर है और सबसे बडा है आगे उन्हींको अनुक्रमसे वतलाते हैं। जिस आहारके तैयार करनेमें गृहस्थके आश्रय रहने वाले पांचों पाप (चक्की, उखली, चूल, बुहारी और पानीमें त्रस जीवोंकी हिंसा) स्वयं करने पडे हों, अथवा निकृष्ट व्यापार किया गया हो वा छहों प्रकारके जीवोंके समूहकी हिंसा की गई हो ऐसे आहारको ग्रहण करना अधः कर्म दोष है यह दोष छ्यालीस दोषोंसे अलग है। खास

आधाकम्मं गृहस्थाश्रितं पंचशूनोपेतं निकृष्टव्यापारं षट्जीवनिकायवधकरं षट्चत्वारिंशद्दोषवाह्यं उद्देसिय उद्देश्य देयं । अज्झोवज्झेय यति दृष्ट्वाऽधिकपाकप्रवृत्तिः । पूदि अप्रासुकमिश्रिताहारः । मिस्सेय असंयतैः सह भोजनं । ठविदे पाकभाजनादन्यत्र निक्षिप्तं । बलि यक्षादिदत्तनैवेद्यशेषं पाहुडिय कालं परावृत्य दत्तं । पादुकारेय संक्रमणप्रकाशनरूपं । कीदेय क्रीत्वा नीतं । पामिच्छे उद्धारानीतं । परियट्टे परावृत्त्याऽऽनीतं । अभिहडं देशान्तरागतवस्तु । उब्भिन्न उद्भिन्नं बंधनापनयनं । मालारोहण मालामारुह्य दत्तं । अच्छिज्जे भीत्वा दत्तं । अणिसिट्ठे निःश्रेण्यादिकमवरुह्य दत्तं । एते षोडशोद्गमदोषा भवन्ति ।

मुनिके लिये तैयार किया हुआ भोजन देना उद्दिष्ट दोष है। मुनिको देख कर अधिक भोजन बनाना अध्यवधि दोष है। प्रासुक आहारमें अप्रासुक वस्तु मिला देना अथवा अप्रासुक मिला हुआ आहार देना पूतिदोष है असंयमियोंके साथ ही मुनियोंको आहार देना मिश्र दोष है। पकनेके वर्तनसे निकाल कर किसी दूसरी जगह रख देना और फिर वहांसे मुनियोंको देना स्थापित दोष है। यश आदिके लिये चढाये हुए नैवेद्यमेंसे जो बाकी बच रहा है उसे मुनियोंको देना बलि नामका दोष है। नियम किये हुए समयको बदल कर दूसरे समयमें भोजन देना प्राभृत दोष है। भोजनके पात्रोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें ले जाकर भोजन देना प्रादुष्कार दोष है। खरीद कर लाया हुआ भोजन देना क्रीत दोष है उधार मांगकर लाया हुआ भोजन देना प्रामृष्य (वा ऋण) दोष है। किसी एक भोजनके बदले दूसरा भोजन लाकर देना परावर्तित दोष है। किसी दूसरे देशसे लाया हुआ भोजन देना आभिहृत दोष है। उघाड कर अथवा उघाडा हुआ भोजन देना उद्भिन्न दोष है। साधुओंको सीढी चढाकर भोजन देना मालारोहण दोष है। किसीसे डरकर आहार देना अच्छेद्य दोष है। साधुओंको सीढी द्वारा नीची जमीन पर उतारकर भोजन देना अनिसृष्ट दोष है। इस प्रकार ये सोलह उद्गम दोष कहलाते हैं।

धादीदूदनिमित्ते आजीवे वणिवगे तहेव तिगिंच्छे। कोधो माणी मायो लोभो य हवंति दस एदे ॥
पुव्वी पच्छा संथुदि विज्जा मंतेय चुण्णजोगेय। उप्पादणा य दोसा सोलसमे मूलकम्मे य ॥

धादी धायिका। दूद लेखादिनेता। निमित्तं निमित्तशास्त्रं। आजीवो जीविका। वणिवगे दातुरनुकूलवचनं। तिगिंछे वैद्यकशास्त्रं। कोधी। मानी। मायावी। लोभी। पुव्वी दानग्रहणात्पूर्वस्तुतिः। पच्छा दानं गृहीत्वा पश्चात्स्तवनं। विज्जा आकाशगमनादि। मंतेय मंत्रसर्पादिविषापहारः चुण्णजोगेय तनुसंस्कारहेतुसुगंधिद्रव्यरजः। मूलकम्मेय वशीकरणं। एते षोडशोत्पादनदोषा भवन्ति।

कोई साधु किसीके यहां जाकर बच्चोंके संभालने आदिका उपदेश देकर आहार ग्रहण करे तो उसका वह धात्री दोष गिना जाता है। यदि कोई साधु किसी दूसरे गांवसे किसीके संबंधीके समाचार सुनावे या पत्रादि लाकर दे और फिर भोजन करे तो दूत नामका दोष है। निमित्तोंके द्वारा कुछ आगिला पिछला हाल बतलाकर आहार करे तो निमित्त दोष है। अपनी जीविकाकी उत्तमता बतलाकर आहार करना आजीवक दोष है दाताके अनुकूल वचन कहकर आहार लेना वनीपक दोष है। वैद्यक शास्त्रके अनुसार चिकित्साका उपदेश देकर आहार लेना चिकित्सा दोष है। क्रोध दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना क्रोध दोष है। अभिमान दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना मान दोष है। माया वा छलकपट कर आहार उत्पन्न कराना माया दोष है और लोभ दिखलाकर आहार उत्पन्न कराना लोभ दोष है। आहार ग्रहण करनेके पहिले उसकी स्तुति करना पूर्व स्तुति दोष है। आहार ग्रहण करनेके पीछे स्तुति करना पश्चात्स्तुति दोष है। आकाशगमन आदिकी विद्या देकर आहार उत्पन्न कराना विद्या दोष है। सर्प आदिके विषके दूर करनेका मंत्र देकर आहार उत्पन्न कराना मंत्रोत्पादन दोष है। शरीरके संस्कारके कारण ऐसे सुगंधित द्रव्योंके चूर्णका उपदेश देकर आहार उत्पन्न कराना चूर्णयोग वा चू-

संकिदा सन्दिह्यमानं । मक्खिदा तैलाद्यभ्यक्तं । णिक्खिदा अप्रासुकोपस्थापितं । पिहिय सचित्तादिपरिस्थापितं । साहारणा झटिति ग्रहणं । दायग सदोषदाता । ऊमिस्से अप्रासुकमिश्रं । अपरिणद अविध्वस्तं । लित्ता खटिकादिलिप्तं । छोडिद त्यक्त्वाऽऽदिभोजनं । एते दशैपणादोषाः । संयोयणा स्वादनिमित्त शीतोष्णभक्तपानादिमिश्रणं । अप्पमाणं मात्राधिक्यं । इंगाल सगृद्धिभोजनं धूम निंदयन् भुंक्ते । एतेऽप्येषणादोषा भवन्ति ।

एतैर्षट्चत्वारिंशद्दोषैः परिवर्जितैषणासमितिर्भवति ।

णोंत्पादन दोष है। वशीकरणका उपदेश देकर आहार उत्पन्न कराना मूलकर्म दोष है। ये सोलह उत्पादन दोष कहलाते हैं।

जिस भोजनमें किसी तरहका संदेह उत्पन्न हो जाय उसको ग्रहण करना शंकित दोष है। यदि दाताके हाथ पैर वा वर्तनोंमें तैल घी आदिका चिकनापन लगा हो तो मृक्षित दोष है। अप्रासुकके ऊपर रक्खे हुए आहारको ग्रहण करना निक्षिप्त दोष है। सचित्तसे ढके हुए आहारको ग्रहण करना पिहित दोष है। यदि दाता वर्तन वस्त्र आदिको शीघ्रताके साथ खींच ले और तो भी साधु आहार ग्रहण करे तो साहरण दोष है। यदि दातामें कोई दोष हो और फिर भी साधु आहार ग्रहण कर ले तो दायक दोष है। अप्रासुक मिला हुआ आहार ग्रहण करना उन्मिश्र दोष है। जिस जल आदिकमें कोई परिणमन न हुआ हो, अविध्वस्त हो उसे ग्रहण करना अपरिणत दोष है। यदि हाथ वा वर्तनमें खडी आदि अप्रासुक पदार्थ लगा हो और उसीसे दिया हुआ आहार ग्रहण करे तो लिप्त दोष है। छोडा वा गेरा हुआ आहार ग्रहण करना परित्यक्त दोष है। ये दश आहारके दोष कहलाते हैं।

अपने स्वादकेलिये ठंडा और गर्म अन्न पानी आदि मिलाना संयोजना दोष है। मात्रासे

नैःसगिकी चर्यामातिष्ठमानस्य पात्रग्रहणे सति तत्संरक्षणादिकृतो दोषः प्रसज्यते । कपालमन्यद्वा भाजनमादाय पर्यटतो भिक्षोर्दैन्यमासज्यते । गृहिजनानीतमपि भाजनं न सर्वत्र सुलभं तत्प्रक्षालनादिविधौ च दुःपरिहारः पापलेपः । स्वभाजनेन देशान्तरं नीत्वा भोजने चाशानुबन्धनं स्यात् स्वपूर्वविशिष्टभाजनाधिकगुणासंभवाच्च, न केनचिद् भुंजानस्य दैन्यं स्यात । ततो निःसंगस्य निष्परिग्रहस्य भिक्षोः स्वकरपुटभाजनान्नान्यद्विशिष्टमस्तिस्तस्मात्स्वाय-

अधिक आहार लेना अप्रमाण दोष है । अत्यंत लंपटताके साथ आहार ग्रहण करना अंगार दोष है। भोजनकी निंदा करते हुए आहार ग्रहण करना धूम्र दोष है। ये चार भी एषणा वा आहारके दोष हैं। इन ऊपर कहे हुए छ्यालीस दोषोंसे रहित एषणा समिति होती है।

जिस मुनिने सवतरहके परिग्रहोंका त्याग कर दिया है और निःसंग अवस्था धारण की है वह यदि भोजनकेलिये पात्र (वर्तन) रक्खे तो उसकी रक्षा करना आदि अनेक दोष आते हैं। यदि वह मुनि कपाल वा अन्य कोई वर्तन लेकर भिक्षाकेलिये फिरेगा तो उसमें दीनताका दोष आवेगा। कदाचित यह कहा जाय कि भोजनके समय गृहस्थ लोग कोई भी वर्तन लाकर देदें उसमें उसे भोजन कर लेना चाहिये सोभी ठीक नहीं है क्योंकि इसप्रकार सब जगह वर्तन नहीं मिल सकते दूसरे उसका मांजने धोने आदिमें पाप लगेगा ही और उस पाप को वह किसी भी तरह वचा नहीं सकेगा। यदि वह अपना वर्तन लेकर किसी दूसरे देशमें जायगा तो उसको भोजनमें आशा लगी ही रहेगी तथा अपने पहिलेके विशेष वर्तनमें आधिक गुणकी संभावना होनेसे मोह उत्पन्न होता ही रहेगा।

यदि किसीके यहां आहारका योग न मिला तो उसे दीनता धारण करनी पडेगी इसालिये जो मुनि संग और परिग्रह रहित है उसको अपने पाणिपुट (करपात्र दोनो हाथोंकी हथेली) रूप वर्तनके सिवाय और किसी वर्तनमें भोजन नहीं करना चाहिये। अतएव जो मुनि अपने

तेन पाणिपुटेन निरावाधे देशे निरालंबचतुरंगुलान्तरसमपादाभ्यां स्थित्वा परीक्ष्य भुंजानस्य निभृतस्य तद्गतदोषाभावः। धर्माविरोधिनां परानुपराधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रमृज्य प्रवर्तनमादाननिक्षेपणसमितिः। स्थावराणां जंगमानां च जीवानामविरोधेनांगमलनिर्हरणं शरीरस्य च स्थापनमुत्सर्गसमितिः। एवं गमनभाषणाभ्यवहरणग्रहणनिक्षेपोत्सर्गलक्षणपंचसमितिविधाने ऽप्रमत्तानां। तत्रगालिकाप्रस्रुतकर्मा ऽगावान्निभृतानां संवरः सिद्धयति।

स्वाधीन ऐसे करपात्रमें ही भोजन करते हैं तथा जिसमें कोई किसी तरह की बाधा न आवे ऐसे स्थान वा देशमें ही भोजन करते हैं। विना किसीके सहारे दोनो पैरोंमें चार अंगुलका अंतर रखते हुए खडे होकर तथा परीक्षाकर आहार लेते हैं। उन्हींके आहार संबंधी दोषोंका अभाव हो सकता है। इस प्रकार निर्दोष आहार लेना एषणा समिति है। जो पदार्थ धर्मके विरोधी नहीं हैं जिनके उठाने रखनेमें किसीको रोक टोक नहीं है और जो ज्ञान चारित्र आदिके साधन हैं ऐसे शास्त्र कमंडलु आदि पदार्थोंको देखकर तथा शोध कर उठाना रखना और अपनी सब प्रवृत्ति ऐसी ही करना जिसमें किसी जीवको बाधा न होसके उसको आदान निक्षेपण समिति कहते हैं जिसमें स्थावर और जंगम (त्रस) जीवोंको किसी तरहका विरोध न आवे किसीको बाधा न आवे इस प्रकार अपने शरीरके मल मूत्र दूर करना अथवा अपने शरीरको स्थापन करना (बैठना उठना) उत्सर्ग समिति है। इस प्रकार गमन (ईर्या समिति] भाषण (भाषा समिति) अभ्यवहरण (एषणा समिति) ग्रहणनिक्षेप (आदान निक्षेपण) और उत्सर्ग ये पांच समितियां हैं इन पाचों समितियोंके पालन करनेमें अप्रमत्त मुनियोंके मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा कर्म नहीं आते इसलिये उन मुनियोंको सहज ही संवर हो जाता है।

इस प्रकार ईर्या आदि समितियोंको पालन करने वाले मुनियोंको उन समितियोंकी रक्षा

एवमीर्यासमित्यादिषु वर्तमानस्य मुनेस्तत्प्रतिपालनार्थं प्राणेन्द्रियपरिहारोऽपहृतसंयमः । एकेंद्रियादिप्राणिपीडापरिहारः प्राणसंयमः । इन्द्रियादिष्वर्थेषु रागानभिष्वंग इन्द्रियसंयमः । स चापहृतसंयमस्त्रिविधः, उत्कृष्टो मध्यमो जघन्यश्चेति । तत्र प्रासुकवसत्याहारमात्रबाह्यसाधनस्य स्वाधीनेतरज्ञानचरणकरणस्य बाह्यजन्तूपनिपात आत्मानं ततोऽपहृत्य जीवान् परिपालयत उत्कृष्टः । मृदुना प्रमृज्य जन्तून्परिहरतो मध्यमः । उपकरणान्तरेच्छया जघन्यः । तस्यापहृतसंयमस्य प्रतिपालनार्थं शुद्ध्यष्टकोपदेशः । तद्यथा—अष्टौ शुद्धयः । भावशुद्धिः, कायशुद्धिः, विनयशुद्धि, ईर्यापथशुद्धिः, भिक्षाशुद्धिः,

करनेके लिये प्राणिपरिहार और इंद्रिय परिहार नामका अपहृत संयम धारण करना चाहिये एकेंद्रिय आदि जीवोंकी पीडा दूर करना, उनको पीडा देनेका त्याग करना प्राणसंयम है तथा इंद्रियोंके विषय भूत पदार्थोंमें राग नहीं करना इंद्रिय संयम है । इस प्रकारका यह अपहृत संयम उत्कृष्ट मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन तरहका है, जो मुनि वसतिका और आहार इन दोनो वाह्य साधनोंको प्रासुक ग्रहण करते हैं तथा स्वाधीन वा पराधीन दोनों प्रकारके ज्ञान चारित्रका पालन करते हैं ऐसे मुनि बाहरके छोटे बडे कीडे मकोडे आदि जीवोंके मिलने पर उस देश वा स्थानसे अपने आत्माको हटाकर (अपने आप हटकर) उन जीवों की रक्षा करते हैं उसको उत्कृष्ट संयम कहते हैं । तथा जो मुनि ऐसे जीवोंके मिलनेपर पींछी आदि कोमल उपकरणसे देख शोधकर उन जीवोंको हटादेते हैं वह मध्यम संयम है और जो कोमल उपकरणके सिवाय किसीभी अन्य उपकरणसे उन जीवों को हटानेकी इच्छा करते हैं उसे जघन्य संयम कहते हैं ।

उस अपहृत संयमको पालन करनेके लिये उसकी रक्षा करनेके लिये आठ शुद्धियोंका उपदेश दिया गया है । आगे उन्हीं शुद्धियोंको वतलाते हैं भावशुद्धि कायशुद्धि विनयशुद्धि ईर्यापथशुद्धि भिक्षाशुद्धि प्रतिष्ठापना शुद्धि, शयनासनशुद्धि और वाक्यशुद्धि ये आठ शुद्धियां हैं ।

प्रतिष्ठापनाशुद्धिः, शयनासनशुद्धिः, वाक्यशुद्धिश्चेति । तत्र भावशुद्धिः, कर्मक्षयोपशमजनिता मोक्षमार्गरुच्याहितप्रसादा रागाद्युपप्लवरहिता, तस्यां सत्यामाचारः प्रकाशते परिशुद्धमितिगतचित्रकर्मवत् ।

कायशुद्धिर्निरावरणा निरस्तसंस्कारा यथाजातमलधारिणी निराकृतांगविकारा सर्वत्र प्रयत्नवृत्तिः प्रशममूर्तिमिव प्रदर्शयन्ती तस्यां सत्यां न स्वतोऽन्यस्य भयमुपजायते नाप्यन्यतः स्वस्य । विनयशुद्धिरर्हदादिपरमगुरुषु यथाऽर्हंपूजाप्रवणा ज्ञानादिषु च यथाविधिभक्तियुक्ता गुरोः सर्वत्रानुकूलवृत्तिः प्रश्नस्वाध्यायवाचनाकथाविज्ञापनादिषु प्रतिपत्तिकुशला देशकालभावावबोधनिपुणाऽऽचार्यानुमतचारिणी तन्मूलाः सर्वसंपदः सैव भूषा पुरुषस्य सैव नौः संसारसमुद्रोत्तरणे । ईर्यापथशुद्धिर्नानाविधजीवस्थाना योनीनामाश्रयाणामेव बोधाज्जनितप्रयत्नपरिहृतजन्तुपीडाज्ञानादित्यस्वेन्द्रियप्रकाशनिरीक्षितदेशगा-

कर्मोंके क्षयोपशम होनेके कारण जो मोक्ष मार्गमें रुचि वा श्रद्धा होती है और उस श्रद्धाके कारण जो आत्मामें प्रसन्नता वा स्वच्छता निर्मलता होती है जो कि राग द्वेष आदि सब उपद्रवोंसे रहित होती है उसको भाव शुद्धि कहते हैं। जिस प्रकार दीवाल शुद्ध होनेसे ही उस पर बनाया हुआ चित्र प्रकाशित होता है उसी प्रकार उस भाव शुद्धिके होनेसे ही आचार वा चारित्र प्रकाशित होता है। जिसके शरीरपर कोई आवरण वा वस्त्रादिक नहीं है जिसके संस्कार सब त्याग दिये गये हैं जिसके अंगोंके विकार छोड दिये गये हैं, जिसकी प्रवृत्ति सब जगह बडे प्रयत्नसे की जाती है जो शांतमूर्तिके समान दिखाई पडता है और जो उत्पन्न हुए के समान है ऐसे शरीरको धारण करना काय शुद्धि है। ऐसी काय शुद्धिके होनेपर न तो अपनेसे किसी दूसरे को भय होता है और न किसी दूसरेसे अपनेको भय होता है। अरहंत आदि पांचों परमेष्ठियोंकी यथायोग्य पूजा और विनय करना, ज्ञानादिक की विनय करना अर्थात् विधि और भक्ति पूर्वक सब कार्योंमें सब जगह गुरुके अनुकूल प्रवृत्ति रखना, प्रश्न स्वाध्याय वाचना और कथा कहना आदि कार्योंके करनेमें कुशलता रखना देशका ज्ञान, समयका ज्ञान और भावके ज्ञानमें निपुणता रखना तथा सदा आचार्य की आज्ञानुसार चलना विनयशुद्धि है।

मिनी द्रुतविलम्बितसंभ्रांतविस्मितलीलाविकारदिगवलोकनादिदोषविरहितगमना तस्यां सत्यां संयमः प्रतिष्ठितो भवति विभव इव सुनीतौ। भिक्षाशुद्धिः परीक्षितोभयप्रचारा प्रमृष्टपूर्वापरस्वांगदेशविधानाऽऽचारसूत्रोक्तकालदेशप्रकृतिप्रतिपत्तिकुशला लाभालाभमानावमानसमानमनोवृत्तिः गीतनृत्तप्रसूतिकामृतकसुरापण्यागनापापकर्मदीनानाथदानशालायजनविवाहादिमंगलगेहपरिवर्जनपरा चन्द्रगतिरिव हीनाधिकगृहविशिष्टोपस्थाना लोकगर्हितकुलपरिवर्जनोप-

यह विनय शुद्धि ही सब तरहकी संपदाओंकी मूल कारण है यही पुरुषके लिये आभूषण है और यही संसाररूपी महासागरसे पार करदेनेके लिये नाव है।

अनेक प्रकारके जीवोंके स्थान जीवोंकी योनियां और जीवोंके आधारभूत आश्रयोंका ज्ञान होनेसे जिसमें जीवोंकी पीडा दूर करनेका प्रयत्न किया जा रहा है और ज्ञान सूर्य तथा अपनी इंद्रियोंके प्रकाशसे सब जगह देखकर गमन किया जाता है तथा जल्दी, धीरे, संभ्रम करना, आश्चर्य करना, लीला विकार और दिशाओंका अवलोकन आदि दोषोंसे रहित जो गमन किया जाता है उसको ईर्यापथशुद्धि कहते हैं। जिसप्रकार सुनीति पूर्वक चलनेमें विभव ठहरता है उसीप्रकार ईर्यापथशुद्धिके रहते हुए ही संयम ठहरता है। आगे भिक्षा शुद्धि कहते हैं जिसमें बाह्य अंतरंग दोनों प्रकृतियोंकी परीक्षा कीगई है, जिसमें दाताके शरीरकी शुद्धि तथा देशकी शुद्धि आदि सब विधियें की गई हैं, आचारसूत्रोंमें कहे हुए काल देश और प्रकृतिके अनुसार जिसमें नवधा भक्तिकी कुशलता रक्खी गई है, भिक्षाके मिलने न मिलनेमें तथा मान और अपमान होनेमें जिसमें अपने मनकी प्रकृति समान रक्खी गई है, जिस भिक्षामें गीत नृत्य होनेवाले घर, जिसमें प्रसूति हुई हो अथवा कोई मरगया हो, जिसमें शराव वेची जाती हो, जो वेश्याका घर हो, अथवा जिसमें और कोई पापकर्म होता हो, जो दीनका घर हो, अनाथका घर हो, जो दानशाला हो, यज्ञादि करनेका घर हो अथवा जिसमें विवाह आदि मंगलकार्य हों ऐसे घर छोड दिये जाते हों, चंद्रमाकी गतिके समान जिसमें छोटे बडे

लक्षिता दीनवृत्तिविगमा प्रासुकाऽऽहारगवेषणाप्रणिधानाऽऽगमविहितनिरवद्याशनपरिप्राप्तप्राणयात्राफला तत्प्रतिबद्धा हि चरणसंपद्गुणा संपदिव साधुजनसेवानिबंधना सा लाभालाभयो सरसविरसयोश्च समसन्तोषवद्भिर्भिक्षेति भाष्यते । भिक्षाशुद्धिपरस्य मुनेरशनं पंचविधं भवति, गोचाराक्षम्रक्षणोदराग्निप्रशमनभ्रमराहारश्वभ्रपूरणनामभेदेन । यथा सलीलसालंकारयुवतिभिरुपनीयमानघासे गौर्न तदंगगतसौन्दर्यनिरीक्षणपरस्तृणमेवाऽत्ति यथा वा तृणोलपं नानादेशस्थं यथालाभमभ्यवहरति न योजनासपदमपेक्षते तथा भिक्षुरपि भिक्षापरिवेषकजनमृदुललिततनुरूपवेषाभिलापविलोकननिरुत्सुकशुष्कद्रवाहा-

सब घरोंमें प्रवेश करना पडता हो, जो कुल वा घर लोक में निंदित गिने जाते हैं वे जिसमें छोड दिये जाते हों जिसमें अपनी दीनवृत्ति धारण न करनी पडती हो, और उदासीनता पूर्वक प्रासुक आहार ही ढूंढा जाता हो और शास्त्रोंमें कहे हुए निर्दोष भोजनके द्वारा प्राणोंकी यात्रा करना ही जिसका फल समझा जाता हो वह लाभ अलाभ (भोजनका मिलना न मिलना इन दोनोंमें) तथा सरस और विरस (रससहित वा नीरस) में समान संतोष रखनेवाले मुनियोंकी भिक्षा कहलाती है। ऐसी भिक्षासे ही चारित्र रूपी संपदा और गुण ठहर सकते हैं और ऐसी भिक्षा ही संपदाके समान साधु लोगोंकी सेवा करनेका कारण होती है। ऐसी भिक्षाकी शुद्धि रखना भिक्षाशुद्धि कहलाती है।

भिक्षा शुद्धिमें सदा तत्पर रहनेवाले मुनियोंका आहार पांच प्रकारका है और गोचार अक्षम्रक्षण, उदराग्निप्रशमन, भ्रमराहार, श्वभ्र पूरण ये उसके नाम हैं। जिसप्रकार गायको यदि कोई युवती लीलापूर्वक आभूषण पहिनकर घास डालनेको आवे तो भी गाय उस युवतीकी सुंदरता नहीं देखती किंतु घास खानेपर ही अपना लक्ष्य रखती है तथा जिस प्रकार वह गाय अनेक देशकी घास लता आदिको खाती है और जैसी मिलती है जितनी मिलती है उसे ही खाती है वह किस तरह डाली गई है किसने डाली है आदि बातोंपर कुछ ध्यान नहीं रखती उसी प्रकार वह मुनि भी भिक्षा देनेवाले पुरुषोंकी कोमलता, सुंदरता, सुंदरताके अनुसार वेष

रयोजनाविशेषं चानवेक्ष्यमाणो यथाऽऽगतमश्नातीति गोरिव चारो 'गोचार' इति व्यपदिश्यते तथा गवेषणेति च। यथा शकटीं रत्नभारपूर्णां येन केन-चित्स्नेहेनाक्षिलेपं कृत्वाऽभिलषितदेशान्तरं वणिगुपनयति तथा मुनिरपि गुणरत्नभरितां, तनुशकटीमनवद्यभिक्षाऽऽयुरक्षम्रक्षणेनाभिप्रेतसमाधिपत्तनं प्रापयतीति 'अक्षम्रक्षण' मिति च नाम रूढं। यथा भांडागारे समुत्थितमनलं शुचिनाऽशुचिना वा वारिणा प्रशमयति गृही तथा यथालब्धेन यतिरप्युदराग्निं सरसेन विरसेन वाऽऽहारेण प्रशमयतीत्युदराग्निप्रशमनमिति च निरुच्यते। दातृजनबाधया विना कुशलो मुनिर्भ्रमरवदाहरतीति भ्रमराहार इत्यपि परिभाष्यते। येन केनचित्कृतचारेण श्वभ्रपूरणवदुदरगर्तमनगारः पूरयति स्वादुनेतरेण वेति श्वभ्रपूरणमिति च निगद्यते। प्रतिष्ठापनशुद्धिपरः स-

और अभिलाषा आदिके देखनेमें कभी इच्छा नहीं रखते और न सूखा पतला आदि आहार की विशेष योजनाको देखते हैं और जो सामने आजाता है उसे ही खालेते हैं इसलिए गायके समान चरनेको-भोजन करनेको गोचार कहते हैं। मुनि लोग गोचारके समानही आहार ढूंढा करते हैं। जिस प्रकार कोई वैश्य रत्नोंसे भरी हुई गाडीको घी तेल आदि किसी तरहकी चिकनाहट लगा कर धुरी पहियों को ठीककर अपने लेजाने योग्य स्थानपर पहुंचाता है उसीप्रकार मुनिराज भी गुणरूपी रत्नोंसे भरी हुई इस शरीररूपी गाडीको निर्दोष भिक्षारूपी चिकनाहट लगाकर आयुरूपी धुरी पहियोंको ठीककर अपने पहुंचने योग्य समाधि रूपी नगरमें पहुंचाते हैं उसको अक्षम्रक्षण कहते हैं यह रूढीसे रक्खा हुआ नाम है। जिस प्रकार किसी भांडागार में (कोठारमें) आग लग जाय तो गृहस्थ उसे पवित्र जलसे अथवा अपवित्र जलसे बुझाता है उसी प्रकार मुनिराज भी सरस अथवा नीरस जैसा कुछ आहार मिल जाता है उसी से अपने पेटकी अग्निको शांत कर लेते हैं इसको उदराग्नि प्रशमन कहते हैं। जिस प्रकार भ्रमर किसी भी फूलको बाधा न देता हुआ रस ग्रहण करता है उसी प्रकार मुनिराजभी किसी भी दाताको बाधा न पहुंचाते हुए आहार ग्रहण करते हैं इसलिये उनके आहारको भ्रमराहार कहते हैं। जिस प्रकार किसी गड्ढेको अच्छी बुरी मिट्टीसे भरकर पूरा कर देते हैं उसी प्रकार

यतो नखरोमसिंघाणकनिष्ठीवनशुक्रोचारप्रस्रवणशोधने देहपरित्यागे च विदितदेशकालो जंतूपरोधमंतरेण यत्नं कुर्यात्प्रयतते । संयतेन शयनासनशुद्धिपरेण स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौंडशाकुनिकादिपापजनावासा वर्ज्याः शृंगारविकारभूषणोज्ज्वलवेषवेश्याक्रीडाभिरामगीतनृत्तवादित्राकुलप्रदेशा विकृतांगगुह्यदर्शनकाछमयालेख्यहास्योपभोगमहोत्सववाहनदमनायुधव्यायामभूमयश्च रागकारणानीन्द्रियगोचरा मदमानशोककोपसंक्लेशस्थानादयश्च परिहर्तव्याः, अकृत्रिमा

मुनिराज भी स्वादिष्ट अथवा वेस्वाद किसी तरहके भी आहारसे अपने पेट रूपी गड्ढेको भर लेते हैं उसको श्वभ्रपूरण कहते हैं इसप्रकार भिक्षा शुद्धि निरूपण की । इसीप्रकार प्रतिष्ठापन शुद्धिमें तत्पर रहनेवाले मुनियोंको अपने नाखून, केश, नाकका मल, थूक, वीर्य मल, मूत्र आदिके शुद्ध करनेमें अथवा शरीरका परित्याग करनेमें देश और काल दोनोंको अच्छी तरह समझकर जीवोंको किसी तरहकी रुकावट किये विनाही प्रयत्न करते हुए अपना वर्ताव करना चाहिये । तथा शयनासन शुद्धिमें तत्पर रहनेवाले मुनियोंको स्त्रियोंका निवास स्थान, क्षुद्रजीव, चोर, जुआरी, मद्य पीनेवाले और शकुन बतलाकर अपनी जीविका करनेवाले आदि पापी लोगोंका निवास स्थान छोड देना चाहिये । जहांपर विकृत अंगोंके तथा गुह्य चीजोंके काठ वा रंग के चित्र बने हों, जो हंसी करनेकी भोगोपभोग सेवन करने की कोई वडा उत्सव करनेकी, सवारीके घोडा आदि जानवरोंके दमन करनेकी, शस्त्र रखनेकी और व्यायाम करनेकी जगह हो जहांपर इंद्रियोंसे दिखाई न देनेवाले भी राग उत्पन्न करने वाले साधन हों, तथा जो मद, अभिमान, शोक, कोप और संक्लेश के स्थान हों वे सव छोड देने चाहिये । जो अपने निमित्तसे बनाए नहीं गए हैं और जिनके बनने बनानेमें अपनी ओरसे किसी तरहका आरंभ नहीं हुआ है ऐसे स्वाभाविक रीतीसे (अकृत्रिम) बने हुए पर्वतकी गुफाएं वा वृक्षोंके कोटर आदि तथा बनवाये हुए सूने मकान (वसतिका) आदि अथवा

गिरिगुहातरुकोटरादयः कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोद्देशनिर्वर्तिता निरारंभाः सेव्याः । तत्र संयतस्य त्रिविधो निवासः, स्थानमासनं शयनं चेति । पादौ चतुरांगुलान्तरे प्रस्थाप्याऽधस्तिर्यगूर्ध्वाऽन्यतममुखो भूत्वा यत्राऽऽत्मभावो यथात्मबलवीर्यसदृशः कर्मक्षयप्रयोजनोऽसंक्लिष्टमतिस्तिष्ठेत्, अथ न शक्नुयान्निष्प्रतिज्ञोत पर्यंकादिभिरासनैरासीत, यथपरिमितकालयोग. खिन्नो वैकपार्श्वबाहूपधानसंवृतागादिभिरल्पकालं श्रमपरिहारार्थं शयीत । वाक्यशुद्धिः पृथिवीकायिकाद्यारंभप्रेरणरहिता युद्धकामकर्कशसंभिन्नालापपैशून्यपरुषनिष्ठुरादिपरपीडाकरप्रयोगनिरुत्सुका व्रीभकराप्लावनि-

जिनमें निवास करना छोड दिया गया है अथवा छुडा दिया गया है ऐसे मोचितावास आदि स्थानोंमें रहना चाहिये । मुनियोंका निवास तीन प्रकार का होता है, स्थान–खडे होना आसन-बैठना और शयन-सोना। मुनियोंको दोनो पैरोंमें चार अंगुलका अंतर रखकर ऊपरकी ओर मुह करके, नीचे की ओर मुह करके, किसी एक ओर मुह करके अथवा इच्छानुसार जहां अपने आत्माके परिणाम लगते हों उधर चाहे जिधरको मुह करके विना किसी तरहके संक्लेश परिणामोंके इस प्रकार खडे होना चाहिये जिसमें अपने आत्माके बल और वीर्यके समान कर्मोंका क्षय बरावर होता रहे । यदि इस प्रकार खडे होनेकी शक्ति न रहे अथवा ऐसी शक्ति न हो तो विना किसी प्रतिज्ञाके पर्यंक आदिमेंसे कोईसा भी आसन लगाकर बैठ जाना चाहिये । यदि समय परिमित न हो तो किसीएक करवट से अपनी बाहोंका तकिया लगाकर शरीरको संकुचित कर समेट कर केवल परिश्रम दूर करनेके लिये थोडी देर तक सो लेना चाहिये । यह सव शयनासनशुद्धि कहलाती है । मुनि लोगोके मुंहसे जो वचन निकलते हैं उनमें पृथ्वी काय आदि जीवोंकी हिंसा रूप आरंभको प्रेरणा नहीं होती उनमें युद्धकी प्रेरणा कामकी प्रेरणा नहीं होती व कठोर नहीं होते दूसरोंके गुप्त विषयोंको प्रकट करने वाले अथवा निंदा करने वाले नहीं होते व कठिन निष्ठुर आदि दूसरेको पीडा पहुचाने वाले नहीं होते ।

पालाऽऽश्रितकथाविमुखा व्रतशीलदेशनादिप्रदानफला स्वपरहितमितमधुरमनोहरा परमवैराग्यहेतुभूता परिहृतपरात्मनिन्दाप्रशंसा संयतस्य योग्या तदधिष्ठाना हि सर्वसंपद इति।

इति शुद्धिप्रकरणं।

अथ संयमभेदाः साक्षान्मोक्षप्राप्तिकारणान्युच्यन्ते। सामायिकं, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धिः, सूक्ष्मसाम्परायः, यथाख्यातचारित्रमिति।

तत्र सामायिकमवस्थानं सर्वसावद्ययोगस्याभेदेन प्रत्याख्यानमवलंब्य प्रवृत्तमथवाऽवधृतकालमनवधृतकालं सामायिकमित्याख्यायते। त्रसस्थावरज-

स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा और राजकथा इन चारों विकथाओंसे रहित होते हैं, व्रत शीलोंका पालन करना कराना वा उपदेश देना ही उन वचनोंका मुख्य फल होता है। इनके सिवाय उनके वचन अपने आत्माका (उन मुनियोंका) हित करनेवाले होते हैं, अन्य समस्त जीवोंको हित करनेवाले होते हैं परिमित होते हैं मधुर होते हैं मनोहर होते हैं और परम वैराग्यको उत्पन्न करनेवाले होते हैं उनमें न तो दूसरोंकी निंदा होती है और न अपनी प्रशंसा रहती है। इस प्रकारके मुनियोंके योग्य ही उनके वचन निकलते हैं ऐसेही वचनोंका निकलना वाक्यशुद्धि कही जाती है। ऐसी वाक्य शुद्धिके होनेसे समस्त संपदाएं अपने आप प्राप्त हो जाती हैं।

इसप्रकार यह शुद्धियोंका प्रकरण समाप्त हुआ।

अब आगे संयमके ऐसे भेदोंको कहते हैं जो मोक्षके साक्षात् कारण हैं सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात चारित्र ये संयमके साक्षात् मोक्ष प्राप्त करानेवाले भेद हैं।

समयके अनुसार करने योग्य अवस्थानको सामायिक कहते हैं अर्थात् अभेद रूपसे (पूर्णरूपसे) समस्त पापरूप योगोंका त्यागकर उसीके अनुसार (जिसमें किसीतरहका पापरूप

न्तुदेशकालप्रादुर्भावनिरोधाप्रत्यक्षत्वात् प्रमादवशादभ्युपगतनिरवद्यक्रियाप्रबंधप्रलोपे सति तदुपात्तस्य कर्मणः सम्यक् प्रतिक्रिया छेदोपस्थापनाऽथवा सावद्यकर्मणो हिंसादिभेदेन विकल्पान्निवृत्तिश्छेदोपस्थापना । प्राणिवधान्निवृत्तिः परिहारस्तेन विशुद्धिर्यस्मिंस्तत्परिहारविशुद्धिचारित्रं तत्पुनस्त्रिंशद्वर्षजातस्य प्रसंवत्सरपृथक्त्व तीर्थंकरपादमूलसेविनः प्रत्याख्याननामधेयपूर्वार्णवपारंगतस्य जन्तुनिरोधप्रादुर्भावकालपरिणामजन्मयोनिदेशद्रव्यस्वभावविधानज्ञस्य प्रमादरहितस्य महावीर्यस्य परमनिर्जरस्यातिदुष्करचर्यानुष्ठायिनस्तिस्रः सन्ध्या वर्जयित्वा द्विगव्यूतिगामिनः संपद्यते नान्यस्य । सूक्ष्मस्थूलसत्त्ववधपरिहा-

योग न होने पावे) किसी नियत समयतक अथवा अनियत समयतक अपनी प्रवृत्ति रखना सामायिक कहलाता है। त्रस और स्थावर जीवोंके देश तथा कालके निरोध होनेका प्रत्यक्ष न होनेके कारण अथवा उसके प्रगट होनेके प्रत्यक्ष न होनेके कारण अथवा कोई प्रमाद हो जानेके कारण यदि करनेयोग्य क्रिया निर्दोष न की गई हो उसको निर्दोष रीतिसे करनेका प्रयत्न न किया गया हो तो उस की हुई क्रियाकी अच्छीतरह प्रतिक्रिया करना—उसको शुद्ध करनेका उपाय करना या उस दोषके वदले दंड लेना छेदोपस्थापना है। अथवा हिंसा आदिके भेदसे सावद्य कर्म (पापसहित योगों द्वारा की हुई क्रियाएं) अनेक प्रकारके होते हैं उनको विकल्प रूपसे त्याग करना (पूर्णरूपसे त्याग न कर उसके थोडे या बहुत अंशोंका त्याग करना, छेदोपस्थापना है। जिसमें प्राणियोंकी हिंसासे अलग रहना पड़े (किसी भी तरह प्राणियोंकी हिंसा न हो सके) उसको परिहार कहते हैं। जिस चारित्रमें उस परिहारके द्वारा विशुद्धि रक्खी जाय उसको परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। जिसकी अवस्था कमसे कम तीस वर्षकी हो, जो कमसे कम तीन वर्ष या इससे कुछ अधिक समयतक किसी तीर्थंकरके चरण कमलोंकी सेवा करता रहा हो, चौदह पूर्वोंमेंसे प्रत्याख्यान नामके पूर्वरूप महासागरका पारंगत हो अर्थात् जो ग्यारह अंग और पूर्वोंका पाठी हो, जीवोंके निरोध होने और प्रगट होने आदिके समय परि-

रप्रवृत्तत्वादनुपहतोत्साहस्याखंडितक्रियाविशेषस्य, सम्यग्दर्शनज्ञानमहामारुतसंधुक्षितप्रशस्ताध्यवसायाग्निशिखोपश्लिष्टकर्मेन्धनस्य ध्यानविशेषविनिवृत्तकषायविषांकुरस्यापचयाभिमुखस्तोकमोहवीजस्य तत एव परिप्राप्तान्वर्थसूक्ष्मसाम्परायशुद्धसंयतस्य सूक्ष्मसाम्परायचारित्रं । चारित्रमोहस्य निरवशेषस्योपशमात्क्षयाच्चात्मस्वभावावस्थोपेक्षालक्षणमथाख्यातचारित्रं, अथशब्दस्यानन्तरयथार्थवृत्तित्वान्निरवशेषमोहक्षयोपशमाऽनंतरमाविर्भवतीत्यथाख्यातं अथवा यथाऽऽत्मस्वभावावस्थितस्तथैवाऽऽख्यातत्वाद्यथाख्यातमिति ।

णाम जन्म योनि देश द्रव्य और स्वभाव आदिके विधानोंका अच्छा जानकार हो, जो प्रमादों से सर्वथा रहित हो, महा वीर्यशाली (महाशक्तिमान) हो, जो कर्मोंका परम निर्जरा करनेवाला, अत्यंत कठिन कठिन तपश्चरणोंको करनेवाला और सामायिकके तीनों समयोंको छोडकर शेष समयमें प्रतिदिन दो कोस गमन करनेवाला हो उसीके यह परिहार विशुद्धि चारित्र होता है। ऐसे मुनिके सिवाय अन्य किसीके यह परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं हो सकता। सूक्ष्म और स्थूल जीवोंकी हिंसाके त्याग करनेमें सदा प्रवृत्ति वा दत्तचित्त होनेसे जिसका उत्साह वरावर बढता जा रहा है, जो अपनी विशेष क्रियाओंको अखंडित रीतिसे पूर्णरीतिसे पालन कर रहा है, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान रूपी महा वायुके द्वारा फूकी हुई, बढाई हुई वा तेज की हुई प्रशंसनीय ध्यानरूपी (शुक्लध्यानरूपी) अग्निकी शिखामें जिसका बहुतसा कर्मरूपी ईंधन आपडा हो, जिसने अपने विशेष ध्यानसे कषायरूपी विषका अंकुर नष्ट करदिया हो, जिसका बचा हुआ थोडासा मोहनीय कर्मका वीज भी अपचय होनेके सन्मुख हो, और इसीलिये सूक्ष्मसांपराय ऐसा सार्थक नाम होनेसे जिसका संयम अत्यंत शुद्ध है ऐसे मुनिके सूक्ष्मसांपराय नामका चारित्र होता है। समस्त चारित्रमोहनीय कर्मके उपशम होनेसे अथवा क्षय होनेसे आत्मस्वभावकी अवस्था प्रगट होनेरूप अथवा उपेक्षा लक्षणरूप जो चारित्र

ततो यथाख्यातचारित्रात्सकलकर्मसमाप्तिर्भवति। सामायिकादीनामानुपूर्व्या वचनमुत्तरोत्तरगुणप्रकर्षख्यापनार्थम्। तद्यथा—सामायिकछेदोपस्थापनासंयमस्य जघन्यविशुद्धिरल्पा ततः परिहारविशुद्धिचारित्रस्य जघन्य विशुद्धिरनन्तगुणा तस्यैवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा ततः सामायिकछेदोपस्थापनासंयमोत्कृष्टविशुद्धिरनन्तगुणा ततः सूक्ष्मसाम्परायचारित्रस्य जघन्यविशुद्धिरनन्तगुणा तस्यैवोत्कृष्टा विशुद्धिरनन्तगुणा ततो यथाख्यातचारित्रविशुद्धिः

प्रगट होता है उसे अथाख्यात वा यथाख्यात चारित्र कहते हैं। अथ शब्दका अनंतर अर्थ है इसलिये जो समस्त मोहनीय कर्मके क्षय अथवा उपशम होनेके अनंतर जो प्रगट हो उसे अथाख्यात कहते हैं अथवा इसका दूसरा नाम यथाख्यात भी है। आत्माका जैसा स्वभाव है वैसा ही जिसका स्वरूप कहा गया हो उसे यथाख्यात कहते हैं। इसी यथाख्यात चारित्रसे समस्त कर्मोंका नाश होता है। इन सामायिक आदि पांचों चारित्रोंका अनुक्रम उनके उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकता दिखलानेकेलिये कहा गया है। भावार्थ—सामायिकसे छेदोपस्थापनामें अधिक गुण हैं, छेदोपस्थापनासे परिहार विशुद्धिमें अधिक गुण हैं परिहार विशुद्धिसे सूक्ष्मसांपरायमें और सूक्ष्मसांपरायसे यथाख्यातमें अधिक गुण हैं इसी वातको आगे दिखलाते हैं। सामायिक और छेदोपस्थापना चारित्रकी जघन्य विशुद्धि थोडी है उससे परिहारविशुद्धि चारित्रकी जघन्य विशुद्धि अनंतगुनी है तथा परिहारविशुद्धि चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धि उसकी जघन्य विशुद्धिसे भी अनंत गुनी है। सामायिक छेदोपस्थापना चारित्रकी उत्कृष्टविशुद्धि परिहारविशुद्धि चारित्रकी उत्कृष्टविशुद्धिसे भी अनंत गुनी है। इस सामायिक छेदोपस्थापनाकी उत्कृष्टविशुद्धिसे भी सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी जघन्य विशुद्धि अनंत गुणी है और इसी सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धि उसकी जघन्य विशुद्धिसे भी अनंत गुणी है। इस सूक्ष्मसांपराय चारित्रकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे भी यथाख्यात चारित्रकी जघन्य उत्कृष्ट रहित संपूर्ण विशुद्धि अनंत गुणी है।

संपूर्णा प्रकर्षाप्रकर्षविरहिताऽनन्तगुणा । एवमेते पञ्च चारित्रोपयोगाः शब्दविषयत्वेन संख्येयभेदाः । बुद्ध्यध्यवसानभेदादसंख्येया अर्थादनन्तभेदाश्च भवंति । तदेतच्चारित्रं सर्वास्रवनिरोधकारणत्वात्परमसंवरहेतुरित्यवसेयं ।

अथ वा व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदंडत्यागेन्द्रियजयः संयमः । तत्र हिंसाऽनृतस्तेयाऽब्रह्मपरिग्रहविरतिरिति पंचधा व्रतं । तत्रेंद्रियकषायनिग्रहमकृत्वा प्रमत्त इव यः प्रवर्त्तते स प्रमत्तः । पंचेन्द्रियमनोवाक्कायबलोच्छ्वासनिःश्वासायुष्काणि प्राणाः । एकेन्द्रियादयः प्राणिनः प्रमत्तपरिणामयोगात्प्राणिप्राणव्यपरोपणं हिंसा । सा च संरंभसमारंभारंभैस्त्रिभिः कायवाङ्मनःकर्मयोगैस्त्रिभिः कृतकारितानुमतैस्त्रिभिः क्रोधादिकषायैश्चतुर्भिर्भिद्यते । तत्र

इसप्रकार उपयोगरूपसे यह चारित्र पांच प्रकारका है, शब्दका विषयभूत होनेसे इसके संख्यात भेद होते हैं, बुद्धिके विषयभूत होनेसे असंख्यात भेद होते हैं, और अर्थके विषयभूत होनेसे अनंत भेद होते हैं। इस पांचों ही प्रकारके चारित्रसे सवतरहके आस्रवका निरोध होता है इसलिये यह सब तरहका चारित्र परम संवरका कारण है ऐसा समझना चाहिये।

अथवा व्रतोंको धारण करना, समितियोंको पालन करना, कषायोंका निग्रह करना, दंडोंका त्याग करना और इंद्रियोंको जीतना संयम है। हिंसाका त्याग करना, अनृत वा झूठका त्याग करना, चोरीका त्याग करना, अब्रह्मका त्याग करना और परिग्रहका त्याग करना ये पांच व्रत कहलाते हैं। जो इंद्रिय और कषायोंको निग्रह न करके प्रमत्तके समान अपनी प्रवृत्ति करता है उसको प्रमत्त कहते हैं। पांचों इंद्रियां, मन वचन काय ये तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण कहलाते हैं और इन प्राणोंको धारण करनेवाले एकेंद्रिय आदि जीव प्राणी कहलाते हैं। अपने प्रमत्तरूप परिणामोंके निमित्तसे प्राणियोंके प्राणोंका व्यपरोपण वा घात करना हिंसा है, और वह संरंभ समारंभ आरंभ इन तीनके द्वारा, मन वचन कायकी क्रियारूप तीनों योगोंके द्वारा, कृत कारित अनुमत [करना कराना और करतेको भला मानना] इन तीनोंके द्वारा और क्रोध मान माया लोभ इन चारो कषायोंके द्वारा अनेक तरहकी हो जाती

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादतः प्रयत्नावेशः संरंभः । साध्यायाः क्रियायाः साधनानां समाहारः समारंभः । आदौ क्रमः प्रक्रम आरंभ इति । औदारिकशरीरनामकर्मोदयवशात् पुद्गलैश्चीयते इति कायः । वाक् द्विविधा, भाववाक्, द्रव्यवागिति । तत्र भाववाग्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी । तदभावे तद्वृत्त्यभावात्तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति

है। प्रमादके कारण जीवोंकी हिंसा करने आदि कार्य करनेके लिये प्रयत्न करनेका आवेश वा इच्छा होना संरंभ है। जिस कामके करनेका विचार किया है उसकी कारण सामग्री इकट्ठी करना समारंभ है। सबसे पहिले उस कामको प्रारंभ करना आरंभ है। औदारिक शरीर नाम कर्मके उदय होनेके कारण पुद्गलोंके द्वारा जो इकट्ठा किया जाय बनाया जाय उसको काय वा शरीर कहते हैं। वाक् अर्थात् वचन दो प्रकारके हैं एक भाव वचन दूसरे द्रव्य वचन। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे तथा अंगोपांग नाम कर्मके लाभका निमित्त मिलनेसे भाववचनोंकी प्राप्ति होती है इसलिये भाववचन भी पौद्गलिक हैं, इतनी पौद्गलिक सामग्री मिले विना भाववचन हो नहीं सकते इसलिये भी भाववचन पौद्गलिक हैं। उस भाववचनकी सामर्थ्य प्राप्त होनेसे क्रियावान् आत्माके द्वारा प्रेरणा किये हुये जो पुद्गल वचन रूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य वचन कहते हैं तथा वे पुद्गलोंके ही बनते हैं इसलिये पौद्गलिक ही कहलाते हैं। मन भी दोप्रकारका है एक भावमन और दूसरा द्रव्यमन। भावमनकी प्राप्ति लब्धि और उपयोगके द्वारा होती है तथा लब्धि और उपयोग ये दोनों ही पुद्गलोंके आलंबनसे ही होते हैं इसलिये भावमन भी पौद्गलिक ही गिना जाता है।

ज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमका लाभ होनेके कारण प्राप्त होनेवाले, गुणदोषोंका विचार करना स्मरण करना आदि कार्योंके सन्मुख ऐसे आत्माका अनुग्रह क-

द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । मनश्च द्विविधं, भावमनो द्रव्यमनश्चेति । तत्र भावमनो लब्ध्युपयोगाभ्यां लक्ष्यते पुद्गलावलंबनत्वात्पौद्गलिकं । द्रव्यमनश्च ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला वीर्यविशेषावर्जनसमर्था मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकमिति । स्वातन्त्र्यविशिष्टेनात्मना यः प्रादुर्भावितं तत्कृतं । परस्य प्रयोगमपेक्ष्य सिद्धिमापद्यमानं कारितं । प्रयोजकस्य मनसाऽभ्युपगमनमनुमतमिति । आत्मनः सम्यक्त्वसंयमासंयमसंयमयथाख्यातचारित्रं कषन्तीति कषायाः । अथ वा कृषन्ति फलवत्कुर्वन्ति कर्मबीजमिति कषायाः । सरंभसमारंभारंभाणामधस्तात् योगान् कृतकारितानुमतानि क्रोधमानमायालोभांश्च क्रमेण व्यवस्थाप्य सरंभं निरुध्यांकसंचारे कृते षट्त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति । एवं समारंभे आरंभे च प्रत्येकं षट्त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति । सर्वे संपिंडिताः अष्टोत्तरशतसंख्याका भवन्ति ।

रनेवाले, और विशेष शक्तिको प्रगट करनेकी जिनमें सामर्थ्य है ऐसे जो पुद्गल मनरूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य मन कहते हैं। द्रव्यमन पुद्गलोंसे ही बनता है इसलिये वह भी पौद्गलिक ही कहलाता है। स्वतंत्रता पूर्वक आत्माके द्वारा जो स्वयं किया जाता है उसे कृत कहते हैं दूसरेके प्रयोगकी अपेक्षा रखकर जो कार्य सिद्ध किया गया हो अर्थात् दूसरेसे कराया गया हो उसे कारित कहते हैं। काम करनेवालेको मनसे भला मानना अनुमत कहलाता है। आत्माके सम्यग्दर्शन, संयमासंयम, संयम और यथाख्यात चारित्र गुणोंका जो घात करे उन्हें कषाय कहते हैं। अथवा कर्मरूप वीजको जो फलशाली वनादेवें (जिनके कारण कर्म अपना फल दे सकें) उनको कषाय कहते हैं। कषाय क्रोध मान माय लोभ ये चार हैं। संरंभ समारंभ और आरंभ इन तीनोंके नीचे मन वचन काय इन तीनों योगोंको, कृत कारित, अनुमत इन तीनोंको और क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंको अनुक्रमसे रखना चाहिये। इसतरह रखनेसे तथा उनका अंक संचार करनेसे संरंभ छत्तीस तरहका होता है। इसीप्रकार समारंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है और आरंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है। ये सव मिलकर एकसौ आठ भेद होते हैं।

एवं कायादियोगान्कृतकारितानुमतानि क्रोधादिकषायांश्चैकैकं निरुध्यांकसंचारः कर्तव्यः ।

संख्यातासंख्यातानंतभवसंसारावस्थानमनन्तानुबन्धिनां कषायाणां । षण्मासावस्थानमप्रत्याख्यानानां । पक्षावस्थानं प्रत्याख्यानानां । अन्तर्मुहूर्तावस्थानं संज्वलनानां । एवंविधषोडशकषायभेदात् द्वात्रिंशदुत्तरचतुःशतविकल्पा भवन्ति ।

इसीप्रकार मन वचन काय तीनों योग, कृत कारित अनुमोदना और क्रोधादिक कषाय इन सबको एक एकके साथ कहकर अंक संचार करना चाहिये

संरंभ	समारंभ	आरंभ	
काय	वचन	मन	
कृत	कारित	अनुमत	
क्रोध	मान	माया	लोभ

क्रोध कृत काय संरंभ, मान कृत काय संरंभ, माया कृत काय संरंभ, लोभ कृत काय संरंभ, क्रोध कारित काय संरंभ, मान कारित काय संरंभ, माया कारित काय संरंभ, लोभ कारित काय संरंभ, क्रोधानुमत काय संरंभ, मानानुमत काय संरंभ, मायानुमत काय संरंभ, लोभानुमत काय संरंभ यह बारह प्रकारका संरंभ हुआ, इसी प्रकार बारह प्रकारका वचन संरंभ और बारह प्रकारका मन संरंभ समझना चाहिये। इस तरह छत्तीस प्रकारका संरंभ, छतीस प्रकारका समारंभ और छत्तीस ही प्रकारका आरंभ समझना चाहिये इस तरह सब एकसौ आठ भेद होते हैं।

अनंतानुबंधी कषायका अवस्थान वा संस्कार संख्यात असंख्यात वा अनंत भव–संसार तक

अप्रतिपीडया सूक्ष्मजीवाः, बादरजीवानां गत्यादिमार्गणागुणस्थानकुलयोन्यायुष्यादिकं ज्ञात्वा गमनस्थानशयनासनादिषु स्वयं न हननं, परैर्वा न घातनं, अन्येषामपि हिंसतां नानुमोदनं हिंसाविरतिः। अहिंसाव्रतं स्वर्गापवर्गफलप्रापणहेतुस्तत्प्रतिपालननिमित्तं शेषाणि व्रतानि। अहिंसकः पुरुषो निजजनकवद्विश्वास्य पूज्यश्च भवति। हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततोऽनुबद्धवैरश्चैहैव च वधबन्धपरिक्लेशादीन् परिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति हिंसाया व्युपरमः श्रेयान्। परमार्थग्रहणेच्छयाऽहिंसाव्रतस्थैर्यार्थं पंच भावना भवन्ति।

रहता है, अप्रत्याख्यानावरण कषायका अवस्थान छह महीने तक रहता है, प्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार पंद्रह दिन तक रहता है और संज्वलन कषायका संस्कार अंतर्मुहूर्त तक रहता है इस प्रकार कषायोंके सोलह भेद भी होते हैं और कषायोंके सोलह भेद होनेसे संरंभादिकके चारसौ वत्तीस भेद हो जाते हैं।

सूक्ष्म जीवोंको तो किसी तरह पीडा हो ही नहीं सकती है केवल बादर जीवोंको पीडा हो सकती है इसलिये उन बादर जीवोंकी गति आदि मार्गणाएं, गुणस्थान, कुल, योनि और आयुष्य आदि जानकर गमन करने, खडे होने, शयन करने और बैठने आदि कार्योंमें न तो स्वयं उन जीवोंकी हिंसा करना, न किसी दूसरोंसे उनका घात कराना और न हिंसा करते हुए अन्य लोगोंका अनुमोदन करना हिंसा विरति वा हिंसाका त्याग अथवा अहिंसा व्रत कहलाता है। यह अहिंसा व्रत स्वर्ग और मोक्ष फल प्राप्त होनेका कारण है। इस अहिंसा व्रतका पालन करनेके लिये ही वाकीके सब व्रत धारण किये जाते हैं। अहिंसा व्रतका धारण करनेवाला अहिंसक पुरुष अपने पिताके समान विश्वास करने योग्य और पूज्य माना जाता है। हिंसक पुरुष सदा ललकार और फटकार पाता रहता है और सदा दूसरोंके साथ वैर विरोध बांधता रहता है। हिंसक पुरुष इस लोकमें भी बध बंधन आदिके अनेक क्लेश भोगता है और परलोकमें भी नीच गति पाकर निंदनीय होता है इसलिये हिंसाका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है।

वाग्गुप्तिः, मनोगुप्तिः, ईर्यासमितिः, आदाननिक्षेपणसमितिः, आलोकितपानभोजनमिति ।

पारमार्थिकस्य भूतनिह्नवेऽभूतोद्भावने च यदभिधानं तदेवानृतं स्यात् भूतनिह्नवे नास्त्यात्मा नास्ति परलोक इत्यादि । अभूतोद्भावने च श्यामाकतंदुकमात्र आत्मांगुष्ठपर्वमात्र- सर्वगतो निष्क्रिय इत्यादि । यद्विद्यमानार्थविषयं प्राणिपीडाकारणं तत्सत्यमप्यसत्यमेतद्विपरीतं यच्च प्राणिपीडाकरं तदनृतं कृतात्कारितादनुमोदिताद्वाऽनृताद्विरतिः सत्यव्रतं तदभ्युदयनिःश्रेयसकारणं । सत्यवादिनं सन्मानयति लोकः, सर्वेषु कार्येषु प्रमाणं भवति,

परमार्थ रीतिसे ग्रहण करनेकी इच्छासे इस अहिंसा व्रतको स्थिर करनेके लिये वाग्गुप्ति मनोगुप्ति ईर्या समिति आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित पान भोजन ये पांच भावनाएं कही गई हैं।

जो पदार्थ है उसको छिपानेके लिये और जो नहीं है उसको प्रगट करनेकेलिये जो वचन कहे जाते हैं उसीको अनृत वा मिथ्या वचन कहते हैं । आत्मा नहीं है परलोक नहीं है इत्यादि वचन पदार्थोंके अस्तित्वको छिपानेवाले हैं । आत्मा श्यामाक जातिके चांवलके बरावर है, अथवा अंगूठेके पर्वके समान है अथवा समस्त संसारमें व्याप्त है और निष्क्रिय है, इत्यादि वचन जो पदार्थ नहीं है उसीको प्रगट करनेवाले हैं । विद्यमान पदार्थोंको विद्यमान कहनेवाले वचन भी यदि प्राणियोंको पीडा करने वाले हों तो वे सत्य होकर भी असत्य ही माने जाते हैं। जो वचन विपरीत हों, तथा प्राणियोंको पीडा देने वाले हों वे सब अनृत कहलाते हैं। कृत कारित अनुमोदनासे अनृत वा असत्यका त्याग कर देना सत्यव्रत है। यह सत्यव्रत भी अभ्युदय और मोक्षका कारण है। सत्यवादीका (सच बोलनेवालेका) सब लोग सन्मान करते हैं और समस्त कार्योंमें वह प्रमाण माना जाता है। झूठ बोलनेवाले पर किसीकी श्रद्धा नहीं होती इस लोकमें भी जीभ काटी जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं तथा झूठ बोलकर जिन लोगोंको दुःख दिया है और इसीलिये जिनके साथ वैर बंध गया है ऐसे लोगोंके द्वारा

अनृतवाद्यश्रद्धेयो भवति इहैव जिह्वाच्छेदनादीन् प्रतिलभते, मिथ्याभ्याख्यानदुःखितेभ्यश्च बद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेत्य चाऽशुभां गतिं । निंदितश्च भवतीत्यनृतवचनाद्व्युपरमः श्रेयान् । सत्यव्रतदृढीकरणार्थं पंचभावना भवति ।

क्रोधप्रत्याख्यानं, लोभप्रत्याख्यानं, भीरुत्वप्रत्याख्यानं, हास्यप्रत्याख्यानं, अनुवीचिभाषणं चेति । अनुवीचिभाषणमनुलोमभाषणमित्यर्थः, विचार्य भाषणमनुवीचिभाषणं ।

अदत्ताऽऽदानं स्तेयं । ग्रामारामशून्यागारवीथ्यादिषु निपतितमणिकनकवस्त्रादिवस्तुनो ग्रहणमदत्तादानं । कृतकारितादिभिस्तस्माद्विरतिरस्तेयव्रतं । तद्गीर्वाणनिर्वाणप्रदं । अस्तेयव्रतिनो बहिश्चरप्राणेष्वर्थेष्वपि विश्वसिति लोकः । परद्रव्यहरणासक्तमतिः सर्वस्योद्वेजनीयो भवति, इहैव चाभिघातवधब-

वह अनेक तरहके संकटोंमें डाला जाता है । परलोकमें भी उसे अशुभ गति मिलती है तथा वह निंदनीय होता है इसलिये असत्य वचनोंका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है । क्रोध प्रत्याख्यान अर्थात् क्रोध त्याग करदेनेकी भावना रखना, लोभ प्रत्याख्यान अर्थात् लोभका त्याग कर देनेकी भावना रखना, भीरुत्व प्रत्याख्यान अर्थात् डरको त्यागदेनेकी भावना रखना हास्य-प्रत्याख्यान अर्थात् हंसीको त्याग देनेकी भावना रखना और अनुवीची भाषण ये पांच सत्य व्रतको दृढ करनेकी भावनाएं हैं । विचार कर भाषण करना अथवा अनुकूलता पूर्वक भाषण करना अनुवीची भाषण कहलाता है ।

अदत्तादान अर्थात् विना दी हुई वस्तुको लेना वा ग्रहण करना चोरी है । किसी गांवमें किसी वगीचेमें, किसी सूने मकान अथवा गलीमें पडे हुए मणि सोना वस्त्र आदि पदार्थोंका ग्रहण करलेना उठालेना अदत्तादान है । कृत कारित अनुमोदनासे ऐसे अदत्तादानका त्याग करना अस्तेय व्रत अथवा अचौर्यव्रत है यही अचौर्यव्रत स्वर्ग और मोक्षकी संपदा देनेवाला है । अचौर्यव्रत धारण करनेवालेका वाह्य प्राण रूप धन रखनेमें भी सव लोग विश्वास करलेते हैं । जिसकी बुद्धि दूसरेके धन हरण करनेमें आसक्त रहती है उसे सवलोग दंड और फटकार

न्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदनभेदनशूलारोहणक्रकचपाटनकारागारविनिवेशनसर्वस्वहरणादीन्प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं। कुत्सितश्च भवति, तत्संसर्गतः शिष्टोऽपि संशयमवाप्नोति। अदत्तादानव्रतस्थिरीकरणार्थं भावनाः पंच भवंति।

शून्यागारगिरिगुहातरुप्रकोटरादिष्वावास, परकीयेपु मोचितेष्वावासः, परेषा मनुष्यव्यन्तरादीनामुपरोधाकारणं, आचारसूत्रमार्गेण भैक्ष्यशुद्धिः, ममेदं तवेदमिति लक्षणो विसंवादः, न विसंवादोऽविसंवादः, सधर्मिभिरविसंवाद इति।

मैथुनमब्रह्म, स्त्रीपुंसोर्वेदोदये वेदनापीडितयोर्यत्कर्म तन्मैथुनमथवैकस्याऽपि चारित्रमोहोदयोद्रक्तरागस्य हस्तादिसंघट्टनेऽस्ति मैथुनमिति। अहिंसा-

दिया करते हैं इस लोकमें मारना, पीटना, जानसे मार डालना, बांधना हाथ पैर कान नाक ऊपरका ओठ आदि अंगोंका काटलेना, भेदना शूलीपर चढाना, आरेसे चीरना, कारागार में (जेलमें) बंद करना और उसका सव धन लूट लेना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं। परलोकमें उसे अशुभगति प्राप्त होती है और वह निंदनीय होता है और तो क्या ऐसे चोर के संसर्ग मात्रसे शिष्ट पुरुष भी (भले सभ्य पुरुष) संशयमें पड जाते हैं अर्थात् लोग उनपर भी संदेह करने लगते हैं इसलिये चोरीका त्याग करदेना ही संसारका तथा आत्माका कल्याण करनेवाला है। इस आचौर्य व्रतको स्थिर करनेकेलिये नीचे लिखी हुई पांच भावनाएं हैं। पर्वतोंकी गुफाएं तथा वृक्षोंके कोटर आदि सूने मकानोंमे निवास करनेकी भावना रखना, दूसरेके द्वारा छोडे हुए स्थानोंमें निवास करनेकी भावना रखना, अन्य मनुष्य व्यंतर आदिको रोक टोक न करनेकी भावना रखना, आचार सूत्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार भिक्षाकी शुद्धता रखनेकी भावना रखना, और साधर्मियोंके साथ "यह तेरा है यह मेरा है" आदि विसंवाद न करना।

मैथुन करनेको अब्रह्म कहते हैं। अपने अपने वेद कर्मके उदयसे वेदनासे (कामकी वेदनासे) पीडित हुए स्त्री पुरुष जो कुछ कर्म करते हैं उसको मैथुन कहते हैं अथवा चारित्र मोह-

द्विगुणवृंहणाद्ब्रह्म न ब्रह्म अब्रह्म । तिर्यग्मनुष्यदेवाऽचेतनभेदाच्चतुर्विधस्त्रीभ्यो मातृस्वसृभगिनीभावनया मनोवाक्कायप्रत्येककृतकारितानुमोदितभेदेन नवविधाद्विरतिश्चतुर्थव्रतं । तदेव स्वर्गमोक्षसाधनं ब्रह्मचारिणं भूमिस्थमपि साक्षाद्देव इव मन्यते लोकः । असंयतोपि तद्व्रतो मानार्हो भवति, तस्मिन्प्रतिष्ठिताः सर्वे गुणा., विद्यादेवताश्च परिगृहीतब्रह्मव्रतस्य किंकरभावमुपयाति । अब्रह्मचारी मदविभ्रमोन्मथितचित्तो वनगज इव वासितावंचितो विवशो वधबंधपरिक्लेशादीननुभवति, मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिज्ञो न किंचित्कुशलमाचरति, परांगनालिंगनसंगकृतरतिश्चेहैव वैरानुबंधिनो लिंगच्छेदनवधबन्धनसर्वस्व-

नीय कर्मके तीव्र उदयसे जिसके तीव्र राग भाव प्रगट हुआ है ऐसा एक पुरुष भी यदि हस्तादिकसे संघट्टन क्रिया करे तो वह भी मैथुन कहलाता है। जिसमें अहिंसा आदि गुणोंकी वृद्धि होती हो उसे ब्रह्म कहते हैं और ब्रह्म वा ब्रह्मचर्यका पालन न करना ही अब्रह्म है। तिर्यंच मनुष्य देव और अचेतनके भेदसे स्त्रियां चार तरहकी होती हैं इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंमें माता बहिन और पुत्री की भावना रखकर मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनाके द्वारा होनेवाले नौ प्रकारके भेदोंसे उस अब्रह्मका त्याग करदेना ब्रह्मचर्य नामका चौथा व्रत है। यह ब्रह्मचर्य व्रत भी स्वर्ग मोक्षका साधन है। यदि कोई ब्रह्मचारी जमीन पर भी बैठा हो तो भी संसार उसे साक्षात देवके समान ही मानता है। यदि ब्रह्मचारी असंयमी भी हो तो भी उसका आदर सत्कार और मान प्रतिष्ठा होती है। इस ब्रह्मचर्य व्रतमें ही समस्त गुण शामिल हैं। जिसने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है उसीके सब विद्या देवता आकर स्वयं सेवक होकर काम करते हैं। जिस प्रकार मदके विकारसे उन्मत्त चित्तवाला जंगली हाथी हथिनीके द्वारा ठगा जाकर परवश हो जाता है और बध बंधन आदिके अनेक क्लेशोंका अनुभव करता है उसी प्रकार अब्रह्मचारी भी मदके विकारसे उन्मत्त चित्त होकर परवश हो जाता है और फिर बध बंधन आदिके अनेक क्लेश सहन करता है। मोहसे तिरस्कृत होकर कार्य अकार्यका कुछ विचार नही कर सकता और न वह किसी भी श्रेष्ठ कार्यका संपादन कर सकता है। परस्त्रियोंका आलिंगन अथवा उनके साथ समागम

हरणादीनपायान् प्राप्नोति, प्रेत्य चाशुभां गतिमश्नुते, तृणवल्लघुश्च भवतीत्यतः स्त्रीविरतिरात्महिता । ब्रह्मचर्यव्रतनिश्चलीकरणार्थं पंच भावना भवंति । स्त्रीरागकथाश्रवणवर्जनं, तन्मनोहरांगनिरीक्षणविरहः, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोहः, वृष्येष्टरसानुभवनिरासः, स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति । मूर्च्छा परिग्रहः, बाह्याभ्यन्तरोपधिसंरक्षणादिव्यावृत्तिर्मूर्च्छा । क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानशयनासनकुप्यभांडानि; दशविधश्चेतनाचेतनभेदलक्षणो बाह्यपरिग्रहः । मिथ्यात्वक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सावेदरागद्वेषचतुर्दशभेदोऽभ्यन्तरपरिग्रहः । एतस्मान्मनसः कृतकारितानु-

करनेकी लालसा रखनेवाले पुरुषके साथ हर किसीका वैर विरोध हो जाता है और फिर उन वैर विरोध करनेवालोंके द्वारा लिंगच्छेदन, बध बंधन और समस्त धनका हरा जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं । परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होती है और वह तृणके समान लघु वा क्षुद्र गिना जाता है । इसलिये स्त्रीमात्रका त्याग कर देना ही आत्माका कल्याण करनेवाला है । इस ब्रह्मचर्य व्रतको निश्चल करनेके लिये स्त्रीरागकथा श्रवण त्याग, (स्त्रियोंकी रागरूपकथा सुननेका त्याग) तन्मनोहरांगानिरीक्षणविरह अर्थात् स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोह अर्थात् पहिले उपभोगकी हुई स्त्रियोंके स्मरण करनेका त्याग करना, वृष्येष्टरसानुभवनिरास अर्थात् पौष्टिक और इष्ट रसके अनुभव करनेका त्याग करना, और स्वशरीरसंस्कारवर्जन अर्थात् अपने शरीरके संस्कार करनेका त्याग करना ये पांच भावनाएं हैं ।

मूर्छाको परिग्रह कहते हैं वाह्य और अभ्यंतर परिग्रहकी रक्षा करना उपार्जन करना आदि कार्योंमें प्रवृत्त होनेको मूर्छा कहते हैं । क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद (दास दासी) चतुष्पद (चौपाये) सवारी, सोने बैठनेकी पलंग कुरसी आदि चीजें, कुप्य (वस्त्रादि) और भांड (वर्तन आदि) दश प्रकारका वाह्य परिग्रह है, और वह भी चेतन अचेतनके भेदसे दो प्रकार का है । मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ हास्य रति अराति शोक भय जुगुप्सा, वेद, (स्त्री

मोदितेन वचस॰ कृतकारितानुमोदितेन कायस्य कृतकारितानुमोदितेन च विरतिरपरिग्रहव्रतं व्रतं। तदेव सर्वमोक्षैकसाधनं सर्वेषां गुणानामलंकरणं, निष्परिग्रहव्रतिनं सर्वेऽपि सन्मानयन्ति, स सर्वैश्च समभिवन्दनीयः संपूजनीयश्च भवति, तस्य नामग्रहणेऽपि बद्धांजलिर्भवति लोकः। परिग्रहवान् यथा शकुनिर्गृहीतमांसखंडोऽन्येषां तदर्थिनां पतत्रिणामभिभवनीयः, तथा तस्करादीनामभिभवनीयो मार्यश्च भवति, परिग्रहार्जननिमित्तं निजाभिजनविद्यावृत्तं विहाय केचन जडधियो नीचतामुपगच्छन्ति, न चाऽस्य तृप्तिर्भवतीन्धनैरिवाऽग्नेर्लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति, प्रेत्य चाशुभां गतिमा-

लिंग नपुंसक लिंग पुलिंग) राग और द्वेष यह चौदह प्रकारका अभ्यंतर परिग्रह है। इन दोनों प्रकारके परिग्रहोंका मनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, वचनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, और कायके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे इन नौ तरहसे त्याग कर देना परिग्रह त्याग व्रत है। यह परिग्रह त्याग व्रत ही स्वर्ग और मोक्षका साधन है तथा समस्त गुणोंको सुशोभित करनेवाला है। परिग्रह त्याग व्रतको धारण करनेवाले पुरुषका सभी लोग सन्मान करते हैं सभी लोग वंदना करते हैं, और सभी लोग पूजा करते हैं। ऐसे पुरुषके नाम लेनेमात्र से ही उसकेलिये सब लोग अपने अपने हाथ जोड लेते हैं। जिस प्रकार किसी पक्षीके पास मांसका टुकडा हो तो उस मांसको चाहनेवाले अन्य पक्षी उसे त्रास देते हैं उसी प्रकार चोर आदि धनार्थी लोग भी अधिक परिग्रहवालेको त्रास देते हैं तथा मार डालते हैं। परिग्रहको इकट्ठा करनेके लिये अपने कुटुंबी, विद्या और चारित्रको छोडकर कितने ही मूर्ख लोग नीचता धारण करलेते हैं। जिस प्रकार इंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार परिग्रहसे किसी को भी तृप्ति नहीं होती। लोभके वशीभूत होकर वह कार्य अकार्य आदि किसीका विचार नहीं कर सकता। परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होती है और 'यह लोभी है' इस प्रकार वह निंदनीय गिना जाता है। इसलिये जो नीच वृत्तिसे उपार्जन किया जाय और जो अनित्य तथा दुःखका कारण है ऐसे परिग्रहको छोडकर आत्माका हित करनेवाले लोगोंको निष्परिग्रहवृत्ति

स्कन्दति, लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति नीचवृत्त्या समुपार्जनीयमनित्यं दुःखकारणं परिग्रहं परित्यज्याकिंचन्यवृत्त्या नित्यमनंतसुखसाधनं मोक्षमार्गमुपार्जयन्त्वात्महितैषिणः। आकिंचन्यव्रतदृढिमार्थं पंच भावना भवंति।

पंचानां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु रागवर्जनमनिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु द्वेषवर्जनमिति।

एवमहिंसादिव्रतानां लक्षणं फलं गुणं तदभावे दोषभावनां च ज्ञात्वा यथा ममाप्रियं वधबन्धपरिपीडनं तथा सर्वसत्त्वानां। यथा मम मिथ्यात्वाख्यानकटुकपरुषाणीनि वचांसि शृण्वतोऽतितीव्र दुःखमभूतपूर्वमुत्पद्यते तथा सर्वजीवानां। यथा ममेष्टद्रव्यवियोगे व्यसनपूर्वमुपजायते तथा सर्वभूतानां। यथा मम कान्ताजनपरिभवे परकृते सति मानसी पीडाऽतितीव्रा जायते तथा सर्वप्राणिनां। यथा च मम परिग्रहेष्वप्राप्तेषु कांक्षोद्भवं प्राप्तेषु रक्षण-

धारण कर नित्य और अनंत सुखका साधन ऐसा मोक्षका मार्ग सदा उपार्जन करना चाहिये। इस आकिंचन्य वृतको स्थिर करनेके लिये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और कर्ण इन पांचों इंद्रियोंके इष्ट विषय प्राप्त होने पर उनमें राग नहीं करना और अनिष्ट पदार्थोंके प्राप्त होनेपर द्वेष नहीं करना ये पांच भावनाएं हैं।

इस प्रकार अहिंसा आदि वृतोंका लक्षण फल और गुणोंको समझकर तथा वृतोंके अभावमें दोषोंकी प्राप्ति समझकर विचार करना चाहिये कि जिस प्रकार बध बंधन और पीडन मुझे अप्रिय हैं उसी प्रकार सब जीवोंको अप्रिय हैं जिस प्रकार मिथ्या वचन कटुक और कठोर वचन सुननेसे मुझे अभूत पूर्व और अत्यंत तीव्र दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार मेरे इष्ट पदार्थोंका वियोग होनेपर मुझे दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार किसी दूसरेके द्वारा मेरी स्त्रीका तिरस्कार होने पर मेरे हृदयमें अत्यंत तीव्र पीडा होती है उसी प्रकार सब जीवोंको होती है। जिस प्रकार मुझे परिग्रहोंकी प्राप्ति न होने पर उनकी इच्छाजन्य अत्यंत तीव्र दुःख होता है, उनकी प्राप्ति होनेपर रक्षा करनेका अत्यंत दुःख होता है और उनके नष्ट होने पर शोक उत्पन्न होनेका सबसे अधिक तीव्र दुःख

नितं विनष्टेषु शोकसमुत्थं दुःखमतितीव्रतरं भवति तथा च सर्वदेहिनां अतो न हिनस्मि, नानृतं वदामि, नादत्तमाददे, नांगनां स्पृशामि, न परिग्रहमुपाददे इत्येवं प्रमत्तपरिणामयोगजनितं हिंसादिकं विहायाप्रमत्तपरिणामादहिंसादिव्रतधारणे यत्नः कर्तव्यः।

समितिपालनं पूर्वमुक्तं। चतुर्विधकषायनिग्रहश्चोत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचेषु प्रतिपादितः।

दंडस्त्रिविधः, मनोवाक्कायभेदेन। तत्र रागद्वेषमोहविकल्पात्मा मानसो दंडस्त्रिविधः, तत्र रागः प्रेमहास्यरतिमायालोभाः। द्वेषः क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्साः। मोहो मिथ्यात्वत्रिवेदसहिताः प्रेमहास्यादयः। अनृतोपघातपैशून्यपरुषाभिशंसनपरितापहिंसनभेदाद्वाग्दंडः सप्तविधः प्राणिवधचौर्यमैथुनपरिग्रहाऽऽरंभताडनोग्रवेषविकल्पात्कायदंडोऽपि च सप्तविधः। गुप्तात्मना प्रयतमानेन दंडत्यागो विधेयः।

होता है उसी प्रकार सब जीवोंके होता है। इसलिये मैं न तो किसी जीवकी हिंसा करूंगा, न झूठ बोलूंगा न चोरी करूंगा, न स्त्रीका स्पर्श करूंगा और न परिग्रह ग्रहण करूंगा इसप्रकार प्रमत्त परिणामोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हिंसा आदि कार्योंको छोडकर अप्रमत्त परिणामोंसे होनेवाले अहिंसा आदि व्रतोंके धारण करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

समितियोंके पालन करनेका विधान पहिले कहा जा चुका है और चारो प्रकारके कषायोंका निग्रह करना उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव और शौचमें प्रतिपादन कर चुके हैं।

मन वचन कायके भेदसे दंड तीन प्रकारका है और उसमें भी राग द्वेष मोहके भेदसे मानसिक दंड भी तीन प्रकारका है। प्रेम हास्य रति माया और लोभको राग कहते हैं, क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्साको द्वेष कहते हैं तथा मिथ्यात्व स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद प्रेम और हास्यादिक सब मोह कहलाता है। झूठ बोलना, वचनसे कहकर किसीके ज्ञानका घात करना, चुगली खाना, कठोर वचन कहना, अपनी प्रशंसा करना, संताप उत्पन्न करनेवाले वचन कहना और हिंसाके वचन कहना यह सात तरहका वचन दंड कहलाता है। प्राणियोंका बध करना, चोरी करना, आरंभ करना, ताडन करना, और उग्र वेष (भयानक रूप) धारण करना इस तरह काय

विषयाटवीषु स्वच्छन्दप्रधावमानेन्द्रियगजानां ज्ञानवैराग्योपवासाद्यंकुशाकर्षणेन वशीकरणमिन्द्रियजयः । स चास्रवानुप्रेक्षाया वक्ष्यते ।

संयमो ह्यात्महितस्तमनुतिष्ठन्निहैव पूज्यते । परत्र किमत्र वाच्यं । असंयतः प्राणिवधविषयमार्गेषु नित्यं प्रवृत्तो मूर्तिमदशुभकर्मैवायमिति साधुजन-विनिंद्यमानो दुष्कर्म संचिनुते ।

संयमिनो नैर्ग्रन्थ्यधारिणः पंचविधाः । पुलाकाः, बकुशाः, कुशीलाः, निर्ग्रन्थाः, स्नातकाश्चेति । तत्रोत्तरगुणभावनोपेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्क-

दंड भी सात प्रकारका कहलाता है। अपने आत्माको गुप्त रखनेके लिये पापोंसे छिपाने वा ब-चानेके लिये सदा प्रयत्न करनेवाले मुनियोंको इन तीनों प्रकारके दंडोंका त्याग कर देना चाहिये।

विषयरूपी वनमें स्वतंत्र रीतिसे दौडनेवाले इंद्रियरूपी हाथियोंको ज्ञान वैराग्य उपवास आदि अंकुशोंसे खींचकर वश करना इंद्रियविजय कहलाता है। इस इंद्रियविजयका विस्तार आस्रवानुप्रेक्षामें कहेंगे।

यह निश्चय है कि संयम धारण करना आत्माका हित करनेवाला है इसलिये जो इस संयमको धारण करता है वह इस लोकमें भी पूज्य गिना जाता है फिर भला परलोककी तो बात ही क्या है वहां तो पूज्य होता ही है।

असंयमी पुरुष प्राणियोंकी हिंसा करना, विषय सेवन करना आदि मार्गोंमें ही सदा प्रवृत्त रहा करता है वह मूर्तिमान् साक्षात् अशुभ कर्म ही जान पडता है और इसीलिये सज्जनोंके द्वारा निंद्य गिना जाता है और अनेक दुष्कर्मोंको (पापरूप कर्मोंको) संचित करता रहता है।

निर्ग्रंथ (परिग्रहरहित) अवस्थाको धारण करनेवाले संयमी पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रंथ और स्नातकके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। जिसप्रकार पुलाक (छिलका सहित चावल) विल्कुल शुद्ध नहीं हो सकता उसीप्रकार जो विल्कुल शुद्ध न हों अर्थात् जिनके

दाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतोऽविशुद्धपुलाकसादृश्यात्पुलाका इत्युच्यंते । नैर्ग्रन्थ्यमुपस्थिता अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषणानुवर्तिनो वृद्धियशःकामाः शातगौरवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्च छेदशवलयुक्ताः वकुशाः । शवलपर्यायवाची वकुशशब्द इति । कुशीला द्विविधा-प्रतिसेवनाकुशीलाः, कषायकुशीलाश्चेति तत्राविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णमूलोत्तरगुणाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिन प्रतिसेवनाकुशीला ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनवदिति । वशीकृतान्यकषायोदयाः

मनमें उत्तर गुणोंके धारण करनेकी भावना विल्कुल न हो और व्रतोंमें भी किसी जगह किसीसमय पूर्णता प्राप्त न कर सकें ऐसे मुनियोंको पुलाक मुनि कहते हैं। जिन्होंने निर्ग्रंथ अवस्था धारणकी है तथा जिनके वृत अखंडित वा पूर्ण हैं परंतु जो शरीर और उपकरणोंकी सुंदरताका अनुराग रखते हैं (प्रभावनाके लिए) अपने यशकी वृद्धि चाहते हैं, परिवार अर्थात् अपने संघसे कभी अलग रहना नहीं चाहते इसलिये परिवारसे (संघसे) उत्पन्न हुए हर्षरूपी छेदसे जो चित्र वर्णता (चित्रलाचरण) धारण करते हैं और जो अच्छी तरह रहने वा सुंदरतामें ही अपना गौरव समझते हैं उन्हें वकुश कहते हैं। शवल अर्थात् चित्रविचित्र वा अनेक रंगवालेको ही वकुश कहते हैं। भावार्थ– जो रागसहित चारित्र धारण करे उसे वकुश कहते हैं।

कुशील दो प्रकारके होते हैं एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरे कषाय कुशील। जो परिग्रहोंसे अलग नहीं हुए हैं अर्थात् कमंडलु पीछी संघ गुरु आदिसे जिन्होंने अपना मोह नहीं छोडा है, जिनके मूलगुण और उत्तरगुण दोनों ही परिपूर्ण हैं परंतु किसी तरह जो उत्तरगुणोंकी विराधना कर डालते हैं उनको प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। प्रतिसेवना कुशील मुनि गर्मियोंके दिनोंमें जंघाप्रक्षालन आदि कर लेते हैं यही उनकी उत्तरगुणोंकी विराधना है। जिनके अन्य सब कषायोंका उदय वश हो गया है केवल संज्वलन कषायका उदय बाकी है उनको कषायकुशील कहते हैं। जिसप्रकार पानीमें लकडीकी रेखा शीघ्र ही नष्ट हो जाती

संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीला इति । यथोदके दंडराजिराशेव विलयमुपयाति तथाऽनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्द्ध्वं मुहूर्तादुद्भियमानकेवलज्ञानदर्शन-भाजो निर्ग्रंथा इति । ज्ञानावरणादिघातिकर्मक्षयादाविर्भूतकेवलज्ञानाद्यतिशयविभूतयः सयोगिशीलेशिनो नवलब्ध्यास्पदाः केवलिन. स्नातका इति । एते प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यमचारित्रभेदे सत्यपि नैगमनयापेक्षया पंचापि निर्ग्रन्था इत्युच्यंते । यथा षोडशत्रयोदशदशवर्णिकादिषु सुवर्णशब्दोऽविशिष्टो वर्त्तते तथा निर्ग्रन्थशब्दोऽपि । सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेशायुधरहितं तत्सामान्ययोगात्सर्वेषु पुलाकादिषु निर्ग्रन्थशब्दो युक्तः ।

पुलाकादिनिर्ग्रन्था उत्तरोत्तरगुणप्रकर्षवृत्तिविशेषाः संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैर्व्याख्येयाः । तद्यथा—संयमः, श्रुतं, प्रतिसेवना, तीर्थं, लिंगं, लेश्या,

है उसीप्रकार जिनके कर्मोंका उदय व्यक्त वा प्रकट नहीं है और एक मुहूर्तके बाद ही जिन्हें केवल ज्ञान प्रगट होनेवाला है उनको निर्ग्रंथ कहते हैं। ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंके नाश होनेसे जिनके केवलज्ञान आदि आतिशय और विभूतियां प्रगट हो गई हैं जो सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थानके स्वामी हैं और क्षायिक नौ लब्धियोंको धारण करते हैं ऐसे केवलज्ञानियोंको स्नातक कहते हैं । यद्यपि इनमें किसीके उत्तम चारित्र है किसीके मध्यम है और किसीके जघन्य है इसप्रकार इनके चारित्रमें भेद है तथापि नैगम नयकी अपेक्षासे पाचों ही निर्ग्रंथ कहे जाते हैं। जिसप्रकार सोलह ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है और तेरह तथा दश ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है उसीप्रकार निर्ग्रंथ शब्द भी समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन और आभूषण, वेष (वस्त्र) तथा शस्त्रोंसे रहित निर्ग्रंथपना ये दोनों ही साधारण रीतिसे सब मुनियोंमें रहते हैं इसलिये पुलाक आदि सब तरहके मुनियोंमें निर्ग्रंथ शब्द चरितार्थ होता है।

उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकता और चारित्रकी विशेषता धारण करनेवाले पुलाकादि निर्ग्रंथोंका संयम आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा व्याख्यान करना चाहिये । यही वात आगे दिखलाते हैं। संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठों भेदोंके

उपपाद, स्थानमिति विकल्पतः पुलाकादयः साध्याः । तत्र संयमे पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवन्ति । कषायकुशीलाः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययोश्च भवन्ति । निर्ग्रन्था स्नातकाश्चैकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे भवन्तीति । श्रुते पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः कषायकुशीला निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः । जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु, वकुशकुशीलनिर्ग्रन्थाना श्रुतमष्टौ प्रवचनामतरः । स्नातका अपगतश्रुता केवलिनः । प्रतिसेवनायां पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बला-

द्वारा पुलाकादिकोंको सिद्ध करना चाहिये और वह इस तरह, संयमके द्वारा पुलाक वकुश और प्रतिसेवना कुशील ये सदा सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमोंमें रहते हैं। कषायकुशील सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमोंमे रहते हैं। निर्ग्रंथ और स्नातक एक ही यथाख्यात संयममें रहते हैं। श्रुतके द्वारा—पुलाक वकुश और प्रतिसेवनाकुशीलके उत्कृष्ट श्रुतज्ञान अभिन्नाक्षर दश पूर्वतक होता है। कषाय कुशील और निर्ग्रंथोंके चौदह पूर्व तक होता है। जघन्य पुलाकके आचारवस्तुतक श्रुतज्ञान होता है। (आचारवस्तु आचारांगका एक भाग है] वकुश कुशील और निर्ग्रंथोंके जघन्य श्रुतज्ञान अष्ट प्रवचनमातृका तक होता है । [आचारांगमें एक अधिकार पांच समिति और तीन गुप्तिके व्याख्यान करनेका है उस अधिकार तक अष्ट प्रवचनमातृका कहते हैं] स्नातकोंके कोई श्रुतज्ञान नहीं होता क्योंकि वे केवली होते हैं। प्रतिसेवनाके द्वारा—प्रतिसेवना विराधनाको कहते हैं। पुलाक मुनिके पांचों मूलगुण [महाव्रत] और रात्रिभोजन त्याग इन छह व्रतोंमें से दूसरेकी जबर्दस्तीसे किसी एकमें विराधना होती है । वकुश दो प्रकारके हैं एक उपकरण वकुश और दूसरे शरीर वकुश। जिसके चित्तमें पीछी, कमंडलु, बंधन आदि

१ इसका अभिप्राय यह है कि इन व्रतोंकी प्रतिज्ञा मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनसे होती है उसमें सामर्थ्यकी हीनतासे किसी अंशमे भंग हो जाता है।

द्न्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । वकुशो द्विविधः, उपकरणवकुशः, शरीरवकुशश्चेति । तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तो बहु-
विशेषोपयुक्तोपकरणाकाङ्क्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणवकुशो भवति । शरीर-संस्कारसेवी शरीरवकुशः । प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविरा-
धयन्नुत्तरगुणेषु काञ्चिद्विराधना प्रतिसेवते । कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाना प्रतिसेवना नास्ति । तीर्थे-सर्वेषां तीर्थकराणां तीर्थेषु भवन्ति । लिंगे, द्रव्यभा-
वभेदाल्लिंगं द्विविधं, भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंचाऽपि निर्ग्रन्था लिंगिनो भवन्ति, द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः । लेश्यायां पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवंति

धर्मोपकरणकी अभिलाषा रहती है जो अनेक तरहके चित्रविचित्र परिग्रहोंको (पीछी कमंडलु पुस्तक बंधन आदि परिग्रहोंको, धारण करता है विशेष उपयोगी बहुतसे उपकरणोंकी आकांक्षा रखता है और उनके संस्कारसे विराधना करता रहता है ऐसे मुनिको उपकरण वकुश कहते हैं। शरीरके संस्कारोंकी सेवा करनेवाला मुनि शरीर वकुश कहलाता है। प्रतिसेवना कुशील नामका मुनि मूलगुणोंकी विराधना तो नहीं करता किन्तु उत्तरगुणोंकी कुछ विराधना करता है। कषायकुशील, निर्ग्रंथ और स्नातकोंके विराधना नहीं होती। तीर्थके द्वारा—ये सब तरहके मुनि समस्त तीर्थंकरोंके तीर्थोंमें होते हैं। लिंग दो प्रकारका है एक भाव लिंग और दूसरा द्रव्य लिंग। भावलिंगकी अपेक्षासे पांचों प्रकारके सब ही मुनि निर्ग्रंथ लिंगको धारण करते हैं तथा द्रव्यलिंगकी अपेक्षासे सबका अलग अलग विभाग कर लेना चाहिए।

१—त्याग की वस्तुको कारण पाकर ग्रहण कर लेना और फिर तत्काल ही सावधान होकर उसका त्याग कर देना प्रतिसेवना वा विराधना कहलाती है।

२—द्रव्य लिंगकी अपेक्षासे—कोई आहार करता है कोई उपवास करता है, कोई तप करता है कोई उपदेश करता है, कोई अध्ययन करता है, कोई तीर्थ विहार करता है, कोई अनेक आसनोंसे ध्यान करता है, किसीके दोष लगता है, किसीके नहीं लगता, कोई प्रायश्चित्त लेता है, कोई आचार्य हैं, कोई निर्यापक हैं, कोई केवली है इत्यादि बाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा अनेक तरहसे लिंग भेद होता है।

वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि, कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धस्य चतस्र उत्तराः, सूक्ष्मसांपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति, अयोगिनः शैलेशितां प्रतिपन्ना अलेश्याः। उपपादे, पुलाकस्योत्कृष्ट उपपादोऽष्टादशसागरोपमोत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे, वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयोः, कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ च सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु, स्नातकस्य निर्वाणमिति। स्थानेऽसंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति। तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशी-

लेश्याके द्वारा–पुलाकके पीत पद्म शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं। वकुश और प्रतिसेवना कुशीलके छहों लेश्याएं होती हैं। कषायकुशील और परिहारविशुद्धिवालेके कापोत पीत पद्म और शुक्ल ये चारों लेश्याएं होती हैं। सूक्ष्मसांपराय निर्ग्रंथ और स्नातकके एक शुक्ल ही लेश्या होती है। मोक्षरूपी पर्वतके स्वामीपनेको प्राप्त हुए अयोगकेवली लेश्या रहित होते हैं अर्थात् उनके कोई लेश्या नहीं होती। उपपादके द्वारा–पुलाक मुनिका उत्कृष्ट उपपाद अठारह सागरकी उत्कृष्ट आयुवाले देवोंमें सहस्रार स्वर्गतक होता है। भावार्थ– पुलाक मुनि शरीर छोडकर अधिकसे अधिक सहस्रार स्वर्गतक उत्पन्न हो सकता है। वकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि बाईस सागरकी आयु पाकर आरण और अच्युत स्वर्गतक उत्पन्न हो सकते हैं। कषाय कुशील और निर्ग्रंथ जातिके मुनि तेतीस सागरकी आयु पाकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हो सकते हैं। इन सबका जघन्य उपपाद दो सागरकी आयु लिये हुए सौधर्म स्वर्ग है अर्थात् ये मुनि कमसे कम दो सागरकी आयु पाकर सौधर्म स्वर्गमें तो उत्पन्न होते ही हैं। स्नातक मुक्त ही होता है। स्थानके द्वारा–कषायोंके निमित्तसे संयमके असंख्यात स्थान होते हैं उनमें से सबसे जघन्य लब्धिस्थान पुलाक और कषाय कुशीलके होते हैं वे दोनों ही असंख्यात स्थानतक तो साथ साथ रहते हैं परंतु फिर पुलाक अलग हो जाता है उसके बाद कषाय कुशील असंख्यात स्थानतक अकेला ही जाता है। उसके बाद कषायकुशील, प्रतिसेवना कु-

लयोस्तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतः, ततः पुलाको व्युच्छिद्यते। कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि गच्छत्येकाकी ततः कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलवकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति, ततो वकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत उदूर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते, सोऽसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते, अत उदूर्ध्वमेकस्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोतीत्येषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवतीति। अथ परीषहजयप्रकरणं प्रस्तौति।

संयतेन तपस्विना दर्शनचारित्ररक्षणार्थं परिषोढव्याः परीषहाः। उक्तं हि—

परिषोढव्या नित्यं दर्शनचारित्ररक्षणे निरतैः। संयमतपोविशेषास्तदेकदेशाः परीषहाख्याः स्युः॥

शील और वकुश असंख्यात स्थानतक साथ साथ जाते हैं फिर वकुश वहीं रह जाता है उसके वाद असंख्यात स्थानतक जाकर प्रतिसेवना कुशील ठहर जाता है उससे आगे भी असंख्यात स्थान जाकर कषाय कुशील रह जाता है। इसके वाद अकषाय स्थान है उन्हें निर्ग्रंथ प्राप्त करता है। वह भी असंख्यात स्थान जाकर अलग हो जाता है उसके वाद एक स्थान ऊपर जाकर स्नातक मुक्त होता है। इन सबके उत्तरोत्तर संयमकी प्राप्ति अनंतगुनी होती है।

इसप्रकार संयमका वर्णन किया।

अब आगे परीषहजय प्रकरणको कहते हैं—संयमी तपस्वीको सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की रक्षा करनेकेलिये परिषहोंको सहन करना चाहिए। लिखा भी है—परिषोढव्या इत्यादि। दर्शन और चारित्रकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहनेवाले मुनियोंको सदा परिषहोंका सहन करना चाहिये। क्योंकि ये परीषहें संयम और तप दोनोंका ही विशेषरूप हैं तथा उन्हीं दोनोंका एक देश हैं।

इसप्रकार शास्त्रोंमें लिखा है और इसलिये इस ग्रंथमें ये परिषहें संयम और तप दोनोंके

इत्युक्तत्वात्संयमतपसोर्मध्ये परीषहा उच्यन्ते । कर्मागमद्वाराणि संवृण्वन्तो जैनेन्द्रान्मार्गान्मा च्योष्महीति पूर्वमेव परीषहान्विजयन्तो जितपरीषहाः संतस्तैरनभिभूयमानाः प्रधानसंवरमाश्रित्याप्रतिबंधेन क्षपकश्रेण्यारोहणसामर्थ्यं प्रतिपद्यन्ते । अभिन्नोत्साहाः सकलसांपरायिकप्रध्वंसनशक्तयो ज्ञानध्यानपरशुच्छिन्नमूलानि कर्माणि विधूय प्रस्फोटितपक्षरेणव इव पतत्रिण उद्र्ध्वं व्रजंतीत्येवमर्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानीति क्षुधादयो

मध्यमें कही गई हैं। जो साधु कर्मोंके आनेके मार्गको बंदकर देते हैं तथा "मैं श्रीजिनेंद्रदेव के कहे हुए मार्गसे कभी च्युत न होऊं" इसलिये जो पहलेसे ही परिषहोंको जीतते रहते हैं इसतरह परिषहोंको जीतकर जो कभी परिषहोंसे तिरस्कृत नहीं होते और मुख्य संवरका आश्रय लेकर विना किसी रुकावटके क्षपकश्रेणी चढनेकी सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। जिसप्रकार पक्षी अपने पंखोंपर लगी हुई धूलको झाडकर ऊपरको उड जाते हैं उसीप्रकार जिनका उत्साह सदा पूर्ण रहता है और जो समस्त सांपराय आस्रवको नाश करनेकी शक्ति रखते हैं ऐसे मुनिराज अपने ज्ञान और ध्यानरूपी कुल्हाडीसे जड काटकर कर्मोंको गिरा देते हैं–नष्ट कर डालते हैं और फिर मुक्त होकर ऊपरको गमन कर जाते हैं इसीके लिये (मुक्त होनेके लिए) परिषहोंका सहन करना आवश्यक है।

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये बाईस परिषहें कही जाती हैं। ये परिषहें बाह्य और अभ्यंतर द्रव्योंके परिणामोंसे प्रगट होती हैं तथा शरीर और मनको सबसे कठिन पीडा देती हैं इसलिये इनका विजय करनेके लिये विद्वान और मोक्षकी इच्छा करनेवाले संयमी तपस्वीको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। वह प्रयत्न किस प्रकार करना चाहिए यही आगे बतलाते हैं–

द्वाविंशतिपरीषहाः । त एते बाह्याभ्यंतरद्रव्यपरिणामाः शारीरमानसप्रकृष्टपीडाहेतवस्तद्विजये विदुषा संयतेन तपस्विना मोक्षार्थिना प्रयत्नः कार्यः । तु-
यथा—निवृत्तसंस्कारविशेषस्य शरीरमात्रोपकरणसन्तुष्टस्य तपःसंयमविलोपं परिहरतः कृतकारितानुमतसंकल्पितोद्दिष्टसंक्लिष्टक्रियागतप्रत्यादत्तपूर्वकर्मपश्चा-
त्कर्मदशविधदोषविप्रमुक्तैषणस्य देशकालजनपदव्यवस्थापेक्षस्यानशनाध्वरोगतपःस्वाध्यायश्रमवेलातिक्रमावमोदर्यासद्वेद्योदयादिभ्यो नानाऽऽहारेन्धनोप-
रमे जठरांत्रदाहिनीमारुतांदोलिताऽग्निशिखेव समंताच्छरीरेन्द्रियहृदयसंक्षोभकरी क्षुदुत्पद्यते । तस्याः प्रतीकारं त्रिप्रकारमकाले संयमविरोधिभिर्वा
द्रव्यैः स्वयमकुर्वतोऽन्येन क्रियमाणमसेवमानस्यमनसा वाऽनभिसंदधतो दुस्तरेयं वेदना महांश्च कालो दीर्घमह इति विषादमनापद्यमानस्य त्वगस्थि-

जिन्होंने शरीरके विशेष संस्कार सब छोड दिये हैं, जो केवल शरीर मात्रको ही धर्मका उपकरण मानकर उसीसे संतुष्ट रहते हैं, जो तप और संयमके विघ्नोंको सब तरहसे दूर करते रहते हैं। कृत, कारित, अनुमत, संकल्पित, उद्दिष्ट, संक्लिष्ट, क्रियागत, प्रत्यादत्त, पूर्वकर्म, पश्चात्कर्म, इन दश प्रकारके दोषोंमेंसे कोई भी दोष लग जानेसे जो उसी समय आहारका त्याग कर देते हैं तथा जो देश काल और देशकी व्यवस्थाकी भी अपेक्षा रखते हैं उनके उपवास, मार्गका परिश्रम, रोगका परिश्रम, तपश्चरणका परिश्रम, स्वाध्यायका परिश्रम, आहारके समयका उल्लंघन हो जाना, अवमोदर्य अर्थात् कम भोजन करना, और असाता वेदनीय कर्मका उदय इन सब कारणोंके द्वारा अनेक आहाररूपी इंधनोंसे वंचित रह जानेपर (कितने ही दिनतक आहार न मिलनेपर) पेटकी आंतोंकी दाहिनी ओरकी वायुके आंदोलनसे बढी हुई अग्निकी शिखाके समान चारो ओरसे शरीर, इंद्रिय, और हृदयको क्षोभ उत्पन्न करनेवाली क्षुधा उत्पन्न होती है उस क्षुधाका प्रतीकार मन वचन काय तीनोंसे असमयमें संयमकी विराधना करनेवाले द्रव्योंसे न तो वे स्वयं करते हैं न करनेवाले अन्य किसीको करने देते हैं और न मनमें कभी भी उस क्षुधाका प्रतीकार करनेके लिए विचार करते हैं, " यह क्षुधाकी वेदना वा भूखका दुःख बडा ही कठिन है, समय बहुत बडा है और अभी दिन बहुत

सिरावितानमात्रकलेवरस्यापि सतः आवश्यकक्रियादिषु नित्योद्यतस्य क्षुद्ग्रप्रासानर्थांचारक बंधस्थमनुष्यपंजरगततिर्यक्प्राणिनः क्षुदभ्यर्दितान्परतंत्रानपेक्षमाणस्य ज्ञानिनो धृत्यंभसा शमकुंभभारितेन क्षुदग्निं शमयतस्तत्कृतपीडां प्रत्यविगणनं क्षुज्जय इत्युच्यते ।

जलस्नानावगाहनपरिषेकत्यागिनः पतत्त्रिवदध्रुवासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्षविरुद्धाहारग्रैष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथिनीं पिपासां प्रत्यनाद्रियमाणप्रतीकारमनसो निदाघे पटुतपनकिरणसंतापिनोऽप्यटव्यामासन्नेष्वपि ह्रदेष्वप्कायिकजीवपरिहारेच्छया जलमनाददानस्य सलिल

वाकी है" इसप्रकारका विषाद वा खेद भी कभी नहीं करते, शरीरमें केवल चमडा, हड्डी, और नसोंका जालमात्र रह जानेपर भी आवश्यक कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं। क्षुधाके कारण जिन्हें अनेक अनर्थ प्राप्त हुए हैं ऐसे जेलखाने वा हिरासतमें रोके हुए मनुष्य अथवा पिंजडोंमें पडे हुए पशु पक्षी आदि भूखसे पीडित रहनेवाले और परतंत्र रहनेवालोंके दुःखोंका सदा विचार करते रहते हैं ऐसे ज्ञानी मुनिराज शांत परिणामरूपी घडेमें भरे हुए धैर्यरूपी जलसे क्षुधारूपी अग्निको शांत करते रहते हैं और इस तरह उस क्षुधासे उत्पन्न हुई पीडाको विल्कुल नहीं जानते उसको क्षुधाविजय अथवा क्षुधा परीषहका जीतना कहते हैं।

जो मुनिराज पानीसे स्नान करना, पानीमें अवगाहन करना, वा पानीका छिडकना आदि वातोंके त्यागी हैं, पक्षियोंके समान न तो जिनका कोई आसन ही निश्चित है और न कोई स्थान ही निश्चित है, भोजनमें अधिक लवण खा लेनेसे, चिकने रूखे अथवा और किसी तरहके विरुद्ध आहारका संयोग मिल जानेसे, वा गर्मी धूप पित्तज्वर उपवास आदि अनेक कारणोंके द्वारा जो शरीर और इंद्रियोंको अत्यंत त्रास देनेवाली प्यास लगती है उसके प्रतीकार करनेका विचार वे कभी मनमें भी नहीं लाते, गर्मीका समय है, सूर्यकी तेज किरणें जला रही हैं वनमें सरोवर भी पास है तो भी जलकायिक जीवोंके वचाव करनेकी इच्छासे कभी जल ग्रहण नहीं करते, जल सींचनेके विना मुरझाई हुई लताके समान मुरझाई हुई वा ग्लानि करने



सेकविवेकम्लानां लतामिव ग्लानिमुपगतां गात्रयष्टिमवगणय्य तप.परिपालनपरस्य भिक्षाकालेऽपींगिताकारादिभिर्योग्यमपि पानं पातुं परमचोदयतः परमधैर्यकुंभधारितशीतलसुगन्धिप्रतिज्ञातोयेन विध्यापयतस्तृष्णाग्निशिखां सयमपरत्वं पिपासासहनमित्यवसीयते ।

परित्यक्तवाससः पक्षिवदनवधारिताऽऽलयस्य शरीरमात्राधिकरणस्य शिशिरवसंतजलदागमादिकालवशाद् वृक्षमूले पंथि गुहादिषु पतितप्रालेयतुषारलवव्यतिकरशिशिरपवनाभ्याहतमूर्तेस्तत्प्रतिक्रियासमर्थद्रव्यान्तराग्न्यायनभिसधानान्नारकदु:सहशीतवेदनाऽनुस्मरणात् तत्प्रतिचिकीर्षायां परमार्थविलोपभयाद्विद्यामंत्रौषधपर्णवल्कलत्वक्तृणाजिनादिसंबंधात् व्यावृत्तमनसः परकीयमिव देहं मन्यमानस्य धृतिविशेषप्रावरणस्य गर्भागारेषु | धूपप्रवेकपुष्पप्रकर-

योग्य बुरी दशाको प्राप्त हुई शरीररूपी लकडीको कुछ भी न गिनते हुए तपश्चरणके पालन करनेमें ही तत्पर रहते हैं, भिक्षा करनेके समय भी किसी इशारे वा आकारसे योग्य पानीको पीनेके लिये भी प्रेरणा नहीं करते और परम धैर्यरूपी घडेमें भरे हुए शीतल सुगंधित प्रतिज्ञारूपी जलसे जो प्यासरूपी अग्निकी शिखाको बुझाते हैं उनके संयममें तत्पर रहनेवाला पिपासा विजय अथवा पिपासा परिषहका सहन करना कहलाता है।

जिन्होंने वस्त्रमात्रका त्याग करदिया है, पक्षियोंके समान जिनका कोई स्थान निश्चित नहीं है, जाडे गर्मी और वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे चौहटे तथा गुफा आदिकोंमें रहनेसे जाडेके दिनोंमे जो बहुतसा वर्फ वा ओस पडती है, तथा बहुतसे ओले बरसते हैं उनकी ठंडी वायुसे जिनका शरीर अत्यंत ठंडा हो रहा है उस ठंडकको दूर करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले अग्नि आदि अन्य द्रव्योंकी भरपूर अनिच्छा होनेसे नारकियोंकी शीत वेदनाके घोर दुःखोंका स्मरण करनेसे तथा उस ठंडकको दूर करनेका उपाय करनेमें परमार्थके विगडनेका भय होनेसे विद्या, मंत्र, औषध, पत्ते, छाल, चमडा, तृण आदि पदार्थोंके संबंधसे जिनका चित्त विल्कुल हट गया है, जो शरीरको विल्कुल दूसरा (आत्मासे भिन्न) मानते हैं, जिन्होंने एक प्रकारका अटल धैर्य रूपी वस्त्र ही ओढ रक्खा है, मुनि होनेके पहिले जो ऐसे भीतरी घरोंमे रहते थे जिनमें

ऽरूपितप्रदीपप्रभेषु वरांगनानवयौवनौष्णघनस्तननितंबभुजान्तरतार्जितशीतेषु निवासं सुरतसुखाकरमनुभूतमसारत्वावबोधादस्मरतो विषादविरहितस्य संयमपरिपालनं शीतक्षमेति भाष्यते ।

अत्यर्थं पटीयसा भास्करकिरणसमूहेन सन्तापितशरीरस्य तृष्णानशनपित्तरोगघर्म्मश्रमप्रादुर्भूतौष्ण्यस्य खेदशोषदाहाऽभ्यर्दितस्य जलभवनजलावगाहनानुलेपपरिषेकार्द्रावनितलोत्पलदलकदलीपत्रोत्क्षेपमारुतजलतूलिकाचन्दनद्रवचन्द्रपादकमलकल्हारमुक्ताहारादिपूर्वानुभूतशीतलद्रव्यप्रार्थनाऽपेतचेतस

चारो ओर धूप जल रही थी, पुष्पोंके ढेर लग रहे थे, दीपकका प्रकाश हो रहा था और नव यौवन उत्तम स्त्रियोंके उष्ण स्तन नितंब और भुजाओंके मध्य भागमें रहनेसे शीत दूर ही से भाग रहा था ऐसे घरोंमें सुरतसुखका आनंद लेते हुए निवास करते थे परंतु अब उस अनुभूत सुखमें भी कुछ सार न होनेसे कभी उसका स्मरण तक नहीं करते हैं तथा इस प्रकारकी शीत वेदनाको सहन करते हुए भी कभी विषाद नहीं करते हैं और इस तरह संयमका परिपालन पूर्ण रीतिसे करते हैं उसको शीतविजय अथवा शीत परिषहका सहन करना कहते हैं ।

अत्यंत उष्ण और बहुत तेज सूर्यकी तेज किरणोंसे जिनका शरीर सब संतप्त हो गया है, प्यास, उपवास, पित्त, रोग, धूप, परिश्रम आदि कारणोंसे जिनके शरीरमें उष्णता प्रगट हो रही है जो खेद शोष और दाहसे मार्दित हो रहे हैं, मुनि होनेके पहिले जो जलभवनमें रहते थे, जलमें अवगाहन करते थे, शरीरपर ठंडा लेप लगाते थे, शरीरको गुलाबजल आदिसे छिडकते थे, जमीनपर छिडकावकर बैठते थे, कमलोंके दल, केलोंके पत्ते विछाते थे, ऊपरसे वायु झेलते थे, जलकी वावडीमें क्रीडा करते थे, चंदनका लेप करते थे, चंद्रमाकी चांदनीमें बैठते थे, कमल कमोदनी, और मोतियोंके हार पहिनते थे, इत्यादि बहुतसे शीतल पदार्थोंको काममें लाते थे परंतु अब भोगे हुए पदार्थोंसे भी जिन्होंने अपना चित्त बिल्कुल हटा लिया है, जो सदा यही विचार करते रहते हैं कि मैंने परवश होकर अनेकवार अत्यंत तीव्र उष्णवेदनाएं सहन

ष्णवेदनातितीव्रा बहुकृत्वः परवशादवाप्ता इदं पुनस्तपो मम कर्मक्षयकारणमिति तद्विरोधिनीं क्रियां प्रत्यनादराच्चारित्ररक्षणमुष्णसहनमिति समाम्नायते। प्रत्याख्यातशरीराच्छादनस्य क्वचिदप्रतिबद्धचेतसः परकृतायतनगुहागह्वरादिषु रात्रौ दिवा वा दंशमशकमक्षिकापिशुकपुत्तिकामत्कुणकीटपिपीलिका-वृश्चिकादिभिस्तीक्ष्णपातैर्भक्षमाणस्यातितीव्रवेदनोत्पादकैरव्यथितमनसः स्वकर्मविपाकमनुचिन्तयतो विद्यामंत्रौषधादिभिस्तन्निवृत्तिं प्रति निरुत्सुकस्याऽऽशरीरपतनादपि निश्चितात्मनः परबलप्रमर्दनं प्रति वर्त्तमानस्य मदांधगंधसिंधुरस्य रिपुजनप्रेरितविविधशस्त्रप्रतिघातादपराङ्मुखस्य निष्प्रत्यूहविजयोपलंभनं-

कीं परंतु अब स्वयं इस वेदनाको सहन करना तो मेरा तपश्चरण है जो कि कर्मोंके नाश करनेका कारण है इसी लिये जो उष्णताको दूर करनेवाली क्रियाओंके प्रति कभी आदर भाव नहीं करते और इस तरह अपने चारित्रकी रक्षा पूर्ण रीतिसे करते हैं इसको उष्णविजय अथवा उष्ण परिषहको जीतना वा सहन करना कहते हैं।

जिन्होंने सब तरहके शरीरके आच्छादनोंको त्याग करदिया है, जिनका हृदय किसी एक जगह बंधा हुआ नहीं है, दूसरोंके बनाये हुए वसतिका, गुफा, कोटर, आदि स्थानोंमे रहनेसे रात्रि वा दिनमें डांस, मच्छर, मक्खी, पिस्सू, मधुमक्खी, खटमल, कीडे, चींटी और विच्छू आदि तीक्ष्ण जानवर जिन्हें काट रहे हैं और अत्यंत तीव्र वेदना दे रहे हैं तथापि जिनका हृदय कभी व्यथित वा खिन्न नहीं होता, जो सदा अपने कर्मोंके उदयका चिंतवन करते रहते हैं, विद्या मंत्र औषधि आदिके द्वारा उन जानवरोंको जो कभी दूर करनेकी इच्छा नहीं करते, शरीरका नाश होने तक भी जो अपने आत्मामें ही निश्चल रहते हैं जिस प्रकार जो दूसरेके बलको मर्दन करनेके लिये (चूर करनेकेलिये) तैयार है जिसकी सेनामें मदोन्मत्त गंधसिंधुर नामके हाथी हैं और जो शत्रुओंके द्वारा चलाये हुए अनेक तरहके शस्त्रोंसे भी कभी विमुख नहीं होता ऐसे किसी राजाका विजय निर्विघ्न होता है उसी प्रकार जो कर्मरूपी शत्रुओंकी सेनाका पराभव करनेके लिये प्रयत्न करना दंशमशकबाधासहन अथवा दंशमशक परीषहका

मिव कर्म्मारातिपृतनापराभवं प्रति प्रयतनं दंशमशकादिबाधासहनमप्रतीकारमित्याख्यायते । "दंशमशकमात्रग्रहणमुपलक्षणार्थं," तेन दंशमशकादिपरितापकारणस्य सर्वस्यैवेदमुपलक्षणं, यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामिति ।

गुप्तिसमित्यविरोधपरिग्रहनिवृत्तिपरिपूर्णब्रह्मचर्यमप्रार्थितमोक्षसाधनं चारित्रानुष्ठानं यथाजातरूपमसंस्कृतमविकारं मिथ्यादर्शनाविष्टविद्विष्टं परममांगल्यं नाग्न्यमभ्युपगतस्य स्त्रीरूपाणि नित्याशुचिवीभत्सकुणपभावेन पश्यतो वैराग्यभावनावरुद्धमनोविक्रियस्यासंभावितमनुष्यत्वस्य नाग्न्यदोषासंस्पर्शात्परीषह-

जीतना कहलाता है। यहांपर दंशमशकका ग्रहण उपलक्षणसे किया है जैसे 'कौवेसे दहीकी रक्षा करना' यह उपलक्षण है इसका अभिप्राय यह है कि कौवेसे तथा कुत्ता विल्ली आदि सबसे दहीकी रक्षा करना उसी प्रकार डांस मच्छरकी परीषह सहन करनेका अभिप्राय डांस, मच्छर विच्छू मक्खी आदि सभी जानवरोंकी परीषह सहन करना है।

जो गुप्ति समितियोंका कभी विरोध नहीं करता, परिग्रहका बिल्कुल त्याग कर देता है और ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है, विना प्रार्थना किये ही जो मोक्षका साधन है, चारित्रका अनुष्ठान करनेवाला है, जिसका स्वरूप पेदा हुएके समान स्वाभाविक है, विना संस्कार किया हुआ और विकार रहित है, मिथ्यादर्शनसे जकडे हुए लोगोंका विरोधी है और परम मंगलरूप है ऐसे नाग्न्यको (नग्न अवस्थाको) जो धारण करते हैं जो स्त्रियोंके स्वरूपको सदा अपवित्र, वीभत्स और घृणित भावसे देखते हैं वैराग्य भावनाओंके द्वारा जिनके मनके विकार सब रुक गये हैं जो अपनी मनुष्य पर्यायका कभी विचार नहीं करते केवल आत्मामें ही लीन रहते हैं उनके नग्न रहनेसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका स्पर्श न होनेसे नग्न परीषहके विजय होने की सिद्धि होती है अर्थात् नग्न परिषहका विजय करना वा सहन करना कहलाता है। इसीलिए नग्न अवस्था धारण करना उत्तमसे उत्तम कल्याण अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिका कारण कहा जाता है। जो लोग नग्न अवस्था धारण नहीं कर सकते वे मनके विकारोंको रोक नहीं सकते

जयसिद्धिरिति जातरूपधारणमुत्तमश्रेयःप्राप्तिकारणमित्युच्यते । इतरे पुनर्मनोविक्रियां निरोद्धुमसमर्थास्तत्पूर्वकामंगविकृतिं निगूहितुकामाः कौपीनफलकचीवराद्यावरणमातिष्ठन्तेऽगसंवरणार्थमेव, तन्न कर्मसंवरणकारणं ।

सयतस्य क्षुधाद्याऽऽबाधासंयमपरिरक्षणेंद्रियदुर्जयत्वव्रतपरिपालनभारगौरवसर्वदाऽप्रमत्तत्वदेशभाषांतरानभिज्ञत्वविषमचपलसत्वप्रचुरभीमदुर्गनियतैकविहारत्वादिभिररतिं प्रादुष्यन्ती [²] धृतिविशेषान्निवारयत. संयमे रतिभावनाद्विषयसुखरतिमतिविषमाहारसेवेव विपाककटुकेति चिन्तयतोऽरतिपरीषहबाधाऽभावादरतिपरीषहजय इति निश्चीयते ।

एकान्ते भवनारामादिप्रदेशे रागद्वेषयौवनदर्परूपमदविभ्रमोन्मादमद्यपानाऽऽवेशादिभिः प्रमदासु बाधमानासु तदक्षिवक्त्रभ्रूविकारशृंगाराकारविहार-

इसीलिये उन विकारोंके कारण उत्पन्न हुए शरीरके विकारोंको छिपानेकी इच्छासे शरीरको ढकनेके लिए कोपीन, लंगोटी, कपडा आदि शरीर ढकनेके वस्त्रोंको ग्रहण करते हैं । परंतु उनकी इस क्रियासे आते हुए कर्म कभी नहीं रुक सकते ।

जो मुनि भूख प्यास आदिकी बाधायें उत्पन्न होना, संयमकी रक्षा करना, इंद्रियोंका दुर्जयपना, व्रतोंके पालन करनेके भारसे गौरव धारण करना, सदा अप्रमत्त वा प्रमाद रहित रहना, अनेक देशोंकी भाषाओंको न जानना, विषम तथा चंचल प्राणियोंका तथा अत्यंत भयानक पदार्थोंका संसर्ग होना और दुर्गम एक क्षेत्रमें नियमरूपसे विहार करना आदि कारणोंके द्वारा जो अरति उत्पन्न होती है उसे विशेष धैर्यसे निवारण करते हैं और जो संयममें प्रेमरूप भावना होनेके कारण विषयसुखसे उत्पन्न हुई रतिको अत्यंत विषम आहार ग्रहण करनेके समान फल देनेके समय अत्यंत कडवी अथवा दुःखदायक समझते हैं उनके अरति परिषहकी बाधा कभी नहीं हो सकती इसीलिये उनके अरति परिषहका जीतना अथवा सहन करना कहलाता है ॥ ७ ॥

किसी वसतिका अथवा बगीचा आदि एकांत स्थानमें रागसे, द्वेषसे, यौवनके दर्पसे, रूप

हावविलासहासलीलाविजृंभितकटाक्षविक्षेपसुकुमारस्निग्धमृदुपीनोन्नतस्तनकलशनितान्तताम्राधरपृथुजघनरूपगुणाभरणगन्धवस्त्रमाल्यादीन्प्रत्यनगृहीतमनो-विप्लुतेर्दर्शनाभिलाषनिरुत्सुकस्य स्निग्धमृदुविशदसुकुमाराभिधानतंत्रीवंशमिश्रमधुरगीतश्रवणनिवृत्तादरश्रोत्रस्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियहृदयविकारस्य ललित-स्मितमृदुकथितसविकारवीक्षणप्रहसनमदमंथरगमनमन्मथशरव्यापारविफलीकरणचरणस्य संसारार्णवव्यसनपातालरौद्रदु:खागाधावर्त्तकुटिलाध्यायिनः स्त्रै-णानर्थनिवृत्तिः स्त्रीपरीषहजय इति कथ्यते । अन्यवादिपरिकल्पिता देवताविशेषा ब्रह्मादयस्तिलोत्तमादिदेवगणिकारूपसंपद्दर्शनलोललोचनविकाराः स्त्रैण-

के मदसे, अथवा विभ्रम उन्माद और मद्यपान आदिके आवेशसे अनेक स्त्रियाँ आकर सतावें तो उससमय भी उन स्त्रियोंके, नेत्र टेडी भोओंके विकार, शृंगार, आकार, विहार, हाव, भाव, विलास, हास, लीला, पूर्वके फेंके हुए कटाक्ष, सुकुमार कोमल चिकने और बडे उठे हुए स्तन-रूपीकलश, अत्यंत लाल अधर, बडे बडे जघन, रूप, गुण, आभरण, गंध वस्त्र माला आदेसे भी जिनके मनमें कभी विकार प्रगट नहीं होता, जो उनके देखनेकी भी कभी इच्छा नहीं करते, स्निग्ध कोमल विशद और सुकुमार नामकी वीणाओंकी आवाजमें मिले हुए मधुर गीतोंके सुननेसे भी जो अपनें कानोंको विल्कुल दूर हटा लेते हैं, जो कछुएके शरीरके समान इंद्रिय और हृदयके विकारोंको संकुचित कर लेते हैं, मनोहर हास्य, मधुर भाषण, सविकार वीक्षण, हंसी ठट्ठा, मदोन्मत्त होकर धीरे धीरे गमन करना, और कामदेवके वाणोंके व्यापार आदि सबको निष्फल करनेवाला जिनका चारित्र है, और जो सदा यही विचार किया करते हैं कि यह संसार महासागर है, संकटरूप पाताल और सब नारकीय रौद्र दुःख स्वरूप अगाध भ्रमणों के द्वारा कुटिल है इसप्रकारका विचार करते हुए जो स्त्रियोंके अनर्थोंसे अलग रहते हैं उनके स्त्रीपरिषहजय अर्थात् स्त्रीपरिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है । अन्य वादियों-के कल्पना किए हुए ब्रह्मा आदि विशेष देवताओंके भी चंचल नेत्रोंमें तिलोत्तमा आदि देव

रीषहपकाशोद्धर्तुमात्मानं समर्थाः ।

दीर्घकालाऽभ्यस्तगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगतबंधमोक्षपदार्थतत्त्वस्य कषायनिग्रहपरस्य भावनार्पितमनसः संयमायतनाभिभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणा. ऽभ्यनुज्ञातस्य नानाजनपदन्याहारव्यवहाराभिज्ञस्य ग्राम एकरात्रं नगरे पंचरात्रं प्रकर्षेणावस्थातव्यमित्येवं यातस्य वायोरिव निःसंगतामुपगतस्य देश-कालप्रमाणोपेतमध्वगमनमनुभवतः वनेष्वक्षमस्य भीमाटवीप्रदेशेषु निर्भयत्वात्सिंहस्येव सहायकृत्यमनपेक्षमाणस्य परुषशर्कराकंटकादिव्यथनजातपादखे-दस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतः सम्यक् चर्यादोषं परिहरतः चर्यापरीषहजयो वेदितव्यः ।

गणिकाओंकी रूप संपत्ति देखकर विकार उत्पन्न हो आया था और वे स्त्रीपरिषह रूपी कीचडसे अपने आत्माका उद्धार नहीं कर सके थे ॥ ८ ॥

जिन्होंने गुरुकुलमें (आचार्यके संघमें) बहुत दिनतक रहकर ब्रह्मचर्यका अभ्यास किया हैं, जो बंध मोक्ष आदि पदार्थों और तत्त्वोंको अच्छीतरह जानते हैं, कषायोंके निग्रह करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, जिनका मन सदा भावनाओंमें ही लगा रहता है, जो संयम पालन करनेकेलिये और तीर्थक्षेत्र आदि धर्मायतनोंकी भक्ति करनेके लिये अन्य देशोंमें भी विहार करते हैं, अन्य देशोंमें जानेके लिये जिन्होंने गुरुसे आज्ञा प्राप्त कर ली है, जो अनेक देशोंके आहार व्यवहारको अच्छीतरहसे जानते हैं, " अधिकसे अधिक गांवमें एक रात रहेंगे और नगरमें पांच रात रहेंगे " यही समझकर जो गमन करते हैं, जो वायुके समान परिग्रह रहित हैं, देश कालके प्रमाणके अनुसार प्राप्त हुए मार्गके गमनका जिन्हें पूर्ण अनुभव है, जो क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ हैं, भयानक वनोंमें भी सिंहके समान निर्भय होकर गमन करते हैं तथा किसी तरहकी भी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते, कठिन बालू कांटे आदिके द्वारा पैर फट जानेसे जिनके पैरोंमें खेद हो रहा है तो भी पहिलेके रथ घोडा आदि सवारियोंपर किये हुए गमनको कभी स्मरणतक नहीं करते, इसप्रकार जो चर्याके (चलनेके) दोषोंको अच्छीतरह दूर करते

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागह्वरादिष्वनभ्यस्तपूर्वेषु विदितसंयमक्रियस्य धैर्यप्रदानस्योत्साहवतो निषद्याविरुद्धस्य प्रादुर्भूतोपसर्गोग्ररोगविकार-स्यापि ततस्तत्प्रदेशादविचलतो मंत्रविद्यादिकारणप्रतीकारानपेक्षमाणस्य क्षुद्रजन्तुप्रायविषमदेशाश्मकाष्ठोपलनिश्चलस्यानुभूतमृदुसंस्तरणादिस्पर्शसुख-मवगणयतः प्राणिपीडापरिहारोद्यतस्य ज्ञानध्यानभावनाधीनधियः संकल्पितवीरासनोत्कुटिकासनादिरवेरासनदोषवर्जिनो निषद्याविजय इत्याख्यायते ।

स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसंकटातिशीतोष्णेषु मौहूर्तिकीं निद्रामनुभवतो यथाऽऽकृतैकपार्श्वदण्डायितादिशायिनः सं-

हैं उनके चर्यापरिषहजय अथवा चर्या परिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है ॥ ९ ॥

जो श्मशान, उद्यान, सूना मकान, पर्वतकी गुफा, और कोटर आदि ऐसे स्थानोंमें जाकर विराजमान होते हैं जहां कभी भी पहिले विराजमान न हुए हों, जो संयमकी सब क्रियाएं जानते हैं, धैर्य ही जिनका सहायक है जो बडे उत्साही हैं, उपसर्ग और उग्र रोगोंके विकार उत्पन्न होने पर भी उस स्थानसे कभी चलायमान नहीं होते, मंत्र विद्या आदि कारणोंके द्वारा जो कभी उसका प्रतिकार नहीं चाहते, अनेक छोटे छोटे जंतुओंके होनेसे तथा विषम (ऊंचा नीचा) स्थान होनेसे जो लकडी और पत्थरके समान निश्चल रहते हैं, पहिले अनुभव किये हुए कोमल बिछोने आदिके स्पर्शके सुखको जो कभी मन तकमें नहीं लाते, सदा प्राणियोंकी पीडा दूर करनेके लिए ही तत्पर रहते हैं, जिनकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानकी भावनाके ही आधीन रहती है, और जो प्रतिज्ञा किए हुए वीरासन उत्कुटिकासन आदिमें सदा तल्लीन रहते है ऐसे मुनियोंके आसनके दोषोंका विजय होनेसे निषद्यापरिषहसहन अथवा निषद्यापरिषहका जीतना कहते हैं ॥ १० ॥

जो स्वाध्याय, ध्यान, और मार्गके परिश्रमसे खेदखिन्न हैं, कठिन, ऊंची नीची, बहुतसी रेतीवाली जिसमें बहुतसे कपाल वा टुकडे पडे हुए हैं जो अत्यंत शीत वा अत्यंत उष्ण है ऐसी भूमिके ऊपर जो मुहूर्तभर निद्राका अनुभव करते हैं, सीधे लेटकर वा किसी एक करवटसे लेट

जातबाधाविशेषस्य संयमार्थमस्पन्दमानस्यानुविद्धतो व्यन्तरादिभिर्वा वित्रास्यमानस्य पलायनं प्रति निरुत्सुकस्य मरणभयनिर्विशंकस्य निपतितदारुवद् व्यपगतासुवच्च परिवर्तमानस्य द्वीपिशार्दूलमहोरगादिदुष्टसत्वपरिचरितोऽयं प्रदेशोऽचिरादतो निर्गमनं श्रेयः कदा नु रात्रिर्विरमतीति विषादमनादधानस्य सुखप्राप्तावप्यपरितुष्यतः पूर्वानुभूतनवनीतवन्मृदुशयनमननुस्मरतः सम्यगागमोदितशयनादप्रच्यवतः शय्यासहनमिति तत्प्रत्येतव्यं ।

तीव्रमोहाऽऽविष्टमिथ्यादृष्ट्यनार्यम्लेच्छखलपापाचारमत्तोद्दृप्तशंकितप्रयुक्त 'मा' शब्दपरुषावज्ञानाक्रोशादीन्कर्णमूले गतान् हृदयशूलोद्भावकान् क्रोध-

कर दंडेके समान निद्रा लेते हैं, विशेष बाधा वा उपद्रव उपस्थित होनेपर भी संयम पालन करनेके लिए जो किसी तरहकी हलन चलन क्रिया नहीं करते, व्यंतरादि देव अनेक तरहकी पीडा देते हैं तथापि जो भागनेकी विल्कुल इच्छा नहीं करते, जिन्हें मरनेका डर विल्कुल नहीं हैं, पडी हुई लकडीके समान अथवा मरे हुए मुरदेके समान जो अपना शरीर निश्चल रखते हैं " यह स्थान गेंडा, सिंह, सर्प, अजगर आदि दुष्ट जीवोंसे भरा हुआ है इसलिये यहांसे शीघ्र ही दूसरी जगह चला जाना अच्छा है यह रात कब पूरी होगी " इत्यादि विषाद कभी नहीं करते, सुख मिलनेपर भी जो हर्ष नहीं मानते, पहिले अनुभव की हुई मक्खनके समान कोमल शय्याका जो स्मरण नहीं करते और जो आगमके अनुसार कहे हुए उत्तम निर्दोष शयन करनेसे कभी अलग नहीं होते ऐसे मुनियोंके शय्या सहन अथवा शय्या परिषहका जीतना कहलाता है ॥ ११ ॥

जो कानके पास जाते ही हृदयमें शूल उत्पन्न करदें, और क्रोधरूपी अग्निकी शिखाको खूब बढा दें ऐसे तीव्र मोहनीय कर्मके उदयसे घिरे हुए मिथ्यादृष्टि, अनार्य, म्लेच्छ, दुष्ट पापाचारी मदोन्मत्त और महाअभिमानी और सशंकित जीवोंके कठोर वचन, धिकारके वचन और निंदा करनेवाले तथा गाली आदि बुरे वचनोंको तथा उनके बुरे अभिप्रायोंको सुनते हुए भी जिनका मन सदा दृढ रहता है, यद्यपि बुरे वचन कहनेवालेको भस्म करनेकी सामर्थ्य रखते हैं तथापि पर-

ज्वलनशिखाप्रवर्द्धनकरानभिप्रायान् शृण्वतोऽपि दृढमनसो दुर्भाषिणो भस्मसात्कर्तुमपि समर्थस्य परमार्थावहितचेतस· शब्दमात्रश्राविणस्तदर्थान्वीक्षणनिवृत्तव्यापारस्य स्वकृताशुभकर्मोदयो ममैव यतोऽमीषां मां प्रति द्वेष इत्येवमादिभिरुपायैरनिष्टवचनसहनमाक्रोशपरीषहजय इति निर्णीयते ।।

ग्रामोद्याननगराटवीपुरेषु नक्तं दिवा चैकाकिनो निरावरणमूर्तेः समन्तात्पर्यटद्भिश्चौरारक्षकम्लेच्छचारपुरुषबधिरपूर्वापकारिद्विषत्परलिंगिभिराहितक्रोधैस्ताडनाकर्षणबन्धनशस्त्राभिघातादिभिर्मार्यमाणस्यानुत्पन्नवैरस्यावश्यं प्रपातुकमेवेदं शरीरं कुशलद्वारेणानेनापनीयते न मम व्रतशीलभावनाभ्रंशनमिति भाव-

मार्थकी ओर चित्त लगे रहनेसे उस बुरे वचन कहनेवालेकी ओर वा उसके अभिप्रायोंकी ओर कभी आंख उठाकर देखते तक नहीं, जो सदा यही विचार करते हैं कि " यह मेरे ही अशुभ कर्मोंका उदय है जो ये लोग मुझसे द्वेष करते हैं " इस प्रकारके उपायोंसे अनिष्ट वचनोंको सहन करना आक्रोश परिषह जय अथवा आक्रोश परिषहको जीतना वा सहन करना कहते हैं ॥ १२ ॥

जो गांव, उद्यान, नगर, वन, और पुरमें रात दिन अकेले रहते हैं तथा जिनका शरीर बिल्कुल आवरण रहित हैं उन मुनियोंको चारों ओर फिरते हुए चोर, लुटेरे, म्लेच्छ, जासूस, वहिरे, जिनका पहिले कुछ अपकार हो चुका है और स्वाभाविक द्वेष करनेवाले अन्यमती लोग क्रोधित होकर ताडना करते हैं, खींचते हैं, बांधते हैं और शस्त्रोंकी चोटसे मारते हैं तथापि जिन्हें वैर उत्पन्न नहीं होता, वे शुद्ध भावोंसे यही विचार करते हैं कि " यह शरीर अवश्य ही नष्ट होनेवाला है यह कुशलतापूर्वक इसे नष्ट कर रहा है कुछ मेरे व्रतशील और भावनाओंका नाश तो नहीं करता इसप्रकार जिनके भाव शुद्ध रहते हैं, शरीरको जलादेने पर भी जो सुगंध छोडते हुए चन्दनके समान अपने परिणामोंको सदा निर्मल रखते हैं, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेमें ही तत्पर रहते हैं, जिनकी बुद्धि सदा दृढ रहती है और जिनके क्षमारूपी औषधि ही सबसे बडा बल रहता है और जो मारनेवालेको भी मित्रके समान ही देखते

शुद्धस्य दह्यमानस्यापि सतः सुगन्धमुत्सृजतश्चन्दनस्येव शुभपरिणामस्य स्वकर्मनिर्जरामभिसंदधानस्य दृढमतेः क्षमौषधिबलस्य मारकेषु सुहृदिस्ववामर्षा-
पोहभावनं बधमर्षणमित्याम्नायते ।

क्षुदध्वपरिश्रमतपोरोगादिभिरप्रच्यवितवीर्यस्य शुष्कपादपस्येव निरार्द्रमूर्तेरुन्नतास्थिस्नायुजालस्य निम्नाक्षपुटपरिशुष्काधरक्षामपांडुकपोलस्य चर्मेव-
त्संकुचितांगोपांगत्वचः शिथिलजानुगुल्फकटिबाहुयंत्रस्य देशकालक्रमोपपन्नकल्पादायिनो वाचंयमस्य मौनिसमस्य वा शरीरसन्दर्शनमात्रव्यापारस्योर्जित-

हैं ऐसे मुनियोंके जो इर्षा द्वेष दूर करनेकी भावना रहती है उसे बधमर्षण अथवा वध परिषहका जीतना कहते हैं ॥ १३ ॥

क्षुधा, मार्गका परिश्रम,तप और रोगादिकके कारण भी जिनकी शक्ति कम नहीं हुई है, सूके वृक्षके समान जिनके शरीरमें आर्द्रता वा शिथिलता विल्कुल नहीं आई है परंतु जिनकी हड्डी और नसोंका समूह नवा भी नहीं है ज्योंका त्यों उन्नत रहता है, जिनके दोनों नेत्र नीचे-की ओर रहते हैं अधर सूके रहते हैं तथा कपोल दुवले और सफेद रहते हैं, चमडेके समान जिनके अंग और उपांगोंका चमडा संकुचित हो गया है, जंघाएं एडियां कमर और भुजाएं जिनकी शिथिल हो गई है, जो देश कालके क्रमके योग्य आहार ग्रहण करते हैं, जिन्होंने बोलना बंद कर दिया है अर्थात् मौन धारण कर लिया है, जो केवल शरीरको दिखाकर ही वापिस चले जाते हैं, जिनकी शक्ति बहुत बढी हुई है, जिनका चित्त सदा ज्ञानको वढानेमें ही लगा रहता है, प्राणोंका नाश होने पर भी जो वसातिका आहार और औषधियोंको दीन हो-कर, मुखकी आकृति विगाडकर अथवा शरीरकी किसी संज्ञासे इशारेसे कभी याचना नहीं करते, आहार लेनेके समय भी विजलीकी चमकके समान जो बहुत शीघ्र दिखाई देकर चले जाते हैं, जिसप्रकार रत्नके व्यापारियोंको बहुत दिनमें अच्छी मणियोंका दर्शन होता है इसी प्रकार जो अपने शरीरको दिखलाना भी उदारता समझते हैं, वंदना वा पडगाहन करनेवालेके

बलस्य प्रज्ञाऽऽधायितचेतसः प्राणात्ययेऽपि वसत्याहारभेषजानि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्यांगसंज्ञादिभिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवदुपलक्षितमूर्त्तेः बहुषु दिवसेषु रत्नवणिजो मणिसन्दर्शनमिव स्वशरीरप्रकाशमकृपणं मन्यमानस्य बन्दमानं प्रति स्वकरविकासनमिव पाणिपुटधारणमदीनमिति गणयतो याचनासहनमवबोध्यते। अयत्ने पुनः कालदोषाद्दीनानाथपाखंडिबहुले जगत्यमार्गज्ञैरनात्मवद्भिर्याचनमनुष्ठीयते।

वायुवदसंगानेकदेशचारिणोऽप्रकाशितवीर्यस्याभ्युपगतैककालभोजनस्य सकृन्मूर्त्तिसन्दर्शितव्रतकालस्य 'देहि' इत्यसभ्यवाक्प्रयोगादुपरतस्यानुपात्तविग्रहप्रतिक्रियस्याद्येदं श्वेदमिति व्यपेतसकल्पस्यैकस्मिन् ग्रामे लब्धे सति ग्रामान्तरान्वेषणनिरुत्सुकस्य पाणिपुटमात्रपात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च

यहां जो हाथोंको पसारकर करपत्र आहार करते हैं उसको भी वे अदीनभाव समझते हैं इसप्रकार याचना नहीं करना याचनासहन अथवा याचनापरिषहका जीतना कहलाता है। आजकल काल दोषसे दीन अनाथ और पाखंडी बहुतसे हो गये हैं और वे संसारमें मोक्षमार्गका स्वरूप और आत्माका स्वरूप न जाननेके कारण याचना करते हैं ॥ १४ ॥

जो वायुके समान विना किसीको साथ लिए अथवा विना किसी परिग्रहके अनेक देशोंमें विहार करते हैं, जो अपनी शक्ति कभी प्रकाशित नहीं करते, जिनके दिनमें एक ही बार भोजन करनेकी प्रतिज्ञा रहती है, आहारके समय किसीके घर जाकर एकबार शरीर दिखलाना (पडगाहन न करने पर लौट आना) ही जिनका व्रत रहता है, " दे दीजिए " इत्यादि असभ्य शब्दोंके प्रयोग करनेका (किसीसे मांगनेका) जिनके सर्वथा त्याग रहता है, जो शरीरकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते, " आज ऐसा है कल ऐसा होगा " इसप्रकारके संकल्पका जिनके सर्वथा त्याग रहता है, एक गांवमें आहार न मिलने पर भी जो दूसरे गांवमें ढूंढनेके लिए कभी नहीं जाते, जिनके पास केवल हाथ ही पात्र रहते हैं अन्य कुछ नहीं, बहुत दिनोंतक और बहुतसे घरोंमें आहार न मिलने पर भी जो अपने हृदयमें कभी संक्लेश परिणाम नहीं करते, " यह दाता नहीं है अमुक गांवमें अमुक मनुष्य दानशूर है बडा दानी है और

एष्वेषु भिक्षामनवाप्याप्यसंक्लिष्टचेतसो नाऽयं दाता तत्राऽन्यो दानशूरोऽतिधन्यो वदान्योस्तीति व्यपगतपरीक्षस्य लाभादप्यलाभो मे वरं तप इति संतुष्टस्यालाभविजयोऽवसेयः ।

दुःखाधिकरणमशुचिभाजनं जीर्णवस्त्रवत्परिहेयं पित्तमारुतकफसन्निपातनिमित्तानेकामयवेदनाऽभ्यर्दितमन्यदीयमिव विग्रहं मन्यमानस्योपेक्षकत्वा-दाप्रच्युतेरचिकित्सान्याप्तचेष्टस्य शरीरयात्राप्रसिद्धये व्रणानुलेपनवद्युक्तमाहारमाचरतो विरुद्धाहारसेवाविरसवैषम्यजनितवातादिविकाररोगस्य युग-

अत्यंत धन्य मनुष्य है" इसप्रकारकी परीक्षा जो कभी नहीं करते, और जो " आहार मिल-नेकी अपेक्षा आहार न मिलना ही मेरे लिए परम तपश्चरण है" इसप्रकार मानते हुए आहार न मिलनेसे ही परम संतुष्ट रहते हैं ऐसे मुनियोंके अलाभ विजय अथवा अलाभ परीषहका जीतना कहलाता है ॥ १५ ॥

यह शरीर दुःखोंका आधार है, अपवित्रताका पात्र है, जीर्णवस्त्रके समान त्याग करदेने योग्य है, पित्त और कफके संयोगके कारण अनेक रोगोंकी वेदनासे कदर्थित है और आत्मासे विलकुल भिन्न है इसप्रकार जो शरीरके स्वरूपको मानते हैं, शरीरकी ओर उपेक्षा होनेसे जो उसके नाश होनेतक चिकित्सा (इलाज) करनेकी चेष्टा कभी नहीं करते, धर्मसाधन करनेके लिये शरीरका टिकना आवश्यक है इसीलिये जो घावपर लेप करनेके समान योग्य और शास्त्रानुसार आहार ग्रहण करते हैं, विरुद्ध आहार ग्रहण करनेके तथा नीरस और विषम आहार ग्रहण करनेसे वायु आदिके अनेक रोग जिनके हो गये हैं, एक साथ सैकडों व्याधियोंका प्रकोप होनेपर भी जो कभी उनके वश नहीं होते, जल्ल, औषधि प्राप्त आदि अनेक तपोविशेषसे उत्पन्न हुई ऋद्धियोंके संयोग होनेपर भी शरीरसे निस्पृह होनेके कारण जो कभी उन व्याधियोंके प्रतिकार करनेकी इच्छा नहीं करते "यह सब पाहिले किये हुए पाप कर्मोंका फल है इस उपायसे (इन रोगोंके कारण अर्थात् वे पाप कर्म अपना राग रूप फल देकर नष्ट हो जांयगे इसलिये)

बहनेकशतसंख्यान्याधिप्रकोपे सत्यऽपि तद्वशवर्तितां विजहतो जल्लौषधिप्राप्त्याद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिःस्पृहत्वात्प्रतीकारानपेक्षिणः पूर्वकृतपापकर्मणः फलमिदमनेनोपायेनाऽनृणी भवामीति चिन्तयतो रोगसहनं सम्पद्यते।

यथाऽभिनिवृत्ताधिकरणशायिनः शुष्कतृणपरुषशर्कराभूमिकंटकफलकशिलातलादिषु प्रासुकेष्वसंस्कृतेषु व्याधिमार्गगमनशीतोष्णजनितश्रमविनोदार्थं शय्यां निषद्यां वा भजमानस्य संस्कृतशुष्कतृणादिबाधितमूर्तेरुत्पन्नकंडूविकारस्य दुःखमनभिचिन्तयतस्तृणादिस्पर्शबाधाभिरवशीकृतता तृणस्पर्शसहनमवगन्तव्यं।

जलजन्तुपीडापरिहाराय स्नानप्रतिज्ञस्य स्वेदपंकदिग्धसर्वांगस्य बादरनिगोदप्रतिष्ठितजीवदयार्थं च शरीरसंस्कारविरमणार्थं च परित्यक्तोद्वर्तनस्य सि-

मैं उन कर्मोंके ऋणसे छूट जाऊंगा" इसप्रकार जो बार बार चिंतवन करते हैं उनके रोग सहन अथवा रोग परीषहका जीतना कहते हैं ॥ १६ ॥

जो स्वाभाविक प्राप्त हुए अधिकरण पर सोते वा बैठते हैं, प्रासुक और विना संस्कार किये हुए सूके तृण, कठिन पत्थरकी भूमि, कांटे और पत्थरके टुकड़े वाली शिलाभूमियोंपर व्याधि, (मार्गका चलना) और शीत उष्णसे उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर करनेके लिये सोते हैं अथवा बैठते हैं विना संस्कार किये हुए तृणादिकोंसे जिनके शरीरपर अनेक तरहकी बाधाएं आरही हैं। खुजलीका विकार प्रगट हो रहा है तथापि जो उसके दुःखका कभी चिंतवन नहीं करते तथा तृण आदिके स्पर्शसे उत्पन्न हुई बाधाके जो कभी वश नहीं होते इसलिये उनके तृणस्पर्श सहन अथवा तृणस्पर्श परीषहका जीतना कहलाता है।

जलकाय और जलचर जीवोंकी पीडा दूर करनेके लिये जिनके स्नान न करनेकी प्रतिज्ञा है, पसीना और धूलिसे जिनका सव शरीर मलिन हो रहा है, बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवोंकी दया पालन करनेकेलिये तथा शरीरका संस्कार दूर करनेकेलिये जिन्होंने उवटन आदि करना सव छोड दिया है, सीपरोग खुजली और दादसे जिनका सव शरीर भर रहा है, नाखून

ध्मकच्छुद्रूदीर्णकायस्य नखरोमश्मश्रुकेशविकृतसहजबाह्यमलसम्पर्ककारणानेकत्वग्विकारस्य स्वागमलापचये परमलापचये वा प्राणिहितचेतसः संकल्पितसम्यग्ज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालनेन कर्ममलपंकापनोदायैवोद्यतस्य पूर्वानुभूतस्नानानुलेपनादिस्मरणपराङ्मुखचित्तवृत्तेर्मलधारणमाख्यायते । केशलुचने तत्संस्कारकरणे महान्खेदः संजायते तत्सहनमपि मलधारणेऽन्तर्भवतीति।

चिरोषितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिश्चयज्ञस्य हितोपदेशपरस्य कथामार्गकुशलस्य बहुकृत्वः परवादिविजयिनः प्रणामभक्तिसंभ्रमाऽऽ-

रोम, दाढी मूछोंके बाल आदिके विकारोंसे उत्पन्न हुए तथा स्वाभाविक बाह्य मलका संबंध होनेसे जिनके शरीरके चमड़ेपर अनेक विकार हो गये हैं अपने शरीरका मल दूर करनेके लिये अथवा दूसरेका मल दूर करनेके समय जिनका हृदय सदा प्राणियोंके हित करनेमें ही लगा रहता है, कल्पना किये हुए सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी निर्मल जलसे धोकर कर्म मलरूपी कीचडको दूर करनेकेलिये जो सदा तत्पर रहते हैं और पहिले अनुभव किये हुए स्नान उवटन लेपनका स्मरण करनेसे जिनके चित्तकी वृत्ति सदा परान्मुख रहती है। भावार्थ—जो पहिले किये हुए स्नानादिका कभी स्मरण नहीं करते उन मुनियोंके मलधारण अथवा मलपरीषहका जीतना कहलाता है। केशोंका लोंच करने और उन बालोंका संस्कार कभी न करनेमें भी बड़ा भारी खेद होता है इसलिये उस खेदको सहन करना भी मल परीषहको जीतनेमें ही शामिल है ॥ १८ ॥

जो बहुत कालसे ब्रह्मचारी हैं, महा तपस्वी हैं, अपने मतके शास्त्र और परमतके शास्त्रोंका जिन्होंने खूब अच्छी तरह निर्णय वा निश्चय किया है, जो सदा हितोपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं, प्रथमानुयोगकी कथाएं कहनेमें जो बहुत ही कुशल हैं, जिन्होंने कई बार परवादियोंका विजय किया है, "प्रणाम भक्ति, और शीघ्रताके साथ आसन देना आदि सत्कारके कार्य मेरे लिये कोई नहीं करता" इसप्रकारका चिंतवन जो कभी नहीं करते, मान अपमानमें जिनका

सनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोतीत्येवमचिन्तयतो मानापमानयोः समानमनस: सत्कारपुरस्कारनिराकांक्षस्य श्रेयोध्याविनः सत्कारपुरस्कारजयो वेदितव्यः । सत्कारः प्रशंसादिकः, पुरस्कारो नाम नन्दीश्वरादिपर्वयात्रात्मकक्रियारंभादिष्वग्रतः करणमामंत्रणं वा ।

अंगपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य कृत्स्नग्रन्थार्थधारिणोऽनुत्तरवादिनस्त्रिकालविषयार्थविदः शब्दन्यायाऽध्यात्मनिपुणस्य मम पुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूतोद्योतवन्नितरामवभासत इति विज्ञानमदनिरासः प्रज्ञापरीषहजयः प्रत्येतव्यः ।

अज्ञोऽयं न किंचिदपि वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यधिक्षेपवचनं सहमानस्याध्ययनार्थग्रहणपराभिभवादिष्वनासक्तबुद्धेश्चिरप्रव्रजितस्य विविधतपोविशेषभारा-

चित्त सदा समान रहता है, जो सत्कार पुरस्कारकी कभी इच्छा नहीं करते और सबके कल्याणका ही सदा चिंतवन करते रहते हैं उन मुनियोंके सत्कार पुरस्कारजय अथवा सत्कार पुरस्कार परीषहका जीतना कहा जाता है। प्रशंसा आदि करना सत्कार कहलाता है और नंदीश्वर आदि पर्वके दिनोंमें अथवा रथयात्रा वा तीर्थयात्रा आदि क्रियाओंके प्रारंभमें सबसे आगे करना अथवा आमंत्रण देना पुरस्कार कहलाता है ॥ १९ ॥

जो अंग पूर्व और प्रकीर्णकोंमें अत्यंत निपुण हैं, समस्त ग्रंथोंके अर्थकी जिन्हें धारणा है कोई भी प्रतिवादी जिनके सामने उत्तर नहीं दे सकता, जो तीनों कालोंके समस्त विषयोंके पदार्थोंको जानते हैं, जो व्याकरण शास्त्र, न्याय शास्त्र, और अध्यात्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रोंमें निपुण हैं, "मेरे सामने अन्य सब वादी लोग सूर्यकी प्रभाके सामने तिरस्कृत हुए खद्योतके समान सदा प्रतीत होते रहते हैं" इसप्रकारके ज्ञानके अभिमानसे जो सदा अलग रहते हैं उनके प्रज्ञापरिषहजय अर्थात् प्रज्ञा परिषहका जीतना समझना चाहिए ॥ २० ॥

"यह मूर्ख है कुछ नहीं जानता, पशुके समान है" इत्यादि आक्षेपके वचनोंको जो सदा सहन करते रहते हैं, अध्ययन करनेके लिए दूसरेके द्वारा किए हुए तिरस्कार आदिमें भी जिनकी बुद्धि कभी आसक्त नहीं होती, जो बहुत दिनके दीक्षित हैं, अनेक तरहके विशेष विशेष

क्रांतमूर्तेः सकलसामर्थ्याप्रमत्तस्य विनिवृत्तानिष्टमनोवाक्कायचेष्टस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इत्येवं मनस्यसन्दधतोऽज्ञानपरीषहजयोऽवगन्तव्यः ।

संयमिप्रधानस्य दुष्करतपोऽनुष्ठायिनः परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरन्तनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषाः प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमिदमनर्थकेयं प्रव्रज्या विफलं व्रतपालनमित्येवं मानसमनादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाददर्शनपरीषहसहनमवसातव्यं ।

एवं परीषहानसंकल्पितोपस्थितान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवाभावान्महान् संवरो भवति । एते सर्वेपि परीषहाः कर्मोदयजनितास्तद्यथा—

तपश्चरणके भारसे जिनका शरीर आक्रांत हो रहा है, जो सब तरहकी सामर्थ्यमें अप्रमत्त हैं, " मैंने अनिष्ट मन वचन कायकी चेष्टाएं सब दूर कर दी हैं तथापि मुझे अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान आदि अतिशय ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती " इसप्रकारका विचार जो अपने मनमें कभी नहीं लाते, उनके अज्ञान परिषहका जीतना समझना चाहिये ॥ २१ ॥

जो संयमियोंमें प्रधान हैं अत्यंत कठिन कठिन तपश्चरण करनेवाले हैं, परम वैराग्यकी भावनासे जिनका हृदय अत्यंत शुद्ध है, जो समस्त पदार्थ और तत्त्वोंके स्वरूपको जानते हैं, अरहंत, अरहंतके आयतन, साधु और धर्मकी सदा पूजा करते रहते हैं "मैं बहुत दिनका दीक्षित हूं तथापि मुझे अबतक कोई ज्ञानका अतिशय प्राप्त नहीं हुआ है, महोपवास आदि तपश्चरण करनेवालोंको विशेष विशेष प्रातिहार्य प्रगट होते हैं यह बात केवल प्रलापमात्र है, यह दीक्षा लेना बिल्कुल व्यर्थ है, और व्रत पालन करना भी निष्फल है " इसप्रकार जो अपने मनमें कभी विचार नहीं करते इसलिये सम्यग्दर्शनकी शुद्धता होनेसे ऐसे मुनियोंके अदर्शन परिषह सहन अथवा अदर्शन परिषहका जीतना कहलाता है ॥ २२ ॥

इसप्रकार विना संकल्पके उपस्थित हुई परिषहोंको जो सदा सहन करते हैं और अपने

ज्ञानावरणे प्रज्ञाऽज्ञाने, दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ, चारित्रमोहे मानकषायोदये नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः, अरतिवेदयोररतिस्त्रीपरीषहौ, वेदनीये क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाः ।

एकस्मिन् जीव एकस्मिन् काले एकादय परीषहा आ एकोनविंशतेर्युगपद्भवन्ति । तद्यथा—शीतोष्णपरीषहयोरेकतरः, शय्याचर्यानिषद्यानाचान्यतम एव भवति । श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञाप्रकर्षे सत्यवध्यभावापेक्षयाऽज्ञानोपपत्ते सहावस्थाविरोधो न भवति ।

मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टि सयता सयतप्रमत्ताप्रमत्तसयतेषु सप्तसु गुणस्थानेषु सर्वे परीषहाः सन्ति । अदर्शनपरीषहं वि-

हृदयमें जो कभी संक्लेश परिणाम नहीं करते उनके रागादि परिणामोंके द्वारा होनेवाले कर्मास्रवका अभाव होनेसे महान् संवर होता है। ये सब परिषहें कर्मोंके उदयसे प्रगट होती हैं यही बात आगे दिखलाते हैं—ज्ञानावरण कर्मके उदयसे प्रज्ञा और अज्ञान परिषहें होती हैं, दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे अदर्शन परिषह होती है। अंतराय कर्मके उदयसे अलाभ परिषह होती है, चारित्रमोहनीय मान कषायके उदयसे नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार परिषह होती हैं, अरति कर्मके उदयसे अरति परीषह और वेद कर्मके उदयसे स्त्रीपरीषह होती है। वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श, और मल परीषहें होती हैं।

एक ही जीवके एक ही समयमें एक साथ एकसे लेकर उनईस परीषह तक हो सकती हैं शीत उष्ण इन दो परीषहोंमेंसे कोई भी एक हो सकती है, शय्या चर्या निषद्या इन तीनोंमेंसे कोई भी एक हो सकती है (इसप्रकार तीन परीषह छूट सकती हैं) श्रुत ज्ञानकी अपेक्षा बुद्धिकी तीव्रता होनेसे प्रज्ञा परीषह और अवधिज्ञानके अभाव होनेकी अपेक्षासे अज्ञान परीषहकी उत्पत्ति होती है इसलिए इन दोनोंके एक साथ होनेमें कोई किसी तरहका विरोध नहीं आता।

मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यक् मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत प्रमत्त

नाऽपूर्वकरण एकविंशतिपरीषहा भवन्ति । अरतिपरीषहमन्तरेण सवेदानिवृत्तौ विंशतिपरीषहा स्युः । अवेदानिवृत्तौ स्त्रीपरीषहे नष्टे एकोनविंशतिपरीषहा भवेयुः । तस्यैव मानकषायोदयक्षयान्नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारा विनश्यन्ति । तेषु विनष्टेषु अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशान्तकषायक्षीणकषायेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चतुर्दश परीषहाः सन्ति । क्षीणकषाये प्रज्ञाऽज्ञानालाभा विनश्यन्ति । सयोगिभट्टारकस्य ध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनस्यानन्ताप्रतिहतज्ञानादिचतुष्टयस्यान्तरायाभावान्निरन्तरमुपचीयमानशुभपुद्गलसन्ततेर्वेदनीयाख्यं कर्म विद्यमानमपि प्रक्षीणघातिसहायबलं स्वप्रयोजनोत्पादनं

संयत और अप्रमत्त संयत इन सातों गुणस्थानोंमें सब परीषहें होती हैं। अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परीषहको छोडकर शेष इकईस परीषहें होती हैं। नौवें गुणस्थानमें जहांतक वेदकी निवृत्ति नहीं होती वहांतक अरति परीषहको छोडकर बाकी बीस परीषहें होती हैं, जहां वेदकी निवृत्ति हो जाती है वहां स्त्रीपरीषह भी नष्ट हो जाती है इसलिये वहां उनईस परीषहें होती हैं उसी नौवें गुणस्थानमें मानकषायके उदयका नाश हो जानेपर नाग्न्य निषद्या, आक्रोश याचना और सत्कार पुरस्कार परीषहें नष्ट हो जाती हैं इन पांचों परिषहोंके नाश हो जानेपर शेषके अनिवृत्ति करण गुणस्थानमें तथा सूक्ष्मसांपराय उपशांत कषाय और क्षीणकषाय इन चारों गुणस्थानोंमें बाकीकी चौदह परीषहें होती हैं। क्षीणकषाय गुणस्थानमें प्रज्ञा अज्ञान और अलाभ परीषहें नष्ट हो जाती हैं। जिन्होंने ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी इंधनको जला दिया है जिनके अप्रतिहत अनंत ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हुआ है, अंतराय कर्मके अभाव होनेसे जिनके निरंतर शुभ पुद्गल वर्गणाओंका समुदाय बढता जा रहा है ऐसे भट्टारक सयोगि केवली भगवानके यद्यपि वेदनीय कर्म विद्यमान है तथापि उसके बलको सहायता देनेवाले घातिया कर्मोंका नाश हो जानेसे उसमें अपना प्रयोजन उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रही है। जिसप्रकार मंत्र औषधि आदिके बलसे जिसकी मारण शक्ति (प्राण हरण करनेकी शक्ति) नष्ट कर दी गई है ऐसा विष खा लेने पर भी वह किसीको मार नहीं सकता अथवा

प्रत्यसमर्थं, यथा–विषद्रव्यं मंत्रौषधिवलादुपक्षीणमारणशक्तिकमुपयुज्यमानं न मारणाय समर्थं, यथा छिन्नमूलतरुः कुसुमफलप्रदो न भवति, यथोपेक्षावतोरनिवृत्तिसूक्ष्मसाम्परराययोर्मैथुनपरिग्रहसंज्ञा, यथा च परिपूर्णज्ञाने एकाग्रचिन्तानिरोधाऽभावेपि कर्मरजोविधूननफलसंभवाद्ध्यानोपचारस्तथा क्षुधारोगवधादिवेदनासद्भावपरीषहाभावे वेदनीयकर्मोदयद्रव्यपरीषहसद्भावादेकादश जिने संतीत्युपचारो युक्त, वेदकर्मोदयसद्भावे एकादश जिने सन्ति घातिकर्मबलसहायरहितं वेद्य फलवन्न भवति तेनैकादश जिने सन्ति। एव सति स्यादस्ति स्यान्नास्तीति स्याद्वाद उपपन्नो भवति। तथा च शतकस्य प्रदेश-

जिसप्रकार जिसकी जड काट डाली गई है ऐसा वृक्ष फल और फूल नहीं दे सकता अथवा जिसप्रकार उपेक्षा बुद्धि रखनेवाले मुनियोंके नौवें दशवें गुणस्थानमें मैथुन और परिग्रह संज्ञा केवल नाममात्रको होती है अथवा जिसप्रकार पूर्ण केवलज्ञानके होनेपर एकाग्र चिंता निरोध रूप ध्यानका अभाव होनेपर भी कर्मरूपी रजके नाश होने रूप फलकी संभावना होनेसे ध्यानका उपचार किया जाता है उसीप्रकार क्षुधा रोग और वध आदि वेदनाओंके सद्भावरूप परीषहोंका अभाव होनेपर भी केवल वेदनीय कर्मके उदयरूप द्रव्य परीषहका सद्भाव होनेसे तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिनेंद्र भगवानके ग्यारह परीषहें उपचारसे कही जाती हैं। वेदनीय कर्मके उदयका सद्भाव होनेसे जिनेंद्रदेवके ग्यारह परीषह हैं और घातिया कर्मोंके वलकी सहायताके विना वेदनीय कर्म अपना कुछ फल नहीं देसकता इसालिये जिनेंद्रदेवके ग्यारह परीषहें नहीं हैं इसप्रकार स्यादास्त स्यान्नास्ति अर्थात् परीषह हैं भी और नहीं भी हैं इसप्रकारका स्याद्वाद मत प्रगट होता है। यही बात प्रदेश बंधके कथन करते समय सौ भागोंमेंसे वेदनीयके विशेष भागोंका कारण कथन करते हुए कही गई है "जम्हा वेदणीयस्स दुःखोदयस्स णाणावरणादि उपकरणकरणं तम्हा वेदणीयस्सेव सुहदुःखोदयो दीसदे" अर्थात् सुख दुःख देनेवाले वेदनीय कर्मके सहायक ज्ञानावरणादि घातिया कर्म हैं इसीलिये अर्थात् उन घातिया

वन्धे वेदनीयस्य भागविशेपकारणकथनेऽप्युक्तं—;" जम्हा वेदणीयस्स सुहदुक्खोदयस्स णाणावरणादि उवकरण करगं तम्हा वेदणी इस्सेव सुहदुक्खजोइयो-] हीसदे " इति। तस्माद्वेदनीयं घातिकर्मोदय विना फलवन्न भवतीति सिद्ध।

नरकतिर्यग्गत्यो· सर्वे परीषहाः, मनुष्यगतावाथभंगा भवन्ति देवगतौ घातिकर्मोत्थपरीषहैः सह वेदनीयोत्पन्नक्षुत्पिपासावधैः सह चतुर्दश भवन्ति इन्द्रियकायमार्गणयो· सर्वे परीषहा सन्ति, वैक्रियकद्वितयस्य देवगतिभंगा तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्वाविंशतिः। शेषयोगाना वेदादिमार्गणाना [च स्वकीय-गुणस्थानभंगा भवन्ति।

तपोवर्णनम्।

रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तप·, अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यत इति तपः। तद्द्विविधं, बाह्यमाभ्यन्तरं च। अनशनादिबाह्यद्वया-

कर्मोंकी सहायतासे ही वेदनीय कर्मका सुख दुःखोदय दिखाई पडता है।" इससे यह सिद्ध है कि घातिया कर्मोंके उदयके विना वेदनीय कर्म अपना फल नहीं दे सकता।

नरक और तिर्यंच गतिमें सब परीषह होती हैं। मनुष्यगतिमें ऊपर कहे अनुसार होती हैं। देव गतिमें घातिया कर्मोंके उदयसे होनेवाली सात परीषहें और वेदनीयकर्मके उदयसे होने वाला क्षुधा पिपासा और बध इसप्रकार चौदह परीषह होती हैं। इंद्रिय और कायमार्गणामें सब परीषहें होती हैं वैक्रियक और वैक्रियकमिश्रयोगमें देवगतिकी अपेक्षा देवगतिके अनुसार और तिर्यंच मनुष्योंकी अपेक्षा बाईस होती हैं। शेष योग मार्गणामें तथा वेद आदि सब मार्गणाओंमें अपने अपने गुणस्थानकी अपेक्षा लगा लेना चाहिये।

इसप्रकार परीषहोंका प्रकरण पूर्ण हुआ॥

आगे तपश्चरणका वर्णन करते हैं—रत्नत्रयको प्रगट करनेके लिये इच्छाका निरोध करना तप कहलाता है अथवा कर्मोंका नाश करनेके लिये मोक्षमार्गका विरोध न करते हुए तपश्चरण

पेक्षत्वात्परप्रत्ययलक्षणत्वाच्च वाह्यं, तत् षड्विधं, अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदात् । अभ्यन्तरमपि षड्विधं, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदात् ।

तत्राऽनशन नाम यत्किंचिद्दृष्टफल मंत्रसाधनाद्यनुद्दिश्य क्रियमाणमुपवसनमनशनमित्युच्यते । तत्संयमार्थं प्राणेंद्रियसंयमप्रसिद्धिरागद्वेषाद्युच्छेदबहुकर्मनिर्जरणशुभध्यानागमावाप्त्यर्थं। तद्द्विविधमवधृतानवधृतकालभेदात् । तत्रावधृतकालं सकृद्भोजनचतुर्थषष्ठाष्टमदशपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरेष्वशनपानखाद्यस्वाद्यलक्षणचतुर्विधाहारनिवृत्तिः । अनवधृतकालमादेहोपरमात् ।

करना तप है। वह तप दो प्रकारका है एक वाह्यतप और दूसरा अभ्यंतर तप । अनशन आदि वाह्य द्रव्योंकी अपेक्षासे अथवा अन्य लोगोंको प्रत्यक्ष होनेसे वाह्य तपश्चरण कहलाता है। वह वाह्य तपश्चरण छह प्रकारका है अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और और कायक्लेश ये उसके नाम हैं। प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यानके भेदसे अभ्यंतर तपश्चरण भी छह प्रकारका है।

किसी प्रत्यक्ष फलकी अपेक्षा न रखकर और मंत्रसाधन आदि उद्देशोंके विना जो उपवास किया जाता है उसे अनशन कहते हैं। वह अनशन प्राणसंयम और इंद्रिय संयमकी प्रसिद्धि के लिये राग द्वेष आदि कषायोंको नाश करनेकेलिये बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये शुभध्यान और आगमकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। वह अनशन वा उपवास दो प्रकारका है एक नियमित समय तक और दूसरा अनियमित समय तक। दिनमें एकवार भोजन करना एक दिन दो दिन तीन दिन चार दिन पांच दिन पंद्रह दिन एक महीने दो महीने छह महीने और वर्षदिन तक अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करदेना नियमित समय तकका उपवास कहलाता है । तथा शरीर छूटने तक उपवास धारण करना अनियमित समय तकका उपवास कहलाता है।

आत्मीयप्रकृत्यौदनस्य चतुर्थभागेनार्द्धेन ग्रासेन वोनाहारनियमोऽवमोदर्यं, आवमोदर्यमिति च । तत्किमर्थं निद्राजयार्थं दोषप्रशमनार्थमतिमात्राऽऽहारजातविहितस्वाध्यायभयार्थमुपवासश्रमसमुद्भूतवातपित्तप्रकोपपरिहीयमानसंयमसंरक्षणार्थं च ।

स्वकीयतपोविशेषेण रसरुधिरमांसशोषणद्वारेणेन्द्रियसंयमं परिपालयतो भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारसप्तवेश्मैकरथ्यार्द्धग्रामदातृजनवेषगृहभाजनभोजनादिविषयसंकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम् ।

शरीरेन्द्रियरागादिवृद्धिकरक्षीरदधिघृतगुडतैलादिरसत्यजनं रसपरित्याग इत्युच्यते । तत्किमर्थं दुर्दान्तेंद्रियतेजोहानिः संयमोपरोधनिवृत्तिरित्येवमाद्यर्थं ।

अपने लिये स्वाभाविक जितना भोजन चाहिये उससे चौथाई भाग कम आहार लेनेका नियम लेना अथवा एक गास आधा गास कम लेनेका नियम लेना अवमोदर्य कहलाता है। निद्राको जीतनेके लिये दोषोंको शांत करनेके लिये अधिक आहारसे उत्पन्न होनेवाले स्वाध्यायके विघ्नोंको दूर करनेके लिये और उपवासोंके परिश्रमसे उत्पन्न होनेवाले वात पित्तके प्रकोपसे कम होनेवाले संयमकी रक्षा करनेके लिये अवमोदर्य तपश्चरण किया जाता है।

अपने विशेष तपश्चरणके द्वारा अथवा शरीरका रस रुधिर मांस आदिको सुखाकर इंद्रिय संयमको पालन करनेवाले तथा आहारके लिये गमन करते हुए मुनियोंके एक घर, सात घर एक गली, आधा गांव, दान देनेवाले दाताका वेष घर पात्र और भोजन आदिके विषयमें संकल्प करना वृत्तिपरिसंख्यान नामका तपश्चरण कहलाता है । यह तपश्चरण केवल भोजनकी आशा और लालसा दूर करनेके लिये किया जाता है।

शरीर इंद्रिय और रागादि कषायोंको बढानेवाले दूध, दही, घी, गुड, तेल आदि रसोंका त्याग करना रसपरित्याग तप कहलाता है। अत्यंत प्रबल इंद्रियोंका तेज घटानेके लिये और संयमकी रुकावटें दूर करनेके लिये यह रसपरित्याग तपश्चरण किया जाता है।

ध्यानाध्ययनविघ्नकरस्त्रीपशुषण्ढकादिपरिवर्जितगिरिगुहाकन्दरपितृवनशून्यागाराऽऽरामोद्यानादिप्रदेशेषु विविक्तेषु जन्तुपीडारहितेषु संवृतेषु संयतस्य शयनासनं विविक्तशयनासनं नाम । तत्किमर्थमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थमसभ्यदर्शनेन तत्सहवासेन वा जनितत्रिकालविषयरागद्वेषमोहापोहार्थं वा । वृक्षमूलाभ्रावकाशाऽऽतापनयोगवीरासनकुक्कुटासनपर्यंकार्धपर्यंकगोदोहनमकरमुखहस्तिशुण्डामृतकशयनैकपार्श्वदंडधनुःशय्यादिभिः शरीरपरिखेदः कायक्लेश इत्युच्यते । तत्किमर्थं वर्षाशीताऽऽतपविषमसंस्थुलाऽऽसनविषमशय्यादिषु शुभध्यानपरिचर्यार्थं दुःखोपनिपाततितिक्षार्थं विषय-

ध्यान और अध्ययनमें विघ्न करनेवाले स्त्री, पशु, नपुंसक आदिसे रहित ऐसी पर्वतकी गुफाएं, कंदरा, श्मशान, सूने मकान, वन और उद्यान आदि एकांत, जीवोंकी पीडासे रहित और आछन्न (ढके हुए) स्थानोंमें मुनियोंका शयन आसन करना (सोना, बैठना) विविक्त शय्यासन तप कहलाता है। निर्बाध पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिए स्वाध्याय तथा ध्यानकी सिद्धिके लिए और असभ्य लोगोंके दर्शन करनेसे अथवा उनका सहवास करनेसे तीनों कालोंमें उत्पन्न हुए राग द्वेष और मोहको दूर करनेके लिये यह विविक्त शय्यासन तप किया जाता है।

वृक्षके नीचे, अथवा चौहटेमें आतापनयोग धारण करना, वीरासन, कुक्कुटासन, पर्यंकासन, अर्धपर्यंकासन, गोदोहन आसन, मकरमुखासन, हस्तिशुंडासन, मृतकशयन, एक करवटसे सोना, दंडके समान सोना, और धनुषके समान सोना इत्यादि कार्योंके द्वारा शरीरको क्लेश पहुंचाना काय क्लेश तप कहलाता है। वर्षाऋतु शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें विषम स्थल विषम आसन लगाकर बैठना तथा विषम स्थानमें सोना आदि कार्योंमें शुभ ध्यान बराबर बने रहनेके लिये, उपस्थित हुए अनेक दुखोंको सहन करनेके लिए, विषय सुखोंकी लालसा दूर करनेके लिए और अपने मनकी प्रभावना होनेके लिये कायक्लेश तपश्चरण किया जाता है। यदि कायक्लेश तपश्चरण न किया जाय तो ध्यानके प्रारंभमें तो सुखपूर्वक ध्यान हो सकता

सुखानभिष्वंगाथ प्रवचनप्रभावनाद्यर्थं च कायक्लेशानुष्ठानं क्रियते । इतरथा हि ध्यानप्रवेशकाले सुखोचितः स्यात् द्वन्द्वोपनिपाते सति समाधानं न स्यात्, एवं षड्विधं बाह्यलक्षणमुक्तं ।

उत्तरमाभ्यन्तरमुच्यते । यतोऽन्यैस्तीर्थैरनभ्यस्तं ततोऽस्याऽऽभ्यन्तरत्वं, प्रायश्चित्तादितपो हि बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वादन्तःकरणव्यापाराच्चाभ्यंतरं । तत्र कर्तव्यस्याकरणे वर्जनीयस्यावर्जने यत्पापं सोऽतीचारस्तस्य शोधनं प्रायश्चित्तं । तत्किमर्थं प्रमाददोषव्युदासो भावप्रसादो नैःशल्यमनवस्थाव्यावृत्तिर्मर्यादात्यागः संयमदार्ढ्य चतुर्विधाराधनमित्येवमादीनां सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं । तद्दशविधं, आलोचनं, प्रतिक्रमणं, तदुभयं, विवेकः, व्युत्सर्गः, तपः, छेदः, मूलं, परिहारः, श्रद्धानमिति । तत्रैकान्तनिषण्णायापरिश्राविणे श्रुतरहस्याय गुरवे प्रसन्नमनसे विद्यायोग्योपकरणग्रहणादिषु प्रश्नविनयमन्तरेण प्रवृत्तस्य,

है परंतु किसी उपद्रवके उपस्थित होनेपर समाधान नहीं रह सकता इसलिये कायक्लेश तपश्चरण करना ही चाहिए। इसप्रकार छह प्रकारका बाह्य तपश्चरण कहा।

अब आगेका अभ्यंतर तपश्चरण कहते हैं। अन्यमती लोग इस अभ्यंतर तपश्चरणका अभ्यास नहीं करते इसीलिये इसको अभ्यंतर तप कहते हैं अथवा प्रायश्चित्त आदि तपश्चरणोंमें किसी भी बाह्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करनी पडती केवल अंतःकरणमें ही व्यापार करना पडता है इसलिये भी इसको अभ्यंतर तप कहते हैं। किसी करने योग्य कार्यके न करनेपर और त्याग करने योग्य पदार्थके त्याग न करनेपर जो पाप होता है उसे अतीचार कहते हैं उस पापको वा अतीचारको शुद्ध करना प्रायश्चित्त कहलाता है। प्रमादसे उत्पन्न दोषोंको दूर करनेके लिए अपने परिणामोंको निर्मल रखनेके लिये, शल्योंसे अलग रहनेके लिए, अनवस्था वा चंचलता दूर करनेके लिये, मर्यादाको कायम रखनेके लिये, संयमको दृढ रखनेके लिये और चारो प्रकारकी आराधनाओंके आराधन करनेकेलिये यह प्रायश्चित्त नामका तपश्चरण किया जाता है। वह प्रायश्चित्त आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धानके भेदसे दश प्रकारका है। जो (आचार्य) एकान्त

विदितदेशकालस्य शिष्यस्य सविनयमात्मप्रमादनिवेदनमालोचनमित्युच्यते । तस्य दश दोषा भवन्ति आकम्पितं, अनुमापितं, यद्दृष्टं, बादरं, सूक्ष्मं, छन्नं शब्दाऽऽकुलितं, बहुजनं, अव्यक्तं, तत्सेवितमिति । तत्रोपकरणेषु दत्तेषु प्रायश्चित्तं मे लघु कुर्यादिति विचिन्त्य भगवदादानं प्रथम आकंपितदोषः । प्रकृत्या पित्ताधिकोऽस्मि दुर्बलोऽस्मि ग्लानोऽस्मि नाऽलमहमुपवासादिकं कर्तुं यदि लघु दीयेत तदोपनिवेदनं करिष्य इति वचनं द्वितीयोऽनुमापितदोषः । अन्यादृष्टदोषगूहनं कृत्वा दृष्टदोषनिवेदनं मायाचारस्तृतीयो यद्दृष्टदोषः । आलस्यात्प्रमादज्ञानाद्वाऽल्पापराधावबोधनिरुत्सुकस्य स्थूलदोषप्रतिपादनं तुर्यो बादरदोषः । महा

स्थानमें बैठे हुए हैं, जो सुने हुए दोषोंको कभी किसीके सामने प्रगट नहीं करते, शास्त्रोंके रहस्यको अच्छीतरह जानते हैं और जिनका चित्त प्रसन्न है ऐसे गुरुके समीप जाकर विद्याके योग्य उपकरण आदिको ग्रहण करनेका प्रश्न वा विनय किए विना ही देश कालको जानने-वाले शिष्यका विनयपूर्वक अपना प्रमाद निवेदन करना आलोचन कहलाता है। उस आलो-चनाके आकंपित, अनुमापित, यद्दृष्ट, वादर, सूक्ष्म, छल, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवित ये दश दोष हैं। "यदि मैं कोई उपकरण भेंट करूंगा तो मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा" यही समझकर कुछ भेट देना पहिला आकंपित दोष है। "मेरी प्रकृति अधिक पित्तवाली है, मैं दुर्बल हूं, रोगी हूं, उपवास आदि करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है यदि मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा तो मैं अपना दोष निवेदन करूंगा" इसप्रकारके वचन कहना दूसरा अनुमापित दोष है। जो दोष किसी दूसरेको दिखाई नहीं पडे हैं उन्हें तो छिपा लेना और दिखाई देने योग्य अथवा जो दूसरोंने देख लिए हैं ऐसे दोषोंको निवेदन करना, इसप्रकारका मायाचार करना तीसरा यद्दृष्ट दोष है। आलस्य, प्रमाद, वा अज्ञानसे छोटे छोटे अपराधों-के जाननेमें चित्त न लगाना और स्थूल दोषोंको निवेदन करना चौथा वादर दोष है। बडे भारी कठिन प्रायश्चित्तके भयसे अथवा 'यह सूक्ष्म दोषोंको भी दूर कर डालता है' इसप्रका-रके अपने गुणोंकी प्रसिद्धि होनेकी इच्छासे बडे बडे दोषोंको छिपाकर थोडेसे प्रमादरूप आ-

दुश्चरप्रायश्चित्तभयाद्वाऽहो सूक्ष्मदोषपरिहारकोऽयमिति स्वगुणाख्यापनचिकीर्षया वा महादोपसंवरणं कृत्वा तनुप्रमादाचारनिवेदनं पंचमः सूक्ष्मदोषः । ईदृशे व्रतातिचारे सति नुः किं स्यात्प्रायश्चित्तमित्युपायेन गुरूपासना षष्ठश्छन्नदोष । पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकेषु कर्मसु महति यतिसमवाय आलोचनश-ब्दाकुले पूर्वदोषकथनं सप्तमः शब्दाकुलितदोषः । गुरूपपादितं प्रायश्चित्तं किमिदं युक्तमागमे स्यान्न वेति यावल्लघु प्रतिपादयति तावद्वा शंकमानस्याऽन्यसा-धुपरिप्रश्नोऽष्टमो बहुजनदोषः । यत्किंचित्प्रयोजनमुद्दिश्याऽऽत्मना समानायैव प्रमादाचरितमावेद्य महदपि गृहीतं प्रायश्चित्तं न फलकरमिति नवमोऽव्यक्त-

चरणोंका निवेदन करना पांचवां सूक्ष्म दोष है। "इसप्रकारके व्रतोंमें अतीचार लगनेसे मनुष्यको क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये" इसतरह अपना दोष न कहकर उपायांतरसे पूछना अथवा पूछनेके लिए गुरुकी उपासना करना छठा छन्न दोष है। जहांपर पाक्षिक अर्थात् पन्द्रह दिनकी, चातुर्मासिक अर्थात् चार महीनेकी वा सांवत्सारिक अर्थात् एक वर्षकी आलोचना हो रही है और सब मुनियोंकी आलोचना एक साथ हो रही है ऐसे शब्दोंके समुदायमें पहिले दोषोंका कहना सातवां शब्दाकुलित दोष हैं। "गुरुने जो प्रायश्चित्त बतलाया है वह ठीक है, या नहीं, आगममें कहा है वा नहीं" इसप्रकार जबतक थोडा प्रायश्चित्त देता रहे तबतक शंकाकर अन्य साधुओंसे पूछना आठवां बहुजन दोष है। अपना कुछ भी प्रयोजन विचारकर अपने समान किसी मुनिसे अपने प्रमादरूप आचरण कहना नौवां अव्यक्त दोष है इस अव्यक्त दोषके होते हुए अपने समान किसी मुनिसे वह वडा भारी प्रायश्चित्त ग्रहण कर ले तो भी उसका कुछ फल नहीं होता है। किसी दूसरे मुनिको जो प्रायश्चित्त दिया गया है उसे देखकर विचार करना कि "मेरे व्रतोंमें लगा हुआ अतीचार इन्हीं मुनिराजके अपराधके समान है अथवा मेरा अतीचार भी ठीक ऐसा ही है इसालिये जो प्रायश्चित्त इसको दिया गया है वही मेरे लिये ठीक है अब मुझे यह प्रायश्चित्त शीघ्र ही ले लेना चाहिये" इसप्रकार विचारकर अपने अपराधोंको छिपाना दशवां तत्सेवित नामका दोष है। जो अपराध लगा हो उसे बहुत दिनतक

दोष. । अस्यापराधेन ममातीचारः समानस्तमयमेव वेत्त्यस्मै यद्दत्तं तदेव मे युक्तं लघुकर्तव्यमिति स्वदुश्चरितसंवरणं दशमस्तत्सेवितदोषः । आत्मन्यपराधं चिरमनवस्थाप्य निकृतिभावमन्तरेण बालवदृजुबुद्धेर्दोषान्निवेदयतो न ते दोषा भवन्त्यन्यच्च संयतालोचनमेकांते द्विविषयमिष्टं, संयतकालोचनं प्रकाशे त्रपाश्रयमिष्टं, लज्जापरपरिभवादिगणनया निवेद्यातिचारं न शोधयेदपरीक्षिताऽऽयव्ययोऽधमर्णवदवसीदति । महदपि तपः कर्मानालोचनपूर्वकं नाभिप्रेतफलप्रदं सामदेहगतौषधिवत् । कृताऽऽलोचनोऽपि गुरुमतं प्रायश्चित्तमकुर्वाणो विनिश्चितमंत्रानुष्ठानशून्यराज्यवन्महती शाश्वतीं च संपदं न प्राप्नोति कृतालोचनचित्तगतं प्रायश्चित्तं परिमृष्टदर्पणगतरूपवत्परिभ्राजते ।

नहीं रखना चाहिये विना किसी मायाचारके बालकके समान सरल बुद्धिसे जो दोषोंको निवेदन करते हैं उनके ऊपर लिखे दोषोंमेंसे कोई दोष नहीं होते। दूसरी बात यह है कि यदि कोई मुनि आलोचना करेगा तो एकान्तमें करेगा और गुरु तथा वह शिष्य दो ही वहां रहेंगे तीसरा नहीं परंतु यदि आर्जिका आलोचना करेगी तो प्रकाशमें करेगी एकांत स्थानमें नहीं, तथा वहांपर तीन जने रहने चाहिये। यदि कोई मुनि वा आर्जिका लज्जा अथवा दूसरेके तिरस्कारके डरसे अतिचारको निवेदनकर उनका प्रायश्चित्त न ले दोषोंको न शोधे तो जो अपनी आमदनी और खर्चका हिसाब नहीं रखता ऐसे किसी कर्जदारके समान वह दुःख पाता है। जिसप्रकार श्वास रहित शरीरमें प्राप्त हुई औषधि अपना फल नहीं देती उसीप्रकार आलोचना किये विना बडा भारी किया हुआ तपश्चरण भी इच्छानुसार फल नहीं देता। जिसप्रकार निश्चय किये हुए मंत्रके अनुसार न चलनेवाले राजाको कोई वडी भारी और सदा टिकनेवाली संपदा प्राप्त नहीं होती उसीप्रकार आलोचना करनेपर भी यदि गुरुके दिये हुए प्रायश्चित्तको न करे तो भी उसे सबसे भारी और सदा टिकनेवाली मोक्षरूप संपदा नहीं मिलती। आलोचना करनेपर हृदयमें आया हुआ जो प्रायश्चित्त है वह मजे हुए दर्पणमें प्राप्त हुए रूपके समान बहुत अच्छा शोभायमान होता है। भावार्थ—प्रायश्चित्त करनेसे सब व्रत निर्मल शोभायमान होते हैं।

आस्थितानां योगानां धर्मकथादिव्याक्षेपहेतुसन्निधानेन विस्मरणे सत्यालोचनं पुनरनुष्ठाय कस्य संवेगनिर्वेदपरस्य गुरुविरहितस्याल्पापराधस्य पुनर्न करोमि मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमादिभिर्दोषान्निवर्तनं प्रतिक्रमणं ।

किंचित्कर्माऽऽलोचनमात्रादेव शुद्ध्यत्यपरं प्रतिक्रमणेनेतरं दुःस्वप्नादिकं तदुभयसंसर्गेण शुद्धिमुपयाति । आलोचनप्रतिक्रमणपूर्वं गुरुणाऽभ्यनुज्ञातं शिष्येणैव कर्तव्यं तदुभयं पुनर्गुरुणैवानुष्ठेयं ।

संसक्तेषु द्रव्यक्षेत्रान्नपानोपकरणादिषु दोषान्निवर्तयितुमलभमानस्य तद्द्रव्यादिविभजनं निवेकः । अथ वा शक्त्यनवगूहनेन प्रयत्नेन परिहरतः कुतश्चित्कारणादप्रासुकग्रहणग्राहणयोः प्रासुकस्यापि प्रत्याख्यातस्य विस्मरणात्प्रतिग्रहे च स्मृत्वा पुनस्तदुत्सर्जनं विवेकः ।

धर्मकथा आदिमें कोई विघ्नके कारण उपस्थित हो जानेपर यदि कोई मुनि अपने स्थिर योगोंको भूलजाय तो वे पहिले आलोचना करते हैं और फिर वे यदि संवेग वैराग्यमें तत्पर रहें गुरु समीपमें न हो तथा छोटासा अपराध लगा हो तो " मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा यह मेरा पाप मिथ्या हो " इसप्रकार दोषोंसे अलग रहना प्रतिक्रमण कहलाता है।

कोई कर्म केवल आलोचना करनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं, कोई अकेले प्रतिक्रमणसे ही शुद्ध हो जाते हैं और दुःस्वप्न आदि कितने ही दोष तदुभय अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण दोनोंके संबंधसे शुद्ध होते हैं । प्रतिक्रमण आलोचना पूर्वक ही होता है और गुरुकी आज्ञानुसार शिष्य स्वयं उसे करलेता है परंतु तदुभय गुरुके द्वारा ही किया जाता है।

किसी मुनिका हृदय किसी द्रव्य क्षेत्र अन्न पान अथवा उपकरणमें आसक्त हो और किसी दोषको दूर करनेके लिये गुरु उन मुनिको वह पदार्थ प्राप्त न होने दें उस पदार्थको उन मुनिसे अलग करलें तो वह विवेक नामका प्रायश्चित्त कहलाता है। अथवा अपनी शक्तिको न छिपाकर प्रयत्न पूर्वक जीवोंकी बाधा दूर करते हुए भी किसी कारणसे अप्रासुक पदार्थ को ग्रहण कर लें अथवा जिसका त्याग कर चुके हैं ऐसे प्रासुक पदार्थको भी भूलकर ग्रहण

दुःस्वप्नदुश्चिन्तनमलोत्सर्जनाऽऽगमातीचारनदीमहाटवीरणादिभिरन्यैश्चाप्यतीचारे सति ध्यानमवलंब्य कायमुत्सृज्यान्तर्मुहूर्तदिवसपक्षमासादिकालावस्थानं व्युत्सर्ग इत्युच्यते ।

सत्वादिगुणालंकृतेन कृतापराधेनोपवासैकस्थानाचाम्लनिर्विकृत्यादिभिः क्रियमाणं तप इत्युच्यते । भयोन्मादत्वरणविस्मरणानवबोधाशक्तिव्यसनादिभिर्महाव्रतातीचारे सत्यनन्तरोक्तषड्विधप्रायश्चित्तं भवति । चिरप्रव्रजितस्य सहजबलस्य स्वभावशूरस्य गर्वितस्य कृतदोषस्य दिवसमासादिभागेन प्रव्रजनं छित्वा छिन्नकालादिनाऽवस्था छेदो नाम ।

करलें और फिर स्मरण हो आनेपर उन सबका त्याग कर दें तो वह भी विवेक प्रायश्चित्त कहलाता है।

कोई दुःस्वप्न हो जाय, किसीका बुरा चिंतवन हो जाय, मल छूट जाय, आगममें अतिचार लगजाय अथवा नदी, महावन युद्ध और अन्य किसी कारणसे आतिचार लगजाय तो ध्यान लगाकर और शरीरसे ममत्व छोडकर अन्तर्मुहूर्ततक एक दिनतक पंद्रहादिनतक वा एक महीनेतक ज्योंके त्यों खडे रहना अथवा बैठे रहना व्युत्सर्ग कहलाता है।

जो शारीरिक वा मानसिक बल आदि गुणोंसे परिपूर्ण हैं और जिनसे कुछ अपराध हुआ है ऐसे मुनि उपवास, एकाशन, आचाम्ल, निर्विकृत्य (दूध आदि रसोंसे राहित) आदिके द्वारा जो तपश्चरण करते हैं उसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं। भय, उन्माद, शीघ्रता, भूल, अज्ञान, शक्तिहीनता और व्यसनादिके द्वारा महाव्रतोंमें अतीचार लगनेपर ऊपर कहे हुए आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेकव्युत्सर्ग और तप ये छहो प्रकारके प्रायश्चित्त होते हैं।

जो साधु बहुत दिनके दीक्षित हैं, स्वाभाविक बलशाली हैं, स्वभावसे ही शूरवीर हैं और बडे अभिमानी हैं परंतु जिनसे कुछ अपराध हो चुका है ऐसे मुनियोंकी एक दिनकी दीक्षा अथवा एक महीनेकी वा अधिक दिनोंकी दीक्षा कम कर देना और फिर उनकी दीक्षा कम

पार्श्वस्थादीनां मूलं प्रायश्चित्तं, तद्यथा–पार्श्वस्थः, कुशीलः, संसक्तः, अवसन्नः, मृगचारित्र इति। तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः। क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्यानयकारी कुशीलः। मंत्रवैद्यकज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः। जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसोऽवसन्नः। त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छन्दविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छन्द इति वा। एते पंच श्रमणा जिनधर्मबाह्याः। एवमुक्तपार्श्वस्थादिपंचविधोन्मार्गस्थितस्यापरिमितापराधस्य [सर्वं पर्यायमपहाय पुनर्दीक्षादानं मूलमित्युच्यते।

कर देनेके बाद जितने दिनोंकी दीक्षा कायम रहती है उतने ही दिनोंके दीक्षित मुनियोंके साथ रखना छेद नामक प्रायश्चित्त है।

पार्श्वस्थ आदि मुनियोंके लिये मूल नामका प्रायश्चित्त होता है वही आगे दिखलाते हैं–पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न, और मृगचारित्र ये पांच प्रकारके मुनि जिनधर्मसे वहिष्कृत होते हैं। जो मुनि वसतिकाओंमे रहते हैं, उपकरणोंसे ही अपनी जीविका चलाते हैं, परंतु मुनियोंके समीप रहते हैं उन्हें पार्श्वस्थ कहते हैं। जिनका आत्मा क्रोधादि कषायोंसे कलुषित है जो व्रत गुण तथा शील पालन करनेसे रहित हैं और जो संघका बुरा करनेवाले हैं उनको कुशील कहते हैं। जो मंत्र वैद्यक वा ज्योतिषशास्त्रसे अपनी जीविका करते हैं और राजा आदिकोंकी सेवा करते हैं उन्हें संसक्त कहते हैं। जो जिनवचनोंको जानते तक नहीं, जिन्होंने चारित्रका भार सब छोड दिया है, जो ज्ञान और चारित्र दोनोंसे भ्रष्ट हैं और चारित्रके पालन करनेमें आलस करते हैं उन्हें अवसन्न कहते हैं। जिन्होंने गुरुका संघ छोड दिया है जो अकेले ही स्वच्छंद रीतिसे विहार करते हैं और जो जिनेंद्र देवके वचनोंको दूषित करनेवाले हैं उनको मृगचारित्र अथवा स्वच्छंद कहते हैं ये पांचों ही मुनि जिनधर्मसे वाह्य हैं। ये ऊपर कहे हुए पांचों प्रकारके पार्श्वस्थ आदि मुनि मिथ्यामार्गमें रहते हैं और अपरिमित

परिहारोऽनुपस्थानपारंचिकभेदेन द्विविधः। तत्राऽनुपस्थानं निजपरगणभेदाद् द्विविधं। प्रमादादन्यमुनिसंबंधिनमृषिं छात्रं गृहस्थं वा परपाखंडिप्रतिबद्धचेतनाचेतनद्रव्यं वा परस्त्रियं वा स्तेनयतो मुनीन् प्रहरतो वाऽन्यदप्येवमादिविरुद्धाचरितमाचरतो नवदशपूर्वधरस्यादित्रिकसंहननस्य जितपरीषहस्य दृढधर्मिणो धीरस्य भवभीतस्य निजगुणानुपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवति। तेन ऋष्याश्रमाद् द्वात्रिंशद्दंडान्तरं विहितविहारेण बालमुनीनपि वंदमानेन प्रतिवन्दनाविरहितेन गुरुणा सहाऽऽलोचयता शेषजनेषु कृतमौनव्रतेन विधृतपराङ्मुखपिच्छेन जघन्यतः पंचपचोपवासा उत्कृष्टतः षण्मासोपवासाः कर्त-

अपराध करते हैं इसलिये उनकी मुनि अवस्थाकी सब पर्यायका त्याग कर अर्थात् उनकी समस्त दीक्षाका छेदकर फिरसे दीक्षा देना मूल नामका प्रायश्चित्त कहलाता है ।

परिहारनामक प्रायश्चित्त अनुपस्थान और पारंचिक भेदसे दो प्रकारका है । उसमें अनुपस्थान भी निजगण और परगणके भेदसे दो प्रकारका है । प्रमादसे अन्य मुनि संबंधी ऋषि, विद्यार्थी, गृहस्थ वा दूसरे पाखंडीके द्वारा रोके हुए चेतनात्मक वा अचेतनात्मक द्रव्य अथवा परस्त्री आदिको चुरानेवाले, मुनियोंको मारनेवाले अथवा और भी ऐसे ही ऐसे विरुद्ध आचरण करनेवाले परंतु नौ वा दश पूर्वोंके जानकार, पहिले तीन संहननोंको धारण करनेवाले, परीषहोंको जीतनेवाले, धर्ममें दृढ रहने वाले, धीर वीर और संसारसे डरनेवाले मुनियोंके निजगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है । जिनको यह प्रायश्चित्त दिया जाता है वे मुनियोंके आश्रमसे बत्तीस दंडके अंतरसे बैठते हैं, बालक मुनियोंको (कम उम्रके अथवा थोडे दिनके दीक्षित मुनियोंको) भी वे बंदना करते हैं परंतु बदलेमें कोई मुनि उन्हें बंदना नहीं करता, वे गुरुके (आचार्यके) साथ सदा आलोचना करते रहते हैं, शेषलोगोंके साथ वे बात चीत नहीं करते, मौनव्रत धारण किये रहते हैं, अपनी पीछीको उल्टी रखते हैं, कमसे कम पांच पांच उपवास और अधिकसे अधिक छह छह महीने तकके उपवास करते रहते हैं और इस प्रकार दोनों प्रकारके उपवास बारह वर्ष तक करते हैं। यह निजगणानुपस्थापन प्रायश्चित्त है।

र्या:, उभयमप्याद्वादशवर्षादिति । दर्पादनन्तरोक्तान्दोषानाचरतः परगणोपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवतीति । स सापराधः स्वगणाचार्येण परगणाचार्यं प्रति प्रहेतव्यः, सोऽप्याचार्यस्तस्यालोचनमाकर्ण्य प्रायश्चित्तमदत्त्वाऽऽचार्यांतरं प्रस्थापयति, सप्तमं यावत् पश्चिमश्च प्रथमाऽऽलोचनाऽऽचार्यं प्रति प्रस्थापयति, स एव पूर्वः पूर्वोक्तप्रायश्चित्तेनैनमाचरयति ।

परिहारस्य प्रथमभेदो द्विविधो गतः । पारंचिकमुच्यते, तीर्थंकरगणधरगणिप्रवचनसंघाद्यासादनकारकस्य नरेन्द्रविरुद्धाचरितस्य राजानमभिमतामा-

जो अभिमानसे ऊपर लिखे दोषोंको करते हैं उनके परगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है । उसकी क्रिया यह है कि अपने संघके आचार्य ऐसे अपराधीको दूसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं, वे दूसरे संघके आचार्य भी उनकी आलोचना सुनकर प्रायश्चित्त दिये विना ही किसी तीसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं इसीप्रकार सातसंघोंके आचार्योंके समीप उन्हें भेजते हैं अंतके अर्थात् सातवें संघके आचार्य उन्हें पहिले आलोचना सुननेवाले आचार्यके समीप भेजते हैं तब वे पहिले ही आचार्य उन्हें ऊपर लिखा हुआ (निजगणानुपस्थापनमें लिखा हुआ) प्रायश्चित्त देते हैं इसप्रकार निजगणानुपस्थापन और परगणानुपस्थापन ये दोनों ही परिहारके भेद कहे । अब पारंचिक नामके परिहारको कहते हैं । जो मुनि तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, शास्त्र और संघ आदिकी झूठी निंदा करनेवाले हैं, राज्यविरुद्ध आचरण करते हैं, जिन्होंने किसी राजाको माननेवाले अथवा किसी राजाको प्रिय ऐसे मंत्री आदिको दीक्षा दी है जिन्होंने राजकुलकी स्त्रियोंका सेवन किया है अथवा ऐसे ही ऐसे अन्य दोषोंके द्वारा जिन्होंने धर्ममें दोष लगाया है ऐसे मुनियोंके पारंचिक प्रायश्चित्त होता है । उसकी क्रिया यह है कि आचार्य पहिले चारो प्रकारके मुनियोंके संघको इकट्ठा करते हैं और फिर उस अपराधी मुनिको बुलाकर घोषणा करते हैं कि यह मुनि महा पापी है अपने मतसे बाह्य है इसलिये बं-

त्यादीनां दत्तदीक्षस्य नृपकलत्रवनितासेवितस्यैवमाद्यन्यैर्दोषैश्च धर्मदूषकस्य पारंचिकं प्रायश्चित्तं भवति । चातुर्वर्ण्यश्रमणाः संघं संभूय तमाहूय एष महापातकी समयवाह्यो न वंद्य इति घोषयित्वा दत्वाऽनुपस्थानं प्रायश्चित्तं देशान्निर्घाटयन्ति ।

मिथ्यात्वं गत्वा स्थितस्य पुनरपि गृहीतमहाव्रतस्याऽऽप्ताऽऽगमपदार्थानां श्रद्धानमेव प्रायश्चित्तं, तदेतद्दशविधं, देशकालशक्तिसंयमाद्यविरोधेनाल्पानल्पापराधानुरूपं दोषप्रशमनं चिकित्सितवद्विधेयं । जीवस्याऽसंख्येयलोकमात्रपरिमाणाः परिमाणविकल्पा अपराधाश्च तावंत एव न तेषां तावद्विकल्पं प्रायश्चित्तमस्ति व्यवहारनयापेक्षया पिंडीकृत्य प्रायश्चित्तविधानमुक्तं ।

कषायेन्द्रियविनयनं विनयः, अथवा रत्नत्रयस्य तद्वता च नीचैर्वृत्तिर्विनयः, स चतुःप्रकारः । ज्ञानविनयो दर्शनविनयश्चारित्रविनय उपचारविनय-

दना करनेके अयोग्य है इसप्रकार घोषणाकर तथा अनुपस्थान नामका प्रायश्चित्त देकर उसे देशसे निकाल देते हैं।

जिन्होंने अपना मिथ्यात्व छोड दिया है, महाव्रत धारण कर लिये हैं और आप्त आगम पदार्थोंका श्रद्धान कर लिया है उनके श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त कहा जाता है। इसप्रकार दश प्रकारका प्रायश्चित्त कहा। देश, काल, शक्ति, और संयममें किसी तरहका विरोध न आने पावे और छोटा बडा जैसा अपराध हो उसके अनुसार वैद्यके समान दोषोंका शमन करना चाहिये। प्रत्येक जीवके परिणामोंके भेदोंकी संख्या असंख्यातलोक मात्र है, और अपराधोंकी संख्या भी उतनी ही है परंतु प्रायश्चित्तके उतने भेद नहीं कहे हैं। प्रायश्चित्तके ऊपर लिखे भेद तो केवल व्यवहार नयकी अपेक्षासे समुदायरूपसे कहे गये हैं।

कषाय और इंद्रियोंको नम्र करना विनय है अथवा रत्नत्रय और रत्नत्रयको धारण करनेवालेके प्रति अपनी नम्र वृत्ति रखना उनके साथ उद्धतपना न करना, नम्रतासे रहना विनय है। वह विनय चार प्रकार है—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय। जो आलस रहित है जिसका मन शुद्ध है और जो देश काल आदिकी विशुद्धिके भेद प्रभेद जान-

श्चेति । तत्राऽनलसेन शुद्धमनसा देशकालादिविशुद्धिविधानविचक्षणेन सबहुमानेन याथशक्ति निषेव्यमाणो मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः। सामायिकादौ लोकविन्दुसारपर्यंते श्रुतसमुद्रे ये यथा भगवद्भिरुपदिष्टाः पदार्थास्तेषां तथाश्रद्धाने निःशंकितत्वादिलक्षणोपेतता दर्शनविनयः। ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यवतो दुश्चरचरणश्रमणानतरमुद्भिन्नरोमाचाभिव्यज्यमानान्तर्भक्तेः पर प्रसादमस्तकाञ्जलिकरणादिभिर्भावयतश्चानुष्ठातृत्वं चारित्रविनयः। उपचारविनयो द्विविधः, प्रत्यक्षः परोक्ष इति। तत्राऽऽचार्योपाध्यायस्थविरप्रवर्तकगणधरादिषु पूजनीयेष्वभ्युत्थानमभिगमनमंजलिकरणं वंदनाऽनुगमनं रत्नत्रयबहुमानः सर्वकालयोग्यानुरूपक्रिययाऽनुलोमता सुनिगृहीतत्रिदंडता सुशीलयोगता धर्मानुरूपकथा कथनश्रवणभक्तिताऽर्हदायतनगुरुभक्तितादोषवर्द्धजनं गुण-

नेमें चतुर है ऐसा पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार आदर सत्कार पूर्वक मोक्षके लिये ज्ञानका ग्रहण करना अभ्यास करना स्मरण करना आदि रीतिसे ज्ञानकी सेवा करता है उसे ज्ञान विनय कहते हैं। सामायिकसे लेकर लोकविंदुसार पर्यंत श्रुतज्ञानरूपी महासागरमें भगवान जिनेंद्रदेवने जो पदार्थोंका स्वरूप कहा है उनका उसीप्रकार श्रद्धान करना, तथा निःशंकित आदि आठो अंगोंका पालन करना दर्शन विनय है। जो ज्ञान दर्शन चारित्र तप और वीर्य इन पांचों आचारोंका पालन करते हैं बडे बडे कठिन चारित्रको सुनकर भी रोमांच प्रगट हो जानेसे जिनके अंतरंगकी भक्ति बाहर प्रगट हो रही है और प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोडकर मस्तक नवाकर भावना करते हैं ऐसे मुनि जो चारित्रका पालन करते हैं उसे चारित्र विनय कहते हैं। उपचार विनय दो प्रकारका है एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध साधु, उपदेशादि देकर जिनमतकी प्रवृत्ति करनेवाले गणधरादिक तथा और भी पूज्य पुरुषोंके आनेपर खडे होना, उनके सामने जाना, हाथ जोडना, बंदना करना, चलते समय उनके पीछे पीछे चलना, रत्नत्रयका सबसे अधिक आदर सत्कार करना, समस्त कालके योग्य अनुरूप क्रियाके अनुकूल चलना, मन वचन काय तीनों योगोंका निग्रह करना, सुशीलता धारण करना, धर्मानुकूल कथाओंका कहना सुनना तथा भक्ति रखना, अरहंत जिनमंदिर

वृद्धसेवाऽभिलाषाऽनुवर्तनं पूजनं । यदुक्तं—"गुरुस्थविरादिभिर्नान्यथा तदित्यनिशं भावनं धर्मेष्वनुत्सेको हीनेष्वपरिभवः जातिकुलधनैश्वर्यरूपविज्ञानबललाभर्द्धिषु निरभिमानता सर्वत्र क्षमापरता मितहितदेशकालाऽनुगतवचनता कार्याकार्यसेव्यासेव्यवाच्यावाच्यज्ञातृता इत्येवमादिभिरात्मानुरूपः प्रत्यक्षोपचारविनयः।" परोक्षोपचारविनय उच्यते, परोक्षेष्वप्याचार्यादिष्वंजलिक्रियागुणसंकीर्तनानुस्मरणाऽऽज्ञानुष्ठायित्वादिः कायवाङ्मनोभिरवगन्तव्यः रागप्रहस-

और गुरुमें भक्ति रखना, दोषोंका वा दोषियोंका त्याग करना, गुणोंसे वढे हुए मुनियोंकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखना उनके अनुकूल चलना और उनकी पूजा करना प्रत्यक्ष उपचार विनय है। कहा भी है " वृद्ध मुनियोंके साथ अथवा गुरुके साथ कभी भी प्रतिकूल न होनेकी सदा भावना रखना, बराबरवालोंके साथ कभी अभिमान न करना, हीन लोगोंका कभी तिरस्कार न करना, जाति, कुल, धन, ऐश्वर्य, रूप, विज्ञान, वल, लाभ और ऋद्धियोंमें कभी अभिमान न करना, सब जगह क्षमा धारण करनेमें तत्पर रहना, थोडे, हितरूप, और देश काल-के अनुसार वचन कहना, कार्य अकार्य, सेव्य असेव्य, (सेवन और न सेवन करने योग्य) तथा कहने और न कहने योग्यका ज्ञान होना इत्यादि क्रियाओंके द्वारा अपने आत्माको प्रवृत्त करना प्रत्यक्ष उपचार विनय है।" अब आगे परोक्ष उपचार विनयको कहते हैं। आचार्य आदिके परोक्ष रहते हुए भी मन वचन कायसे उनके लिए हाथ जोडना, उनके गुणोंका वर्णन करना स्मरण करना और उनकी आज्ञा पालन करना आदि परोक्षोपचार विनय है। राग पूर्वक वा हंसी पूर्वक अथवा भूलकर भी कभी किसीकी पीठका मांस भक्षण नहीं करना चाहिए अर्थात् पीछे कभी किसीकी बुराई वा निंदा नहीं करनी चाहिए। यह सब परोक्षोपचार विनय कहलाता है। जिनके हृदयमें मंत्र औषधि उपकरण यश सत्कार और लाभ आदिकी अपेक्षा नहीं है जिनकी बुद्धि वास्तवमें निस्पृह है। जिनके इस लोक सम्बन्धी फलकी इच्छा विल्कुल नहीं है और जो केवल कर्मोंको नाश करनेकी इच्छा रखते हैं उन्हें ज्ञानका लाभ होने

नविस्मरणैरपि न कस्यापि पृष्ठमांसभक्षणकरणीयमेवमादिः परोक्षोपचारविनयः प्रत्येतव्यः । मंत्रौषधोपकरणयशःसत्कारलाभाद्यनपेक्षितचित्तेन परमार्थविस्पृहमतिनैहलौकिकफलनिरुत्सुकेन कर्मक्षयकांक्षिणा ज्ञानलाभाऽऽचारविशुद्धिसम्यगाराधनादिसिद्ध्यर्थं विनयभावनं कर्तव्यं ।

वैयावृत्त्यमुच्यते । कायपीडादुष्परिणामव्युदासार्थं कायचेष्टया द्रव्यांतरेणोपदेशेन च व्यावृत्तस्य यत्कर्म तद्वैयावृत्त्यं । तद्दशविधं, आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञवैयावृत्त्यभेदेन । यस्मात् सम्यग्ज्ञानादिपंचाचाराधारादाहृत्य व्रतानि स्वर्गापवर्गसुखकल्पकुजबीजानि भव्या आत्महितार्थमाचरन्ति स आचार्यः । विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाऽधिष्ठानादागमं श्रुताभिधानमधीयते स उपाध्यायः । आचाम्लवर्द्धनसर्वतोभद्रसिंहनि-

केलिए, आचरणोंकी विशुद्धता होनेके लिए और आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन करनेके लिए तथा ऐसे ही ऐसे और भी श्रेष्ठ कार्योंके लिए विनय करनेकी भावना रखनी चाहिए। इस विनयको धारण करनेसे मोक्षका द्वार खुला रहता है।

अब आगें वैयावृत्यको कहते हैं। शरीरकी पीडा अथवा दुष्ट परिणामोंको दूर करनेकेलिये शरीरकी चेष्टासे, किसी अन्य द्रव्यसे, अथवा उपदेश देकर प्रवृत्त होना अथवा कोई भी क्रिया करना वैयावृत्य है। वह वैयावृत्य आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ साधु, और मनोज्ञकी सेवा चाकरीके भेदसे दश प्रकारका होता है। भव्य पुरुष अपने आत्माका कल्याण करनेके लिये सम्यग्ज्ञान आदि पंचाचारोंके आधाररूप जिन आचार्योंसे स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाले कल्पवृक्षके वीजरूप व्रतोंको लेकर आचरण करते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं। व्रत शील और भावनाके आधाररूप जिन मुनिसे श्रुतज्ञान रूपी आगमका अध्ययन करते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं। आचाम्लवर्द्धन, सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित, शतकुंभ, मंदरपंक्ति, विमानपंक्ति, नंदीश्वरपंक्ति, जिनगुणसंपत्ति, श्रुतज्ञान, कनकावली, मुक्तावली, मृदंगमध्य, वज्रमध्य, कर्मक्षपण, और त्रैलोक्यसार आदि महाउपवास करनेवाले तपस्वी कहलाते हैं। जो श्रुतज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेमें तत्पर हैं, और व्रत भावनाओंके पालन करनेमें निपुण हैं

क्रीडितशातकुंभमन्दरपंक्तिविमानपंक्तिनन्दीश्वरपंक्तिजिनगुणसंपत्तिश्रुतज्ञानकनकावलिमुक्तावलिमृदंगमध्यवज्रमध्यकर्मक्षपणत्रैलोक्यसारादिमहोपवासानुष्ठायी तपस्वी। श्रुतज्ञानशिक्षणपरोऽनुपरतव्रतभावनानिपुणः शैक्षः। रुजादिभिः क्लिष्टशरीरो ग्लानः। स्थविराणां सन्ततिर्गणः। दीक्षकस्याऽऽचार्यस्य शिष्यस्याऽऽम्नायः कुलं। चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवहः संघः। चिरकालभावितप्रव्रज्यागुणः साधुः। अभिरूपो मनोज्ञः, आचार्याणां संमतो वा दीक्षाभिमुखो वा मनोज्ञ, अयं वा विद्वान् वाग्मी महाकुलीन इति यो लोकस्य संमतः स मनोज्ञस्तस्य ग्रहणं प्रवचनस्य लोके गौरवोत्पादनहेतुत्वादसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा संस्कारोपेतरूपत्वान्मनोज्ञः। आचार्यादीनां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते सत्प्रत्युपकाराशया प्रासुकौषधभुक्तिपानाऽऽश्रयपीठफलकसंस्तरादिभिर्धर्मा-

उन्हें शैक्ष कहते हैं। रोगादिके द्वारा जिनका शरीर क्लेशित है उन्हें ग्लान कहते हैं। वृद्ध मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं। दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंकी परंपराको कुल कहते हैं। ऋषि मुनि यति अनगार इन चारो प्रकारके मुनियोंके समुदायको संघ कहते हैं। जो बहुत दिनके दीक्षित हों उन्हें साधु कहते हैं। जो सुंदर हों उन्हें मनोज्ञ कहते हैं अथवा जो आचार्यको मान्य हो अथवा दीक्षा लेनेके संमुख हो उसे मनोज्ञ कहते हैं अथवा जो विद्वान हो, वक्ता हो, महाकुलीन हो इसप्रकार लोकमें जो मान्य हो उसे मनोज्ञ कहते हैं। मनोज्ञ ग्रहण करनेका यह भी अभिप्राय है कि संसारमें जो अपने मतका गौरव उत्पन्न करनेका कारण हो ऐसा असंयत सम्यग्दृष्टी भी मनोज्ञ कहलाता है। अथवा जो संवेगादिक संस्कार सहित हैं उन्हें भी मनोज्ञ कहते हैं। ऊपर लिखे हुए आचार्य आदिके व्याधि परीषह आजानेपर अथवा मिथ्यात्वका सम्बन्ध हो जानेपर विना किसी प्रत्युपकारकी इच्छाके प्रासुक औषध, भोजन, पान, आश्रय, आसन, काष्ठासन विछौना आदि धर्मोपकरणोंके द्वारा उस व्याधि वा परीषहको दूर करना मिथ्यात्वको दूर करना, सम्यग्दर्शन स्थापन करना आदि वैयावृत्य कहलाता है। यदि औषध भोजन पान आदि वाह्य सामाग्रियोंका मिलना असंभव हो तो अपने शरीरके द्वारा कफ नाकका मल तथा अंतर्मल आदिको दूर करना और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना

पकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादि वैयावृत्यं । बाह्यस्यौषधभुक्तिपानादेरसंभवे स्वकायेन श्लेष्मसिंघाणकांतर्मलापकर्षणादि तदानुकूल्यानुष्ठानं च वैयावृत्यमिति कथ्यते, तत्पुनः किमर्थं समाध्याध्यानं विचिकित्साऽभावः प्रवचनवात्सल्यं सनाथता चेत्येवमाद्यर्थं ।

स्वाध्यायो भण्यते । स्वस्मै हितोऽध्यायः स्वाध्यायः, स च वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशभेदेन पंचविधः । तत्र निरपेक्षात्मना मुमुक्षुणा विदितवेदितव्येन निरवद्यस्य ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य वा पात्रं प्रति प्रतिपादनं वाचनेत्युच्यते । आत्मोन्नतिप्रकटनार्थं पराभिसंधनार्थमुपहाससंघर्षप्रहसनादिवर्जितः संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य परं प्रति पर्यनुयोगः पृच्छना । अधिगतपदार्थप्रक्रियस्य तप्तायःपिंडवदर्पित-

वैयावृत्य कहलाता है। समाधि, ध्यान, विचिकित्सा (ग्लानि) का अभाव साधर्मियोंके साथ प्रेमभाव और सबको सनाथ बनाये रखनेके लिये वैयावृत्य किया जाता है।

अब आगे स्वाध्यायको कहते हैं। अपने आत्माका हित करनेवाला अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वह स्वाध्याय वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेशके भेदसे पांच प्रकारका होता है। जिसकी आत्मामें किसी तरहकी अपेक्षा नहीं है, जो केवल मोक्षकी इच्छा रखता है और जानने योग्य सब विषय जिसे मालूम हैं ऐसे किसी मनुष्य वा मुनिके द्वारा किसी योग्य पात्रके लिए निर्दोष ग्रंथ अथवा अर्थ अथवा ग्रंथ (पाठ) अर्थ दोनों ही प्रतिपादन करना वाचना है। अपने आत्माकी उन्नति प्रकाशित करनेके लिए अथवा अन्य किसीको समझानेके लिए उपहास, संघर्ष, प्रहसन आदिको (हंसी मजाक आदिको) छोडकर संशय दूर करनेके लिए अथवा स्वयं पदार्थका स्वरूप निश्चय करनेके लिए कोई ग्रंथ (पाठ) अर्थ अथवा ग्रंथ अर्थ दोनों ही किसी दूसरेसे पूछना पृच्छना कहलाती है। जिन्हें पदार्थोंकी प्रक्रियाएं सब मालूम हैं और तपाये हुए लोहेके गोलेके समान जिनका चित्त उन्हीं पदार्थोंमें लगा हुआ है ऐसे मुनि जो उन पदार्थोंको अपने मनमें बार बार चिंतवन करते हैं उसको अनुप्रेक्षा कहते हैं। व्रती सब समाचारोंको (श्रेष्ठ आचरणोंको) जाननेवाले और इसलोक

चेतसो मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा । व्रतिनो विदितसमाचारस्यैहलौकिकफलनिरपेक्षस्य द्रुतविलम्बितपदाक्षरच्युतादिघोषदोषविशुद्धं परिवर्तनमाम्नायः । दृष्टप्रयोजनपरित्यागादुन्मार्गनिवर्तनार्थं सन्देहव्यावर्तनार्थमपूर्वपदार्थप्रकाशनार्थं धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः । किमर्थोऽयं स्वाध्याय', प्रज्ञातिशय' प्रशस्ताध्यवसायः प्रवचनस्थिति', संशयोच्छेदः, परवादिशंकाऽभावः, प्रभावना, परमसंवेगः, तपोवृद्धिः, अतीचारविशुद्धिः, कषायेन्द्रियजयः, परमोपायः, इत्येवमाद्यर्थं स्वाध्यायोऽनुष्ठेयः ।

कायोत्सर्ग उच्यते । विविधाना वाह्याभ्यन्तराणां बन्धहेतूना दोषाणामुत्तमस्त्यागो व्युत्सर्गः । आत्मनाऽनुपात्तस्यैकत्वमनापन्नस्याहारादेस्त्यागो बाह्योपधिव्युत्सर्गः । क्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वहास्यरत्यरतिशोकभयादिदोषनिवृत्तिराभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः, कायत्यागश्चाऽभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः । स द्वि-

संबंधी फलकी अपेक्षासे रहित मुनिका शीघ्रता वा धीरताके कारण पद वा अक्षरोंका छूट जाना आदि घोकनेके दोषोंसे रहित शुद्ध पाठका बार बार वांचना वा घोकना आवृत्ति करना आम्नाय कहलाता है। किसी प्रत्यक्ष प्रयोजनका त्यागकर मिथ्यामार्गको दूर करनेके लिए किसी संदेहको दूर करनेके लिए अथवा अपूर्व पदार्थोंको प्रकाशित करनेके लिए धर्मकथा आदिका कहना उपदेश देना धर्मोपदेश है । यह स्वाध्याय, बुद्धिको बढाना, श्रेष्ठज्ञान प्राप्त करना, शास्त्रज्ञानको स्थिर रखना, संशयोंको दूर करना, परवादियोंकी शंकाका निरास करना, जिनमतकी प्रभावना करना, परम वैराग्य धारण करना, तपकी वृद्धि करना, अतीचारोंकी विशुद्धि करना, कषाय तथा इंद्रियोंको जीतना, और परम मोक्षका उपाय करना आदि कार्योंके लिए सदा करते रहना चाहिए ।

अब आगे कायोत्सर्ग कहते हैं। अनेक तरहके वाह्य तथा आभ्यंतर बंधके कारणरूप दोषोंका उत्तम रीतिसे त्याग करना व्युत्सर्ग है। जिसे आत्मा स्वयं ग्रहण नहीं करता और न जो आत्माके साथ मिलकर एक रूप होता है ऐसे आहार आदिका त्याग करना बाह्योपधि व्युत्सर्ग है। क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व हास्य रति अरति शोक और भय आदि दोषोंको

विधः। यावज्जीवं, नियतकालश्चेति। तत्र यावज्जीवं त्रिविधः। भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीमरणप्रायोपगमनभेदात्। तत्र भक्तप्रत्याख्यानं जघन्येनान्तर्मुहूर्त- मुत्कृष्टेन द्वादशवर्षाणि, अवान्तरो मध्यम उभयोपकारसापेक्षं भक्तप्रत्याख्यानमरणं। परप्रतीकारनिरपेक्षमात्मोपकारसापेक्षमिंगिनीमरणं। उभयोपकार- निरपेक्षं प्रायोपगमनं। नियतकालो द्विविधः, नित्यनैमित्तिकभेदेन। नित्य आवश्यकादयः। नैमित्तिकः पार्वणी क्रिया निषद्याक्रियादयश्च। क्रियाकरणे वन्दनायाः कायोत्सर्गस्य च द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति। तत्र बन्दनाया अनादृतं, स्तब्धं, प्रविष्टं, परपीडितं, दोलायितं, उन्मस्तकं, कच्छपरंगितं, मत्स्योद्वर्तनं, मनोदुष्ट, वेदिकाबंधं, भेष्यत्वं, भीषितं, ऋद्धिगौरवं, शेषगौरवं, स्तेनितं, प्रत्यनीकं, क्रोधादिशल्यं, तर्जितं, शब्दितं, हेडितं, त्रिवलितं, कुंचितं

दूर करना अभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। शरीरका त्याग करना भी आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। वह दो प्रकारका है एक जीवनपर्यंत तक और दूसरा किसी नियतसमयतक। उसमें भी जीवनपर्यंत तकका अभ्यंतरोपाधि व्युत्सर्ग भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनीमरण और प्रायोपगमनके भेदसे तीन प्रकारका है। उसमें भी भक्तप्रत्याख्यानका जघन्यसमय अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट बारह वर्ष है और अवांतरके भेदरूपसमय सब मध्यम हैं। स्वपर दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा रखकर जो मरण किया जाता है वह भक्तप्रत्याख्यानमरण है। जिसमें दूसरेके प्रतिकारकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्माके उपकारकी अपेक्षा हो उसे इंगिनीमरण कहते हैं। जिसमें दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा न हो उसे प्रायोपगमन कहते हैं। नियतकाल भी नित्य नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। आवश्यक आदि क्रियाओंका करना नित्य है, तथा पर्वके दिनोंमें होनेवाली क्रियाएं करना वा निषद्या क्रिया आदि करना नैमित्तिक है। क्रियाओंके करनेपर भी बंदना और कायोत्सर्गके बत्तीस बत्तीस दोष होते हैं। उनमेंसे बंदनाके अनादृत, स्तब्ध, प्रविष्ट, परपीडित, दोलायित, उन्मस्तक, कच्छपरंगित, मत्स्योद्वर्तन, मनोदुष्ट, वेदिका बंध, भेष्यत्व, भीषित, ऋद्धिगौरव, शेष गौरव, स्तेनित, प्रत्यनीक, क्रोधादिशल्य, तर्जित शब्दित, हेडित, त्रिवलित, कुंचित, आचार्यादिदर्शन, अदृष्ट, संघकरमोचन, आलब्ध, अना-

आचार्यादिदर्शनं, अदृष्टं, संज्ञकरमोचनं, आलब्धं, अनालब्धं, हीनं, अधिकं, मूकं, घर्घरं, चुरुलितमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति । व्युत्सृष्टबाहुयुगले चतुरंगुलान्तरितसमपादे सर्वांगचलनरहिते कायोत्सर्गेऽपि दोषाः स्युः । घोटकपादं, लतावक्रं, स्तंभावष्टंभं, कुड्याश्रितं, मालिकोद्वहनं, शवरीगुह्यगूहनं, शृंखलितं, लंबितं, उत्तरितं, स्तनदृष्टिः, काकाऽलोकनं, खलीनितं, युगकन्धरं, कपित्थमुष्टिः, शीर्षप्रकंपितं, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालनं, भ्रूक्षेपं, उन्मत्तं, पिशाचं, अष्टदिगवलोकनं, ग्रीवोन्नमनं, ग्रीवावनमन, निष्ठीवनं, अंगस्पर्शनमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति ।

क्रिया कुर्वाणो वीर्यापगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन्पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्धया संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिक-

लब्ध, हीन, अधिक, मूक, घर्घर और चुरुलित ऐसे बत्तीस दोष होते हैं । इसीप्रकार जिसमें दोनों भुजाएं लंबी छोड दीं गई हैं, चार अंगुलके अंतरसे दोनों पैर एकसे रक्खे हुए हैं और शरीरके अंग उपांग सब स्थिर हैं ऐसे कायोत्सर्गके भी बत्तीस दोष होते हैं । उनके नाम ये हैं । घोटकपाद, लतावक्र,स्तंभावष्टंभ, कुड्याश्रित, मालिकोद्वहन, शवरीगुह्यगूहन, शृंखलित, लंबित, उत्तरित, स्तनदृष्टि, काकालोकन, खलीनित, युगकंधर, कपित्थमुष्टि, शीर्षप्रकंपित, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालन, भ्रूक्षेप, उन्मत्त, पिशाच, पूर्वदिशावलोकन, आग्नेयदिशावलोकन, दाक्षिणदिशावलोकन, नैऋत्यदिशावलोकन, पश्चिमदिशावलोकन, वायव्यदिशावलोकन, उत्तर दिशावलोकन, ईशानदिशावलोकन, ग्रीवोन्नमन, ग्रीवावनमन, निष्ठीवन और अंगस्पर्शन । क्रिया करते समय अपनी शक्तिको कभी नहीं छिपाना चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार खडे होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये । यदि खडे होनेकी सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासनसे बैठकर करना चाहिये । मन वचन काय तीनोंकी शुद्धतापूर्वक दोनों हाथोंका संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओंकी प्रतिज्ञाकर सामायिक दंडकका (सामायिक पाठका) उच्चारण करना चाहिये । उससमय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारणकर एक शिरोनति करना चाहिये । इसीप्रकार सामायिक दंडकके समाप्त होनेपर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये इसतरह शास्त्रोंमें

दंडकमुच्चारयेत्; तदावर्तत्रयं यथाजातं शिरोनमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकाले जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदंडकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्तनं, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादशावर्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति । अथवैकस्मिन् प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्ताश्चतस्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणादाधिक्यमिति न दोषाय । उक्तं च—

दुउपादं जहाजादं वारसावत्तमेव च । चदुस्सिरंति सुद्धिं च किदियम्मं पउं बंदे ॥

वक्ष्यमाणक्रियाणां कालनियम उच्यते । दैवसिकस्य नियमस्याष्टोत्तरशतं, रात्रिकस्य तदर्द्धं, पाक्षिकस्य त्रिशतं, चातुर्मासिकस्य चतुःशतं सांवत्स-

लिखे हुए समयतक भगवान जिनेंद्रदेवके गुणोंका स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये इसीप्रकार दूसरे दंडकके प्रारंभ और अंतमें करना चाहिये । इसप्रकार एक एक कायोत्सर्गके बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं । अथवा एक एक प्रदक्षिणामें (दिशा बदलते समय) उसदिशासंबंधी चैत्य चैत्यालयके सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इसप्रकार चारो दिशाओंमें बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये । आवर्त और शिरोनतिका जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता । लिखा भी है । दुउपादं इत्यादि ।

अर्थात्—दो आसनोंसे यथाजात अवस्था धारणकर बारह आवर्त चार शिरोनति और मन वचन कायकी शुद्धि पूर्वक कालका नियमकर प्रभुकी बंदना करनी चाहिये ।

अब आगे कहनेवाली क्रियाओंके समयका नियम बतलाते हैं—दिनमें होनेवाले नियमका एकसौ आठ उच्छ्वास, रात्रिमें होने वाले नियमका उससे आधा अर्थात् चौउन उच्छ्वास, पाक्षिकनियमका तीनसौ उच्छ्वास, और चातुर्मासिक (चौमासेके) नियमका चारसौ उच्छ्वास और वार्षिक नियमका पांचसौ उच्छ्वास इसप्रकार पांचों नियमोंमें कायोत्सर्गका यह प्रमाण है ।

रिकस्य पंचशतं, उच्छ्वासानामेषां पंचानां नियमात्तस्य कायोत्सर्गस्य प्रमाणं । अहिंसादिपंचनियमानामन्यतमस्यातीचारे सत्येकैकस्याष्टोत्तरशतं, गोचारस्य ग्रामान्तरगमनस्याऽर्हच्छ्रमणनिषद्यानामुच्चारप्रस्रवणयोश्च पंचविंशतिः, ग्रन्थप्रारंभे परिसमाप्तौ च स्वाध्याये वन्दनायां प्रणिधाने च सप्तविंशतिः । एवमुक्तोच्छ्वासप्रमाणेन कायोत्सर्गं कृत्वा अनुत्सुकः सन् किंचित्कालं धर्म्यं शुक्लं च ध्यायेत् । नामस्थापनाद्रव्यभावसंनिधानं पुण्यपापास्रवहेतुरतः चैत्यं चैत्यालयो गुरवो निषद्यास्थानादयश्च सम्यग्दृष्टीनां क्रियार्हा भवन्ति । अचेतनात्मका व्यपगतदानबुद्धयः कल्पवृक्षचिन्तामणयो यथा च देहिनां पुण्यानुरूपेणाभिलषितार्थप्रदायिनस्तथा जिनबिंबानि, भव्यजनभक्त्यनुरूपेण गीर्वाणनिर्वाणपदप्रदायीनि गारुडमुद्रया यथा गरलापहरणं तथा चैत्यालोक-

अहिंसा आदि पांचों नियमोंमेंसे किसी एकमें अतिचार लगनेपर प्रत्येकके एकसौ आठ उच्छ्वासका गोचार अर्थात् आहारकेलिये गमनकरने एक गांवसे दूसरे गांवतक जाने अरहंत देवके पंचकल्याणक अथवा समवसरण आदि क्षेत्राकी बंदनाकेलिये तथा साधुओंके समाधिस्थानकी बंदनाकेलिये जानेके मल मूत्र करने आदि कार्योंमें पचीस उच्छ्वास कायोत्सर्गका प्रमाण है, ग्रंथके प्रारंभ और समाप्तिमें स्वाध्याय, वंदना, और प्रणिधान करते समय सत्ताइस उच्छ्वास कायोत्सर्ग करना चाहिये। इसप्रकार ऊपर कहे हुए उच्छ्वासके प्रमाणसे कायोत्सर्ग कर विना किसी उत्सुकताके थोड़ी देर तक धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान करने चाहिये नाम स्थापना द्रव्य भावकी समीपता पुण्य पापका कारण है इसलिये जिनप्रतिमा चैत्यालय गुरु और साधुओंके समाधिस्थान आदि ही सम्यग्दृष्टियोंको किया करने योग्य होते हैं— जिसप्रकार दान देनेकी बुद्धिसे रहित और अचेतन ऐसे कल्पवृक्ष तथा चिंतामणि रत्न अपने अपने पुण्य कर्मोंके अनुसार प्राणियोंको इच्छानुसार पदार्थ देते हैं उसीप्रकार जिनबिंब भी भव्य लोगोंकी भक्तिके अनुसार स्वर्ग और मोक्षपद देते हैं जिसप्रकार गरुडमुद्रासे विष दूर हो जाता है उसी प्रकार जिनबिंबके दर्शन करनेमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। इसलिये जिनबिंबकी बंदना करनी चाहिये और जिनबिंबके आश्रय होनेसे चैत्यालयकी भी बंदना

नमात्रेणैव दुरितापहरणं भवत्यतश्चैत्यस्य तदाश्रयचैत्यालयस्याऽपि वन्दनाः कार्या ऐहिकार्थनिरपेक्षाः परानुग्रहबुद्धयोऽकारणबान्धवो मोक्षपरिभ्रष्टजनमार्गोपदेशकाः प्रत्यक्षनिस्तारकाश्च ततस्तेभ्यः सकाशात्सम्यक्त्वं ज्ञानाऽऽदानमणुव्रतं संयमो तपश्च भवति ।

तेन गुरूणां पुण्यपुरुषोषितनिरवद्यनिषद्यास्थानादीनामुच्यते क्रियाविधानं । परायत्तस्य सतः क्रियां कुर्वाणस्य कर्मक्षयो न घटते, तस्मादात्माधीनः सञ्चैत्यादीन् प्रतिवन्दनार्थं गत्वा धौतपादस्त्रिप्रदक्षिणीकृत्येर्यापथकायोत्सर्गं कृत्वा प्रथममुपविश्याऽऽलोच्य चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय जिनेन्द्रचन्द्रदर्शनमात्रान्निजनयनचन्द्रकान्तोपलविगलदानन्दाश्रुजलधारापूरपरिप्लावितपक्ष्मपुटोऽनादिभवदुर्लभभगवदर्हत्परमेश्वरपरमभट्टारकप्रतिबिंबदर्शनज-

करनी चाहिये । आचार्य आदि गुरु लोग संसार संबंधी किसी कार्यकी अपेक्षा नहीं रखते उनकी बुद्धि सदा दूसरोंके अनुग्रह करनेमें ही लगी रहती है, वे विना ही कारणके सबके बंधु हैं, मोक्षमार्गसे भ्रष्ट हुए लोगोंको मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले हैं और संसारसे प्रत्यक्ष पारकर देने वाले हैं इसीलिये ऐसे गुरु जनोंसे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञानका अभ्यास, अणुव्रत महाव्रत संयम और तप प्राप्त होता है । अतएव पुण्यपुरुषोंके द्वारा सेवन करने योग्य तथा निर्दोष ऐसे गुरु जनोंके निषद्या स्थान आदिकोंकी क्रियाओंका विधान कहते हैं । जो पराधीन होकर क्रियाएं करता है उसके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता इसलिये केवल आत्माके आधीन होकर जिन-बिंब आदिकोंकी प्रति बंदनाके लिये जाना चाहिये । पैर धोकर तीन प्रदाक्षिणा देकर ईर्यापथ कायोत्सर्ग करना चाहिये, और फिर बैठकर आलोचना करनी चाहिये । तदनंतर "मैं चैतन्य-भक्ति कायोत्सर्ग करता हूं" इसप्रकार प्रतिज्ञाकर तथा खडे होकर श्री जिनेंद्रदेव रूपी चंद्रमाके दर्शन करने मात्रसे अपने नेत्ररूपीचंद्रकांतमणिसे निकलते हुए आनंदाश्रुके जलधाराके पूरसे जिसके नेत्रोंके दोनों पलक भीग गये हैं, अनादि संसारमें दुर्लभ ऐसे भगवान अरहंत परमेश्वर परम भट्टारकके प्रतिबिंबके दर्शन करनेसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट हर्षसे जिसका शरीर पुलकित हो गया है, तथा अत्यंत भक्तिके भारसे नम्रीभूत मस्तकपर जिसने अपने दोनों हाथरूपी कम-

नितहर्षोत्कर्षपुलकिततनुरतिभक्तिभरावनतमस्तकन्यस्तहस्तकुशेशयकुड्मलो दंडकद्वयस्यादावन्ते च प्राक्तनक्रमेण प्रवृत्य चैत्यस्तवनेन त्रिः परीत्य द्वितीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोच्य पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय पंच परमेष्ठिनः स्तुत्वा तृतीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोचनीयः । एवमात्माधीनता, प्रदक्षिणीकरणं, त्रिवारं, निष्पन्नत्रयं, चतुःशिरो, द्वादशावर्तकमिति क्रियाकर्म षड्विधं भवति । तत्र चतु शिरो दंडकद्वयान्ते प्रणतौ प्रदक्षिणीकरणे च दिक्चतुष्टयावनतौ चतुःशिरो भवति, अथवा शिरःशब्दः प्रधानवाची बन्दनाप्रधानभूता अर्हत्सिद्धसाधुधर्मा इति । उक्तं च राद्धान्तसूत्रे । "आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं बारसावत्तं चेति ।" एवं देवतास्तवनक्रियायां चैत्यभाक्तिं पंचगुरुभाक्तिं च कुर्यात् ।

लोंका कुड्मल (जुडे हुए हाथ) रखलिया है ऐसे उस कायोत्सर्ग करनेवालेको दोनों दंडकोंके आदि अंतमें पहिले कहे हुए क्रमसे सब क्रियाएं करनी चाहिये, अर्थात् तीन तीन आवर्त और एकएक शिरोनति करनी चाहिये । फिर जिनबिंबकी स्तुति करनी चाहिये । दूसरी वार भी बैठकर आलोचना करनी चाहिये तथा "मैं पंच गुरुभक्ति कायोत्सर्ग करता हूं" ऐसी प्रतिज्ञाकर खडे होकर पाचों परमेष्ठियोंकी स्तुति करनी चाहिये । तीसरी वारभी बैठकर आलोचना करनी चाहिये । इसप्रकार आत्माकी स्वाधीनता, तीन प्रदक्षिणा करना, तीनवार बैठना तीन शुद्धि चार शिरोनति और बारह आवर्त इसप्रकार छहतरहका क्रियाकर्म कहलाता है । उसमें भी चार शिरोनति दोनो दंडकोंके आदि अंतमें, प्रणाम करते समय, प्रदक्षिणा करते समय और चारों दिशाओंमें नमस्कार करते समय इसतरह चार चार करनी चाहिये । अथवा शिर शब्दका प्रधान अर्थ है अरहंत सिद्ध साधु और धर्म बंदनाके योग्य ये चारही प्रधान हैं । इन छह कर्मोंके लिये राद्धांतसूत्रमें भी लिखा है "आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति" अर्थात् आत्मा की स्वाधीनता (पदाहीणं) प्रदक्षिणा करना, (त्रिखुत्तं) त्रिवारशुद्धि (तिऊणदं) तीनवार निषद्या वा बैठना, (चदुस्सिरं) चार शिरोनति (वारसावत्तं) बारह आवर्त ये छह कर्म हैं इसप्रकार देवताकी स्तवन क्रिया करते समय चैत्य भक्ति

चतुर्दशीदिने तयोर्मध्ये सिद्धश्रुतशांतिभक्तिर्भवति। अष्टम्यां सिद्धश्रुतचारित्रशांतिभक्तयः। पाक्षिके सिद्धचारित्रशांतिभक्तयः। सिद्धप्रतिमायाः सि-द्धभक्तिरेव, जिनप्रतिमायास्तीर्थंकरजन्मनश्च पाक्षिकी क्रिया, अष्टम्यादिक्रियासु दर्शनपूजा त्रिकालवन्दनायोगे शान्तिभक्तितः प्राक् चैत्यभक्तिं पंचगुरुभ-क्तिं च कुर्यात्। चतुर्दशीदिने धर्मव्यासंगादिना क्रियां कर्तुं न लभेत चेत्पाक्षिकेऽष्टम्याः क्रियाः कर्तव्याः। नन्दीश्वरदिने सिद्धनन्दीश्वरपंचगुरुशांतिभक्तयो-ऽभिषेकवन्दनायाः सिद्धचैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयः। स्थिरचलजिनप्रतिमाप्रतिष्ठायां सिद्धशांतिभक्ती भवतः। स्थिरप्रतिमायाश्चतुर्थस्थाने सिद्धभक्तिरालो-

और पंच गुरु भक्ति करनी चाहिये।

चतुर्दशीके दिन (चैत्य भक्ति और पंच गुरु भक्तिके मध्यमें) सिद्धभक्ति, श्रुत तथा शांति भक्ति करनी चाहिये। अष्टमीके दिन सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति और शांति भक्ति करनी चाहिये। पाक्षिक कायोत्सर्गमें सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति, तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये सिद्धप्रतिमाकी बंदना करते समय सिद्ध भक्ति ही होती है। जिनप्रतिमाकी और तीर्थंकरोंके जन्मके दिन पाक्षिकी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। अष्टमी आदिकी क्रियाओंमें दर्शन पूजा करनी चाहिये, तीनों कालोंकी बंदना करनेके समय शांतिभक्तिसे पहिले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये। चतुर्दशीके दिन धर्मक्रियाओंके व्यासंगसे यदि कोई क्रिया न कर सके तो उसे पाक्षिक कायोत्सर्गके समय अष्टमीके दिनकी क्रिया करनी चाहिये। नंदीश्वर पर्वोंके दिनोंमें सिद्धभक्ति नंदीश्वरभक्ति पंच-गुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। अभिषेक बंदनाके समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पंच-गुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। स्थिर और चल दोनों ही प्रकारकी जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके समय सिद्धभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये। स्थिरप्रतिमाके चतुर्थस्थानमें सिद्धभक्ति, आलोचना सहित चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। चलप्रतिमाकी अभिषेक बंदना होती है। बडेभारी ऋषि तथा सामान्य ऋषियोंकी

चनासहिता चारित्रभक्तिश्चैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयश्च कार्याः। चलप्रतिमाया अभिषेकवन्दना स्यात्। महत्तरस्य सामान्यर्षे सिद्धभक्तिपूर्विका वंदना। सिद्धान्तविदां सिद्धश्रुतभक्ती भवतः। आचार्याणां सिद्धाचार्यभक्ती। सिद्धांतवेदिनामाचार्याणां सिद्धश्रुतसूरिभक्तयः। प्रतिमायोगस्थितस्य मुनेर्लघीयसोऽपि सिद्धयोगशांतिभक्तयः। निष्क्रमणे सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयो भवन्ति प्रदक्षिणीकरणं योगभक्त्या। ज्ञानोत्पत्तौ सिद्धश्रुतचरणयोगशांतिभक्तयो योगभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। जिननिर्वाणक्षेत्रे सिद्धश्रुतचारित्रयोगपरिनिर्वाणशांतिभक्तयो निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। श्रीवर्द्धमानजिननिर्वाणदिने सिद्धनिर्वाणपंचगुरुशांतिभक्तयः निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणा। सामान्यर्षौ मृते शरीरस्य निषधिकास्थानस्य वा सिद्धयोगशांतिभक्तयः। सिद्धांतवेदिनां साधूनां सिद्धश्रु-

सिद्धभक्ति पूर्वक वंदना की जाती है। सिद्धांतके जानकार मुनियोंकी सिद्धभक्ति और श्रुत भक्ति की जाती है। आचार्योंकी सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। सिद्धांतके जानकार आचार्योंकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। प्रतिमायोग धारण करनेवाले मुनि चाहे छोटे भी हों तो भी उनकी सिद्धभक्ति योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है। दीक्षाकल्याणकके समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है और उससमय योगभक्तिके पाठ पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है और योगभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। तीर्थंकरके निर्वाणक्षेत्रमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति परिनिर्वाणभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदाक्षिणा देनी चाहिये। श्रीवर्द्धमान जिनेंद्रदेवके निर्वाण होनेके दिन सिद्धभक्ति निर्वाणभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। सामान्य ऋषिके स्वर्गवासके समय सिद्धभक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है तथा उनके शरीरकी वा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति, योगभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। सिद्धांतवेत्ता मुनियोंके स्वर्गवासके समय, उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुत-

तयोगशांतिभक्तय: । उत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तय: । सैद्धांतोत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशान्तिभक्तय: । आचार्यस्य सिद्धयोगाचार्यशान्तिभक्तय: । सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशान्तिभक्तय: । उत्तरयोगिनामाचार्याणां सिद्धचारित्रयोगाचार्यशान्तिभक्तय: । उत्तरयोगिन: सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशान्तिभक्तय: । अनंतरोक्ता अष्टौ क्रियाः शरीरस्य निषद्यास्थानस्य च । श्रुतपंचम्यां सिद्धश्रुतभक्तिपूर्विकां वाचनां गृहीत्वा तदत्र स्वाध्यायं गृह्णतः श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा गृहीतस्वाध्यायाः कृतश्रुतभक्तयः स्वाध्यायं निष्ठाप्य समाप्तौ शान्तिभक्तिं कुर्युः । संन्यासप्रारंभे सिद्ध-

भक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। उत्तर योगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति, योगभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांतोत्तरयोगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। आचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति, योगभक्ति, आचार्यभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी आचार्योंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी सिद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है। (ऊपर कही हुई आठों क्रियाएं शरीर और निषद्यास्थान की भी होती हैं जैसी कि उपर दिखलाई जा चुकी हैं) श्रुतपंचमीके दिन सिद्धभक्ति तथा श्रुतभक्ति पूर्वक वाचना नामका स्वाध्याय ग्रहण करना चाहियें, उसके वाद स्वाध्यायकर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये फिर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्तिकर स्वाध्यायको पूर्णकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये।

संन्यासके प्रारंभके समय सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति कर वाचना ग्रहण कर फिर श्रुतभक्ति

श्रुतभक्ती कृत्वा गृहीतवाचनाः कृतश्रुतसूरिभक्तयः स्वाध्यायं गृहीत्वा श्रुतभक्तौ स्वाध्यायं निष्ठापयेयुः । वाचनानिष्ठापनेऽपीमां क्रियां कृत्वा समाप्तौ शान्तिभक्तिं कुर्वन्तु । संन्यासस्थितस्य स्वाध्यायग्रहणे महाश्रुतसूरिभक्ती कृत्वा गृहीतस्वाध्यायं महाश्रुतभक्तौ निष्ठापयन्तु । दैवसिकरात्रिगोचरीप्रतिक्रमणे सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीर्नियमेन कुर्यात् । योगग्रहणे मोक्षे च योगभक्तिः । पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणे सिद्धचारित्रप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिचारित्रालोचनागुरुभक्तयः वृहदालोचना गुरुभक्तिर्लघीयसी आचार्यभक्तिश्च करणीया । शेषप्रतिक्रमणे चारित्रालोचनावृहदालोचनागुरुभक्तिं विना शेषाः कर्तव्याः । दीक्षाग्रहणे लुंचने च सिद्धयोगभक्ती कृत्वा लुंचनावसाने सिद्धभक्तिः करणीया । सिद्धयोगभक्ती कृत्वा प्रत्याख्यानं गृहीत्वाऽऽचार्यभक्तिं कृत्वाचार्यमभिवन्दतां सिद्धभक्तिं कृत्वा प्रत्याख्यानं मोचयेत् । श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा

तथा आचार्य भक्तिकर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्तिमें स्वाध्याय पूर्णकर देना चाहिये । वाचना करनेके समय भी यही क्रियाकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये । संन्यासमें स्थित होकर स्वाध्याय ग्रहण करते समय महाश्रुतभक्ति तथा महाआचार्यभक्ति कर फिर स्वाध्याय ग्रहणकर महा श्रुतभक्तिमें ही स्वाध्याय करना चाहिये । दैवसिक (दिनके) प्रतिक्रमणमें रात्रिके प्रतिक्रमणमें गोचरी प्रतिक्रमणमें नियमसे सिद्धप्रतिक्रमण निष्ठित चारित्रभक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति करनी चाहिये। योग ग्रहण करते समय और समाप्तिके समय योगभक्ति की जाती है । पाक्षिकप्रतिक्रमण चातुर्मासिकप्रतिक्रमण और सांवत्सरिकप्रतिक्रमणमें सिद्धप्रतिक्रमण, तथा चारित्रप्रतिक्रमणके साथ साथ चारित्रभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति चारित्रआलोचना गुरुभक्ति बडीआलोचना गुरुभक्ति और फिर छोटी आचार्य भक्ति करनी चाहिये । बाकीके प्रतिक्रमणोंमें चारित्रआलोचना, बडीआलोचना और गुरुभक्तिके विना सब भक्तियां करनी चाहिये । दीक्षा ग्रहण करते समय और केशलोंच करते समय सिद्धभक्ति और योगभक्ति करके केशलोंचके अंतमें सिद्धभक्ति करनी चाहिये । फिर सिद्धभक्ति तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये तदनंतर आचार्यभक्ति करके आचार्य वंदना करनी चाहिये और फिर सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यानको छोडदेना

गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापने श्रुतभक्तिं करोतु । मंगलगोचरमध्यान्हे सिद्धचैत्यपंचगुरुशान्तिभक्तिं कुर्यात् । मंगलगोचरप्रत्याख्याने महासिद्धयोगभक्ती कृत्वा गृहीतप्रत्याख्यान आचार्यशान्तिभक्ती कुर्यात् । वर्षाकाले योगग्रहणे निष्ठापने च सिद्धयोगपंचचैत्यगुरुभक्तय. कार्याः, चैत्यभक्त्या प्रदक्षिणीकुर्वन् सालोचनव्युत्सर्गं चतसृषु दिक्षु कुर्यात् । सिद्धांतवाचनाग्रहणे सिद्धश्रुतभक्ती कृत्वा तदनु श्रुताचार्यभक्तिं कृत्वा गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापने श्रुतशान्तिभक्ती करोतु । सिद्धांतस्यार्थाधिकाराणां समाप्तावेकैकं कायोत्सर्गं कुर्यात् । अर्थाधिकाराणां सुबहुमान्यत्वात्तेषामादौ सिद्धश्रुतसूरिभक्ती कृत्वा समाप्तावप्येतेन क्रमेण प्रवर्तिते सति षट् कायोत्सर्गा भवन्ति । गुरूणामनुज्ञया ज्ञानविज्ञानवैराग्यसम्पन्नो विनीतो धर्मशील स्थिरश्च भूत्वाऽऽचार्यपदव्या योग्य· साधुगुरु-

चाहिये। फिर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय ग्रहणकर उस स्वाध्यायके करते समय श्रुतभक्ति करनी चाहिये। मंगलके विषयभूत मध्याह्नके समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये। मंगलके विषय भूत मध्यान्ह कालके प्रत्याख्यानके समय महासिद्धभक्ति तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये और फिर आचार्य भक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये। वर्षाऋतुमें योग ग्रहण करते समय और निष्ठापन ग्रहण करते समय सिद्धभक्ति, योगभक्ति, पंचचैत्य, गुरुभक्ति करनी चाहिये फिर चैत्य भक्तिके साथ प्रदक्षिणा देकर चारों दिशाओमें आलोचना पूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिये। सिद्धांतग्रंथोंके वाचनेके समय सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति करनी चाहिये और फिर श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय करना चाहिये और उसके निष्ठापनके समय श्रुतभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये। सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार समाप्त होनेके समय एक एक कायोत्सर्ग करना चाहिये। सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार सबसे अधिक मान्य हैं इसलिये उनके प्रारंभमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये तथा समाप्त होनेके समय भी ये ही क्रियायें कर अंतमें छह कायोत्सर्ग करने चाहियें जो ज्ञान वैराग्य विज्ञान सहित है विनीत है धर्मशील है और आचार्यपदके योग्य है उसे स्थिर होकर साधु तथा गुरुके समक्ष सिद्धभक्ति

समक्षे सिद्धाचार्यभक्तिं कृत्वाऽऽचार्यपदवीं गृहीत्वा शान्तिभक्तिं कुर्यात् । एवमुक्ता क्रिया यथायोग्यं जघन्यमध्यमोत्तमश्रावकैः संयतैश्च करणीयाः । किमर्थो व्युत्सर्गो निःसंगत्वं निर्भयत्वं जीविताशाव्युदासो दोषच्छेदो मोक्षमार्गभावनापरत्वमित्येवमाद्यर्थं ।

अथ ध्यानप्रस्ताव. । एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं, एकस्मिन् क्रियासाधनेऽग्रं मुखं यस्याश्चिन्ताया इत्येकाग्रचिन्ता । तस्या निरोधोऽन्यत्राऽसंचारस्तदेकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं । तस्य योगश्चतुर्विधः, ध्यान, ध्येयं, ध्याता, फलमिति । तत्र ध्यानं चिन्ताप्रबंधलक्षणं । ध्येयमप्रशस्तप्रशस्तपरिणामकारणं । ध्याता कषायकलुषितो गुप्तेन्द्रियश्च । फलं संसारभ्रमणं स्वर्गापवर्गसुखं च । तदेतच्चतुरंगध्यानमप्रशस्तप्रशस्तभेदेन द्विविधं, श्रेयोधिकारेऽप्रशस्तोपन्यासः परिज्ञातस्य

और आचार्यभक्ति करके आचार्यपदवी ग्रहण करनी चाहिये और फिर शांतिभक्ति करनी चाहिये इसप्रकार जो क्रियाएं उपर कहीं हैं वे अपनी योग्यताके अनुसार उत्तम मध्यम जघन्य श्रावकों को तथा मुनियोंको करनी चाहिये । यह कायोत्सर्ग परिग्रहोंका त्याग करनेकेलिये निर्भयरहने केलिये जीवित रहनेकी आशाका त्याग करनेकेलिये दोषोंका नाश करनेके लिये और मोक्षमार्गकी भावनामें तत्पर रहनेकेलिये करना चाहिये ।

अब आगे ध्यानका प्रकरण लिखते हैं । एकाग्रचिन्ताका निरोध करना ध्यान है । जो चिंतवन किसी एक ही क्रियाके साधन करनेमें मुख्य हो उसे एकाग्रचिंता कहते हैं । उस एकाग्र चिंताका निरोध करना अर्थात् किसी एक मुख्य पदार्थको छोडकर अन्य सब पदार्थोंके चिंतवनका त्याग कर देना एकाग्रचिंतानिरोध कहलाता है और उसीको ध्यान कहते हैं । उस ध्यानका योग, ध्यान, ध्येय, ध्याता और फलके भेदसे चार प्रकारका होता है । चिंतवन करना ध्यान है । जो अशुभ तथा शुभ परिणामोंका कारण हो उसे ध्येय कहते हैं । कषायोंसे जिसका चित्त कलुषित है अथवा जो मन वचन काय तथा इंद्रियोंको वश करनेवाला है वह ध्याता वा ध्यान करनेवाला कहलाता है । उसका फल संसारमें परिभ्रमण करना अथवा स्वर्ग मोक्षके सुखोंकी प्राप्ति होना है । जिसके ऊपर लिखे हुए चार अंग हैं ऐसा ध्यान अशुभ और शुभके भेदसे

प्रहेयत्वोपपत्ते. । अप्रशस्तं द्विविधमार्त्तं रौद्रं चेति । तत्राऽऽर्त्तं बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदाद्द्विविकल्पं। तत्र परानुमेयं बाह्यं शोचनक्रन्दनविलपनपरिदेवन-विषयसंगपरिभवविस्मयादिलक्षणं। स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकार्त्तध्यानं, अमनोज्ञसंप्रयोगमनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं, उत्पन्नस्य च विनाशसंकल्पाध्यवसानमिति चतुःप्रकारं । तथथा—अमनोज्ञं दु खसाधनं, तच्च बाह्यमाध्यात्मिकमिति द्विविधं । तत्र बाह्यं चेतनकृतमचेतनकृतमिति द्विप्रकारं । तत्र चेतनकृतं देवमनुष्यतिर्यक्संपादितमसातं, अचेतनकृतं च विषकंटकाग्निशस्त्रक्षारशीतोष्णादिजनितदु:खं । आध्यात्मिककारणं शारीरं मानसमिति द्विविधं । तत्र शारीरं

दो प्रकारका है । यद्यपि यहांपर मोक्षमार्गका अधिकार है तथापि जानकर त्यागकर देनेके लिए ही अशुभ ध्यानोंका वर्णन किया है । आर्त और रौद्रके भेदसे अशुभध्यान दो प्रकारका है । उसमें भी बाह्य और अध्यात्मके भेदसे आर्तध्यान भी दो प्रकारका है । अन्य लोग जिसका अनुमान कर सकें उसे बाह्य कहते हैं । शोक करना, रोना, विलाप करना, खूब जोरसे रोना, विषयोंकी इच्छा करना, तिरस्कार करना तथा अभिमान करना आदि बाह्य आर्तध्यान कहलाता है । जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक आर्तध्यान कहते हैं। वह आध्यात्मिक आर्तध्यान चार प्रकारका होता है । अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न होनेके संकल्पका चिंतवन करना, अमनोज्ञ पदार्थके साथ सम्बन्ध उत्पन्न होनेपर उसके विनाश होनेके संकल्पका चिंतवन करना, मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका चिंतवन करना और मनोज्ञ पदार्थोंके साथ संबंध हो जानेपर उनके विनाश न होनेके संकल्पका चिंतवन करना । इन्हीं चारों आर्तध्यानोंका स्वरूप आगे बतलाते हैं । दुःखोंके कारणोंको अमनोज्ञ कहते हैं वह अमनोज्ञ बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है । उसमें भी बाह्य अमनोज्ञ चेतनका किया हुआ और अचेतनका किया हुआ ऐसे दो प्रकारका है । देव मनुष्य और तिर्यंचोंके द्वारा दिया हुआ दुःख चेतनके द्वारा किया हुआ बाह्य अमनोज्ञ है और विष, कांटा, अग्नि, शस्त्र, क्षार, शीत, उष्ण आदिके द्वारा प्राप्त हुआ दुःख अचेतन कृत बाह्य

नातपित्तश्लेष्मवैषम्यसमुद्भवशिरोक्षिदंतकुक्षिशूलादिजनितं । मानसं चाऽरतिभयशोकभयजुगुप्साविषाददौर्मनस्यादिजनितमित्यादिदुःखसाधनममनोज्ञं, तेन संप्रयोगः स कथं नाम मे नोत्पद्यत इति चिन्ताप्रबंधः, संकल्पस्तस्याध्यवसानं तीव्रकषायानुरंजनं, एतदमनोज्ञसंप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं प्रथमार्तं । एतद्दुःखसाधनसद्भावे तस्य विनाशकांक्षोत्पन्नविनाशसंकल्पाध्यवसानं द्वितीयार्तं । मनोज्ञं नाम धनधान्यहिरण्यसुवर्णवस्तुवाहनशयनाऽऽसनस्रक्चन्दनवनितादिसुखसाधनं मे स्यादिति गर्द्धनं । मनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं तृतीयार्तं । सुखसाधनसद्भावे तेन विप्रयोगो मे न स्यादिति

अमनोज्ञ है। आध्यात्मिक अमनोज्ञ भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें वात पित्त श्लेष्माकी विषमतासे उत्पन्न हुई मस्तक आंख दांत और पेट आदिकी पीडासे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन शारीरिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है तथा अरति, शोक, भय, जुगुप्सा विषाद चित्तकी मलिनता आदिसे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन मानसिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है। इन चारों प्रकारके अमनोज्ञोंका संबंध मेरे साथ उत्पन्न न हो इसप्रकारके संकल्पका बार बार चिंतवन करना और वह भी तीव्र कषायोंके संबंधसे चिंतवन करना अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न होनेके संकल्पका चिंतवन नामका पहिला आर्तध्यान कहलाता है। इन दुःखोंके कारण उत्पन्न होनेपर उनके विनाश होनेकी इच्छा उत्पन्न होनेसे उनके विनाशके संकल्पका बार बार चिंतवन करना दूसरा आर्तध्यान है। धन धान्य हिरण्य [चांदी] सुवर्ण, वस्त्र, सवारी, शय्या, आसन, माला, चंदन, और स्त्री आदि सुखोंके साधनोंको मनोज्ञ कहते हैं। ये मनोज्ञ पदार्थ मेरे हों इसप्रकार चिंतवन करना मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका बार बार चिंतवन करना नामका तीसरा आर्तध्यान कहलाता है। सुखोंके साधन प्राप्त होनेपर " मेरे उनका वियोग कभी न हो " इसप्रकारका संकल्प करते रहना चौथा आर्तध्यान कहलाता है। ये चारों प्रकारके आर्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके बलसे होते हैं तथा प्रमादसे ही उत्पन्न होते हैं। यह आर्तध्यान अप्रमत्तसे पहिले पहिले

संकल्पः उत्पन्नविनाशसंकल्पाध्यवसानं चतुर्थार्तं । एतच्चतुर्विधार्तध्यानं कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं प्रागप्रमत्तात्षड्गुणस्थानभूमिक मन्तर्मुहूर्तकालमतः परं दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावपरोक्षज्ञानत्वात्तिर्यग्गतिफलसंवर्त्तनीयमिति ।

रौद्रं च बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदेन द्विविधं । तत्र परानुमेयं बाह्यं परुषनिष्ठुराऽऽक्रोशननिर्भर्त्सनबन्धनतर्जनताडनपीडनपरदारातिक्रमणादिलक्षणं । स्वसंवेद्य-माध्यात्मिकं तत्र हिंसानंदमृषानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दभेदाच्चतुर्विधं । तीव्रकषायानुरंजनं हिंसानन्दं प्रथमरौद्रं । स्वबुद्धिविकल्पितयुक्तिभिः परेषां श्रद्धेयरूपाभि. परवचनं प्रति मृषावचने संकल्पाध्यवसानं मृषानंदं द्वितीयरौद्रं । हठात्कारेण प्रमादप्रतीक्षया वा परस्वापहरणं प्रति संकल्पाध्यवसानं तृतीय-रौद्रं । चेतनाचेतनलक्षणे स्वपरिग्रहे ममेवेदं स्वमहमेवास्य स्वामीत्यभिनिवेशात्तदपहारकव्यापादनेन संरक्षणं प्रति संकल्पाध्यवसानं संरक्षणानन्दं चतुर्थं

छह गुणस्थानोंमें होता है और अधिकसे अधिक अंतर्मुहूर्ततक होता है। इससे आगे वह दु-र्धर है अर्थात् अंतर्मुहूर्तसे अधिक हो ही नहीं सकता। यह परोक्षज्ञान होनेसे क्षायोपशमिक भाव है तथा इसका फल तिर्यंच गतिकी प्राप्ति होता है।

रौद्रध्यान भी बाह्य और आध्यात्मिकके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें भी अन्य लोग जिसे अनुमानसे जान सकें उसे बाह्य कहते हैं और कठोर वचन, मर्मभेदी वचन, आक्रोश (गाली गलौज) वचन, तिरस्कार करना, बांधना, तर्जन करना, ताडन करना तथा परस्त्री पर अतिक्रमण करना आदि बाह्य रौद्रध्यान कहलाता है। जिसे अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक रौद्रध्यान कहते हैं और हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंद तथा विषयसंरक्षणानंदके भेदसे वह आ-ध्यात्मिक रौद्रध्यान चार प्रकारका है। तीव्र कषायके उदयसे हिंसामें आनंद मानना पहिला रौद्रध्यान है। जिनपर दूसरोंको श्रद्धान हो सके ऐसी अपनी बुद्धिके द्वारा कल्पना की हुई यु-क्तियोंके द्वारा दूसरोंको ठगनेके लिये झूठ बोलनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना मृषानंद नामका दूसरा रौद्रध्यान है। जवर्दस्ती अथवा प्रमादकी प्रतीक्षापूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना तीसरा रौद्रध्यान है। चेतन अचेतनरूप अ-

रौद्रं । चतुष्टयमपीदमिति कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं । प्राक्प्रमत्तात्पंचगुणस्थानभूमिकमन्तर्मुहूर्तकालमतःपरे दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावं परोक्षज्ञानत्वादौदयिकभावं वा भावलेश्याकषायप्राधान्यान्नरकगतिफलसंवर्तनीयमिति ।

उभयमप्येतदपध्यानं परिहरन्नपवर्गकामो भिक्षुः परिषहबाधासहिष्णुः शक्तिमदुत्तमसंहननान्वितः प्रशस्तध्यानप्रवणो गिरिगुहादरीकन्दरतरुकोटरसरित्पुलिनपितृवनजीर्णोद्यानशून्यगृहादीनामन्यतमस्मिन् प्रदेशे व्यालपशुमृगषण्ढकमनुष्यादीनामगोचरे तत्रत्यागंतुकजन्तुभिः परिवर्जितेऽत्युष्णातिशीतातिवातातिवर्षातपरहिते समन्तादिन्द्रियमनोविक्षेपहेतुनिराकरणभूते शुचावनुकूलस्पर्शिनि भूमितले यथा सुखमुपविष्टो बद्धपर्यंकासन स्वांके वामपाणितलस्यो-

पने परिग्रहमें 'यह मेरा परिग्रह है मैं इसका स्वामी हूं' इस प्रकार ममत्व रखकर उसके अपहरण करनेवालेका नाशकर उसकी रक्षा करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना विषय संरक्षणानंद नामका चौथा रौद्रध्यान है। यह चारों ही प्रकारका रौद्रध्यान कृष्ण नील और कापोतलेश्याके बलसे होता है तथा प्रमाद पूर्वक होता है। प्रमत्त गुणस्थानसे पहिले पहिले पांच गुणस्थानोमें होता है और अंतर्मुहूर्त तक होता है अंतर्मुहूर्तके आगे दुर्धर है अर्थात् इससे अधिक समय तक यह कभी धारण नहीं किया जा सकता। यह परोक्षज्ञानगोचर होनेसे क्षायोपशमिक भाव है अथवा भाव लेश्या और कषायोंकी प्रधानता होनेसे औदयिक भाव है। यह नरकगतिका फल देनेवाला है।

ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों ही अपध्यान हैं मोक्षकी इच्छा करनेवाले भिक्षुकको ये दोनों ही छोड देना चाहिये। इसके सिवाय उसे परीषहोंकी सब बाधाएं सहन करनी चाहिये उसे शक्तिशाली तथा उत्तम संहननोंका धारक होना चाहिए और शुभध्यान करनेमें निपुण होना चाहिए। जहां ध्यान किया जाय वह स्थान पर्वतकी गुफा, दरी, कंदरा, वृक्षके कोटर, नदियोंके किनारे, श्मशान, जीर्णवन, और सूने मकान आदिमेंसे कोई सा भी एक होना चाहिये परंतु वह ऐसा होना चाहिए जहां सर्प पशु जंगली जानवर नपुंसक और मनुष्य आदि

परि दक्षिणपाणितलमुत्तान निधाय नेत्रे नात्युन्मीलयन्नातिमीलयन् दन्तैर्दन्ताग्राणि संदधानः प्राणापानप्रचारात्यंतनिग्रहे तीव्रदुःखाकुलचेतस एकाकारपरिणामो न जायते, ततो मन्दमन्दप्राणापानप्रचारः स्यादेवं द्रव्यक्षेत्रकालभावशुद्धिसंयुतस्तत्प्रतिपक्षदोषवर्जित परमयोगी संसारलतामूलोच्छेदनहेतुभूतं प्रशस्तध्यानं ध्यायेत् ।

तद् द्विविधं, धर्म्यं शुक्लं चेति । तत्र धर्म्यध्यानं बाह्याध्यात्मिकभेदेन द्विप्रकारं । तत्र परानुमेयं बाह्यं सूत्रार्थगवेषणं दृढव्रतशीलगुणानुरागनिभृतकरचरणवदनकायपरिस्पंदवाग्व्यापार जृंभजृंभोद्गारक्षवथुप्राणापानोद्रेकादिविरमणलक्षणं भवति । स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं, तद्दशविधं, अपायविचयं, उपायविचयं, जीव-

न जा सकें, वहांके रहनेवाले तथा बाहरसे आनेवाले जीवोंसे रहित हो, अत्यंत उष्णता [गर्मी] अत्यंत सर्दी अत्यंतवायु अत्यंत वर्षा और अत्यंत धूपसे रहित हो जिसके चारों ओर इंद्रिय और मनको क्षोभ करनेवाले कोई पदार्थ न हों, जो पवित्र हो और जिसका स्पर्श अनुकूल हो ऐसे पृथ्वी तलपर सुखपूर्वक बैठना चाहिए। अपना आसन पर्यंकासन बांधकर बैठना चाहिए अपनी गोदपर बायें हाथकी हथेलीपर दायें हाथको ऊपरकी ओर हथेली कर रखना चाहिये नेत्रोंको न तो बिल्कुल खुला ही रखना चाहिये और न बिल्कुल बंद ही कर लेना चाहिये। दांतोंसे दांत मिला लेना चाहिए (इस तरह करनेसे ओठोंसे ओठ अपने आप मिल ही जायेंगे) प्राण और अपानके प्रचारका अत्यंत निग्रह करनेसे तीव्र दुःख होता है तथा आकुलित चित्त होता है इसलिए ऐसा करनेसे एकाकार परिणाम कभी नहीं हो सकते अतएव प्राण और अपानका प्रचार मंद मंद रीतिसे होते रहना चाहिए। इसप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भावकी शुद्धता पूर्वक प्रतिपक्षी दोषोंसे रहित परम योगीको संसाररूपी लताकी जड काटनेका कारण ऐसे शुभध्यानका चिंतवन करना चाहिये।

वह ध्यान दो प्रकारका है एक धर्म्यध्यान और दूसरा शुक्लध्यान। उनमें भी बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे धर्म्यध्यान भी दो प्रकारका है। जिसे अन्य लोग भी अनुमानसे जान सकें

विचयं, अजीवविचयं, विपाकविचयं, विरागविचयं, भवविचयं, संस्थानविचयं, आज्ञाविचयं, हेतुविचयं, चेति। एतद्दशविधमपि दृष्टश्रुतानुभूतदोषपरिवर्जनपरस्य मन्दतरकषायानुरंजितस्य भव्यवरपुंडरीकस्य भवति। तत्रापायविचयं नामानाद्याजवंजवे यथेष्टचारिणो जीवस्य मनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोपार्जितपापाना परिवर्जनं तत्कथं नाम मे स्यादिति संकल्पश्चिंताप्रबन्धः प्रथमधर्म्यं। उपायविचयं प्रशस्तमनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोऽवश्यः कथं मे स्यादिति संकल्पो द्विती-

उसे बाह्य धर्म्यध्यान कहते हैं। सूत्रोंके अर्थकी गवेषणा (विचार वा मनन करना,) व्रतोंको दृढ रखना, शील गुणोंमें अनुराग रखना, हाथ पैर मुह आदि शरीरका परिस्पंदन और वाग् व्यापारको बंद करना जंभाई लेना जंभाईके उद्गार प्रकट करना, छींकना, तथा प्राण अपानका उद्रेक आदि सब क्रियाओंका त्याग करना बाह्य धर्म्यध्यान है। जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक कहते हैं। वह आध्यात्मिक धर्म्यध्यान अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाक विचय, विराग विचय, भवविचय, संस्थान विचय, आज्ञाविचय और हेतुविचयके भेदसे दश प्रकारका है। जिसने देखे सुने और अनुभव किये हुए दोष सब छोड दिये हैं जिसके कषायोंका उदय अत्यंत मंद है और जो अत्यंत श्रेष्ठ भव्य है उसीके यह दशों प्रकारका धर्म्यध्यान होता है। आगे उन्हींको दिखलाते हैं। "मेरा यह जीव अनादि कालसे इस संसारमें अपनी इच्छानुसार परिभ्रमण कर रहा है इसलिए मेरे मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुए पापोंका त्याग किस प्रकार होगा" इसप्रकार संकल्पकर बार बार चिंतवन करना पहिला अपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। "मेरे सदा और अवश्य रहनेवाली शुभ मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्ति किस प्रकार होगी" इसप्रकारका संकल्पकर बार बार चिंतवन करते रहना दूसरा उपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। यह जीव उपयोग लक्षणवाला है अर्थात् इसका लक्षण ही उपयोग है अथवा यह उपयोग स्वरूप है, द्रव्यार्थिक नयसे अनादि अनंत है (अनादि कालसे चला आया है और अनंत कालतक रहेगा)

यथर्म्यम् । जीवविचयं-जीव उपयोगलक्षणो द्रव्यार्थादनाद्यनन्तोऽसंख्येयप्रदेशः स्वकृतशुभाशुभकर्मफलोपभोगी गुणवानात्मोपात्तदेहमात्रः प्रदेशसंहरणविसर्पणधर्मा सूक्ष्मोऽव्याघात ऊर्ध्वगतिस्वभावोऽनादिकर्मबन्धनबद्धस्तत्क्षयान्मोक्षभागी गत्यादि-निर्देशादि-सदादि-प्रमाण नयनिक्षेपविषय इत्यादिजीवस्वभावानुचिंतनं तृतीयं धर्म्यं । विपाकविचयमष्टविधकर्माणि नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणानि मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पविस्तृतानि गुडखंडसिताऽमृतमधुरविपाकानि निंबकांजीविषहालाहलकटुकविपाकानि चतुर्विधबंधानि लतादार्वस्थिशैलस्वभावानि कासु कासु गतिषु योनिष्ववस्थासु च जीवानां विषया भवन्तीति वि-

असंख्यात प्रदेशी है अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भोगनेवाला है, गुणी वा गुणवाला है, आत्माके द्वारा प्राप्त हुए शरीरके प्रमाणके बराबर है, इसके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होना इसका धर्म वा स्वभाव है, यह सूक्ष्म है अव्याघाती [न किसीको रोकता है और न किसीसे रुकता है] है, ऊर्ध्व गमन करना इसका स्वभाव है, अनादि कालसे लगे हुये कर्मोंके बंधनसे बंधा हुआ है और उन कर्मोंके नाश हो जानेपर मोक्ष सुखका भोक्ता होता है । गति इंद्रिय आदि, नाम स्थापना आदि, निर्देश स्वामित्व आदि सत् संख्या आदि तथा प्रमाण नय निक्षेप आदिके गोचर है अर्थात् इसका स्वरूप इन सबसे जाना जाता है । इसप्रकार जीवके स्वभावका चिंतवन करना तीसरा जीवविचय नामका धर्म्यध्यान कहलाता है ।

कर्मोंके आठ भेद हैं तथा नाम स्थापना द्रव्य भावके भेदसे और मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदसे उनके अनेक भेद होते हैं उनमेंसे शुभ कर्मोंका विपाक (उदय वा फल देना) गुड खांड (शक्कर) मिश्री और अमृतरूप उत्तरोत्तर मीठा वा श्रेष्ठ हुआ करता है और अशुभ प्रकृतियोंका विपाक नीम, कांजी, विष और हलाहलरूप कडवा वा बुरा दुःख देनेवाला होता है । उन कर्मोंका बंध भी लता (बेल) दारु [लकडी] अस्थि [हड्डी] और पर्वत स्वभावरूप चार प्रकारका होता है । ये सब कर्म किस किस गतिमें किस किस योनिमें और किस किस अवस्थामें जीवोंके विषयभूत होते हैं अर्थात् प्रत्येक गतिमें

पक्वाविशेषानुचिन्तनं पंचमधर्म्यं । विरागविचयं शरीरमिदमनित्यमपरित्राणं विनश्वरस्वभावमशुचिदोषाधिष्ठितं सप्तधातुमयं बहुमलपूर्णमनवरतनिस्यंदितस्रोतोबिलमतिबीभत्समाधेयमशौचमपि पूतिगंधि सम्यग्ज्ञानिजनवैराग्यहेतुभूतं नास्त्यत्र किंचित्कमनीयमिन्द्रियसुखानि प्रमुखरसिकानि क्रियावसानविरसानि किंपाकपाकविपाकानि पराधीनान्यस्थानप्रचुरभंगुराणि यावद्यावदेषां रामणीयकं तावत्तावद्भोगिनां तृष्णाप्रसंगोऽनवस्थो यथाऽग्नेरिन्धनैर्जलनिधे:सरित्सहस्रैर्ण न तृप्तिस्तथा लोकस्याप्येतैर्न तृप्तिरुपशान्तिर्वैहिकामुत्रिकविनिपातहेतवस्तानि देहिनः सुखानीति मन्यंते महाद्दुःखकारणान्यनात्मीयत्वादिष्टान्य-

प्रत्येक योनिमें और प्रत्येक अवस्थामें किन किन कर्मोंका बंध उदय होता है वा किन किन कर्मोंकी सत्ता रहती है आदि कर्मोंके विशेष उदयका बार बार चिंतवन करना पांचवां विपाक विचय नामका धर्म्यध्यान है । यह शरीर अनित्य है कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकता, नाश होना इसका स्वभाव है. यह अपवित्र है, दोषोंका स्थान है, सातों धातुओंसे बना हुआ है, अनेक तरहके मलोंसे परिपूर्ण वा भरा हुआ है, इसके नवद्वाररूपी विल सदा बहते रहते हैं, यह अत्यंत बीभत्स है आधेय है अपवित्र होकर भी दुर्गंधमय है सम्यग्ज्ञानी लोगोंको वैराग्य उत्पन्न होनेका कारण है और इसमें कोई भी पदार्थ वा कुछ भी भाग सुन्दर वा मनोहर नहीं है इंद्रियोंके सुख आरंभमें तो अच्छे लगते हैं परंतु अंतमें बडे ही नीरस हैं पके हुये किंपाक फलके समान ही इनका भी विपाक होता है ये इंद्रियोंके सुख सब पराधीन हैं और बीचमें ही अनेक बार नष्ट हो जाते हैं । जब जबतक ये सुंदर जान पडते हैं तब तबतक भोग करनेवालोंको इनकी तृष्णा बढती ही जाती है । जिसप्रकार इंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती और हजारों नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती उसीप्रकार संसारमें भी इन विषय सुखोंसे न कभी तृप्ति होती है और न कभी शांति होती हैं . ये विषय सुख इसलोक और परलोक दोनों लोकोंमें अनेक उपद्रव करनेवाले हैं तथा महादुःखके कारण हैं तथापि संसारी प्राणी इन्हें सुख-

१ पकनेपर किंपाक फल बहुत ही सुन्दर होता है परन्तु खानेमें विषके समान [illegible]

ष्वनिष्टानीति वैराग्यकारणविशेषानुचिन्तनं षष्ठं धर्म्यं । भवविचयं सचित्ताचित्तमिश्रशीतोष्णमिश्रसंवृतविवृतमिश्रभेदासु योनिषु जरायुजाण्डजपोतोपपाद-सम्मूर्च्छनजन्मनो जीवस्य भवाद्भवान्तरसंक्रमण इषुगतिपाणिमुक्तालांगलिकागोमूत्रिकाख्यतश्चो गतयो भवन्ति । तत्रेषुगतिरविग्रहैकसामयिकी ऋज्वी संसारिणा सिद्ध्यता च जीवानां भवति । पाणिमुक्तैकविग्रहा द्विसामयिकी संसारिणा भवति । लांगलिका द्विविग्रहा त्रिसामयिकी । गोमूत्रिका त्रिविग्रहा चतु:सामयिकी भवति । एवमनादिसंसारे संधावतो जीवस्य गुणविशेषानुपलब्धिरतस्तस्य भवसंक्रमणं निरर्थकमित्येवमादिभवसंक्रमणदोषानुचिंतनं सप्तमं

का कारण मानते हैं यद्यपि ये आत्मीय नहीं हैं आत्मासे बाह्य हैं तथापि लोग इन्हें इष्ट मानते हैं परंतु वास्तवमें देखा जाय तो ये अनिष्ट ही हैं इसप्रकार वैराग्यके विशेष विशेष कारणोंका चिंतवन करना छठा विरागविचय नामका धर्म्यध्यान है। सचित्त,अचित्त,मिश्र,शीत,उष्ण,मिश्र, संवृत,विवृत,मिश्र ये नौ योनियां हैं इनमें यह जीव जरायुज अंडज पोत उपपाद संमूर्च्छन रीतिसे जन्म लेकर एक भवसे दूसरे भवमें परिभ्रमण किया करता है उस समय अर्थात् एक भव छोडकर दूसरे भवमें जाते समय इषु गति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति ये चार गतियां होती हैं। इनमेंसे इषुगति कुटिलतारहित [मोडा रहित] होती है एक समयमें होती है और सीधी होती है तथा संसारी जीवोंके भी होती है और मुक्त होनेवाले जीवोंके भी होती है। पाणिमुक्तागति एकविग्रहा अर्थात् एक मोडा सहित होती है दो समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। लांगलिकागति द्विविग्रहा अर्थात् दो मोडा सहित होती है तीन समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। गोमूत्रिकागति तीन विग्रहवाली [तीन मोडावाली] होती है चार समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है । इसप्रकार अनादि संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवके सम्यग्दर्शन आदि विशेष गुणोंकी प्राप्ति नहीं होती इसलिये इसका संसारमें परिभ्रमण करना व्यर्थ ही है इसप्रकार संसारमें परिभ्रमण करनेके दोषोंका बार बार चिंतवन करना सातवां भवविचय नामका धर्म्यध्यान है ।

धर्म्यं । यथावस्थितमीमांसा संस्थानविचयं तद्द्वादशविधं, अनित्यत्वमशरणत्वं संसार एकत्वमन्यत्वमशुचित्वमास्रवः संवरो निर्जरा लोको बोधिदुर्लभो धर्मस्वाख्यात इत्यनुप्रेक्षा । उक्तं हि—

समुदेति विलयमृच्छति भावो नियमेन पर्ययनयस्य । नोदेति नो विनश्यति भवनतया लिंगितो नित्यम् ॥

तत्रानित्यत्वमात्मना रागादिपरिणामात्मना कर्मणो कर्मभावेन गृहीतानि पुद्गलद्रव्याण्यगृहीतानि परमाण्वादीनि तेषां सर्वेषां द्रव्यात्मना नित्यत्वं, पर्यायात्मना संततमनुपरतभेदसंसर्गवृत्तित्वादनित्यत्वमिमानि हि शरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणि समुदायरूपाणि जलबुद्बुदवदनवस्थितस्वभावानि

संसारमें जो पदार्थ जिस अवस्थामें विद्यमान है उनका उसीप्रकार विचार वा मनन करना आठवां संस्थान विचय नामका धर्म्यध्यान है। वह अनित्यत्व, अशरणत्व, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म्यस्वाख्यातके भेदसे बारह प्रकारका है इन्हीं बारहोंको अनुप्रेक्षा कहते हैं। लिखा भी है—समुदेति इत्यादि।

पर्याय नयसे समस्त पदार्थ नियमरूपसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते रहते हैं परंतु द्रव्यार्थिक नयसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट ही होते हैं द्रव्यार्थिक नयसे सब पदार्थ नित्य हैं।

रागादिपरिणाम स्वरूप आत्माके द्वारा जो कर्मोंके योग्य पुद्गल द्रव्य कर्मरूपसे ग्रहण किये गये हैं अथवा परमाणु आदि जो पुद्गल द्रव्य आजतक ग्रहण नहीं किये हैं वे सब द्रव्य रूपसे नित्य हैं परंतु पर्याय नयसे सदा लगे हुए भेदरूप संसर्गके संबंधसे अनित्य हैं, शरीर और इंद्रियोंके विषयोंके उपभोग परिभोग करने योग्य समुदायरूप सब द्रव्य भी जलके बुद्बुदाके समान अनवस्थित स्वभाव हैं अर्थात् शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं। गर्भ आदि विशेष विशेष अवस्थाओंमें भी संयोग और वियोग सदा प्राप्त होते रहते हैं परंतु मोहनीय कर्मके उदयसे यह अज्ञानी जीव इस संसारमें सबको नित्य मानता है संसारमें आत्माके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग स्वभावके सिवाय और कुछ भी नित्य नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अनित्यानुप्रेक्षा है, इ-

गर्भादिष्वदस्याविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि मोहोदयादत्राऽज्ञानी नित्यतां मन्यते, न किंचित्संसारे ध्रुवमस्त्यात्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यत्वानुप्रेक्षा, एवमस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वंगाभावाद् भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ।

अशरणत्वं–शरणं द्विविधं, लौकिकं, लोकोत्तरं चेति । प्रत्येकं त्रिविधं जीवाजीवमिश्रकभेदात् । तत्र लौकिकं जीवशरणं राजा देवता, प्राकाराद्यऽजीवशरणं, प्राकारान्वितं ग्रामनगरादि मिश्रकं । लोकोत्तरं जीवशरणं पंच गुरवस्तत्प्रतिबिंबाद्यऽजीवशरणं सधर्मसाधुवर्गोपकरणं मिश्रकशरणं । यथा मृगशावकस्यैकान्ते बलवता क्षुधितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिद्रुतस्य न किंचिच्छरणमस्ति तथा जन्मजराव्याधिप्रियवियोगाप्रियसंयोगेप्सिताऽलाभदारिद्र्यदौर्मनस्या-

सप्रकार इस भावनाके चिंतवन करने से उन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि नहीं होती और ममत्वबुद्धिके न होनेसे उपभोग कर छोडे हुए गंध माला आदि पदार्थोंके समान उनका वियोग होने पर भी किसी तरहका क्लेश उत्पन्न नहीं होता है।

इस संसारमें शरण दो प्रकारका है एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर । तथा वे दोनोंही जीव, अजवि और मिश्रके भेदसे तीन तीन प्रकारके हैं। राजा देवता आदि लौकिक जीव-शरण हैं। कोट शहर पनाह आदि लौकिक अजीव शरण हैं और कोट खाई सहित गांव नगर आदि लौकिक मिश्र शरण हैं। अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांचो ही गुरु लोकोत्तर जीव शरण हैं इन अरहंत आदिके प्रतिबिंब आदि लोकोत्तर अजीव शरण हैं। धर्मसहित साधुओंका समुदाय तथा उनके उपकरण आदि लोकोत्तर मिश्र शरण हैं। जिसप्रकार किसी एकांत स्थानमें अत्यंत बलवान भूखा और मांसका लोलुपी बाघ किसी हिरणके बच्चेको पकड़ लेता है और फिर उसे कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार जन्म जरा (बुढापा) व्याधियां, इष्टका वियोग अनिष्टका संयोग, इच्छका लाभ न होना, दरिद्रता, दुर्मनस्कता (मनका चंचल रहना) आदिसे उत्पन्न हुए अनेक दुःखोंसे ग्रसित हुए इस प्राणीको कोई शरण नहीं है अर्थात् उन दुःखोंसे इसे कोई नहीं बचा सकता। यह अत्यंत पुष्ट किया हुआ वा पाला पोसा हुआ शरीर

विषमुत्थितेन दुःखेनाभिभूतस्य जन्तोः शरणं न विद्यते। परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायी भवति न व्यसनोपनिपाते सति। यत्नेन संचिता अर्थां न भवान्तरमनुगच्छन्ति। संविभक्तसुखदुःखाः सुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते बन्धवः समुदिताश्च रुजा परीतं न परिपान्ति। अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तरणोपायो भवति। मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणं तस्माद्भवव्यसनसंकटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्यनुयायी नान्यत्किंचिच्छरणमिति भावनमशरणानुप्रेक्षा। एवमस्य भावयतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य सांसारिकेषु भावेषु ममत्वविगमो भवति, भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीतागम एव प्रतिपन्नो भवेत्।

ससारस्य, संसारोऽसंसारो नो ससारस्तत्त्रितयव्यपायश्चेति चतुर्विधावस्था। तत्र ससारश्चतुसृषु गतिषु नानायोनिविकल्पासु परिभ्रमणं, शिवपदपरमा-

भी केवल भोजनकेलिये सहायक होता है परंतु किसी आपत्तिके आजानेपर यह बिल्कुल सहायता नहीं देता। बडे यत्नसे संचित किया हुआ धन भी दूसरे जन्ममें साथ नहीं जाता। सुख दुखको बाँटने वाले मित्रगण भी मरनेके समय रक्षा नहीं कर सकते और भाई बंधु सब मिलकर भी उस रोगी पुरुषको नहीं बचा सकते। इस संसारमें इस जीवको यदि कोई सहायक है तो अच्छीतरह आचरण किया हुआ धर्म ही है। यह धर्म ही संसाररूपी महासागरसे पार होनेका साधन है जिससमय मृत्यु इस जीवको ले जाने लगता है उससमय इंद्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकता इसीलिये संसारकी समस्त आपत्तियोंके समय एक धर्म ही शरण है मित्र और धन भी इस जीवके साथी नहीं हैं अतएव इस संसारमें कोई भी शरण नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अशरणानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे "मैं सदा अशरण हूं अर्थात् मेरा कोई शरण नहीं है" इस तरहकी भावनासे इस जीवका चित्त सदा उद्विग्न वा विरक्त रहता है और फिर विरक्त परिणाम होनेसे संसारके समस्त पदार्थोंसे उसका ममत्व छूट जाता है तथा भगवान सर्वज्ञ अरहंतदेवके कहे हुए आगममें उसका चित्त तल्लीन हो जाता है।

संसार, असंसार, नो संसार और त्रितयव्यपाय अर्थात् तीनोंसे रहित ये संसारकी चार

[मृतदुःखप्रतिष्ठाऽसंसार', सयोगकेवलिनश्चतुर्गतिभ्रमणाभावात्संसारान्तप्राप्त्यभावाच्चेषत्संसारो नोसंसार इति, तत्त्रितयव्यपायोऽयोगिकेवलिनो भवभ्रमणाभावात् सयोगकेवलिवत्प्रदेशपरिस्पंदविगमात्संसारान्तावाप्त्यभावाच्च देहपरिस्पन्दाऽभावेऽपि देहिन. सततं प्रदेशचलनमस्ति ततः सदा संसार एव, सिद्धानामयोगिकेवलिना च नास्ति प्रदेशचलनं तद्योग्यकर्मसामाग्र्यभावादितरेषां त्रिधाऽवसीयते । स पुन' संसारः, अभव्यापेक्षयाऽनाद्यनिधनः, भव्यसामान्यार्पणयाऽनादिरुच्छेदवान्, भव्यविशेषविवक्षया क्वचित्सादि- सनिधनः । असंसारः सादिरनिधनः । तत्त्रितयव्यपायोऽन्तर्मुहूर्तकालः । नोसंसारो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिलक्ष. । सादिः सपर्यवसानः संसारो जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्तः उत्कृष्टेनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तनकालः । स च संसारो द्र-

अवस्थाएं हैं। अनेक भेदरूप योनियोंमें जन्म मरण करते हुए चारों गतियोंमें परिभ्रमण करना संसार कहलाता है। मोक्षपदरूप परमामृत सुखकी प्राप्ति होना असंसार है। सयोग केवली चारों गतियोंमें परिभ्रमण नहीं करते और उनके संसारका अंत भी हुआ नहीं है इसलिये उन्हें ईषत्संसार अथवा नोसंसार कहते हैं । तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् इन तीनोंसे रहित अयोग केवली हैं क्योंकि उनके संसारके परिभ्रमणका अभाव है सयोग केवलियोंके समान उनके प्रदेशोंका परिस्पंदन नहीं होता और उनके संसारका अंत नहीं हुआ है। शरीरके परिस्पंदनका अभाव होने पर भी संसारी जीवोंके सदा प्रदेश परिस्पंदन हुआ करता है। इसीलिये उनके सदा संसार रहता है। सिद्ध और अयोग केवलियोंके प्रदेश परिस्पंदन नहीं होता क्योंकि उनके प्रदेश परिस्पंदन होनेके लिये उसके योग्य कर्म रूप सामग्रीका अभाव है शेष जीवोंके मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा प्रदेश परिस्पंदन होता है। वह संसार अभव्य जीवकी अपेक्षासे अनादि तथा अनिधन है [आदि अंत दोनोंसे रहित है] भव्य सामान्यकी अपेक्षासे अनादि तो है परंतु नष्ट हो सकता है। भव्य विशेषकी अपेक्षासे क्वचित् सादि है परंतु सनिधन अर्थात् सांत है। असंसार अर्थात् मोक्ष सादि है परंतु अनिधन अर्थात् अंत रहित है । तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् चौदहवें गुणस्थानका समय अंतर्मुहूर्त है नोसंसारका समय जघन्य, अंतर्मुहूर्त

व्यक्षेत्रकालभवभावभेदात् पंचविधो, द्रव्यनिमित्त. संसारो द्विविधः कर्मनोकर्मविवक्षाभेदात्कर्मद्रव्यसंसारो ज्ञानावरणादिविषयो नोकर्मद्रव्यसंसार औदारिकवैक्रियिकाऽऽहारकतैजसशरीराणामाहारशरीरेन्द्रियाऽऽनपानभाषामनःपर्याप्तीनां विषयः। क्षेत्रहेतुकः संसारो द्विविध, स्वक्षेत्रपरक्षेत्रविकल्पात्। लोकाकाशतुल्यप्रदेशस्यात्मनः कर्मोदयवशात्संहरणविसर्पणधर्मिणो हीनाधिकाकाशप्रदेशपरिमाणावगाहत्वं स्वक्षेत्रसंसारः। सम्मूर्च्छनगर्भोपपादजन्मनवयोनिविकल्पावलम्बन परक्षेत्रसंसारः। परमार्थव्यवहारभेदेन कालो द्विविधः। तत्र यावंतो लोकाकाशप्रदेशास्तावंतः कालाणवः परस्परं प्रत्यबंधा एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकव्यापिनो मुख्योपचारप्रदेशकल्पनाभावान्निरवयवाः, मुख्यप्रदेशकल्पना हि धर्माधर्मजीवाकाशेषु पुद्गलेषु च द्व्यणुकादिस्क-

है और उत्कृष्ट कुछ कम एक करोड पूर्व है। सादि और सांत संसारका समय जघन्य अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरावर्तन है। द्रव्य क्षेत्र काल भव भावके भेदसे संसार पांचप्रकारका है। द्रव्यनिमित्तिक संसार अर्थात् द्रव्यसंसार कर्म और नोकर्मकी विवक्षाके भेदसे दो प्रकार है। कर्म द्रव्य संसार ज्ञानावरण आदि कर्मोंके विषयभूत है और नोकर्म द्रव्यसंसार औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर तथा आहार शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके विषयभूत है। जिसमें क्षेत्र ही कारण हो उसको क्षेत्रसंसार कहते हैं वह स्वक्षेत्र और परक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। इस आत्माके प्रदेश लोकाकाशके प्रदेशोंके वरावर हैं परंतु कर्मोंके उदयके कारण उनमें संकोच विस्तार होनेकी शक्ति है। इसीलिये यह आत्मा कभी आकाशके थोडेसे प्रदेशोंमें ही अवगाहन करता है और कभी अधिक प्रदेशोंमें। इसीको स्वक्षेत्र संसार कहते हैं। संमूर्च्छन गर्भ उपपाद इन तीनों जन्म तथा नौ योनियोंके भेदोंका सहारा लेकर जन्म मरण करना परक्षेत्र संसार है। परमार्थ और व्यवहारके भेदसे काल भी दो प्रकारका है। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतने ही कालाणु हैं वे परस्पर कभी बंध रूप नहीं होते अर्थात् मिलते नहीं, एक एक लोकाकाशके प्रदेशपर एक एक कालाणु है इसतरह वे कालाणु समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं, उनमें न तो मुख्य प्रदेश कल्पना है और न उपचारसे

न्धेषु परमाणुषूपचारप्रदेशकल्पना प्रचयशक्तियोगात्। विनाशहेत्वभावान्नित्याः, विविधपरिणामिषड्द्रव्यपर्यायपरिवर्तनहेतुत्वादनित्याः; रूपरसगन्धस्पर्शयोगाभावादमूर्ताः, जीवप्रदेशवत्प्रदेशान्तरसंक्रमणाऽभावान्निष्क्रिया इति परमार्थकालः। व्यवहारकालः परमार्थकालवर्तनया लब्धकालव्यपदेशः परिणामादिलक्षणः। कुतश्चित्परिच्छिन्नोऽपरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः। भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति त्रिविधः कालः परस्परापेक्षत्वात्, यथा वृक्षपंक्तिमनुसरतो देवदत्तस्यैकैकं तरुं प्रति प्राप्तप्राप्नुवत्प्राप्स्यद्व्यपदेशस्तथा तत्कालाणूननुसरतां द्रव्याणां क्रमेण वर्तनापर्यायमनुभवतां भूतवर्तमानभविष्यद्व्यवहारसद्भावः।

प्रदेश कल्पना है इसलिये वे कालाणु अवयवरहित हैं। धर्म, अधर्म, जीव, आकाश और द्व्यणुक आदि स्कंधरूप पुद्गलोंमें मुख्य प्रदेश कल्पना है तथा परस्पर मिलनेकी शक्ति होनेसे पुद्गल परमाणुमें उपचारसे प्रदेश कल्पना है। कालाणुमें किसी तरहकी प्रदेश कल्पना नहीं है, उनके नाश होनेका कोई कारण नहीं है इसलिये वे नित्य हैं और अनेक तरहसे परिणमनशील ऐसे छहों द्रव्योंकी पर्यायोंके परिवर्तनका कारण होनेसे अनित्य हैं। उनमें रूप रस गंध स्पर्शका संबंध नहीं है इसलिये अमूर्त हैं और जीवोंके प्रदेशोंके समान वे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक जा आ नहीं सक्ते इसलिये निष्क्रिय वा क्रिया रहित हैं ऐसे उन कालाणुओंको परमार्थ काल कहते हैं। परमार्थकालकी वर्तनाके द्वारा जिसे कालसंज्ञा प्राप्त हुई है परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व जिसका लक्षण है अर्थात् इन तीनोंसे जो जाना जाता है उसे व्यवहार काल कहते हैं यह व्यवहारकाल किसी अन्यसे (सूर्योदयादिकसे) परिच्छिन्न है और अपरिच्छिन्न द्रव्योंके परिच्छेदका कारण है।

वह व्यवहार काल भूत वर्तमान और भविष्यतके भेदसे तीन प्रकारका है। जिसप्रकार अनेक वृक्षोंकी पंक्तियोंके अनुसार कोई देवदत्त नामका पुरुष चल रहा हो तो उसके लिए एक एक वृक्षके प्रति यह भाव उत्पन्न होता है कि इस वृक्षतक वह पहुंच गया इस वृक्षके समीप जा रहा है और इस वृक्षपर जायगा उसीप्रकार अनुक्रमसे वर्तमान पर्यायोंका अनुभव करते

तत्र परमार्थकाले भूतादिव्यवहारो गौणो व्यवहारकाले तु मुख्यः । किमत्र बहुनोक्तेन परमार्थकालेन कारणभूतेन तेन षट् द्रव्याणि कार्यरूपाणि परावर्त्यन्ते तेषां द्रव्याणां परिच्छेदकाः समयावलिकादयः । द्रव्यस्यैकपर्याय एकसमयो द्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानन्तपर्यायकलापाः द्वित्रिचतुःसंख्येया असंख्येया अनन्तसमया यथा प्रदीपः स्वपरप्रकाशकस्तथैव कालः स्वपरप्रवर्त्तकः, अथवा सर्वजघन्यगतिपरिणतस्य परमाणोः स्वावगाहाकाशप्रदेशव्यतिक्रमणं कालः परमनिरुद्धो निर्विभागः समय इति कालसंसारः ।

भवनिमित्तसंसारो द्वात्रिंशद्विधः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः प्रत्येकं चतुर्विधाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदात् । वनस्पतिकायिका द्वेधा प्रत्येकशरीराः

हुए उन कालाणुओंके अनुसार रहनेवाले द्रव्योंके भूत वर्तमान भविष्यत व्यवहार प्रगट होता है। उसमें भी परमार्थकालमें भूत वर्तमान भविष्यत्का व्यवहार गौण रीतिसे होता है और व्यवहार कालमें इन तीनोंका व्यवहार मुख्य रीतिसे होता है । यहांपर बहुत कहनेसे क्या लाभ है केवल इतना समझ लेना चाहिये कि उस कारणभूत परमार्थ कालसे छहों द्रव्य कार्यरूप परिणत होते रहते हैं। उन द्रव्योंका परिच्छेद करनेवाले समय आवलिका आदि हैं। द्रव्यका एक पर्याय एक समयरूप है तथा दो तीन चार संख्यात असंख्यात अनंत पर्यायोंका समूह दो तीन चार संख्यात असंख्यात और अनंत समयरूप हैं। जिसप्रकार दीपक स्वप्रकाशक होकर परप्रकाशक है उसीप्रकार काल भी स्वप्रवर्तक होकर परप्रवर्तक है । अथवा सबसे जघन्यगतिरूप परिणत हुआ पुद्गलका परमाणु जितनी देरमें अपने रहने योग्य आकाशके प्रदेशका उल्लंघन करता है अर्थात् समीपवर्ती प्रदेश तक पहुंचता है उतने परम निरुद्ध और विभाग रहित कालको समय कहते हैं यह काल संसार है ।

भव निमित्तक संसार बत्तीस प्रकारका है पृथिवीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक और अग्निकायिक। ये चारों ही प्रकारके जीव सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक, बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं सब सोलह भेद होते हैं। वनस्पतिकायिक दो प्रकारके

साधारणशरीराश्चेति । प्रत्येकशरीरा द्वेधा पर्याप्तकापर्याप्तकभेदात् । साधारणशरीरा आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्त्युत्पादननिमित्तमाहारवर्गणायाः गृहीतपुद्गलपिंडास्तत्र यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र मरणमनंतानां यत्रैकश्चोत्पद्यते तत्राऽनंतानामुत्पत्तिर्भवति तेषां लिंगं गूढशिरादि । उक्तं च—

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च । साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥ १ ॥

जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं । चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं ॥ २ ॥

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं । साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ ३ ॥

हैं एक प्रत्येक शरीर और दूसरा साधारण शरीर । पर्याप्तक अपर्याप्तकके भेदसे प्रत्येक शरीर भी दो प्रकारके हैं । आहार,शरीर,इंद्रिय,उच्छ्वास,निश्वास और पर्याप्तिके निमित्त कारण आहार वर्गणाके पुद्गलपिंड ग्रहण करनेवाले साधारण शरीर कहलाते हैं । उनमेंसे यदि एकका मरण हो तो सबका मरण हो जाता है और एककी उत्पत्ति हो तो अनंत जीवें.की उत्पत्ति होती है । उन साधारण जीवोंका चिन्ह गूढशिरा आदि है । लिखा भी है—साहारण इत्यादि ।

भावार्थ— इन साधारण जीवोंका साधारण ही आहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वासका ग्रहण होता है साधारण जीवोंका लक्षण परमागममें साधारण ही कहा है ॥ १९१ ॥ साधारण जीवोंमें जहांपर एक जीव मरण करता है वहांपर अनंत जीवोंका मरण होता है और जहांपर एक जीव उत्पन्न होता है वहां अनंत जीव उत्पन्न होते हैं ॥ १९२ ॥ जिनका शिरा,संधि पर्व अप्रगट हों और जिसका भंग करने पर समान भंग हो और दोनों भंगोंमें परस्पर तंतु न लगा रहे छेदन करनेपर भी वृद्धि हो जाय उसको साधारण शरीर कहते हैं और इसके विपरीतको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८६ ॥ जिन वनस्पतियोंके मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल (नये पत्ते) छोटीशाखा पत्र फूल फल तथा बीजोंको तोडनेसे समान भंग हो उनको साधारण कहते हैं और जिनका भंग समान न हो उनको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८७ ॥ जिन वनस्पतिके कंद मूल क्षुद्रशाखा या स्कंध-

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलवीजे । सममंगे सदिणंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ४ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वावि बहलतरी । छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दु तणुकदरी ॥ ५ ॥

ते च साधारणशरीराश्चतुर्धा सूक्ष्मवादरपर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात् । द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्रत्येकं द्वेधा, पर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात् । पंचेन्द्रियाश्चतुर्धा संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकापेक्षयेति ।

भावनिमित्तसंसारो द्वेधा स्वभावपरभावाश्रयात् । स्वभावो मिथ्यादर्शनकषायादिः परभावो ज्ञानावरणादिकर्मरसादिः । एवमेतस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन्नयं जीवः कर्मयंत्रप्रेरितः पिता भूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति । माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति । किं बहुना स्वयमात्मनः पुत्रो भवतीत्येवमादिससारस्वभावचिन्तनं संसारानुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतः संसारदुःखभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति निर्विण्णश्च संसारप्रहाणाय प्रतियतते ।

की छाल मोटी हो उनको साधारण कहते हैं और जिसकी छाल पतली हो उसको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८८ ॥ (ये गोम्मटसार जीवकांडके गाथा हैं)

वे साधारण जीव सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक, वादर पर्याप्तक और वादर अपर्याप्तक के भेदसे चार प्रकारके हैं दो इंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय जीव भी पर्याप्तक अपर्याप्तकके भेदसे दो दो प्रकारके हैं । पंचेंद्रिय जीव संज्ञी पर्याप्तक, संज्ञी अपर्याप्तक, असंज्ञी पर्याप्तक और असंज्ञी अपर्याप्तकके भेदसे चार प्रकारके हैं इस प्रकार सब बत्तीस भेद होते हैं । भावनिमित्तक संसार के दो भेद हैं एक स्वभाव दूसरा परभाव । मिथ्यादर्शन कषाय आदि स्वभाव संसार है और ज्ञानावरणादि कर्मोंके रसादिक परभावसंसार है । इस प्रकार अनेक योनियां और लाखों कुल कोडियोंसे भरे हुए इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ यह जीव कर्मरूपी यंत्रोंसे प्रेरित होकर पिता होकर भाई हो जाता है, पुत्र हो जाता है तथा पौत्र हो जाता है माता होकर बहिन स्त्री और पुत्री हो जाता है । बहुत कहनेसे क्या ? वह स्वयं मरकर अपना पुत्र हो जाता है । इस प्रकार संसारके स्वभावका चिंतवन करना संसारानुप्रेक्षा है ।

अथैकत्वानुप्रेक्षावर्णनं । जन्मजरामरणाऽऽवृत्तिमहादुःखानुभवनं प्रति सहायानपेक्षत्वमेकत्वं । एकत्वमनेकत्वमेतदुभयं द्रव्यक्षेत्रकालभावविकल्पं । तत्र द्रव्यैकत्वं जीवादिष्वन्यतमद्रव्यविषयत्वेनाऽभेदत्वं । क्षेत्रैकत्वं परमाण्ववगाढप्रदेशः । कालैकत्वमभेदसमयः। भावैकत्वं मोक्षमार्गः । तथाऽनेकत्वमपि भेदविषयं, न हि किंचिदेकमेव निश्चितमस्ति अनेकमेव वा, एकमपि सामान्यार्पणया विशेषार्पणयाऽनेकमपि भवति। तत्र परिप्राप्तबाह्याभ्यंतरोपधित्याग-स्य सम्यग्ज्ञानादेकत्वनिश्चयमास्कन्दतः यथाख्यातचारित्रैकवृत्तेर्मोक्षमार्गभावेनैकत्वं तत्प्राप्तय एक एवाऽहं न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते, एक एव जायत एक एव म्रियते, न मे कश्चिज्जनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति, बंधुमित्राणि श्मशानं नाऽतिवर्तन्ते, धर्म एव मे सहायः

बार बार होनेवाले जन्म जरा मरणोंके महादुखोंके अनुभवके लिए सहायताकी अपेक्षा न रखना एकत्व है। एकत्व और अनेकत्व ये दोनों ही द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार प्रकारके हैं। जीवादिक पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थके विषयको लेकर अभेद बुद्धि रखना द्रव्य एकत्व है। परमाणुके रहने योग्य प्रदेशको क्षेत्र एकत्व कहते हैं। अभेदरूप समयको काल एकत्व कहते हैं। तथा मोक्षमार्गको भाव एकत्व कहते हैं। जिसप्रकार अभेद विषयको एकत्व कहते हैं उसीप्रकार भेद विषयको अनेकत्व कहते हैं। संसारमें न तो कोई भी पदार्थ एक है और न अनेक ही है किंतु सामान्यकी अपेक्षासे एक है और विशेषकी अपेक्षासे अनेक है। जिस जीवने बाह्य आभ्यंतर उपाधियोंका त्याग कर दिया है तथा सम्यग्ज्ञानसे एकत्वका निश्चय कर लिया है उसके एक यथाख्यात चारित्रकी वृत्ति धारण करनेसे मोक्षमार्गके भाव प्रगट होते हैं इसलिये उसके वह एकत्व कहलाता है। उस एकत्वकी प्राप्तिके लिए "इस संसारमें मैं अकेला हूं स्व और पर मेरा कोई नहीं है मैं अकेला ही जन्म लेता हूं और अकेला ही मरता हूं स्वजन और परजन कोई मनुष्य भी मेरी व्याधियां, बुढापा, और मरण आदिके दुःखोंको दूर नहीं कर सकता। बंधु मित्र आदि श्मशानसे आगे नहीं जा सकते एक धर्म ही मेरा सहायक है और वही ऐसा है जो कभी नाश न होगा" इसप्रकार चिंतवन करना एकत्वानुप्रेक्षा है।

सदाऽनपायीति चिन्तनमेकत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबंधो न भवति, परजनेषु द्वेषानुबंधो नोपजायते, ततो निःसंगताऽभ्युपजायते, ततो निःसंगतो मोक्षोऽवघटते । इत्येकत्वानुप्रेक्षा ।

अथाऽन्यत्वाऽनुप्रेक्षाकरणं । अन्यत्वं चतुर्धा व्यवतिष्ठते, नामस्थापनाद्रव्यभावाऽऽलंबनभेदात् । आत्मा जीव इति नामभेदः । काष्ठप्रतिमेति स्थापनाभेदः । जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति द्रव्यभेदः । एकस्मिन्नपि द्रव्ये बालो युवा मनुष्यो देव इत्यादि भावभेदः जीवकर्मणो बंधं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्यत्वं, जीवस्तावज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणः । वर्णगंधरसस्पर्शवन्तः पुद्गला इति लक्षणकृतो भेदः । प्रतिसमयमनंतानंताः कर्माणवो योगवशादागत्य जीवप्रदेशेष्वन्योन्यप्रदेशाऽनुप्रविष्टाः सन्त कषायवशादवतिष्ठन्ते । समयं प्रत्यनंतानंता- कर्मपुद्गला जीवं परित्यज्य प्रच्यवंत इति बंधं प्रति भेदः । नोकर्म-

इसप्रकार चिंतवन करनेसे अपने कुटुंबी लोगोंसे प्रेम नहीं बढता और अन्य लोगोंमें द्वेष नहीं बढता । इसप्रकार राग द्वेषका अभाव होनेसे निःसंगता बढती है और निःसंगता बढनेसे मोक्ष प्राप्त होती है । इसप्रकार एकत्व अनुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

आगे अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं । नाम, स्थापना, द्रव्य, भावके अवलंबनके भेदसे अन्यत्व चार प्रकारका होता है । आत्मा है जीव है यह नाम भेद है । काष्ठ पाषाण आदिकी बनाई हुई प्रतिमा स्थापना भेद है । यह जीव द्रव्य है, अजीव द्रव्य है आदि द्रव्य भेद है । एक ही जीव द्रव्यमें बालक युवा मनुष्य देव आदि भाव भेद है । यद्यपि जीव कर्मोंका बंध होनेसे दोनों एक हो रहे हैं तथापि लक्षणभेदसे दोनों भिन्न भिन्न हैं । जीव ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगरूप है तथा पुद्गल वर्ण गंध रस स्पर्शवाला है । यह लक्षणसे दोनोंमें भेद हुआ । प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म परमाणु योगोंके निमित्तसे आते हैं तथा जीवके प्रदेशोंमे (दूध पानीके समान) परस्पर एक दूसरेके प्रदेशोंमें मिलकर एक हो जाते हैं कषायोंके निमित्तसे उनमें ठहरनेकी शक्ति हो जाती है इसलिये वे वहीं ठहर भी जाते हैं । इसीप्रकार प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म पुद्गल जीवको छोडकर अलग भी हो जाते हैं । इसप्रकार यह बंधके प्रति भेद सिद्ध होता है ।

पुद्गला अपि बन्धनगुणेन जीवे क्षीरनीरन्यायेनैकबन्धनबद्धा भूत्वा प्रतिक्षणं निर्जीर्यन्ते । जीवः स्वयं कर्मवशात्तत्प्रायोग्यशरीरं निर्माय शरीरस्थोऽपि यथा नखरोमदन्तास्थिषु न विद्यते तथा रुधिरवसाशुक्ररसश्लेष्मपित्तमूत्रपुरीषमस्तिष्कादिषु प्रदेशेष्वपि नास्ति एवं कर्मशरीरावयवेभ्यो जीवस्याऽन्यत्वं ततः कुशलपुरुषप्रयोगसन्निधौ शरीरादत्यंतव्यतिरेकेणाऽऽत्मनो ज्ञानादिभिरनंतैरहेयैर्मुक्त्यावस्थानं तदवाप्तय—ऐन्द्रियिकं शरीरमतींद्रियोऽहं, अज्ञं शरीरं ज्ञस्वभावोऽहं, अनित्यं शरीरमनित्योऽहं । आद्यन्तवच्छरीरमनाद्यनन्तोऽहं, बहूनि मे शरीरशतसहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमतः स एवाऽहमन्यस्तेभ्य इति

नोकर्म पुद्गल भी बंधन गुणसे जीवमें दूध पानीके समान एक बंधरूप हो जाते हैं और फिर प्रति क्षणमें निर्जीर्ण होते जाते हैं। यह जीव स्वयं कर्मोंके निमित्तसे उनके योग्य शरीर बनाता है परंतु वह उस शरीरमें रहकर भी जिसप्रकार नख, रोम और दांतोंकी हड्डियोंमें नहीं रहता उसीप्रकार रुधिर वसा शुक्ररस श्लेष्मा पित्त मूत्र पुरीष (विष्टा) और मास्तिष्क आदिके प्रदेशोंमें भी नहीं रहता। इसप्रकार यह जीव कर्मोंके द्वारा बने हुए शरीरसे बिल्कुल भिन्न रहता है। तथा किसी कुशल पुरुषके प्रयोग करनेपर (मोक्षके लिए उद्यम करनेपर) शरीरसे अत्यंत भिन्न होनेके कारण जो आत्मासे कभी भिन्न हो नहीं सकते ऐसे ज्ञान आदि अनंत गुणोंके साथ साथ मोक्ष स्थानमें जाकर प्राप्त होता है। उस मोक्षस्थानके प्राप्त होनेके लिए "यह शरीर इंद्रियमय है मैं अतींद्रिय हूं शरीर अज्ञान वा जड स्वरूप है परंतु मैं ज्ञान स्वरूप हूं यह शरीर अनित्य है मैं नित्य हूं, शरीरका आदि अंत दोनों हैं परंतु मेरा न आदि है, न अंत है संसारमें परिभ्रमण करते हुए मेरे बहुतसे शरीर व्यतीत हो गये परंतु मैं ज्योंका त्यों वही बना हुआ हूं और उन शरीरोंसे सर्वथा भिन्न हूं। हे अंग (हे जीव) यह मेरा आत्मा शरीरसे भी भिन्न है फिर धन धान्य आदि वाह्य परिग्रहोंकी तो बात ही क्या है अर्थात् उनसे तो भिन्न है ही।" इसप्रकार चिंतवन करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार मनको समाधान करनेवाले इस जीवके

शरीरादन्यत्वं मे । किमंग पुनर्बाह्येभ्यः परिग्रहेभ्य इति चिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा । एवमस्य मनः समादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते ततश्च श्रेयसे वर्तते । इत्यन्यत्वाऽनुप्रेक्षा ।

अथाऽशुचित्वाऽनुप्रेक्षा-शुचित्वं द्वेधा, लोकोत्तरं लौकिकं चेति । तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्मकलङ्कस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं तत्साधनानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छुचित्व्यपदेशमर्हन्ति । लौकिकं शुचित्वं कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयसलिलाऽज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदादष्टविधं । तदिदं शरीरं शुचीकर्तुं न शक्यते कुतोऽत्यंताऽशुचित्वात् शरीरमिदमाद्युत्त-

शरीर आदिमें स्पृहा वा इच्छा नहीं होती और उन पदार्थोंकी इच्छा न होनेसे यह जीव अपने कल्याणमें लग जाता है । इसप्रकार यह अन्यत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

अब आगे अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते हैं । पवित्रता दो प्रकारकी है एक लोकोत्तर और दूसरी लौकिक । जिसने विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे अपने समस्त कर्ममल कलंक धो डाले हैं नष्ट कर दिए हैं ऐसे आत्माका अपने ही आत्मामें स्थिर रहना लोकोत्तर पवित्रता कहलाती है । उस लोकोत्तर पवित्रताके साधन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपश्चरण है तथा सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र तपश्चरणको धारण करनेवाले साधु जन उस पवित्रताके अधिष्ठान वा आधार हैं । अथवा उस लोकोत्तर पवित्रताके उपायभूत होनेसे निर्वाण भूमि आदि भी पवित्र कहलाती हैं । लौकिक पवित्रता काल, अग्नि, भस्म, मृत्तिका (मिट्टी) गोमय (गोवर) जल, अज्ञान और निर्विचिकित्साके भेदसे आठ प्रकार है । परंतु यह शरीर किसी तरहसे पवित्र नहीं किया जा सकता इसका भी कारण यह है कि वह अत्यंत अपवित्र है इस शरीरके आदिकारण और अंतके कारण दोनोंही अपवित्र हैं इसलिये यह शरीर भी अपवित्र है इसी बातको आगे दिखलाते हैं— शरीरके आदि कारण अर्थात् शरीर बननेके कारण शुक्र और शोणित हैं परंतु वे दोनों ही महा अपवित्र हैं । शरीरके उत्तर कारण आहारका परिणाम

राशुचिकारणादिभिरशुचि लक्ष्यते। तद्यथा—आद्यं तावत्करणं शरीरस्य शुक्रं शोणितं च तदुभयमत्यन्ताऽशुचि। उत्तरकारणमाहारपरिणामादिकवलाऽऽहारोपि ग्रस्तमात्रः श्लेष्माशयं प्राप्य श्लेष्मणा द्रवीकृतोऽधिकमशुचि भवति, ततः पित्ताशयं प्राप्य पच्यमान आम्लीकृतोऽशुचिरेव भवति, पक्वो वाताशयमवाप्य वायुना विभज्यमानः खलरसभावेन भिद्यते। खलभागो मूत्रपुरीषादिद्रवघनमलविकारेण विविच्यते, रसभागः शोणितमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रभावेन परिणमते। सर्वेषां चैषामशुचीनां भाजनं शरीरमवस्करवदशक्यप्रतीकारं। खल्विदं शरीरं स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षवस्त्रमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुं अंगारवदाश्रितमपि द्रव्यमाश्वेवाऽऽत्मस्वभावमापादयति। शरीरजा अपि गोमयगोरोचनदन्तिदंतचमरीबालमृगनाभिखड्गविषाणमयूरपिच्छसर्पम-

आदि हैं यह आहार खानेके साथही श्लेष्माशयको प्राप्त होता है और वहांपर श्लेष्माके द्वारा कुछ द्रवीभूत होकर पतला होकर और अधिक अपवित्र हो जाता है। वहांसे पित्ताशयमें पहुंचता है और पककर कुछ खट्टासा होकर उससे भी अधिक अपवित्र हो जाता है। पककर वह आहार वाताशयमें पहुंचता है और वहां वायुसे विभक्त होकर (अलग अलग भागोंमें बटकर) खलभाग और रसभागोंमें बट जाता है। खलभाग मूत्र पुरीष (भिष्टा) आदि पतले और कडे मलके विकारमें परिणत होकर अलग निकल जाता है। रसभाग शोणित (रक्त वा खून लोहू) मांस मेदा हड्डी मज्जा और शुक्ररूप परिणत हो जाता है इन सब अपवित्र पदार्थोंका पात्र यह शरीर है जो कि भिष्टाके समान ऐसा अपवित्र है कि उसको पवित्र करनेका कोई उपाय हो ही नहीं सकता। इस शरीरकी अपवित्रता स्नान करने उबटन लगाने घिसने और वस्त्र माला आदिके पहननेसे भी कभी दूर नहीं हो सकती। जिस प्रकार अग्निमें जो चीज पड जाती है वह भी अग्नि रूप ही हो जाती है उसी प्रकार चन्दनादि जो पदार्थ इस शरीर पर लगाये जाते हैं वे भी शरीर रूपही अपवित्र हो जाते हैं। गोवर, गोरोचन, हाथीके दांत, चमरीगायके बाल, मृगनाभि (कस्तूरी) गेंडाके सींग, मोरकी पूंछ, सांपकी मणि और सीपके मोती आदि शरीरसे उत्पन्न हुए पदार्थ संसारमें पवित्र माने जाते हैं परंतु इस शरीरमें कुछ भी भाग

णिशुक्तिमुक्ताफलादयो लोकेषु शुचित्वमुपगताः । नास्त्यत्र पुनः शरीरे किंचित्कमनीयं शुचि वा न जलादीनां शुचिहेतुत्वं । सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यंतिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीति तत्त्वभावनमशुचित्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य संस्मरतः शरीरनिर्वेदो भवति निर्विण्णश्च जन्मोदधितरणाय चित्तं समाधत्त इत्यशुचित्वाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

अथाऽऽस्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । तदुद्वेगार्थमास्रवोपक्षेपः, आस्रवा हीहाऽमुत्र चापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियादयः । अविरलसरलशाल्मकीसहकारवंशकुडंगप्रमथनस्वच्छसरोवरसलिलावगाहनमृदुसुखस्पर्शिमहीतलविहरणादिगुणसंपन्ना वनविहारिणो मदांधा महाकाया बलवन्तोऽपि वा-

पवित्र और सुंदर नहीं है न जलादि ही इसको पवित्रताके कारण हो सकते हैं । इस संसारमें केवल सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही ऐसे हैं कि जिनकी भावना करनेसे यह जीव अत्यंत पवित्र हो जाता है । इसप्रकार शरीरके वास्तविक तत्त्वका चिंतवन करना अशुचित्वानुप्रेक्षा है । इस प्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे शरीरसे वैराग्य उत्पन्न होता है और फिर विरक्त होकर यह जीव जन्म मरण रूपी महासागरके पार होनेकेलिये अपना चित्त लगाता है । इस प्रकार अशुचित्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

आगे आस्रवानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—यहांपर अनुप्रेक्षाओंमें केवल वैराग्य प्रगट करनेके लिए ही आस्रव ग्रहण किया गया है । संसारमें कर्मोंके जितने आस्रव हैं वे सब इस लोक और परलोक दोनों जगह इस जीवके स्वाभाविक गुणोंका नाश करनेवाले हैं । ये इंद्रियां आदि किसी महानदीकी तीक्ष्ण जानेवाली धाराके समान हैं । देखो ! अत्यंत घने और सीधे ऐसे साल, आम, बांस और कुडंगके पेडोंका तोडना, स्वच्छ सरोवरके जलमें अवगाहन करना, मुलायम और जिसका स्पर्श सुख देनेवाला है ऐसी पृथ्वीपर विहार करना आदि अनेक गुणोंसे सुशोभित, वनमें विहार करनेवाले, मदांध, महाकाय (जिनका बहुत बडा शरीर है) और बहत बलवान हाथी कृत्रिम हाथिनीमें स्पर्शनेंद्रियके सुखके लिए आसक्त चित्त होकर मनुष्योंके

रेणा हस्तिबन्धकीषु स्पर्शनेन्द्रियप्रसक्तचित्ता मनुष्यविधेयतामुपगम्य वधबन्धदमनवाहनांकुशताडनपार्ष्णिघातादिजनितं तीव्रं दुःखमनुभवन्ति । नित्यमेव च स्वयूथस्वच्छन्दप्रचारसुखस्य वनवासस्याऽनुस्मरन्तो महान्तं खेदमवाप्नुवन्ति । तथैव जिह्वेन्द्रियविषयलोभात् स्रोतोवेगावगाहिमृतहस्तिशरीरस्था वायसा अपारसागरावर्तान्तःपातव्यसनमुपनिपतन्ते । मत्स्याश्चागाधसलिलसंचारिणो लोचनगोचरातीता रसनेन्द्रियवशंगता आमिषलोभेन लोहमास्वाद्य म्रियन्ते । घ्राणेन्द्रियलोलुपाश्चौषधगन्धलुब्धपन्नगा विनिपातमिच्छन्ति, मधुकराश्च दानगंधलुब्धा गजकर्णझलंझलामुपगम्य मरणमासादयन्ति । चक्षुरिन्द्रियविषयीकृता प्रदीपावलोकेन लोलाः पतंगा व्यसनप्रपाताऽभिमुखा भवन्ति । श्रोत्रेन्द्रियविषयसंगाकृष्टमनसो गीतध्वनिविषयंगविस्मृततृणग्रसना हरिणा अ-

वश हो जाते हैं और फिर मारना, बांधना, दमन करना, सवारी करना, अंकुशोंसे ताडना और पैरकी एडीसे मारना आदि अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए अनेक तीव्र दुःखोंका अनुभव करते हैं। वह प्रतिदिन अपने समूहमें स्वतंत्रता पूर्वक विहार करनेवाले वनवासके सुखका स्मरण करते हैं और बार बार उसका स्मरणकर अत्यंत दुःखी होते हैं। इसीतरह जिह्वा इंद्रियके विषयके लोभमे किसी नदीके प्रवाहके वेगमें पडे हुए मरे हाथीके शरीरपर बैठे हुए कौवे अपार महासागरके भीतर पहुंच जाते हैं और वहांपर अनेक तरहके दुःख उठाते हैं। इसीप्रकार अगाध जलमें रहनेवाली और नेत्रोंके द्वारा दिखाई न देनेवाली मछलियां भी केवल रसना इंद्रियके वश होकर मांसके लोभसे लोहेकी कीलका आस्वादन कर मर जाती हैं। घ्राण इंद्रियके लोलुपी सर्प औषधि मिली हुई सुगंधिके लोभमें आकर मरनेकी इच्छा करते हैं। भ्रमर भी हाथीके मदकी सुगंधके लोभमें पडकर हाथीके इधर उधर चलाये हुए कानोंकी चोट खाकर मर जाते हैं। चक्षु इंद्रियके विषयके वशीभूत हुए पतंग दीपकको देखकर चंचल हो जाते हैं और उसमें पडकर जल जाते हैं वा मर जाते हैं। जिनका मन श्रोत्र इंद्रियके विषयमें (मधुर रागमें) आसक्त हो गया है ऐसे हिरण भी गीतोंकी मधुर ध्वनिके रागमें खडे होकर हरी घासका खाना भी भूल जाते हैं और फिर बहेलियोंके द्वारा मारे जाते हैं। ये सब दुःख तो इन्हें

नर्थान्मुखा भवन्ति । परत्र च नानाजातिषु बहुविधदु खप्रज्वलितासु पर्यटन्ति । तथा स्वयंप्रभांगसंगतसुखस्पर्शलाभलोभाऽऽकृष्टचित्तोऽश्वग्रीवो, विद्याधरचक्रवर्ती त्रिखंडाधिपतिः सपुत्रः सबाधवो निधनतामुपगत. । तथा च रसनेन्द्रियलोलुपः सुभूम' सकलचक्रवर्ती षट्खंडाधिपतिर्वणिग्वेषधारिणा जन्मान्तरवैरिणा समुद्रमध्ये मरणमुपगत. । तथा च बर्बरीविलासिकानृत्यावलोकनविहिताऽऽसक्तिर्दमितारिरर्द्धचक्रवर्ती सकलपरिजनसमेतो विराममुपजगाम । तथा च हस्तिपकमधुरगीतरवश्रवणसक्तमतिरमृतमतिर्यशोधरमहाराजमहादेवी स्वकुलपरिभ्रष्टा कुष्ठाधिष्ठितशरीरा मृतिमुपगम्य नरकदु खभागिनी

इस लोकमें ही भोगने पडते हैं। तथा इनके सिवाय परलोकमें भी अनेक तरहके दुःखोंसे भरी हुई बहुतसी योनियोंमें उन्हें परिभ्रमण करना पडता है। (यह तो तिर्यंचोंका उदाहरण बतलाया। मनुष्योंमें भी अनेक बडे पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्हें एक एक इंद्रियकी आसक्तिसे अनेक तरहके दुःख भोगने पडे हैं) अश्वग्रीव विद्याधरोंका चक्रवर्ती राजा था और तीन खंडका स्वामी था परंतु उसका चित्त स्वयंप्रभाके अंगस्पर्शसे उत्पन्न हुए सुख और स्पर्शके लाभ होनेके लोभमें फंस गया था इसीलिये उसे पुत्र भाइयों सहित मरना पडा था। राजा सुभूम सकल चक्रवर्ती राजा था और छहों खंडोंका स्वामी था तथापि रसना इंद्रिय और घ्राण इंद्रियका लोलुपी होनेसे उसे बीच समुद्रमें जाकर वैश्यके भेषको धारण करनेवाले जन्मांतरके वैरीके हाथसे मर जाना पडा। इसीतरह अर्द्धचक्रवर्ती दमितारि भीलनीका नृत्य देखनेमें आसक्त होकर अपने सब कुटुंबियों समेत मरणको प्राप्त हुआ था। इसीप्रकार यशोधर महाराजकी अमृतमति नामकी महादेवी हाथीवानके (महावतके) मधुर गीतोंके शब्द सुननेमें आसक्त होकर अपने कुलसे भ्रष्ट होगई थी, उसका शरीर सब कोढसे भर गया था और मरकर उसे नरकके अनेक दुःख भोगने पडे थे। इसप्रकारके महापुरुष लोग भी विषके समान केवल एक एक इंद्रियके विषयोंसे नष्ट हो गये थे फिर पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा करनेवालोंकी

बभूव। एवमेकैकेन्द्रियविषयैर्विषसमैस्तथाविधा अपि विनष्टाः किं पुनः पंचेन्द्रियविषयाभिलाषिण इत्येवमास्रवदोषाऽनुचिन्तनमास्रवाऽनुप्रेक्षा। एवमस्य चिन्तयतः क्षमादिधर्मात् श्रेयस्त्वबुद्धिर्न प्रच्यवते। सर्वेऽप्येते आस्रवदोषाः कर्मवत्संवृतेन्द्रियस्य न भवन्ति। इत्यास्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं।

अथ संवराऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। आस्रवनिरोधः संवरः। यथा वणिङ्महार्णवे यानपात्रविवरद्वारजलास्रवपिधाने निरुपद्रवमभिलषितदेशान्तरं प्राप्नोति तथा मुनिरपि संसारार्णवे शरीरपोतस्येन्द्रियविषयद्वारकर्मजलास्रव तपसा पिधाय मुक्तिवेलापत्तनं निर्विघ्नं प्राप्नोति इत्येवं संवरगुणाऽनुचिंतनं संवराऽनुप्रेक्षा। एवमस्य चिन्तयतः संवरे नित्योद्युक्तता भवति। इति संवराऽनुप्रेक्षावर्णन।

तो बात ही क्या है ? इसप्रकार आस्रवके दोषोंका चिंतवन करना आस्रवानुप्रेक्षा है। इसतरह चिंतवन करनेसे क्षमादि धर्म ही कल्याणकारी जान पडते हैं और फिर उनसे अपनी बुद्धि कभी नहीं हटती। ये आस्रवके सब दोष कच्छपके समान इंद्रियोंका निरोध करनेवालोंके नहीं होते हैं। इसप्रकार आस्रव अनुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे संवरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—आस्रवका रोकना ही संवर है। जिसप्रकार कोई वैश्य महासागरमें चलते हुए जहाजके छिद्रोंको या पानी जानेके मार्गको बंदकर फिर निर्विघ्न रीतिसे देशांतर पहुंचता है उसीप्रकार मुनिराज भी संसाररूपी महासागरमें पडे हुए शरीररूपी जहाजके कर्मरूपी जलके आनेके कारण ऐसे इंद्रियोंके विषयरूपी द्वारोंको तपश्चरणके द्वारा बंदकर निर्विघ्न रीतिसे मोक्षरूपी महानगरमें पहुंच जाते हैं। इसप्रकार संवरके गुणोंका चिंतवन करना संवरानुप्रेक्षा है। इसप्रकार चिंतवन करनेसे संवरमें सदा सावधानी और तत्परता रहती है। इसप्रकार संवरानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—कर्मोंका एकदेश नष्ट होना निर्जरा है। वह भी उदय और उदीरणाके भेदसे दो प्रकार की है। नरकादि गतियोंमें कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं उसको उदयसे होनेवाली निर्जरा कहते हैं और परिषहोंके जीतने वा तपश्चरण आदिसे जो

अथ निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। कर्मैकदेशगलनं निर्जरा, सापि द्वेधा, उदयोदीरणाविकल्पात्। तत्र नरकादिषु कर्मफलविपाकोदयोद्भवा। परीषहजयादुदीरणोद्भवा। सा शुभाऽनुबंधा निरनुबंधा चेत्येवं निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जराऽनुप्रेक्षा। एवमस्यानुस्मरतः कर्मनिर्जरायै वृत्तिर्भवति। इति निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं।

अथ लोकाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। जीवादिपदार्थाधिकरणं लोकः। समन्तादनंतानतस्यात्मप्रतिष्ठाऽऽकाशस्य बहुमध्यप्रदेशस्थितस्तनुवातघनानिलघनोदधिवेष्टितो लोकस्तन्मध्यगता त्रसनाडी, तन्मध्ये महामेरुस्तस्याध स्थिता नरकप्रस्तारा, मेरुपरिवृताः शुभनामानो द्वीपसमुद्रा द्विर्द्विर्विष्कंभा वलयाकृतयो,

कर्म विना फल दिये हुए नष्ट हो जाते हैं वह उदीरणासे होनेवाली निर्जरा कहलाती है। वह निर्जरा भी दो प्रकारकी है, एक वह कि जिससे शुभ कर्मोंका बंध हो और दूसरी वह जिससे किसी कर्मका बंध न हो। इसप्रकार निर्जराके गुण दोषोंका चिंतवन करना निर्जरानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे कर्मोंकी निर्जरा करनेमें प्रवृत्ति होती है। इसप्रकार निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं जो जीवादि समस्त पदार्थोंका आधार है वह लोक कहलाता है। यह आकाश सब ओरसे अनंतानंत है और अपने ही आधार है। आकाशका अन्य कोई आधार नहीं है। उसी आकाशके अत्यंत मध्यवर्ती प्रदेशोंमें यह लोक विराजमान है। यह लोक तनुवात घनवात और घनोदधिवातसे घिरा हुआ है अर्थात् लोकके चारों ओर घनोदधिवात है उसके चारों ओर घनवात है उसके चारों ओर तनुवात है और उसके चारों ओर आकाश है। उस लोकाकाशके मध्यमें त्रसनाडी है उसके मध्यभागमें यहां मेरु पर्वत है। मेरुपर्वतके नीचे नरकोंके प्रस्तर हैं तथा मेरुके चारों ओर शुभ नामोंको धारण करनेवाले दूनी दूनी चौडाईवाले कंकणके आकारके (असंख्यात) द्वीप समुद्र हैं। मेरुके उपर स्वर्गोंके पटल हैं स्वर्गपटलोंके ऊपर सिद्धक्षेत्र है। इसप्रकार इस लोकके अधोलोक तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोकके

मेरोरुपरि स्वर्गपटलानि, तेषामुपरि सिद्धक्षेत्रं । एवमधस्तिर्यगूर्ध्वभेदभिन्नस्य चतुर्दशरज्जुनिस्तारदक्षिणोत्तरदिग्भागस्य वेत्रासनझल्लरीमृदंगसमानाऽऽकारस्य षड्द्रव्यनिचितस्याकृत्रिमस्यानादिनिधनस्य लोकस्य स्वभावपरिणामपरिणाहसंस्थानाऽनुचिंतनं लोकानुप्रेक्षा । एवमस्याध्यवस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति । इति लोकानुप्रेक्षावर्णनं ।

अथ बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । स्कन्धांडराऽऽवासपुलविशरीरेषु स्कंधा असंख्यातलोकमात्राः, एकैकस्मिन् स्कंधेऽसंख्यातलोकमात्रा अंडरा

भेदसे तीन भेद होते हैं यह समस्त लोक चौदह राजू ऊंचा है पूर्व पश्चिमकी ओर नीचे सात राजू चौडा है मध्यम एक राजू चौडा है ऊपर जाकर फिर पांच राजू चौडा है और सबसे ऊपर जाकर एक राजू चौडा है। दक्षिण उत्तरकी ओर सर्व जगह सात राजू लंबा है। अधोलोक वेंतके आसनके समान ऊपरसे सकरी और नीचेसे चौडी तिपाईके समान है मध्यलोक झालरके समान है और ऊर्ध्व लोक मृदंग वा पखावजके समान है। इसके सिवाय यह लोक छह द्रव्योंसे भरा हुआ है अकृत्रिम है और अनादि तथा अनिधन है। इसप्रकार लोकका स्वभाव लोकका परिमाण परिधि और उसका आकार चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इसके मनन करनेसे तत्त्वज्ञानकी विशुद्धि होती है। इसप्रकार लोकानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे बोधिदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं। स्कंध, अंडर, आवास, पुलवि और शरीरोंमें स्कंधोंकी संख्या असंख्यात लोकमात्र है। एक एक स्कंधमें असंख्यात लोकमात्र अंडर हैं। एक एक अंडरमें असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवासमें असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं। एक एक पुलविमें असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं और एक एक निगोद शरीरमें समस्त अतीत कालमें होनेवाले सिद्धोंसे अनंतगुणे जीव हैं। यह बात अन्य ग्रन्थोंमें भी गोम्मटसारमें) लिखी है—एयणिओय इत्यादि।

एकैकस्मिन्नंडर आवासा असंख्यातलोकमिता एकैकस्मिन्नावासे पुलवयोऽसंख्यातलोकप्रमाणा., एकैकस्मिन्पुलवे असंख्यातलोकप्रमितानि शरीराण्येकैकस्मिन्निगोदशरीरे जीवाः सर्वातीतकालसिद्धानामनंतगुणाः। उक्तं च—

एयणिगोयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण॥

इत्येवं सर्वलोको निरन्तरं निचितः स्थावरैस्ततस्तत्र बालुकासमुद्रे पतितवज्रसिकताकणिकेव त्रसता दुर्लभास्तत्र च विकलेंद्रियाणां प्रचुरभूयिष्ठत्वात्पंचेंद्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या। तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभवश्चतुष्पथे रत्नराशिरिव दुरासदस्तत्प्रच्यवे पुनस्तदुपपत्तिर्दग्धतरुपुद्गलतद्भावाऽऽपत्तिवद्दुर्लभा। तल्लाभे च कुदेशानां हिताहितविचारविरहितानां पशुसमानमानवाकीर्णानां बहुत्वात्सुदेशः पाषाणेषु म-

" अर्थात् एक निगोद शरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीवोंकी संख्या समस्त व्यतीत कालके सिद्धोंसे अनंतगुणी है।" इसप्रकार यह समस्त लोक स्थावर जीवोंसे सदा भरा रहता है। जिसप्रकार बालूके समुद्रमें पडे हुए हीराके कणोंका मिलना अत्यंत कठिन है उसीप्रकार इन स्थावर जीवोंमेंसे त्रसपर्याय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है। त्रसपर्यायमें भी विकलेंद्रियोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार गुणोंमें कृतज्ञता अत्यंत कठिनतासे मिलती है उसीप्रकार त्रसोंमें पंचेंद्रिय होना अत्यंत कठिन है। पंचेंद्रियोंमें भी पशु हिरण पक्षी सांप आदि तिर्यंचोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार किसी चौराये पर (चौरस्ते पर) रत्नोंकी राशि मिलना कठिन है उसीप्रकार पंचेंद्रियोंमें मनुष्यभव प्राप्त होना अत्यंत कठिन है। यदि मनुष्य जन्म मिलकर नष्ट होगया तो जिसप्रकार जिसकी लकडी जड आदि सब जलादी गई हैं ऐसा वृक्ष फिरसे नहीं उग सकता उसीप्रकार मनुष्य जन्मका फिरसे मिलना अत्यंत कठिन है। कदाचित् दुबारा मनुष्य जन्म मिल भी जाय तो जिन्हें हिताहितका कुछ विचार नहीं है और जो मनुष्योंका आकार धारण करनेवाले पशुओंके समान हैं ऐसे कुदेशोंमें रहनेवाले म्लेच्छोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार पत्थरोंमें माणिका मिलना सुलभ नहीं है उसीप्रकार किसी सुपदेशमें उत्पन्न होना भी सुलभ नहीं

गिरिव न सुलभः । लब्धेऽपि सदेशे पापकर्मजीवकुलाकुलत्वात्कुले जन्म वृद्धोपसेवादिरहिते विनयवत्कृच्छ्रलभ्यं । लोकस्य कुले हि जातिः प्रायेण शीलविनयाचारसंपत्तिकरी भवति । सत्यामपि कुलसंपदि दीर्घायुरिन्द्रियबलरूपनीरोगत्वादीनि दुर्लभानि । सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलंभो यदि न स्यात् व्यर्थं जन्म वदनमिव दृष्टिविकलं । तमेवमतिदुर्लभं सद्धर्मं कथं कथमप्यवाप्य विषयसुखे रंजनं भस्मार्थं चन्दनदहनमिव विफलं । विरक्तविषयसुखस्य तपोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षणः समाधिर्दुर्लभस्तस्मिन्सति बोधिलाभः फलवान् भवतीति चिंतनं बोधिदुर्लभत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतो बोधिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति । इति बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

है। कदाचित सुप्रदेशमें भी मनुष्य जन्म प्राप्त होजाय तो भी यह लोक प्रायः पापकर्म करनेवाले जीवोंके समूहों से भरा हुआ है इसलिये जिसप्रकार वृद्धोंकी सेवा न करनेवालोंके विनयका प्राप्त होना कठिन है उसीप्रकार अच्छे कुलमें जन्म लेना बहुत ही कठिन है । अच्छा कुल मिलनेपर भी प्रायः जीवोंकी जाति ही शील विनय आचार संपदा देनेवाली होती है। यदि कदाचित् कुल संपदा आदि प्राप्त भी होजाय तो दीर्घ आयु, इंद्रिय, बल,रूप और नीरोगता आदि प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। उन समस्त संयोगके प्राप्त होने पर भी यदि सद्धर्म धारण करनेका लाभ न हो तो जिसप्रकार विना नेत्रोंके मुखमंडल व्यर्थ है उसीप्रकार उसका मनुष्य जन्म लेना भी व्यर्थ ही है। यदि वही अत्यंत दुर्लभ सद्धर्म जिस तिसतरहसे प्राप्त हो जाय और फिर भी वह जीव विषय सुखमें निमग्न रहे तो जिसप्रकार केवल भस्मके लिये चंदन का जलाना व्यर्थ है उसीप्रकार उसका सद्धर्म प्राप्त होना भी निष्फल है जो विषय सुखोंसे विरक्त होगया है उसके लिये भी तपश्चरणकी भावना, धर्मकी प्रभावना, और सुखमरण अर्थात् समाधिमरण रूप समाधि वा ध्यानकी प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। इन सब सामाग्रियोंके मिल जाने परभी रत्नत्रयका प्राप्त होजाना ही सफल गिना जाता है। इसप्रकार चिंतवन करना बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इसके चिंतवन करनेसे रत्नत्रयको पाकर फिर कभी प्रमाद नहीं होता है । इसप्रकार बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

अथ धर्मस्वाख्याताऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । चतुर्दशगुणस्थानानां गत्यादिचतुर्दशमार्गणास्थानेषु स्वतत्त्वविचारलक्षणो धर्मः । निःश्रेयसप्राप्तिहेतुरहो भगवद्भिरर्हद्भिः स्वाख्यात इति चिंतन धर्मस्वाख्याततत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य चिंतयतो धर्मानुरागः सदा प्रतिपन्नो भवति। इत्येवं चिन्तनं संस्थानविचय-मष्टमं धर्म्यं ।

अथाऽऽज्ञाविचयस्वरूपमुच्यते । आज्ञाविचयमतीन्द्रियज्ञानविषय विज्ञातुं चतुर्षु ज्ञानेषु बुद्धिशक्त्यभावात्परलोकबंधमोक्षलोकालोकसदसद्विवेकवृद्धि-प्रभावधर्माधर्मकालद्रव्यादिपदार्थेषु सर्वज्ञप्रामाण्यात्तत्प्रणीताऽऽगमव स्थितमवितथं नान्यथेति सम्यग्दर्शनस्वभावत्वान्निश्चयाचितनं नवमं धर्म्यं ।

आगे धर्मस्वाख्याततत्त्वानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—गति आदि चौदह मार्गणा स्थानोंमें चौदह गुणस्थानोंके आत्मतत्त्वका विचार करना धर्म है। मोक्षकी प्राप्तिका उपाय भगवान अरहंत देवने ही बतलाया है इसप्रकार चिंतवन करना धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा है । इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे धर्मानुराग सदा बढता रहता है । इसप्रकार बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करना संस्थानविचय नामका आठवां धर्म्यध्यान है।

अब आगे आज्ञाविचयका स्वरूप कहते हैं। जो पदार्थ अतींद्रिय ज्ञानके गोचर हैं जिनमें बुद्धिकी शक्ति काम नहीं देती ऐसे परलोक बंध, मोक्ष, लोक अलोक वृद्धिको प्राप्त हुए सत् असत् विवेकका प्रभाव, धर्म अधर्म काल द्रव्य आदि पदार्थोंमें तथा चारों ज्ञानोंमें " संसारमें सर्वज्ञ प्रमाण है और उनकी प्रमाणतासे उनके वचनोंके अनुसार कहे हुए आगममें जो कुछ उनका स्वरूप कहा गया है वह सब सत्य है वह कभी अन्यथा रूप नहीं हो सकता " इसप्रकार सम्यग्दर्शनका स्वभाव होनेसे वास्तविक तत्वका चिंतवन करना आज्ञाविचय नामका नौवां धर्म्यध्यान है।

आगे हेतुविचयका स्वरूप कहते हैं। आगममें किसी तरहका विरोध आनेपर जो पुरुष विशेष विशेष नयोंकी मुख्यता और गौणतासे प्राप्त हुए अत्यंत कठिन स्याद्वादके द्वारा उस

अथ हेतुविचयस्वरूपमुच्यते । हेतुविचयमागमविप्रतिपत्तौ नयनिक्षेपगुणप्रधानभावोपनयदुर्धर्षस्याद्वादप्रतिक्रियाऽवलंबिनस्तर्कानुसारिरुचेः पुरुषस्य स्वसमयगुणपरसमयदोषविशेषपरिच्छेदेन यत्र गुणप्रकर्षस्तत्राऽभिनिवेशः श्रेयानिति स्याद्वादतीर्थंकरप्रवचने पूर्वापराविरोधहेतुपरिग्रहणसामर्थ्येन समवस्थानगुणानुचिंतनं हेतुविचयं दशमं धर्म्यं ।

सर्वमेतद् धर्मध्यानं पीतपद्मशुक्ललेश्याबलाधानमविरतादिसरागगुणस्थानभूमिकं द्रव्यभावात्मकसप्तप्रकृतिक्षयकारणं । आ अप्रमत्तादन्तर्मुहूर्तकालपरिवर्तनं परोक्षज्ञानत्वात् क्षायोपशमिकभावं स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्तनीयं । शेषैकविंशतिद्रव्यभावलक्षणमोहनीयोपशमक्षयनिमित्तमिति ।

विरोधका प्रतीकार करता है तथा न्यायानुसार ही जिसकी रुचि है ऐसा पुरुष अपने मतके विशेष गुण और परमतके विशेष दोषोंको अच्छी तरह समझकर जहां गुणोंकी अधिकता हो वहीं श्रद्धान करना उसीको मानना कल्याण कारी है इसप्रकार तीर्थंकरके कहे हुए स्याद्वाद स्वरूप आगममें पूर्वापर अविरोधरूप हेतुओंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्यसे उसमें रहनेवाले गुणोंका बार बार चिंतवन करना हेतुविचय नामका दशवां धर्म्यध्यान है ।

ये सब तरहके धर्म्यध्यान पीत पद्म और शुक्ललेश्याके बलसे होते हैं चौथे गुणस्थानसे लेकर सराग गुणस्थानतक होते हैं । द्रव्य भावरूप सातों प्रकृतियोंके (मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्त्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ) क्षय होनेके कारण हैं सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक होते हैं और अंतर्मुहूर्ततक ही होते हैं फिर बदल जाते हैं, परोक्षज्ञानके गोचर होनेसे क्षायोपशमिक भी हैं, स्वर्गमोक्षरूप फल देनेवाले हैं और बाकीकी मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतियोंके क्षय होनेके निमित्त कारण हैं ।

शुक्लध्यानके दो भेद हैं एक शुक्ल और दूसरा परमशुक्ल । उसमें भी शुक्लध्यान भी दो प्रकारका है एक पृथक्त्ववितर्कवीचार और दूसरा एकत्ववितर्कावीचार । परमशुक्ल भी दो प्रकारका है एक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और दूसरा समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति । इस समस्त

शुक्लध्यानं द्विविधं, शुक्लं, परमशुक्लमिति । शुक्लं द्विविधं पृथक्त्ववितर्कवीचारमेकत्ववितर्कावीचारमिति । परमशुक्लं द्विविधं, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिसमुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिभेदात् । तल्लक्षणं द्विविधं, बाह्यमाध्यात्मिकमिति । गात्रनेत्रपरिस्पन्दविरहितं जंभजृंभोद्गारादिवर्जितमनभिव्यक्तप्राणापानप्रचारत्वमुच्छिन्नप्राणापानप्रचारत्वमपराजितत्वं बाह्यं, तदनुमेयं परेषामात्मन· स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं तदुच्यते । पृथक्त्वं नानात्वं, वितर्को द्वादशांगश्रुतज्ञानं, वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः, व्यंजनमभिधानं, तद्विषयोऽर्थः, मनोवाक्कायलक्षणो योगः, अन्येऽन्यतः परिवर्तनं संक्रांतिः। पृथक्त्वेन वितर्कस्यार्थव्यंजनयोगेषु संक्रातिवीचारो यस्मिन्नस्तीति तत्पृथक्त्ववितर्कवीचारं प्रथमं शुक्लं । तथथा–अनादिसंभूतदीर्घसंसारस्थितिसागरे पारं जिगमिषुर्मुमुक्षुः स्वभाववि-

शुक्लध्यानका लक्षण भी दो प्रकारका है एक बाह्य और दूसरा आध्यात्मिक। शरीर और नेत्रोंको परिस्पंद रहित रखना, जंभाई जंभा उद्गार आदि नहीं होना, प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार नष्ट हो जाना और किसीके भी द्वारा जीता न जाना बाह्य शुक्लध्यान है। यह बाह्य शुक्लध्यान अन्य लोगोंको अनुमानसे जाना जा सकता है तथा जो केवल आत्माको स्वसंवेद्य हो वह आध्यात्मिक शुक्लध्यान कहा जाता है। नानात्व अथवा अनेकपनेको पृथक्त्व कहते हैं। द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। अर्थ, व्यंजन और योगोंकी संक्रांतिको वीचार कहते हैं। किसी पदार्थके नामको व्यंजन कहते हैं और उस व्यंजनके विषयभूत पदार्थको अर्थ कहते हैं। मन वचन कायके द्वारा आत्माके प्रदेशोंके परिस्पंदनको योग कहते हैं । एकसे दूसरेमें बदल जाना संक्रांति है। जिस ध्यानमें द्वादशांग श्रुतज्ञान अर्थ व्यंजन योगोंमें अनेक तरहसे संक्रमण करता है उसको पृथक्त्ववितर्कवीचार नामका प्रथम शुक्लध्यान कहते हैं। आगे इसीका खुलासा लिखते हैं। जब यह अनादि कालसे चले आये दीर्घ संसारकी स्थितिरूप महासागरके पार जानेकी इच्छा करनेवाला मोक्षार्थी जीव स्वभावसे प्राप्त हुए पुरुषाकारकी सामर्थ्यसे द्रव्य परमाणु अथवा भाव परमाणुमेंसे किसी एकका अवलंबनकर (उसका चिंतवनकर) बाकीके समस्त चिंतवनोंको रोक लेता है तथा उसीसमय महा

जृंभितपुरुषाकारसामर्थ्याद् द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वैकमवलंब्य संहृताऽशेषचिंताविक्षेपो महासंवरसंवृतः कर्मप्रकृतीनां स्थित्यनुभागौ ह्रासयन्नुपशमयन् क्षपयंश्च परमबहुकर्मनिर्जराक्षिपु योगेष्वन्यतमस्मिन्वर्तमान एकस्य द्रव्यस्य गुणं वा पर्यायं वा बहुनयगहननिलीनं श्रुतरविकिरणोद्योतबलेनान्तर्मुहूर्तकालं ध्यायति, ततः परमर्थान्तरं संक्रामत्यथ वास्यैवार्थस्य गुणं वा पर्यायं वा संक्रामति पूर्वयोगाद्योगान्तरं व्यंजनाद् व्यंजनान्तरं संक्रामति इति । अर्थार्थान्तरगुणगुणान्तरपर्यायपर्यायान्तरेषु योगत्रयं संक्रमणेन तस्यैव ध्यानस्य द्वाचत्वारिंशद्भंगा भवन्ति । तद्यथा—षण्णां जीवादिपदार्थानां क्रमेण ज्ञानवर्णगतिस्थितिवर्तनाऽवगाहनादयो गुणास्तेषां विकल्पाः पर्यायाः । अर्थादन्यो गुणान्तरं पर्यायादन्यः पर्यायान्तरं । एवमर्थार्थान्तरगुणगुणान्तरपर्यायपर्यायान्तरेषु

संवर करता है कर्मोंकी प्रकृतियोंकी स्थिति और अनुभागको घटाता है अथवा उन कर्म प्रकृतियोंका उपशम और क्षय करता है बहुतसे कर्मोंकी परम निर्जरा करता है मन वचन काय तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगमें स्थित रहता है और श्रुतज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके प्रकाशकी सामर्थ्यसे अंतर्मुहूर्ततक अनेक नयोंकी गहनतामें डूबे हुए किसी एक द्रव्यके गुण वा उसके पर्यायका ध्यान करता है। उसके बाद उस पदार्थसे बदलकर किसी दूसरे पदार्थका चिंतवन करता है अथवा उसी पदार्थके गुण वा पर्यायका संक्रमण करता है। पहिलेके योगसे किसी दूसरे योगपर संक्रमण करता है और एक व्यंजनसे दूसरे व्यंजनपर संक्रमण करता है। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर एक गुणसे दूसरे गुणपर और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर तीनों योगोंके द्वारा संक्रमण करनेसे इस प्रथम ध्यानके व्यालीस भेद हो जाते हैं। वे व्यालीस भेद इसप्रकार हैं —संसारमें जीवादिक छह द्रव्य हैं। ज्ञान, वर्ण, गतिसहकार, स्थितिसहकार, वर्तना और अवगाहन ये अनुक्रमसे उन द्रव्योंके गुण हैं तथा उनके भेदोंको पर्याय कहते हैं। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर संक्रमण करनेको अर्थांतर कहते हैं। एक गुणसे दूसरे गुणपर संक्रमण करनेको गुणांतर कहते हैं और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर संक्रमण करनेको पर्यायांतर कहते हैं। इसप्रकार अर्थ अर्थांतर गुण गुणांतर और पर्याय पर्यायांतर इन छहोंमें तीनों योगों

षट्सु योगत्रयसंक्रमादष्टादश भंगाः । अर्थाद् गुणगुणांतरपर्यायपर्यायान्तरेषु चतुर्षु योगत्रयसंक्रमणेन द्वादश भंगा भवन्ति । एवमर्थान्तरस्यापि द्वादशभंगा भवन्ति । सर्वे संपिंडिता द्वाचत्वारिंशद्भंगाः । एवंविधं प्रथमशुक्लध्यानमुपशांतकषायेऽस्ति, क्षीणकषायस्यादावस्ति । तत्र शुक्लतरलेश्याबलाधानमंतर्मुहूर्तकालपरिवर्तनं क्षायोपशमिकभावमुपात्तार्थव्यंजनयोगसंक्रमणं चतुर्दशदशनवपूर्वधरयतिवृषभनिषेव्यमुपशांतक्षीणकषायभेदात् स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्तनीयमिति ।

द्वितीयशुक्लध्यानमुच्यते । एकस्य भाव एकत्वं, वितर्को द्वादशांगं, अवीचारोऽसंक्रांतिः । एकत्वेन वितर्कस्य श्रुतस्यार्थव्यंजनयोगानामवीचारोऽस-

के संक्रमणके द्वारा अठारह भेद होते हैं। इसीतरह अर्थसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं। तथा अर्थांतरसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं। इसप्रकार सब मिलकर ब्यालीस भेद होते हैं। इसप्रकारका यह प्रथम शुक्लध्यान उपशांत कषायमें रहता है और क्षीण कषायके प्रारंभमें रहता है। यह ध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है और अंतर्मुहूर्तकालके बाद बदल जाता है। यह क्षायोपशमिक भाव है, प्राप्त हुए अर्थ व्यंजन योगोंके संक्रमणपूर्वक होता है चौदह पूर्व वा दश पूर्व अथवा नौ पूर्व धारण करनेवाले उत्तम मुनियोंके द्वारा सेवन (धारण) करने योग्य है और उपशांतकषाय तथा क्षीणकषायके भेदसे स्वर्ग और मोक्ष फलको देनेवाला है।

आगे दूसरे शुक्लध्यानको कहते हैं। एकके भावको एकत्व कहते हैं। द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। संक्रमण न करनेको अवीचार कहते हैं। जिस ध्यानमें श्रुतज्ञानके अर्थ व्यंजन योगोंका एकरूपसे ही ध्यान किया जाय, किसी तरहसे अर्थ व्यंजन योगोंका संक्रमण न हो उसको एकत्व वितर्कावीचार नामका दूसरा शुक्ल ध्यान कहते हैं। यह ध्यान किसी एक योगसे अर्थ गुण पर्यायोंमेंसे किसी एकके चिंतवनमें स्थित रहता है, पहिलेके समान समस्त

क्रातिर्यस्मिन्ध्याने तदेकत्ववितर्कावीचारं ध्यानं । एकयोगेनार्थगुणपर्यायेष्वन्यतमस्मिन्नवस्थानं पूर्ववत्पूर्वधरयतिवृषभनिषेव्यं । द्रव्यभावात्मकज्ञानदर्श-नावरणांतरायघातिकर्मत्रयवेदनीयप्रभृत्यघातिकर्मसु केषांचिद्भावकर्मविनाशनसमर्थमुत्तमतपोऽतिशयरूपं पूर्वोक्तक्षीणकषायावशिष्टकालभूमिकमर्थव्यंजन-योगसंक्रमणविषयचिन्ताविक्षेपरहितं असंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणं भवति । एवंविधे द्वितीयशुक्लध्याने घातित्रयविनाशनानन्तरं क्षायिकज्ञानदर्शनसम्यक्त्व-चारित्रदानलाभभोगोपभोगवीर्यातिशयशक्तिगभस्तिप्रज्वलितकेवलिजिनभास्करोदयो व्यतिक्रान्तछद्मस्थज्ञानदर्शनशरीरभाषान्तःकरणप्रकृतिः संजायते । स खलु केवलिजिनकुंजरो भगवास्तीर्थंकर इतरो वा कृतकृत्यः सिद्धसाध्यो बुद्धबोध्योऽत्यंताऽपुनर्भवलक्ष्मीपरिष्वक्तात्माचिन्त्यज्ञानवैराग्यैश्वर्यमाहात्म्यः सर्व-

पूर्वोंको धारण करनेवाले उत्तम यतियोंके द्वारा धारण किया जाता है । इस ध्यानमें द्रव्यभाव स्वरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों घातिया कर्मोंमेंसे तथा वेदनीय आदि अघातिया कर्मोंमेंसे कितने ही भावकर्मोंके नाश करनेकी सामर्थ्य है। यह उत्तम तपश्चरणका अतिशय स्वरूप है पहिले कहे हुए क्षीणकषायके समयसे बाकी बचे हुए समयमें यह दूसरा शुक्लध्यान होता है। अर्थ व्यंजन योगोंके संक्रमणमें होनेवाली समस्त चिंताओंके (चिंतवनके) विस्तारसे रहित है। तथा कर्मोंकी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करनेवाला है । इस प्रकारके दूसरे शुक्लध्यानमें तीनों घातिया कर्मोंके नाश होनेके बाद क्षायिक ज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिकवीर्यकी अतिशयशक्तिरूप किरणोंके द्वारा केवली भगवान जिनेंद्रदेव रूपी सूर्यके उदयका प्रकाश होता है तथा छद्मस्थ ज्ञान दर्शन शरीर भाषा और अंतःकरणका नाश हो जाता है। उस समय वे जिनेंद्रदेव केवली भगवान तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली कृतकृत्य (समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले) सिद्धसाध्य (समस्त साध्योंको सिद्ध करनेवाले) और बुद्धबोध्य (समस्त जानने योग्य पदार्थोंके जानकार वा सर्वज्ञ) होजाते हैं जिसमें जन्म मरणका अत्यंत अभाव है ऐसी मोक्षरूपी लक्ष्मीमें उनका आत्मा तल्लीन होजाता है, ज्ञान वैराग्य

लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽभिवंद्यश्चोत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिकालं विहरति सयोगिभट्टारकः स यदांतर्मुहूर्तशेषायुष्कः समस्थितवेदनामगोत्रश्च भवति तदा वादरकाययोगे स्थित्वा क्रमेण वादरमनोवचनोच्छ्वासनिःश्वासं वादरकाययोगं च निरुध्य ततः सूक्ष्मकाययोगे स्थित्वा क्रमेण सूक्ष्ममनोवचनोच्छ्वासनिश्वासं निरुद्ध्य सूक्ष्मकाययोगः स्यात्तस्यैव सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानं भवति। तच्छुक्लं सामान्येन तृतीयं परमशुक्लाऽपेक्षया प्रथमं यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तदधिकस्थितिकर्मत्रयः सयोगिजिनस्तदात्मोपयोगातिशयः कर्मारातिशातनसमर्थः सामायिकखड्गसहायो विशिष्टक्रियो महासंवरसंवृतो लघुकर्मपरिपातनश्च भूत्वा शेषकर्मरेणुपरिशातनशक्तिस्वभावात्समयैकदंडके चतुःसमये दंडकपाटलोकप्रतरपूरणाभिः स्वात्मप्रदेशविसर्पणे जाते तावद्भिरेव समयैः

और ऐश्वर्यका माहात्म्य प्रगट हो जाता है। वे लोकके समस्त इंद्रोंके द्वारा पूज्य वंदनीय और दर्शनीय हो जाते हैं और ऐसी अवस्थामें अधिकसे अधिक कुछकम एक करोड पूर्वतक विहार करते रहते हैं। उन सयोग केवली परम भट्टारक भगवान जिनेंद्रदेवकी आयु जब अंतर्मुहूर्तकी रह जाती है तथा वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति आयुके बराबर ही होती है तब वे वादरकाय योगमें विराजमान रहते हैं फिर वे अनुक्रमसे वादर मन वचन श्वासोच्छ्वास और वादर काय योगका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगमें विराजमान रहते हैं उसी समय वे अनुक्रमसे सूक्ष्म मन वचन और श्वासोच्छ्वासका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगको धारण करते हैं उसीसमय उनके सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामका शुक्लध्यान होता है। यह ध्यान सामान्य शुक्लध्यान की अपेक्षा तीसरा है और परम शुक्लध्यानकी अपेक्षा पहिला है। परंतु जब उनका आयु अंतर्मुहूर्त ही रह जाता है और वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति अधिक होती है तब वे केवलिसमुद्घात करते हैं। उस समय उन सयोगी भगवानके आत्मोपयोगका अतिशय प्राप्त होता है, कर्मरूपी शत्रुओंको क्षीणकरनेमें वे समर्थ होते हैं, सामायिकरूपी तलवार ही उनकी सहायक होती है और वे उस समय एक विशेष क्रिया करते हैं। उस समय उनके यहां संवर होता है छोटे छोटे कर्मोंको नाश कर डालते हैं और बाकीके कर्मपरमाणुओंको क्षीण करनेकी स्वा-

योगनिरोधं विधाय प्रथम- पूर्वशरीरपरिमाणो भूत्वाऽतर्मुहूर्तेन पूर्ववत्क्रमेण रूपसंहृतविरूपणं आयुष्यसमीकृताऽघातित्रयस्थितिर्निर्वर्तितसमुद्घातक्रियः

परमशुक्लध्यानं निष्ठापयन् ततः समये द्वितीयपरमशुक्लध्यानं प्रारब्धुमर्हति ।

तत्पुनरत्यंतपरमशुक्लं समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगप्रदेशपरिस्पंदक्रियाव्यापारतया समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तीत्युच्यते। तत्र ध्याने सर्वास्र- वनिरोधे सति सर्वशेषकर्मपरिशातनसामर्थ्योत्पत्तिमतोऽयोगिकेवलिनः संपूर्णशीलगुणं सर्वसंसारदुःखज्वालापरिष्वंगच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणं भवति । स

भाविक शक्ति उनमें हो जाती है। उस समय उनके आत्माके प्रदेश पहिले समयमें दंड रूप दूसरे समयमें कपाटरूप तीसरे समयमें लोकप्रतररूप और चौथे समयमें लोकपूरण रूप हो जाते हैं इसतरह उनके आत्माके प्रदेश फैल जानेपर फिर उतनेही समय उपसंहार रूप हो जाते हैं अर्थात् पांचवें समयमें लोकप्रतररूप छठे समयमें कपाटरूप सातवें समयमें दंडरूप और आठवें समयमें शरीर प्रमाण हो जाते हैं।

प्रदेशोंके इन उपसंहार विस्तारमें तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान कर लेते हैं। इसप्रकार समुद्घात क्रियाको पूर्णकर अपने पहिले शरीरके परिमाणके बराबर होकर अंतर्मुहूर्तमें ही पहिलेके समान योगोंका निरोध करते हैं तथा इसतरह प्रथम परमशुक्लध्यान- को पूर्णकर उसीसमयमें दूसरे परमशुक्लध्यानका प्रारंभ करते हैं। इस दूसरे परम शुक्लध्यानमें प्राणापानका प्रचार (श्वासोच्छ्वासका चलना) समस्त मन वचन कायके योग और प्रदेशों का परिस्पंदन आदि क्रियाओंके व्यापार सब नष्ट हो जाते हैं इसीलिये इसको समुच्छिन्न- क्रियानिवृत्ति कहते हैं। इस ध्यानमें समस्त आस्रवोंका निरोध हो जाता है और बाकीके समस्त कर्मोंको नाश करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। ऐसे उन अयोगकेवलीके समस्त संसारके दुःखोंकी ज्वालाके स्पर्श तकको नाश करनेवाले और साक्षात् मोक्षके कारण ऐसे समस्त शील और गुण प्रगट हो जाते हैं। फिर उसीसमय वे अयोगकेवली भगवान् ध्यान-

पुनरयोगकेवली भगवांस्तदा ध्यानानलसंनिर्दग्धसर्वमलकलंकेन्धनो निरस्तकिट्टपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मस्वभावस्तदनंतरं पूर्वप्रयोगादाविद्धकुलालचक्रवद्संगत्वादपगतलेपालांबुवत्तथा बंधच्छेदादेरंडबीजवत्तथागतिपरिणामादग्निशिखावदूर्ध्वं गच्छतीत्यालोकांतादूर्ध्वमुपग्रहकारणधर्मास्तिकायाऽभावादलोकं न गच्छति। एवमुक्तधर्म्यशुक्लयो राद्धांतसद्भावविषयसामान्ययोर्विषयं प्रत्यभेदः, अयं तु विशेषः–धर्मध्यान सकषायपरिणामस्यैकस्मिन्वस्तुनि चिरकालं न तिष्ठति रथ्याऽवस्थितप्रदीपवत्। शुक्लध्यानं पुनर्वीतरागपरिणामस्यैकस्मिन् वस्तुनि धर्मध्यानावस्थानकालात्संख्येयगुणमचंचलत्वादवतिष्ठते मणिप्रदीपवत्।

रूपी अग्निके द्वारा समस्त कर्ममलकलंकरूपी ईंधनको जला डालते हैं और फिर उनके आत्माका स्वभाव जिस कनक पाषाणमेंसे किट्ट कालिमा आदि सब नष्ट हो गया है ऐसे स्वच्छ सुवर्णके समान निर्मल हो जाता है उसके बाद वे फिराये हुए कुम्हारके चाकके समान मोक्षके लिये पहिलेका प्रयोग होनेसे, जिसका मिट्टीका सब लेप उतर गया है ऐसी तूंबीके समान बंध रहित होनेसे, रेंडीके बीजके समान बंधन टूट जानेसे और अग्निकी शिखाके समान ऊपरकी ओर गमन करनेका स्वभाव होनेसे ऊपरको गमन करते हैं और लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं। गमन करनेमें धर्मद्रव्य सहायक है और वह लोकाकाशके आगे, है नहीं, इसलिये वे अलोकाकाशमें नहीं जाते। इसप्रकार ऊपर कहे हुए धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान का विषय सिद्धांतके अनुसार साधारण है इसलिये विषयकी अपेक्षासे तो इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है यदि इन दोनोंमें कोई विशेषता है तो यह है कि धर्म्यध्यान सकषाय परिणामवालोंके होता है और इसीलिये गलीमें रक्खे हुए दीपकके समान वह बहुत देरतक किसी एक पदार्थके चिंतवनमें नहीं ठहर सकता, चंचल रहता है तथा शुक्लध्यान वीतराग परिणामवालेके होता है और धर्म्यध्यानकी स्थितिके समयसे संख्यातगुणा निश्चल ठहरता है इसलिये मणिके दीपकके समान वह एक ही पदार्थमें अर्थात् एक ही पदार्थके चिंतवनमें ठहर जाता है।

एवमुक्तं द्वादशविधं तपः सर्वार्थसाधनं, तत एव हि ऋद्धयः संजायंते। ताश्चर्द्धयो बुद्धिक्रियाविक्रियातपोबलौषधरसक्षेत्रभेदादष्टविधाः। तत्र बुद्धिमहार्द्धिनाम–बुद्धिरवगमो तद्विषया बुद्धिऋद्धिरष्टादशविधा। केवलमवधिर्मनःपर्ययज्ञानं बीजबुद्धिः कोष्ठबुद्धिः पादानुसारित्वं संभिन्नश्रोतृत्वं दूराऽऽस्वादनस्पर्शनघ्राणदर्शनश्रवणसमर्थता दशपूर्वित्वं चतुर्दशपूर्वित्वं चाष्टांगमहानिमित्तज्ञता प्रज्ञाश्रवणत्वं प्रत्येकबुद्धिता वादित्वं चेति। तत्र द्रव्यक्षेत्रकालभावकरणक्रमव्यवधानाऽभावे युगपदेकस्मिन्नेव समये त्रिकालवर्तिसर्वद्रव्यगुणपर्यायपदार्थावभासकं केवलज्ञानं। द्रव्यक्षेत्रकालभावैः प्रत्येकं विज्ञायमानदेशपरमसर्वभेदभिन्नमवधिज्ञानाऽऽवरणक्षयोपशमनिमित्तं रूपिद्रव्यविषयमवधिज्ञानं। द्रव्यादिभेदैः प्रत्येकमवगम्यमानर्जुविपुलमतिविकल्पं मनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोप-

इसप्रकार समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला यह बारह प्रकारका तपश्चरण कहा। इसी तपश्चरणसे अनेक ऋद्धियां प्रगट होती हैं। वे ऋद्धियां बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्रके भेदसे आठ प्रकारकी हैं। बुद्धि ज्ञानको कहते हैं इसलिये ज्ञानविषयक ऋद्धियोंको बुद्धिमहर्द्धि कहते हैं। उस बुद्धि ऋद्धिके नीचे लिखे अठारह भेद हैं। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरास्वादनसामर्थ्य, दूरस्पर्शनसामर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य, दूरश्रवणसामर्थ्य, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगमहानिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रवणत्व, प्रत्येकबुद्धिता और वादित्व। द्रव्यक्षेत्र, काल भाव तथा इंद्रियोंके क्रम और व्यवधानके विना एक साथ एक ही समयमें भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंके समस्त द्रव्य गुण और पर्यायरूप पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान कहलाता है। जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, रूपी पदार्थ ही जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसके प्रत्येक भेदकी सीमा नियत है ऐसा देशावधि परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका अवधिज्ञान है। जो मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशय होनेसे उत्पन्न होता है रूपी द्रव्यके अनंतवे भाग जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसका प्रत्येक भेद जाना जाता है ऐसा ऋजुमति और विपुल म-

शमकारणं रूपिद्रव्यानंतभागविषयं मनः पर्ययज्ञानं । सुकृष्टसुमतीकृते क्षेत्रे सारवति कालादिसहायापेक्षं बीजमेकमुप्तं यथाऽनेककोटिबीजप्रदं भवति तथा नोइन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति संख्येयशब्दस्थानंताप्रतिबद्धस्यानंतलिंगैः सहैकपदस्य ग्रहणादनेकार्थप्रतिपत्तिर्बीजबुद्धिः । कोष्ठाऽगारिकस्थापितानामसंकीर्णानामविनष्टानां भूयसां धान्यबीजानां यथा कोष्ठावस्थानं तथा परोपदेशादवधारितानामर्थग्रंथबीजानां भूयसामव्यतिकीर्णानां बुद्धयवस्थानं कोष्ठबुद्धिः । पादानुसारित्वं त्रेधा प्रतिसार्यनुसार्युभयसारिभेदात् । तत्र बीजपदादधःस्थितान्येव पदानि बीजपदस्थितलिंगेन जानाति प्रतिसारि, उपरिस्थितान्येव जानात्यनुसारि, उभयपार्श्वे स्थितानि पदानि नियमेनानियमेन वा जानात्युभयसारि । एवमेकस्य पदस्यार्थं परत उपश्रुत्यादावंते मध्ये वाऽशेष-

तिके भेदसे दो प्रकारका मनःपर्ययज्ञान है । जिसप्रकार किसी उपजाऊ भूमिके अच्छे जोते हुए खेतमें अच्छे समयपर वोया हुआ एकही वीज अनेक करोड वीजोंको उत्पन्न कर देता है उसीप्रकार नोइंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर किसी एकही पदका ग्रहण कर लेनेसे अनंत लिंगोंके साथ साथ अनंत अर्थोंसे भरे हुए संख्यात शब्दोंके अनेक अर्थोंका ज्ञान होजाता है आत्माकी ऐसी शक्तिको वीजबुद्धि नामकी ऋद्धि कहते हैं। जिसप्रकार किसी कोठेमें भरे हुए नाश न होनेवाले भिन्न भिन्न वहुतसे धानोंके वीजोंका समूह उस कोठेमें भरा रहता है उसीप्रकार दूसरोंके उपदेशसे धारण किये हुए भिन्न भिन्न बहुतसे अर्थ ग्रंथ और वीजोंके समूह बुद्धिरूपी कोठामें भरे रहते हैं। आत्माकी ऐसी शक्तिको कोष्ठबुद्धि कहते हैं।

पादानुसारित्वके तीन भेद हैं–प्रतिसारी अनुसारी और उभयसारी। वीजोंके पदोंमें रहनेवाले चिन्होंके द्वारा उस बीजपदके नीचे नीचेके पदोंको जान लेना प्रतिसारी है। ऊपर ऊपरके पदोंको जान लेना अनुसारी है। तथा दोनों ओर रहनेवाले पदोंको नियमित अथवा अनियमित रीतिसे जान लेना उभयसारी है। इसप्रकार दूसरेसे किसी एक पदके अर्थको सुनकर उस ग्रंथके आदि अंत मध्यका अर्थ धारण कर लेना अथवा समस्त ग्रंथका अर्थ धारण कर लेना प-

ग्रंथार्थावधारणं पदानुसारित्वं । द्वादशयोजनाऽऽयामे नवयोजनविस्तारे चक्रधरस्कंधावारे गजवाजिखरोष्ट्रमनुष्यादीनामक्षरानक्षररूपाणां नानाविधकरंबित-
शब्दानां युगपदुत्पन्नानां तपोविशेषबललाभाऽऽपादितसर्वजीवप्रदेशप्रकृष्टश्रोत्रेन्द्रियपरिणामात्सर्वेषामेककाले ग्रहणं तत्प्रतिपादनसमर्थत्वं च संभिन्नश्रोतृत्वं ।
तपःशक्तिविशेषाऽऽविर्भाविताऽसाधारणरसनेन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभापेक्षस्यावधृतनवयोजनक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टक्षेत्रा-
दायातस्य रसास्वादनसामर्थ्यं दूरास्वादनमेवं शेषेष्वपीन्द्रियविषयेष्ववधृतक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टदेशादायातेषु ग्रहणसामर्थ्यं योज्यं । रोहिण्यादि पंच-

दानुसारित्व नामकी ऋद्धि है। बारह योजन लंबे नौ योजन चौडे चक्रवर्तीकी सेना ठहरनेके स्था-
नमें हाथी, घोडे, गधे, ऊंट, और मनुष्य आदिकोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक ऐसे अनेक
तरहके मिले हुए शब्द एक साथ उत्पन्न होते हैं उन सवको जो विशेष तपश्चरणका बल प्राप्त
होनेसे समस्त जीवोंके प्रदेशोंमें उत्कृष्ट श्रोत्रेंद्रियका परिणाम प्राप्त होता है उससे एकही कालमें
ग्रहण कर लेना तथा उन सवको प्रतिपादन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होजाना संभिन्नश्रोतृत्व ना-
मकी ऋद्धि है। तपश्चरणकी विशेष शक्ति उत्पन्न होनेके कारण जिन्हें रसनेंद्रियावरण श्रुतज्ञा-
नावरण और वीर्यांतरायका असाधारण क्षयोपशम प्राप्त हुआ है तथा अंगोपांग नाम कर्मका
लाभ प्राप्त हुआ है ऐसे मुनिराजके रसनेन्द्रियका विषय जो नौ योजन क्षेत्रतक निश्चित है उ-
सके बाहर अनेक योजनकी दूरीवाले क्षेत्रसे आये हुए रसके आस्वादन करनेका सामर्थ्य उत्पन्न
होना दूरास्वादन सामर्थ्य नामकी ऋद्धि है। इसीप्रकार स्पर्शनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय नेत्रेन्द्रिय और
श्रोत्रेन्द्रियका विषय जितने दूर क्षेत्र तक नियत है उससे बाहर बहुतसे योजन दूर देशसे आये
हुए स्पर्श गंध रूप और शब्दोंको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होना अनुक्रमसे दूरस्पर्शनसा-
मर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य और दूरश्रवणसामर्थ्य नामकी ऋद्धियां हैं।

इस संसारमें रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं और अनुगत
अंगुष्ठ प्रदेशन आदि सातसौ क्षुल्लक विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं वे सब देवता अपने रूप

शतमहाविद्यादेवताभिरनुगताङ्गुष्ठप्रसेनादिक्षुल्लकविद्यादेवताभिस्ताभिरागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूपसामर्थ्याविष्करणकथनकुशलाभिर्वेगवतीभिरचलि-
तचारित्रस्य दशपूर्वदुस्तरसमुद्रोत्तारणं दशपूर्वित्वं श्रुतकेवलिनां चतुर्दशपूर्वित्वं। अष्टौ महानिमित्तान्यांतरिक्षभौमाङ्गस्वरव्यंजनलक्षणच्छिन्नस्वप्ननामानि।
तत्र रविशशिग्रहनक्षत्रताराभगणोदयास्तमयादिभिरतीतानागतफलप्रतिभागप्रदर्शनमांतरिक्षं। भुवो घनसुषिरस्निग्धरूक्षादिविभावनेन पूर्वादिदिक्सूत्रविन्या-
सेन वा वृद्धिहानिजयपराजयादिविज्ञानं भूमेरंतर्निहितसुवर्णरजतादिसंसूचनं च भौमं। तिर्यग्मनुष्याणां सत्त्वस्वभाववातादिप्रकृतिरसरुधिरादिधातुशरीरव-
र्णगन्धनिम्नोन्नतांगप्रत्यंगदर्शनस्पर्शनादिभिस्त्रिकालभाविसुखदुःखादिविभावनमंगं। नरनारीखरपिंगलोलूककपिवायसशिवाश्वगालादीनामक्षरानक्षरात्मक-

की सामर्थ्य प्रगट करने और कथन करनेमें अत्यंत कुशल हैं तथा उनका वेग अत्यंत तीव्र है ऐसी देवताओंके आनेपर भी जिनका चारित्र विचलित नहीं होता ऐसे मुनिराजके दशपूर्व रूपी अथाह समुद्रको पार करदेनेवाली (दश पूर्वका ज्ञान उत्पन्नकरानेवाली) दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि है। इसीप्रकार श्रुतकेवलीके चतुर्दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि होती है। आगे अ-ष्टांग महानिमित्त ऋद्धिको कहते हैं। आंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न ये आठप्रकारके महा निमित्त कहलाते हैं उनमें सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र और तारा आदि नक्षत्रोंके उदय अस्त होने आदिसे अतीत अनागत फलका कोईसा भी भाग जानलेना आंत-रिक्ष नामका निमित्तज्ञान है। पृथ्वीके घन (कठिन) सुषिर [पोला] स्निग्ध रूक्ष [रूखा चिकना] आदि होनेवाले परिणामसे अथवा पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंमें सूत रखकर वृद्धि हानि जय पराजय आदिका ज्ञान होना अथवा भूमिके भीतर रक्खे हुए सोना चांदी आदि पदार्थोंका जानलेना भौम नामका निमित्त ज्ञान है। तिर्यंच मनुष्योंका स्वभाव वात पित्त आदि प्रकृति, रस रुधिर आदि धातु, शरीरका वर्ण गंध नीचाई ऊंचाई, अंग प्रत्यंगका देखना छूना आदिके द्वारा भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंमें होनेवाले सुख दुःखादिकोंको जान लेना अंग नामका निमित्त ज्ञान है। स्त्री, पुरुष, गधा, सांप, उल्लू, बंदर, कौआ, बकरा, गी-

माशुभशब्दश्रवणेनेष्टानिष्टफलाविर्भावकः स्वरः । शिरोमुखग्रीवादिषु तिलकमशकलक्ष्मव्रणादिवीक्षणेन त्रिकालहिताहितवेदनं व्यंजनं । पाणिपादतलवक्षःस्थलादिषु श्रीवृक्षस्वस्तिकभृंगारकलशकुलिशादिलक्षणवीक्षणात् त्रैकालिकस्थानमानैश्वर्यादिविशेषणं लक्षणं । वस्त्रशस्त्रोपानदासनशयनादिषु देवमानुषराक्षसकृतविभागैः शस्त्रकंटकमूषिकादिकृतच्छेददर्शनात् कालत्रयविषयलाभालाभसुखदुःखादिसूचनं छिन्नं । वातपित्तश्लेष्मोदयरहितस्य पश्चिमरात्रिविभागे चन्द्रसूर्यधरादिसमुद्रमुखप्रवेशनसकलमहीमंडलोपगूहनादिशुभस्वप्नदर्शनात् घृततैलाभ्यक्तात्मीयदेहखरकरभारूढापाग्दिग्गमनाद्यशुभस्वप्नदर्शनादागामिजीवि-

दड आदि जीवोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक शुभ अशुभ शब्दोंको सुनकर इष्ट अनिष्ट फलोंको प्रगट करनेवाला स्वर नामका निमित्त ज्ञान है। मस्तक मुंह और ग्रीवा [गरदन] आदि स्थानोंमें तिल मस्सा वा अन्य कोई चिन्ह अथवा घाव आदि देखकर तीनों कालोंका हिताहित जानना व्यंजन नामका निमित्त ज्ञान है। हाथकी हथेली पांवके तलवे और वक्षः स्थल छाती आदि शरीरके अंगोंमें श्रीवृक्ष स्वस्तिक [सांथिया] भृंगार वा झारी कलश (घडा] और वज्र आदिके लक्षण देखकर तीनों काल संबंधी स्थान मान ऐश्वर्य आदि जान लेना लक्षण नामका निमित्त ज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, उपानत् [-जूता] आसन शयन शस्त्र कांटा चूहे आदिके द्वारा छिद्र होना देखकर तीनकाल संबंधी लाभ हानि सुख दुख आदि जान लेना छिन्न नामका निमित्तज्ञान है। बात पित्त श्लेष्माके उदयसे रहित मनुष्यके रात्रिके पिछिले भागमें चंद्रमा सूर्य पृथ्वी पर्वत समुद्र मुखप्रवेशन (किसी बैल आदिका मुखमें प्रवेश करना) समस्त पृथ्वी मंडलका छिपना आदि शुभ स्वप्न दिखाई दे अथवा घी तेलसे मर्दन किया हुआ अपना शरीर गधा अथवा ऊंटपर चढाकर, दक्षिण दिशाकी ओर गमन करना आदि अशुभ स्वप्न दिखाई दें तो उन्हें देखकर वा जानकर आगामी कालमें जीवित रहने मरने वा सुख दुःखादिकको प्रगट करनेवाला स्वप्न नामका निमित्तज्ञान है। वह स्वप्न नामका निमित्तज्ञान छिन्न और मालाके भेदसे दो प्रकारका है। हाथी सिंहका बच्चा आदिका देखना छिन्न है और पूर्वापर

तमरणसुखदुःखाऽऽविर्भाविकः स्वप्नः । स च द्विविधः, छिन्नमालाविकल्पेन । गजेन्द्रसिंहपोतादिकैश्छिन्नः पूर्वापरसंबंधानां भावानां दर्शनं माला । एतेषु महानिमित्तेषु कौशलमष्टांगमहानिमित्तज्ञता ।

अतिसूक्ष्मार्थतत्त्वविचारगहने चतुर्दशपूर्विण एव विषयेऽनुपयुक्ते पृष्टेऽनधीतद्वादशांगचतुर्दशपूर्वस्य प्रकृष्टश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूताऽसाधारणप्रज्ञाशक्तिलाभान्निःसंशयनिरूपणं प्रज्ञाश्रवणत्वं । सा च प्रज्ञौत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा । तत्र जन्मांतरविनयजनितसं-

संबंध रखनेवाले पदार्थोंका देखना माला है। इन महानिमित्तोंमें कुशल होना अष्टांगमहानिमित्तज्ञता नामकी ऋद्धि है। जो मुनि चौदह पूर्वोंमें कहे हुए अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंमें रहनेवाले तत्त्वोंके (उनमें रहनेवाले भावोंके) विचार करने योग्य गहन विषयोंमें उपयुक्त न हों और उसी विषयको कोई पूछे तथा द्वादशांग और चौदह पूर्व उन्होंने पढे भी न हों तो भी श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण बुद्धिकी असाधारण शक्तिका लाभ प्रगट होनेसे उसका संशय दूर कर देना प्रज्ञाश्रवणत्व नामकी ऋद्धि है। वह प्रज्ञा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकीके भेदसे चार प्रकारकी है। उनमेंसे जो प्रज्ञा जन्मांतरके विनयसे उत्पन्न हुए संस्कारोंसे प्रगट होती है उसको औत्पत्तिकी कहते हैं। विनयपूर्वक द्वादशांग पढनेसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी प्रज्ञा है। अत्यंत घोर तपश्चरणकी सामर्थ्यसे गुरुके उपदेशके विना उत्पन्न हुई प्रज्ञा कर्मजा कहलाती है। अपनी अपनी जाति विशेषसे उत्पन्न हुई प्रज्ञा पारिणामिकी कहलाती है। इसप्रकार प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धिका स्वरूप समझना चाहिये। परोपदेशके विना केवल अपनी विशेष शक्तिसे ही ज्ञान और संयमके भेद प्रभेदोंमें निपुणता प्राप्त होना प्रत्येक बुद्धिता नामकी ऋद्धि है। यदि इंद्रादिक भी आकर अपना विरोधी बना हो तथापि अपनी बुद्धि और प्रतापके द्वारा उसे निरुत्तर कर

स्कारसमुत्पन्नौत्पत्तिकी । विनयेन द्वादशांगानि पठतः समुत्पन्ना वैनयिकी । दुश्चरतपश्चरणबलेन गुरूपदेशमंतरेण समुत्पन्ना कर्मजा । स्वकीयस्वकीयजातिविशेषेण समुत्पन्ना पारिणामिकी चेति ।

परोपदेशमन्तरेण स्वशक्तिविशेषादेव ज्ञानसंयमविधाने नैपुण्यं प्रत्येकबुद्धिता ।

शक्रादिष्वपि प्रतिबंधकेषु सत्स्वप्रतिहततया प्रतिभया निरन्तराभिधानं पररंध्रान्वेषणं च वादित्वं । इति बुद्धिऋद्धिप्रकरणं ।

अथ क्रियर्धि । क्रियाविषया ऋद्धिर्द्विविधा, चारणत्वमाकाशगामित्वं चेति । तत्र चारणाऽनेकविधा, जलजंघातंतुपुष्पपत्रबीजश्रेण्यग्निशिखाद्यालंबन-

देना तथा उसके दोषोंको ढूंढ निकालना वादित्व नामकी ऋद्धि है। इसप्रकार बुद्धि नामकी ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे क्रिया ऋद्धिको कहते हैं—क्रिया ऋद्धि दो प्रकारकी है एक चारणत्व ऋद्धि और दूसरी आकाशगामित्व ऋद्धि । उनमेंसे जल, जंघा, तंतु, पुष्प, पत्र, बीज, श्रेणी और अग्निकी शिखा आदिका सहारा लेकर गमन करना चारणऋद्धि है और वह ऊपर लिखे सहारोंके भेदोंसे ही अनेक तरहकी हो जाती है। बावडी तालाब आदि जलाशयोंमें भी अप्कायिक जीवोंकी विराधना न करते हुए भूमिके समान पैरोंको उठाने रखनेकी कुशलता प्राप्त हो जाना जलका सहारा लेनेवाली जलचारण ऋद्धि है। भूमिके ऊपर चार अंगुल ऊंचे आकाशमें जंघाचारण ऋद्धिवाले चलते हैं वे अपनी जंघाओंको बडी शीघ्रताके साथ उठाने रखनेमें चतुर होते हैं और सैकडों योजन तक बडी शीघ्रतासे पहुंच जाते हैं। इसीप्रकार और क्रिया ऋद्धि वाले भी समझ लेने चाहिये । आकाशगामिनी ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि पर्यंक आसनसे बैठकर अथवा अन्य किसी आसनसे बैठकर कायोत्सर्ग शरीरको धारण कर पैरोंको उठा कर रख कर भी आकाशके ऊपर गमन करनेमें निपुण होते हैं अथवा विना पैरों-

गमनाः । जलमुपादाय वाप्यादिष्वप्कायिकजीवानविराधयंतो भूमाविव पादोद्धारनिक्षेपकुशला जलचारणाः । भूमेरुपर्याऽऽकाशे चतुरंगुलप्रमाणे जंघोत्क्षेपनिक्षेपशीघ्रकरणपटवो बहुयोजनशताऽऽशुगमप्रवणा जंघाचारणाः एवमितरे बोद्धव्याः । पर्यंकावस्था वा निषण्णा वा कायोत्सर्गशरीरा वा पादोद्धारनिक्षेपणा वा ताभ्यामंतरेण वाकाशं गमनकुशला आकाशगामिनः । इति क्रियर्द्धिः ।

विक्रियागोचरा ऋद्धिरनेकविधा । अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यं, ईशत्वं, वशित्वं, अप्रतिघातः, अंतर्धानं, कामरूपित्वमादि । तत्राऽणुशरीरविकरणमणिमा । बिसच्छिद्रमपि प्रविश्याऽऽसीत तत्र चक्रवर्तिपरिवारविभूतिं सृजेत् । मेरोरपि महत्तरशरीरविकरणं महिमा । वायोरपि लघुतरशरीरता लघिमा । वज्रादपि गुरुतरदेहता गरिमा । भूमौ स्थित्वाऽङ्गुल्यग्रेण मेरुशिखरदिवाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यं प्राप्तिः । अप्सु भूमाविव गमनं भूमौ

को उठाये रक्खे भी आकाशगमन करनेमें निपुण होते हैं । इसप्रकार क्रिया ऋद्धिका वर्णन किया ।

अब आगे विक्रिया ऋद्धिको कहते हैं विक्रिया ऋद्धिके अनेक भेद हैं और अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, अप्रतिघात, अंतर्धान, और कामरूपत्व आदि उनके नाम हैं । छोटा शरीर बनानेकी शक्तिको अणिमा कहते हैं । अणिमा ऋद्धिको धारण करनेवाला कमलनालके छिद्रमें भी प्रवेश कर सकता है और वहीं पर चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न कर सकता है । मेरु पर्वतसे भी बडा शरीर बनानेकी शक्तिको महिमा कहते हैं । वायुसे भी हलके शरीर बनानेकी शक्तिको लघिमा कहते हैं वज्रसे भी भारी शरीर बनानेकी शक्तिको गरिमा कहते हैं । पृथ्वीपर ठहरकर भी उंगलीके अग्रभागसे ही मेरु पर्वतका शिखर अथवा सूर्य आदिको छूनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाना प्राप्ति है । पानीमें पृथ्वीके समान चलनेकी शक्ति होना तथा पृथ्वीपर पानीके समान उछलने डूबनेकी शक्ति होना प्राकाम्य है । कोई कोई आचार्य अनेक तरहकी क्रिया गुण वा द्रव्यके आधीन होनेवाले सेना आदि पदार्थोंको अपने शरीरसे भिन्न अथवा अभिन्न रूप बनानेकी शक्ति प्राप्त होनेको प्राकाम्य

जल इवोन्मज्जननिमज्जनकरणं प्राकाम्यं, अनेकजातिक्रियागुणद्रव्याधीनं स्वांगाद् भिन्नमभिन्नं च निर्माणं प्राकाम्यं सैन्यादिरूपमिति केचित्। त्रैलोक्यस्य प्रभुत्वमीशित्वं। सर्वजीववशीकरणलब्धिर्वशित्वं। अद्रिमध्ये वियतीव गमनमप्रतिघातः। अदृश्यरूपताऽन्तर्धानं। युगपदनेकाऽऽकाररूपविकरणशक्तिः कामरूपित्वमिति, यथाऽभिलषितैकमूर्त्ताद्याकारं स्वांगस्य मुहुर्मुहुः करणं कामरूपित्वमिति वा। इति विक्रियर्द्धिप्रकरणं।

तपोतिशयर्द्धिः सप्तविधा। उग्रदीप्ततप्तमहाघोरतपोघोरपराक्रमाः घोरब्रह्मचर्याः अघोरगुणब्रह्मचारिण इति। तत्रोग्रतपसो द्विविधाः, उग्रोग्रतपसः, अवस्थितोग्रतपसश्चेति। तत्रैकमुपवासं कृत्वा पारणं विधाय द्विदिनमुपोष्य तत्पारणानन्तरं पुनरप्युपवासत्रयं कुर्वंत्येवमेकोत्तरवृद्ध्या यावज्जीवं त्रिगुप्तिगुप्ताः

कहते हैं। तीनों लोकोंका प्रभाव प्राप्त हो जाना ईशित्व है। समस्त जीवोंको वश करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाना वाशित्व है। पर्वतके भीतर होकर आकाशके समान गमन करनेकी शक्तिको अप्रतिघात कहते हैं। अदृश्यरूप हो जानेकी शक्तिको अंतर्धान कहते हैं। एक ही साथ अनेक आकार अथवा अनेक रूप बनानेकी शक्तिको कामरूपित्व कहते हैं अथवा अपनी इच्छानुसार अपने शरीरको बार बार एक मूर्त पदार्थके आकाररूप परिणत करनी कामरूपित्व कहलाती है। इसप्रकार विक्रिया ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे तप ऋद्धिको कहते हैं। उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप, घोरतप, घोरपराक्रम और घोरब्रह्मचर्य, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारी ये सात प्रकारकी तपोतिशय ऋद्धियां होती हैं। इनमें उग्रतप नामकी ऋद्धि भी उग्रोग्रतप और अवस्थितोग्र तपके भेदसे दो प्रकारकी है। कोई मुनि एक उपवासकर पारणा करें फिर दो उपवासकर पारणा करें फिर तीन उपवासकर पारणा करें इसप्रकार उत्तरोत्तर एक एक अधिक उपवास अपने जीवन पर्यंततक करते रहें तथा मन वचन काय तीनों गुप्तियोंको बराबर पालन करते रहें उनके उग्रोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिए। दीक्षा लेते समयका उपवासकर पारणा करें फिर उपवास पारणा उपवास पारणारूपसे बराबर करते रहें। फिर कुछ दिनतक दो उपवास पारणारूपसे करते रहें फिर

संतो ये केचिदुपवसंति त उग्रोग्रतपसः । दीक्षोपवासं कृत्वा पारणानंतरमेकांतरेण चरतां केनाऽपि निमित्तेन षष्ठोपवासे जाते तेन विहरतामष्टमोपवास-संभवे तेनाचरतामेवं दशद्वादशादिक्रमेणाधो न निवर्तमानानां यावज्जीव येषां विहरणं तेऽवस्थितोग्रतपसः । महोपवासकरणेऽपि प्रवर्द्धमानकायवाङ्मनो-बला दुर्गंधरहितवदनाः पद्मोत्पलादिसुरभिनिःश्वासाः प्रतिदिनप्रवर्द्धमानाऽच्युतमहादीप्तिशरीरा दीप्ततपसः । तप्तायसकटाहपतितजलकणवदाशु शुष्का-

तीन उपवास पारणारूपसे करते रहें इसप्रकार छह उपवासतक पहुंच जांय । छह छह उपवासके बाद पारणाका अभ्यास हो जानेपर आठ आठ उपवास और फिर पारणा करते रहें फिर अनु-क्रमसे दश दश फिर बारह बारह उपवासके बाद पारणा करते रहें इसप्रकार करते हुए जीवन पर्यंततक विहार करते रहें बीचमें किसी भी समय अपने चलते हुए उपवासकी संख्या कम न करें उनके अवस्थितोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये । अनेक बडे बडे उपवास करने पर भी जिनके मन वचन कायका बल सदा बढता रहता है, जिनका मुंह सदा दुर्गंधरहित रहता है जिनका निःश्वास कमलके पुष्पके समान सुगंधित रहता है और जिनके शरीरकी महाकांति प्रतिदिन बढती ही जाती हैं कभी घटती नहीं उनके दीप्त तप नामकी ऋद्धि कही जाती है । जिसप्रकार तपायी हुई लोहेकी कढाईमें पडी हुई जलकी एक बूंद शीघ्र ही सूख जाती है उसीप्रकार अल्पाहार ग्रहण करनेसे जिनके भोजन करनेपर भी वह अन्न मल रुधिर आदि धातु उपधातुरूप परिणत नहीं होता उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये अथवा जो अणिमा आदि तथा जलचारण आदि आठों गुणोंसे परिपूर्ण हैं, जिनके शरीरकी प्रभा देदी-प्यमान हो रही है, जो अनेक तरहकी अक्षीण ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं, समस्त औष-धि ऋद्धियां जिन्हें प्राप्त हैं जिनके पाणिपात्रपर (हाथपर) आया हुआ सब तरहका आहार अमृतरूप हो जाता है जिनके देवोंके सब इंद्रियोंसे भी अनंतगुणा बल है और जो आशीविष

ला ऽऽहारतया मलरुधिरादिभावपरिणामविरहिताभ्यवहरणास्तप्ततपसः । अणिमादिजलचारणाद्यष्टगुणालंकृता विस्फुरितकायप्रभा विविधाक्षीणर्द्धियुक्ताः स- र्वौषधर्द्धिप्राप्ता अमृतीकृतपाणिमात्रनिपतितसर्वाहाराः सर्वामरेंद्रेभ्योऽनंतबला आशीविषदृष्टिविषर्द्धिसमन्वितास्तप्ततपसश्च । सकलविद्याधारिणो मतिश्रुताऽव- धिमनःपर्ययज्ञानाऽवगतत्रिभुवनगतव्यापारा महातपसः । वातपित्तश्लेष्मसंनिपातसमुद्भूतज्वरकासाक्षिशूलकुष्टप्रमेहादिविविधरोगसंतापितदेहा अप्यप्रच्यु- ताऽनशनादितपसोऽनशने षण्मासोपवासाः, अवमौदर्ये एककवलाहाराः, वृत्तिपरिसंख्याने चत्वरगोचरावग्रहाः । रसपरित्यागे उष्णजलधौतोदनभोजिनः विविक्तशयनाऽऽसने भीमश्मशानगिरिगुहादरीकंदरशून्यग्रामादिषु प्रदुष्टयक्षरक्षःपिशाचप्रनृत्यत्प्रेतवेतालरूपविकारेषु परुषशिवारुतानुपरतसिंहव्याघ्रादिव्या-

दृष्टिविष ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये । जो समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले हैं तथा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानसे जो तीनों लोकोंके समस्त व्यापारोंको जानते हैं उनके महातप नामकी ऋद्धि है । वात पित्त श्लेष्माके सन्निपातसे उत्पन्न हुए ज्वर, कास, नेत्र शूल कोढ प्रमेह आदि अनेक तरहके रोगोंसे जिनका शरीर संतप्त हो रहा है तथापि जिन्होंने अनशन आदि तपश्चरणोंको नहीं छोडा है । अनशन तपश्चरणमें जो छह छह महीनेका उपवास करते हैं अवमौदर्य तपश्चरणमें जो केवल एक कवलका (एक ग्रास वा गस्सा) आहार लेते हैं वृत्तिपरिसंख्यान तपश्चरणमें जो आहारके लिए केवल चार घर तक ही जाते हैं । रसपरित्यागमें जो गर्म जलसे धोये हुए चांवलोंका ही आहार लेते हैं विविक्तशय्यासनमें जो भयानक श्मशान, पर्वतोंकी गुफा दरी कंदरा वा सूने गांवोंमें निवास करते हैं अथवा जहांपर अत्यंत दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच आदि प्रेत वेताल आदिका विकृतरूप धारणकर नृत्य कर रहे हैं जहां गीदड रो रहे हैं सिंह बाघ भरे हुए हैं तथा गरज रहे हैं हाथी चिंघाड रहे हैं अन्य घातक जानवरोंके भीषण शब्द हो रहे हैं और चोर डाकू आदि फिर रहे हैं ऐसे भयानक और एकांत स्थानमें रुचिपूर्वक निवास करते हैं । कायक्लेश तपश्चरणमें जो अत्यंत तीव्र शीत पडनेवाले

व्यमृगभीषणस्वनघोरचौरादिप्रचलितेष्वभिरुचितावासाः, कायक्लेशेऽतितीव्रशीतातपवर्षानिपातप्रदेशेष्वभ्रावकाशातापनवृक्षमूलयोगधारिणः । एवमाभ्यंतरतपोविशेषेष्वप्युत्कृष्टतपोऽनुष्ठायिनो घोरतपसः । त एव गृहीततपोयोगवर्द्धनपराः । त्रिभुवनोपसंहरणमहीवलयग्रसनसकलसागरसलिलसंशोषणजलाग्निशिलाशैलादिवर्षणशक्तयो घोरपराक्रमाः । चिरोषितास्खलितब्रह्मचर्याऽऽवासाः प्रकृष्टचारित्रमोहक्षयोपशमात्प्रणष्टदुःस्वप्ना घोरब्रह्मचारिणः, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारिण इति पाठे अघोरं शांतं गुणः ब्रह्मचारित्रं येषां ते अघोरगुणब्रह्मचारिणः । शांतिपुष्टिहेतुत्वाद्येषां तपोमाहात्म्येन डमरेतिमारिदुर्भिक्षवैरकलहवधबंधनरोगादिप्रशमनशक्तिः समुत्पद्यते तेऽघोरगुणब्रह्मचारिणः । इति तपोऋद्धिः ।

प्रदेशोंमें खुले मैदानमें निवास करते हैं अत्यंत तीव्र उष्णतावाले प्रदेशोंमें योग धारण करते हैं और अत्यंत तीव्र वर्षा पडनेवाले प्रदेशोंमें वृक्षके नीचे योग धारण करते हैं। इसीप्रकार जो अभ्यंतर तपश्चरणोंमें भी विशेष विशेष समस्त तपश्चरणोंको उत्कृष्ट रीतिसे पालन करते हैं उनके घोर तप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये। वे ही घोर तप ऋद्धिको धारण करनेवाले जो मुनि ग्रहण किए हुए तपोयोगको बढानेमें तत्पर हैं जिनमें तीनों लोकोंको उपसंहार करने, समस्त पृथिवीमंडलको ग्रास करने, समस्त महासागरोंके जलको सोखने, जल, अग्नि, शिला और पर्वत आदिकी वर्षा करनेकी शक्ति है उनके घोरपराक्रम नामकी ऋद्धि कही जाती है। जिन्होंने बहुत दिनतक कभी स्खलित न होनेवाले ब्रह्मचर्यमें निवास किया है और चारित्रमोहनीय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जिनके दुःस्वप्न सब नष्ट हो गये हैं वे घोरब्रह्मचारी गिने जाते हैं। अथवा इस ऋद्धिको धारण करनेवालेका नाम अघोरगुण ब्रह्मचारी भी है अघोर शांतको कहते हैं जिनका ब्रह्मचारित्र शांत है उनको अघोरगुण ब्रह्मचारी कहते हैं। ऐसे मुनि शांति और पुष्टिके कारण होते हैं इसीलिये जिनके तपश्चरणके माहात्म्यसे उग्र ईति मारी दुर्भिक्ष वैर कलह बंध बंधन और रोग आदिको शांत करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाय उन्हें अघोरगुण ब्रह्मचारीकहते हैं। इसप्रकार तपोऋद्धिका वर्णन किया।

अथ बलर्द्धिः । बलावलंबनाद्दिस्त्रिविधा, मनोवाक्कायविषयभेदात् । तत्र श्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति खेदमंतरेणांतर्मुहूर्ते सकलश्रुतार्थचिंतनेऽवदाता मनोबलिनः । मनोजिह्वाश्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमातिशये सत्यंतर्मुहूर्ते सकलश्रुतोच्चारणसमर्थाः सततमुच्चैरुच्चारणे सत्यपि श्रमविरहिता अहीनकंठाश्च वाग्बलिनः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षादाविर्भूताऽसाधारणकायबलत्वान्मासिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिप्रतिमायोगधारणेऽपि श्रमक्लेशविरहितास्त्रिभुवनमपि कनीयस्यांगुल्योद्धृत्याऽन्यत्र स्थापयितुं समर्थाश्च कायबलिनः । इति बलर्द्धिः ।

अथौषधर्द्धिप्रकरणं । औषधर्द्धिरष्टविधा । असाध्यानामप्यामयानां सर्वेषां विनिवृत्तिहेतुरामर्शक्ष्वेलजलमलविट्सर्वौषधिप्राप्ताऽऽस्यविषदृष्टयविष-

आगे बल ऋद्धिको कहते हैं—मन वचन कायके भेदसे बल तीन प्रकारका है इसलिये उनके अवलंबनसे यह ऋद्धि भी तीन प्रकारकी है । श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कृष्टता होनेपर विना किसी खेदके अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त श्रुतज्ञानके पदार्थोंके चिंतवन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना मनोबल नामकी ऋद्धि है । मन नोइंद्रियावरण जिह्वेंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त श्रुतज्ञानके पद वाक्योंके उच्चारण करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना तथा सदा ऊँचे स्वरसे उच्चारण करनेपर भी किसी तरहका परिश्रम न होना और कंठ मंद न होना वाग्बल नामकी ऋद्धि है । वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जो असाधारण शारीरिक बल प्रगट होता है उस शारीरिक बलसे एकमहीने, चारमहीने और एक वर्ष आदिका प्रतिमा योग धारण करने पर भी जिनके किसी तरहका श्रम और क्लेश नहीं होता तथा जिनमें तीनों लोकोंको भी हाथकी छोटी उंगलीसे उठाकर किसी दूसरी जगह स्थापन करनेकी सामर्थ्य होती है उनके कायबल ऋद्धि कही जाती है । इसप्रकार बल ऋद्धिका वर्णन किया ।

आगे औषधि ऋद्धिको कहते हैं । औषधि ऋद्धि आठ प्रकार है—आमर्श, क्ष्वेल, जल्ल, विट्, सर्वौषधि, आस्यविष और दृष्टयविष उसके नाम हैं । इन ऋद्धियोंको धारण करने-

विकल्पात् । आमर्शः संस्पर्शो हस्तपादाद्यामर्शः सकलौषधिं प्राप्तो येषां त आमर्शौषधिप्राप्ताः, क्ष्वेलो निष्ठीवनं, उपलक्षणं चैतत्तेन श्लेष्मलालाविपुटसिंहाणकादयश्चौषधिं प्राप्ता येषां ते क्ष्वेलौषधिप्राप्ताः। स्वेदालंबनो रजोनिचयो जल्लः स औषधिं प्राप्तो येषां ते जल्लौषधिप्राप्ताः कर्णदंतनासिकादिसमुद्भवो मल औषधिं प्राप्तो येषां ते मलौषधिप्राप्ताः। विड्ढ्चारः शुक्रमूत्रं चौषधिं प्राप्तो येषां ते विडौषधिप्राप्ताः । अंगप्रत्यंगनखदंतकेशादिरवयवस्तत्संस्पर्शी वाटवादिः सर्वौषधिं प्राप्तो येषां ते सर्वौषधिप्राप्ताः उग्रविषसंपृक्तोऽप्याहारो येषामास्यगतो निर्विषो भवति, यदीयवचःश्रवणाद्वा महाविषपरीता अपि

वाले मुनियोंके आमर्श आदि संसारके समस्त असाध्य रोगोंको भी दूर कर देते हैं । आमर्श स्पर्शका नाम है जिनके हाथ पैर आदिका स्पर्श ही सब तरहकी औषधियोंको प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसीसे सब रोग दूर हो जाते हैं वे मुनि आमर्शौषधि नामकी ऋद्धिको धारण करनेवाले हैं। क्ष्वेल थूकको कहते हैं यह शब्द यहांपर उपलक्षण है थूकसे श्लेष्मा लाला (लार) विपुट (पसीनेकी बूंद) सिंहाणक (नाकका मल) आदि सब लेने चाहिए। जिनके थूक लार नाकका मल पसीना आदि सब सब तरहकी औषधिरूप परिणत हो जांय उनके क्ष्वेलौषधि ऋद्धि समझनी चाहिए। पसीना आनेसे जो शरीरपर धूल वा मैल जम जाता है उसको जल्ल कहते हैं। जिनके शरीरका वह पसीनेका मैल ही सबतरहकी औषधिरूप हो जाय वे मुनि जल्ल ऋद्धिको धारण करनेवाले कहे जाते हैं। जिनके कान नाक दांत आदिसे उत्पन्न हुआ मल ही औषधिरूप हो जाय वे मलौषधि नामकी ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। विट् उच्चार अथवा शुक्र और मूत्रको कहते हैं जिनका शुक्र मूत्र ही औषधिका काम दे वे विडौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं । जिनके अंग प्रत्यंग नख दंत केश आदि शरीरके अवयव अथवा उन अवयवोंको स्पर्श करनेवाली वायु ही समस्त औषधियोंका काम दे वे सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। उग्र विषसे मिला हुआ भी आहार जिनके मुखमें जानेपर विष रहित हो जाय अथवा जिनके वचनोंको सुनकर महाविषमें डूबे हुए मनुष्य भी विषरहित हो जांय वे आस्याविष ऋद्धिवाले मुनि कहलाते हैं । जि-

लिर्विषा भवंति त आस्यविषाः । येषामालोकनमात्रादेवातितीव्रविषदूषिता अपि विगतविषा भवंति ते दृष्ट्यविषाः । अथवा आशीविषमविषं येषां ते आस्यविषाः, दृष्टिविषाणां विषमविषं येषां ते दृष्ट्यविषाः । इत्यौषधर्द्धिप्रकरणं ।

अथ रसर्द्धिप्रकरणं समुच्यते । रसर्द्धिप्राप्ताः षड्विधाः, आस्यविषाः, दृष्टिविषाः, क्षीरास्राविणः, मध्वास्राविणः, सर्पिरास्राविणः, अमृतास्राविणश्चेति । प्रकृष्टतपोबला यतयो यं ब्रुवते म्रियस्वेति स तत्क्षणादेव महाविषपरीतो म्रियते त आस्यविषाः आशीर्विषा इति केचित्तत्राप्ययमेवार्थस्तदाऽऽशासनादेव म्रियमाणत्वात् । उत्कृष्टतपसो यतयः क्रुद्धा यमीक्षंते स तदैवोग्रविषपरीतो म्रियते ते दृष्टिविषाः । विरसमप्यशनं येषां निक्षिप्तं क्षीररसवीर्यपरि-

नके दर्शन करनेमात्रसे ही अत्यंत तीव्रविषसे दूषित हुए जीव विषरहित हो जांय वे दृष्ट्यविष ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि हैं। अथवा जिनके लिए आशीविष भी विष न हों वे आस्यविष ऋद्धिवाले हैं और जिनकी आंखोंमें विष है जिनको देखलें वे मर जांय ऐसे दृष्टिविष जीवोंका विष भी जिनके लिये विष न हो वे दृष्ट्यविष ऋद्धिको धारण करनेवाले हैं। इसप्रकार औषधि ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे रसऋद्धिको कहते हैं। रसऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि छह प्रकारके हैं आस्यविष, दृष्टिविष, क्षीरास्रावी, मध्वास्रावी, सर्पिरास्रावी और अमृतस्रावी। उत्कृष्ट तपश्चरणके बलसे जो मुनि किसीको "तू मर जा" कह दें तो वह उसीसमय महाविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनियोंको आस्यविष ऋद्धिधारी मुनि कहते हैं। कोई कोई आचार्य इस ऋद्धिका नाम आशीविष ऋद्धि कहते हैं इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर लिख चुके हैं क्योंकि ऐसे मुनियोंके बुरा आशीर्वाद देनेसे ही वह मर जाता है। उत्कृष्ट तपश्चरणवाले मुनि क्रोधित होकर जिसको देख लें वह उसीसमय उग्रविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनि दृष्टिविष ऋद्धिधारी कहलाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस भोजन भी दूधकी शक्तिशाला हो जाय अथवा जिनके वचन दूधके समान दुर्बल और कृश मनुष्योंको संतुष्ट कारक हों, वे क्षीरास्रावी ऋद्धिवाले गिने

णाम्रिता भजते, येषां वा वचनानि क्षीरवत्क्षीणानां तर्पकाणि भवंति ते क्षीराऽऽस्राविणः । येषां पाणिपुटे पतित आहारो नीरसोऽपि मधुररसवीर्यपरिणामिता भजते येषां वा वचांसि श्रोतॄणां दुःखार्दितानामपि मधुरगुणं पुष्णंति ते मध्वाऽऽस्राविणः येषां पाणिपात्रगतमन्नं रूक्षमपि सर्पिरसवीर्यविपाकमवाप्नोति, सर्पिरिव येषां भाषितानि प्राणिनां संतर्पकाणि भवंति ते सर्पिरास्राविणः । येषां करपुटप्राप्तं भोजनं यत्किंचिदमृतमास्कंदति, येषां वा व्याहृतानि प्राणिनाममृतवदनुग्राहकाणि भवंति । इति रसर्द्धिप्रकरणं ॥

अथ क्षेत्रर्द्धिप्राप्ता द्वेधा, अक्षीणमहानसा, अक्षीणमहालयाश्चेति । लाभांतरायक्षयोपशमप्रकर्षप्राप्तेभ्यो यतिभ्यो भिक्षा दीयते ततो भोजनाश्चक्रधर-

जाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसकी शक्तिवाला (मीठा पुष्टिकारक) हो जाय अथवा जिनके वचन सुननेवाले अत्यंत दुखी जीवोंको भी मधुर गुणरूप परिणत हो जांय उन मुनियोंको मध्वास्रावी ऋद्धिधारी कहते हैं। जिनके हाथपर आया हुआ रूखा अन्न भी घीके समान रसवाला और शक्तिशाली हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन घीके समान प्राणियोंको तृप्त करनेवाले हों वे सर्पिरास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं । जिनके हाथ पर आया हुआ कुछ भी भोजन अमृतके समान वा अमृतरूप हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन अमृतके समान प्राणियोंका उपकार करें वे अमृतास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं। इसप्रकार रसऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ ।

आगे क्षेत्रऋद्धिको कहते हैं। क्षेत्रऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि दो प्रकारके हैं एक अक्षीणमहानस और दूसरे अक्षीणमहालय। लाभांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम प्राप्त होनेवाले जिन मुनियोंको आहार दिया जाय और उस बचे हुए भोजनमेंसे चक्रवर्तीकी सब सेना भी भोजन कर जाय तो भी उस दिन वह भोजन कम न हो ऐसे मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धिको धारण करनेवाले कहलाते हैं। अक्षीणमहालय ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जहां विराजमान हों और वह स्थान चाहे चार हाथ लंबा चौडा ही हो तो भी उसमें समस्त देव

स्कंधावारोऽपि यदि भुंजीत तद्दिवसे नाम्नं क्षीयते तेऽक्षीणमहानसाः । अक्षीणमहालयलब्धिं प्राप्ता यतयो यत्र हस्तचतुष्टयमात्रावासे वसंति तत्र देवमानुषतिर्यग्योनयः सर्वेऽपि निवसेयुः परस्परमबाधमानाः सुखमासते तेऽक्षीणमहालया इति ।

एवमुक्तं तपःसामर्थ्यं, तपस्विभिरध्युषितानि क्षेत्राणि तीर्थत्वमुपगतानि । परस्परविरोधिनोऽपि प्राणिनो जातिविरोधं कारणविरोधं विमुच्यते शांतांतरंगा भवंति तपःसामर्थ्यात् । किं बहुना तपः किं न साधयत्यपि तु सर्वमेव साधयति । तदेवोक्तम्—

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम् । तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥

तपो यस्य न विद्यते स चंचापुरुषो यथा मुंचंति तं सर्वे गुणाः, नासौ मुंचति संसारं, उपधित्यागः पुरुषहितो यतोयत. परिग्रहादपेतस्ततस्ततः सं-

मनुष्य तिर्यंच समा जांय परस्पर किसीको बाधा न हो, सब सुखपूर्वक बैठ जांय वे अक्षीण-महालय ऋद्धि धारी गिने जाते हैं। इसप्रकार क्षेत्र ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

इसप्रकार तपश्चरणकी सामर्थ्य निरूपण की। तपस्वी लोग जिस जिस स्थानमें निवास करते हैं वे तीर्थ कहलाते हैं। तपश्चरणके प्रभावसे परस्पर विरोध रखनेवाले जीव भी अपना जन्मसे उत्पन्न वैर अथवा किसी कारणसे उत्पन्न हुआ वैर छोडकर अपने हृदयको शांत बना लेते हैं। बहुत कहनेसे क्या? तपश्चरणसे क्या सिद्ध नहीं होता? किंतु सब कुछ सिद्ध हो जाता है। यही बात शास्त्रोंमें भी लिखी है—"यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्" अर्थात् जो दूर हो जिसका आराधन करना कठिन हो, और जो बहुत दूरपर हो वह सब तपश्चरणसे सिद्ध हो जाता है। इस संसारमें तपश्चरण ही ऐसा है। जिसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जिसके तपश्चरण नहीं है वह चंचापुरुषके (केवल पुरुषके आकारके) समान है उसे समस्त गुण तो छोड देते ही हैं परंतु वह संसारको कभी नहीं छोड सकता।

१ बुद्धि १८ क्रिया ६ विक्रिया ११ तप ७ बल ३ औषध ८ रस ६ क्षेत्र सब मिलकर ६४ ऋद्धियां होती है।

यतो भवति । ततोऽस्य खेदो व्यपगतो भवति । परिग्रहपरित्याग एवैहिकामुत्रिकपरमसुखकारणं निरवद्यमनःप्रणिधानं । पुण्यनिधानं । परिग्रहो बलवती सर्वदोषप्रसवयोनिः । नह्यस्या उपधिभिरतृप्तिरस्ति सलिलैरिव सलिलनिधेर्वडवायाः । उक्तं हि—

अनेकाऽऽधेयदुष्पूर आशागर्त्तश्चिरादहो । चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते ॥

अपि च—

कः पूरयति दुष्पूरमाशागर्तं दिने दिने । यत्रास्ते प्रस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते ॥

इससंसारमें उपधियोंका (अंतरंग बाहिरंग परिग्रहोंका) त्याग कर देना ही मनुष्यका हित करनेवाला है। जैसा जैसा यह परिग्रहोंको छोडता जाता है वैसा ही वैसा इसका संयम बढता जाता है और संयमकी वृद्धि होनेसे इसका खेद दूर होता है । परिग्रहोंका त्याग करना ही इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवाला है इसीसे मन सब तरहके दोषोंसे रहित होकर स्थिर होता है और यही परिग्रहका त्याग पुण्यका खजाना है । यह परिग्रह समस्त दोषोंको उत्पन्न करनेवाली जबर्दस्त योनि है । जिसप्रकार पानीसे समुद्रकी बडवानल अग्नि बुझती नहीं उसीप्रकार इन परिग्रहोंसे यह जीव कभी तृप्त नहीं होता है। लिखा भी है—" अनेकाधेय दुष्पूर आशागर्तश्चिरादहो । चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते " अर्थात् यह वडे आश्चर्यकी बात है कि यह आशारूपी गढा जो कि अनेक दिनोंमें भी संसारमें रहनेवाले समस्त पदार्थोंसे भी नहीं भरा जाता वह एक त्यागसे (समस्त पदार्थोंका त्याग कर देनेसे) क्षणमात्रमें भर जाता है। तथा " कः पुरयति दुष्पूरमाशागतं दिने दिने । यात्रास्ते प्रस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते " अर्थात् " किसीसे न भरा जानेवाला इस आशारूपी गढेको भला कौन भर सकता है क्योंकि इसमें प्रतिदिन डाला हुआ समस्त आधेय ही आधार बन जाता है। भावार्थ—ज्यों ज्यों आशाएं पूर्ण की जाती हैं त्यों त्यों वे और बढती जाती हैं । " इसालिये परि-

परिग्रहसंग एव दुःखभयादिकं जनयतीति । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ' ममेदं ' भावाऽभाव आकिंचन्यं । शरीरादपि निर्ममत्वात्परमनिर्वृतिमवाप्नोति यथा यथा पोषयति तथा तथा-लापट्यं तज्जनयति, तपस्यप्यनादरो भवति । शरीरादिषु कृताऽभिष्वंगस्य संसारे सर्वकालमभिष्वंग एव मयाऽनुभूतांगना सुरूपेति सविलासेति कलागुणविशारदेति स्मरणं, तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलाधिवासितस्त्रीसंसर्गशयनाऽऽसनमित्येवमादि पूर्वरतानुचिंतनवर्जनं परिपूर्णब्रह्मचर्यमित्याख्यायते । ब्रह्मचर्यमनुपालयंतं हिंसादयो दोषा न संस्पृशंति । नित्याऽभिरतगुरुकुलवासमधिवसति गुणसंपदः । वरांगनाविलासविभ्रमविधेयकृत पापैरपि विधेयीक्रियते । अजितेंद्रियता हि लोके प्राणिनामपमानविधायी ।

ग्रहोंका समागम ही इस संसारमें दुःख और भय आदिकोंको उत्पन्न करनेवाला है ।

प्राप्त हुए शरीरादिकोंमें संस्कारोंको दूर करनेके लिए " यह मेरा है " ऐसे परिणामोंका अभाव होना आकिंचन्य है । शरीरादिकोंमें ममत्व बुद्धिका अभाव होनेसे परम वैराग्य प्राप्त होता है । जैसा जैसा यह शरीर पुष्ट किया जाता है वैसी वैसी ही इससे लंपटता उत्पन्न होती रहती है और वैसा वैसा ही तपश्चरणमें अनादर उत्पन्न होता रहता है । शरीरादिकोंमें ममत्व रखनेवाले पुरुषके संसारमें भी सदा ममत्व बना ही रहता है ।

" मेरी भोगी हुई स्त्री बडी रूपवती थी सबतरहके विलासोंमें निपुण थी, और कलागुणोंमें चतुर थी " इसप्रकारके स्मरणका त्याग करना, स्त्रियोंकी कथाओंके सुननेका त्याग करना तथा ' यह शयन वा आसन उपभोगके समय जिसके शरीरमें अनेक तरहके सुगंधित पदार्थ लग रहे हैं ऐसी स्त्रीसे संबंध रखनेवाला है ' इसप्रकारके पूर्व भोगे हुए उपभोगोंके चिंतवनका त्याग करना परिपूर्ण ब्रह्मचर्य कहलाता है । ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको हिंसा आदि कोई भी दोष नहीं छू सकते, गुणरूपी संपदाएं सदा तल्लीन होकर गुरुकुलमें निवास करनेवाले उस ब्रह्मचारीमें ही आकर निवास करती हैं । जो वेश्याओंके विलास और हावभावोंसे दूर रहता है वह पापोंसे भी बहुत दूर रहता है । संसारमें जितेंद्रिय न होना ही प्राणियोंका अपमान करनेवाला है ।

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादतः प्रयत्नावेशः संरंभः। साध्यायाः क्रियायाः साधनानां समाहारः समारंभः। आदौ क्रमः प्रक्रम आरंभ इति। औदारिकशरीरनामकर्मोदयवशात् पुद्गलैश्चीयते इति कायः। वाक् द्विविधा, भाववाक्, द्रव्यवागिति। तत्र भाववाग्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी। तदभावे तद्वृत्त्यभावात्तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति

है। प्रमादके कारण जीवोंकी हिंसा करने आदि कार्य करनेके लिये प्रयत्न करनेका आवेश वा इच्छा होना संरंभ है। जिस कामके करनेका विचार किया है उसकी कारण सामग्री इकट्ठी करना समारंभ है। सबसे पहिले उस कामको प्रारंभ करना आरंभ है। औदारिक शरीर नाम कर्मके उदय होनेके कारण पुद्गलोंके द्वारा जो इकट्ठा किया जाय बनाया जाय उसको काय वा शरीर कहते हैं। वाक् अर्थात् वचन दो प्रकारके हैं एक भाव वचन दूसरे द्रव्य वचन। वीर्यांतराय मतिज्ञानावरण श्रुतज्ञानावरण कर्मोंके क्षयोपशम होनेसे तथा अंगोपांग नाम कर्मके लाभका निमित्त मिलनेसे भाववचनोंकी प्राप्ति होती है इसलिये भाववचन भी पौद्गलिक हैं, इतनी पौद्गलिक सामग्री मिले विना भाववचन हो नहीं सकते इसलिये भी भाववचन पौद्गलिक हैं। उस भाववचनकी सामर्थ्य प्राप्त होनेसे क्रियावान् आत्माके द्वारा प्रेरणा किये हुये जो पुद्गल वचन रूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य वचन कहते हैं तथा वे पुद्गलोंके ही बनते हैं इसलिये पौद्गलिक ही कहलाते हैं। मन भी दोप्रकारका है एक भावमन और दूसरा द्रव्यमन। भावमनकी प्राप्ति लब्धि और उपयोगके द्वारा होती है तथा लब्धि और उपयोग ये दोनों ही पुद्गलोंके आलंबनसे ही होते हैं इसलिये भावमन भी पौद्गलिक ही गिना जाता है।

ज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमका लाभ होनेके कारण प्राप्त होनेवाले, गुणदोषोंका विचार करना स्मरण करना आदि कार्योंके सन्मुख ऐसे आत्माका अनुग्रह क-

द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । मनश्च द्विविधं, भावमनो द्रव्यमनश्चेति । तत्र भावमनो लब्ध्युपयोगाभ्यां लक्ष्यते पुद्गलावलंबनत्वात्पौद्गलिकं । द्रव्यमनश्च ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला वीर्यविशेषावर्जनसमर्था मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकमिति । स्वातन्त्र्यविशिष्टेनात्मना यः प्रादुर्भावितं तत्कृतं । परस्य प्रयोगमपेक्ष्य सिद्धिमापद्यमानं कारित । प्रयोजकस्य मनसाऽभ्युपगमनमनुमतमिति । आत्मनः सम्यक्त्वसंयमा संयमसंयमयथाख्यातचारित्रं कषन्तीति कषायाः । अथ वा कृषन्ति फलवत्कुर्वन्ति कर्मबीजमिति कषायाः । संरंभसमारंभारंभाणामधस्तात् योगान् कृतकारितानुमतानि क्रोधमानमायालोभाश्च क्रमेण व्यवस्थाप्य संरंभं निरुध्यांकसंचारे कृते षट्त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति । एवं समारंभे आरंभे च प्रत्येकं षट्त्रिंशद्विकल्पा भवन्ति । सर्वे संपंडिताः अष्टोत्तरशतसंख्याका भवन्ति ।

रनेवाले, और विशेष शक्तिको प्रगट करनेकी जिनमें सामर्थ्य है ऐसे जो पुद्गल मनरूप परिणत होते हैं उन्हें द्रव्य मन कहते हैं। द्रव्यमन पुद्गलोंसे ही बनता है इसलिये वह भी पौद्गलिक ही कहलाता है। स्वतंत्रता पूर्वक आत्माके द्वारा जो स्वयं किया जाता है उसे कृत कहते हैं दूसरेके प्रयोगकी अपेक्षा रखकर जो कार्य सिद्ध किया गया हो अर्थात् दूसरेसे कराया गया हो उसे कारित कहते हैं। काम करनेवालेको मनसे भला मानना अनुमत कहलाता है। आत्माके सम्यग्दर्शन, संयमासंयम, संयम और यथाख्यात चारित्र गुणोंका जो घात करे उन्हें कषाय कहते हैं। अथवा कर्मरूप वीजको जो फलशाली बनादेवें (जिनके कारण कर्म अपना फल दे सकें) उनको कषाय कहते हैं। कषाय क्रोध मान माय लोभ ये चार हैं। संरंभ समारंभ और आरंभ इन तीनोंके नीचे मन वचन काय इन तीनों योगोंको, कृत कारित, अनुमत इन तीनोंको और क्रोध मान माया लोभ इन चारों कषायोंको अनुक्रमसे रखना चाहिये। इसतरह रखनेसे तथा उनका अंक संचार करनेसे संरंभ छत्तीस तरहका होता है। इसीप्रकार समारंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है और आरंभ भी छत्तीस प्रकारका होता है। ये सब मिलकर एकसौ आठ भेद होते हैं।

एवं कायादियोगान्कृतकारितानुमतानि क्रोधादिकषायांश्चैकैकं निरुध्यांकसंचारः कर्तव्यः ।

संख्यातासंख्यातानंतभवसंसारावस्थानमनन्तानुबन्धिनां कषायाणां । षण्मासावस्थानमप्रत्याख्यानानां । पक्षावस्थानं प्रत्याख्यानानां । अन्तर्मुहूर्तावस्थानं संज्वलनानां । एवंविधषोडशकषायभेदात् द्वात्रिंशदुत्तरचतुःशतविकल्पा भवन्ति ।

इसीप्रकार मन वचन काय तीनों योग, कृत कारित अनुमोदना और क्रोधादिक कषाय इन सवको एक एकके साथ कहकर अंक संचार करना चाहिये

संरंभ	समारंभ	आरंभ	
काय	वचन	मन	
कृत	कारित	अनुमत	
क्रोध	मान	माया	लोभ

क्रोध कृत काय संरंभ, मान कृत काय संरंभ, माया कृत काय संरंभ, लोभ कृत काय संरंभ, क्रोध कारित काय संरंभ, मान कारित काय संरंभ, माया कारित काय संरंभ, लोभ कारित काय संरंभ, क्रोधानुमत काय संरंभ, मानानुमत काय संरंभ, मायानुमत काय संरंभ, लोभानुमत काय संरंभ यह बारह प्रकारका संरंभ हुआ, इसी प्रकार बारह प्रकारका वचन संरंभ और बारह प्रकारका मन संरंभ समझना चाहिये । इस तरह छत्तीस प्रकारका संरंभ, छतीस प्रकारका समारंभ और छत्तीस ही प्रकारका आरंभ समझना चाहिये इस तरह सब एकसौ आठ भेद होते हैं ।

अनंतानुबंधी कषायका अवस्थान वा संस्कार संख्यात असंख्यात वा अनंत भव—संसार तक

अप्रतिपीडया सूक्ष्मजीवाः, बादरजीवानां गत्यादिमार्गणागुणस्थानकुलयोन्यायुष्यादिकं ज्ञात्वा गमनस्थानशयनासनादिषु स्वयं न हननं, परैर्वा न घातनं, अन्येषामपि हिंसतां नानुमोदनं हिंसाविरतिः। अहिंसाव्रतं स्वर्गापवर्गफलप्रापणहेतुस्तत्प्रतिपालननिमित्तं शेषाणि व्रतानि। अहिंसकः पुरुषो निजजनकवद्विश्वास्य पूज्यश्च भवति। हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततोऽनुबद्धवैरश्चेहैव च वधबन्धपरिक्लेशादीन् परिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं, गर्हितश्च भवतीति हिंसाया व्युपरमः श्रेयान्। परमार्थग्रहणेच्छयाऽहिंसाव्रतस्थैर्यार्थं पंच भावना भवन्ति।

रहता है, अप्रत्याख्यानावरण कषायका अवस्थान छह महीने तक रहता है, प्रत्याख्यानावरण कषायका संस्कार पंद्रह दिन तक रहता है और संज्वलन कषायका संस्कार अंतर्मुहूर्त तक रहता है इस प्रकार कषायोंके सोलह भेद भी होते हैं और कषायोंके सोलह भेद होनेसे संरंभादिकके चारसौ बत्तीस भेद हो जाते हैं।

सूक्ष्म जीवोंको तो किसी तरह पीडा हो ही नहीं सकती है केवल बादर जीवोंको पीडा हो सकती है इसलिये उन बादर जीवोंकी गति आदि मार्गणाएं, गुणस्थान, कुल, योनि और आयुष्य आदि जानकर गमन करने, खडे होने, शयन करने और बैठने आदि कार्योंमें न तो स्वयं उन जीवोंकी हिंसा करना, न किसी दूसरोंसे उनका घात कराना और न हिंसा करते हुए अन्य लोगोंका अनुमोदन करना हिंसा विरति वा हिंसाका त्याग अथवा अहिंसा व्रत कहलाता है। यह अहिंसा व्रत स्वर्ग और मोक्ष फल प्राप्त होनेका कारण है। इस अहिंसा व्रतका पालन करनेके लिये ही बाकीके सब व्रत धारण किये जाते हैं। अहिंसा व्रतका धारण करनेवाला अहिंसक पुरुष अपने पिताके समान विश्वास करने योग्य और पूज्य माना जाता है। हिंसक पुरुष सदा ललकार और फटकार पाता रहता है और सदा दूसरोंके साथ वैर विरोध बांधता रहता है। हिंसक पुरुष इस लोकमें भी बध बंधन आदिके अनेक क्लेश भोगता है और परलोकमें भी नीच गति पाकर निंदनीय होता है इसलिये हिंसाका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है।

वाग्गुप्तिः, मनोगुप्तिः, ईर्यासमितिः, आदाननिक्षेपणसमितिः, आलोकितपानभोजनमिति ।

पारमार्थिकस्य भूतनिह्नवेऽभूतोद्भावने च यदभिधानं तदेवानृतं स्यात् भूतनिह्नवे नास्त्यात्मा नास्ति परलोक इत्यादि । अभूतोद्भावने च श्यामाकतंदुकमात्र आत्मांगुष्ठपर्वमात्र- सर्वगतो निष्क्रिय इत्यादि । यद्विद्यमानार्थविषयं प्राणिपीडाकारणं तत्सत्यमप्यसत्यमेतद्विपरीतं यत्र प्राणिपीडाकरं तदनृतं कृतात्कारितादनुमोदिताद्वाऽनृताद्विरतिः सत्यव्रतं तदभ्युदयनिःश्रेयसकारणं । सत्यवादिनं सन्मानयति लोकः, सर्वेषु कार्येषु प्रमाणं भवति,

परमार्थ रीतिसे ग्रहण करनेकी इच्छासे इस अहिंसा व्रतको स्थिर करनेके लिये वाग्गुप्ति मनोगुप्ति ईर्या समिति आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित पान भोजन ये पांच भावनाएं कही गई हैं।

जो पदार्थ है उसको छिपानेके लिये और जो नहीं है उसको प्रगट करनेकेलिये जो वचन कहे जाते हैं उसीको अनृत वा मिथ्या वचन कहते हैं। आत्मा नहीं है परलोक नहीं है इत्यादि वचन पदार्थोंके अस्तित्वको छिपानेवाले हैं। आत्मा श्यामाक जातिके चांवलके बराबर है, अथवा अंगूठेके पर्वके समान है अथवा समस्त संसारमें व्याप्त है और निष्क्रिय है, इत्यादि वचन जो पदार्थ नहीं है उसीको प्रगट करनेवाले हैं। विद्यमान पदार्थोंको विद्यमान कहनेवाले वचन भी यदि प्राणियोंको पीडा करने वाले हों तो वे सत्य होकर भी असत्य ही माने जाते हैं। जो वचन विपरीत हों, तथा प्राणियोंको पीडा देने वाले हों वे सब अनृत कहलाते हैं। कृत कारित अनुमोदनासे अनृत वा असत्यका त्याग कर देना सत्यव्रत है। यह सत्यव्रत भी अभ्युदय और मोक्षका कारण है। सत्यवादीका (सच बोलनेवालेका) सब लोग सन्मान करते हैं और समस्त कार्योंमें वह प्रमाण माना जाता है। झूठ बोलनेवाले पर किसीकी श्रद्धा नहीं होती इस लोकमें भी जीभ काटी जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं तथा झूठ बोलकर जिन लोगोंको दुःख दिया है और इसीलिये जिनके साथ वैर बंध गया है ऐसे लोगोंके द्वारा

अनृतवाद्यश्रद्धेयो भवति इहैव जिह्वाच्छेदनादीन् प्रतिलभते, मिथ्याभ्याख्यानदुःखितेभ्यश्च बद्धवैरेभ्यो बहूनि व्यसनान्यवाप्नोति प्रेत्य चाऽशुभां गतिं । निंदितश्च भवतीत्यनृतवचनाद्व्युपरमः श्रेयान् । सत्यव्रतदृढीकरणार्थं पंचभावना भवंति ।

क्रोधप्रत्याख्यानं, लोभप्रत्याख्यानं, भीरुत्वप्रत्याख्यानं, हास्यप्रत्याख्यानं, अनुवीचिभाषणं चेति । अनुवीचिभाषणमनुलोमभाषणमित्यर्थः, विचार्य भाषणमनुवीचिभाषणं ।

अदत्ताऽऽदानं स्तेयं । ग्रामारामशून्यागारवीथ्यादिषु निपतितमणिकनकवस्त्रादिवस्तुनो ग्रहणमदत्तादानं । कृतकारितादिभिस्तस्माद्विरतिरस्तेयव्रतं । तद्गीर्वाणनिर्वाणप्रदं । अस्तेयव्रतिनो वहिश्चरप्राणेष्वर्थेष्वपि विश्वसिति लोकः । परद्रव्यहरणासक्तमतिः सर्वस्योद्वेजनीयो भवति, इहैव चाभिघातवधब-

वह अनेक तरहके संकटोंमें डाला जाता है। परलोकमें भी उसे अशुभ गति मिलती है तथा वह निंदनीय होता है इसलिये असत्य वचनोंका त्याग कर देना ही कल्याणकारी है। क्रोध प्रत्याख्यान अर्थात् क्रोध त्याग करदेनेकी भावना रखना, लोभ प्रत्याख्यान अर्थात् लोभका त्याग कर देनेकी भावना रखना, भीरुत्व प्रत्याख्यान अर्थात् डरको त्यागदेनेकी भावना रखना हास्य-प्रत्याख्यान अर्थात् हंसीको त्याग देनेकी भावना रखना और अनुवीची भाषण ये पांच सत्य व्रतको दृढ करनेकी भावनाएं हैं। विचार कर भाषण करना अथवा अनुकूलता पूर्वक भाषण करना अनुवीची भाषण कहलाता है।

अदत्तादान अर्थात् विना दी हुई वस्तुको लेना वा ग्रहण करना चोरी है। किसी गांवमें किसी वगीचेमें, किसी सूने मकान अथवा गलीमें पडे हुए माणि सोना वस्त्र आदि पदार्थोंका ग्रहण करलेना उठालेना अदत्तादान है। कृत कारित अनुमोदनासे ऐसे अदत्तादानका त्याग करना अस्तेय व्रत अथवा अचौर्यव्रत है यही अचौर्यव्रत स्वर्ग और मोक्षकी संपदा देनेवाला है। अचौर्यव्रत धारण करनेवालेका वाह्य प्राण रूप धन रखनेमें भी सब लोग विश्वास करलेते हैं। जिसकी बुद्धि दूसरेके धन हरण करनेमें आसक्त रहती है उसे सवलोग दंड और फटकार

न्धहस्तपादकर्णनासोत्तरौष्ठच्छेदनभेदनशूलारोहणक्रकचपाटनकारागारविनिवेशनसर्वस्वहरणादीन्प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं। कुत्सितश्च भवति, तत्संसर्गतः शिष्टोऽपि संशयमवाप्नोति । अदत्तादानव्रतस्थिरीकरणार्थं भावनाः पंच भवंति ।

शून्यागारगिरिगुहातरुप्रकोटरादिष्वावास , परकीयेषु मोचितेष्वावासः, परेषा मनुष्यव्यन्तरादीनामुपरोधाकारणं, आचारसूत्रमार्गेण भैक्ष्यशुद्धिः, ममेदं तवेदमिति लक्षणो विसंवादः, न विसंवादोऽविसंवादः, सधर्मिभिरविसंवाद इति ।

मैथुनमब्रह्म, स्त्रीपुंसोर्वेदोदये वेदनापीडितयोर्यत्कर्म तन्मैथुनमथवैकस्याऽपि चारित्रमोहोदयोद्रक्तरागस्य हस्तादिसंघट्टनेऽस्ति मैथुनमिति । अहिंसा-

दिया करते हैं इस लोकमें मारना, पीटना, जानसे मार डालना, बांधना हाथ पैर कान नाक ऊपरका ओठ आदि अंगोंका काटलेना, भेदना शूलीपर चढाना, आरेसे चीरना, कारागार में (जेलमें) बंद करना और उसका सब धन लूट लेना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं। परलोकमें उसे अशुभगति प्राप्त होती है और वह निंदनीय होता है और तो क्या ऐसे चोर के संसर्ग मात्रसे शिष्ट पुरुष भी (भले सभ्य पुरुष) संशयमें पड जाते हैं अर्थात् लोग उनपर भी संदेह करने लगते हैं इसलिये चोरीका त्याग करदेना ही संसारका तथा आत्माका कल्याण करनेवाला है। इस आचौर्य व्रतको स्थिर करनेकेलिये नीचे लिखी हुई पांच भावनाएं हैं । पर्वतोंकी गुफाएं तथा वृक्षोंके कोटर आदि सूने मकानोंमे निवास करनेकी भावना रखना, दूसरेके द्वारा छोडे हुए स्थानोंमें निवास करनेकी भावना रखना, अन्य मनुष्य व्यंतर आदिको रोक टोक न करनेकी भावना रखना, आचार सूत्रोंमें कही हुई विधिके अनुसार भिक्षाकी शुद्धता रखनेकी भावना रखना, और साधर्मियोंके साथ " यह तेरा है यह मेरा है " आदि विसंवाद न करना ।

मैथुन करनेको अब्रह्म कहते हैं। अपने अपने वेद कर्मके उदयसे वेदनासे (कामकी वेदनासे) पीडित हुए स्त्री पुरुष जो कुछ कर्म करते हैं उसको मैथुन कहते हैं अथवा चारित्र मोह-

द्विगुणवृंहणाद्ब्रह्म न ब्रह्म अब्रह्म। तिर्यग्मनुष्यदेवाऽचेतनभेदाच्चतुर्विधस्त्रीभ्यो मातृस्वसृसुताभगिनीभावनया मनोवाक्कायप्रत्येककृतकारितानुमोदितभेदेन नवविधाद्विरतिश्चतुर्थव्रतं। तदेव स्वर्गमोक्षसाधनं ब्रह्मचारिणं भूमिस्थमपि साक्षाद्देव इव मन्यते लोकः। असंयतोपि तद्व्रतो मानार्हो भवति, तस्मिन्प्रतिष्ठिताः सर्वे गुणाः, विद्यादेवताश्च परिगृहीतब्रह्मव्रतस्य किंकरभावमुपयाति। अब्रह्मचारी मदविभ्रमोन्मथितचित्तो वनगज इव वासितावंचितो विवशो वधबंधपरिक्लेशादीननुभवति, मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिज्ञो न किंचित्कुशलमाचरति, परांगनालिंगनसंगकृतरतिश्चेहैव वैरानुबंधिनो लिंगच्छेदनवधबन्धनसर्वस्व-

नीय कर्मके तीव्र उदयसे जिसके तीव्र राग भाव प्रगट हुआ है ऐसा एक पुरुष भी यदि हस्तादिकसे संघट्टन क्रिया करे तो वह भी मैथुन कहलाता है। जिसमें अहिंसा आदि गुणोंकी वृद्धि होती हो उसे ब्रह्म कहते हैं और ब्रह्म वा ब्रह्मचर्यका पालन न करना ही अब्रह्म है। तिर्यंच मनुष्य देव और अचेतनके भेदसे स्त्रियां चार तरहकी होती हैं इन चारों प्रकारकी स्त्रियोंमें माता बहिन और पुत्री की भावना रखकर मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनाके द्वारा होनेवाले नौ प्रकारके भेदोंसे उस अब्रह्मका त्याग करदेना ब्रह्मचर्य नामका चौथा व्रत है। यह ब्रह्मचर्य व्रत भी स्वर्ग मोक्षका साधन है। यदि कोई ब्रह्मचारी जमीन पर भी बैठा हो तो भी संसार उसे साक्षात देवके समान ही मानता है। यदि ब्रह्मचारी असंयमी भी हो तो भी उसका आदर सत्कार और मान प्रतिष्ठा होती है। इस ब्रह्मचर्य व्रतमें ही समस्त गुण शामिल हैं। जिसने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है उसीके सब विद्या देवता आकर स्वयं सेवक होकर काम करते हैं। जिस प्रकार मदके विकारसे उन्मत्त चित्तवाला जंगली हाथी हथिनीके द्वारा ठगा जाकर परवश हो जाता है और बध बंधन आदिके अनेक क्लेशोंका अनुभव करता है उसी प्रकार अब्रह्मचारी भी मदके विकारसे उन्मत्त चित्त होकर परवश हो जाता है और फिर बध बंधन आदिके अनेक क्लेश सहन करता है। मोहसे तिरस्कृत होकर कार्य अकार्यका कुछ विचार नहीं कर सकता और न वह किसी भी श्रेष्ठ कार्यका संपादन कर सकता है। परस्त्रियोंका आलिंगन अथवा उनके साथ समागम

हरणादीनपायान् प्राप्नोति, प्रेत्य चाशुभां गतिमश्नुते, तृणवल्लघुश्च भवतीत्यतः स्त्रीविरतिरात्महिता । ब्रह्मचर्यव्रतनिश्चलीकरणार्थं पंच भावना भवंति ।

स्त्रीरागकथाश्रवणवर्जनं, तन्मनोहरांगनिरीक्षणविरहः, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोहः, वृष्येष्टरसानुभवनिरासः, स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति ।

मूर्च्छा परिग्रहः, बाह्याभ्यन्तरोपधिसंरक्षणादिव्यावृत्तिर्मूर्च्छा । क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानशयनासनकुप्यभांडानि, दशविधश्चेतनाचेतनभेद-

लक्षणो बाह्यपरिग्रहः । मिथ्यात्वक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सावेदरागद्वेषचतुर्दशभेदोऽभ्यन्तरपरिग्रहः । एतस्मान्मनसः कृतकारितानु-

करनेकी लालसा रखनेवाले पुरुषके साथ हर किसीका वैर विरोध हो जाता है और फिर उन वैर विरोध करनेवालोंके द्वारा लिंगच्छेदन, बध बंधन और समस्त धनका हरा जाना आदि अनेक दुःख उसे भोगने पडते हैं । परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होती है और वह तृणके समान लघु वा क्षुद्र गिना जाता है । इसलिये स्त्रीमात्रका त्याग कर देना ही आत्माका कल्याण करनेवाला है । इस ब्रह्मचर्य व्रतको निश्चल करनेके लिये स्त्रीरागकथा श्रवण त्याग, (स्त्रियोंकी रागरूपकथा सुननेका त्याग) तन्मनोहरांगानिरीक्षणविरह अर्थात् स्त्रियोंके मनोहर अंगोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरणव्यपोह अर्थात् पहिले उपभोगकी हुई स्त्रियोंके स्मरण करनेका त्याग करना, वृष्येष्टरसानुभवनिरास अर्थात् पौष्टिक और इष्ट रसके अनुभव करनेका त्याग करना, और स्वशरीरसंस्कारवर्जन अर्थात् अपने शरीरके संस्कार करनेका त्याग करना ये पांच भावनाएं हैं ।

मूर्छाको परिग्रह कहते हैं बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहकी रक्षा करना उपार्जन करना आदि कार्योंमें प्रवृत्त होनेको मूर्छा कहते हैं । क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद (दास दासी) चतुष्पद (चौपाये) सवारी, सोने बैठनेकी पलंग कुरसी आदि चीजें, कुप्य (वस्त्रादि) और भांड (वर्तन आदि) दश प्रकारका बाह्य परिग्रह है, और वह भी चेतन अचेतनके भेदसे दो प्रकार का है । मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ हास्य रति अराति शोक भय जुगुप्सा, वेद, (स्त्री

मोदितेन वचस॰ कृतकारितानुमोदितेन कायस्य कृतकारितानुमोदितेन च विरतिरपरिग्रहलक्षणं व्रतं । तदेव सर्वमोक्षैकसाधनं सर्वेषां गुणानामलंकरणं, निष्परिग्रहव्रतिनं सर्वेऽपि सन्मानयन्ति, स सर्वैश्च समभिवन्दनीयः संपूजनीयश्च भवति, तस्य नामग्रहणेऽपि बद्धांजलिर्भवति लोकः । परिग्रहवान् यथा शकुनिर्गृहीतमांसखंडोऽन्येषां तदर्थिनां पतत्रिणामभिभवनीयः, तथा तस्करादीनामभिभवनीयो मार्यश्च भवति, परिग्रहार्जननिमित्तं निजाभिजनविद्यावृत्तं विहाय केचन जडधियो नीचतामुपगच्छन्ति, न चाऽस्य तृप्तिर्भवतीन्धनैरिवाऽग्नेर्लोभाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति, प्रेत्य चाशुभां गतिमा-

लिंग नपुंसक लिंग पुलिंग) राग और द्वेष यह चौदह प्रकारका अभ्यंतर परिग्रह है । इन दोनों प्रकारके परिग्रहोंका मनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, वचनके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे, और कायके द्वारा कृत कारित अनुमोदनासे इन नौ तरहसे त्याग कर देना परिग्रह त्याग व्रत है । यह परिग्रह त्याग व्रत ही स्वर्ग और मोक्षका साधन है तथा समस्त गुणोंको सुशोभित करनेवाला है । परिग्रह त्याग व्रतको धारण करनेवाले पुरुपका सभी लोग सन्मान करते हैं सभी लोग बंदना करते हैं, और सभी लोग पूजा करते हैं । ऐसे पुरुषके नाम लेनेमात्र से ही उसकेलिये सब लोग अपने अपने हाथ जोड लेते हैं । जिस प्रकार किसी पक्षीके पास मांसका टुकडा हो तो उस मांसको चाहनेवाले अन्य पक्षी उसे त्रास देते हैं उसी प्रकार चोर आदि धनार्थी लोग भी अधिक परिग्रहवालेको त्रास देते हैं तथा मार डालते हैं । परिग्रहको इकट्ठा करनेके लिये अपने कुटुंबी, विद्या और चारित्रको छोडकर कितने ही मूर्ख लोग नीचता धारण करलेते हैं । जिस प्रकार इंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार परिग्रहसे किसी को भी तृप्ति नहीं होती । लोभके वशीभूत होकर वह कार्य अकार्य आदि किसीका विचार नहीं कर सकता । परलोकमें उसे अशुभ गति प्राप्त होती है और 'यह लोभी है' इस प्रकार वह निंदनीय गिना जाता है । इसलिये जो नीच वृत्तिसे उपार्जन किया जाय और जो अनित्य तथा दुःखका कारण है ऐसे परिग्रहको छोडकर आत्माका हित करनेवाले लोगोंको निष्परिग्रहवृत्ति

स्कन्दति, लुब्धोऽयमिति गर्हितश्च भवतीति नीचवृत्त्या समुपार्जनीयमनित्यं दुःखकारणं परिग्रहं परित्यज्याकिंचन्यवृत्त्या नित्यमनंतसुखसाधनं मोक्षमार्गमुपार्जयन्त्यात्महितैषिणः। आकिंचन्यव्रतदृढिमार्थं पंच भावना भवंति।

पंचानां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणामिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु रागवर्जनमनिष्टेषु विषयेषूपनिपतितेषु द्वेषवर्जनमिति।

एवमहिंसादिव्रतानां लक्षणं फलं गुणं तदभावे दोषभावनां च ज्ञात्वा यथा ममाप्रियं वधबन्धपरिपीडनं तथा सर्वसत्त्वाना। यथा मम मिथ्यात्वाख्यानकटुकपरुषादीनि वचांसि शृण्वतोतितीव्र दुःखमभूतपूर्वमुत्पद्यते तथा सर्वजीवानां। यथा ममेष्टद्रव्यवियोगे व्यसनपूर्वमुपजायते तथा सर्वभूतानां। यथा मम कान्ताजनपरिभवे परकृते सति मानसी पीडाऽतितीव्रा जायते तथा सर्वप्राणिनां। यथा च मम परिग्रहेष्वप्राप्तेषु कांक्षोद्भवं प्राप्तेषु रक्षाज-

धारण कर नित्य और अनंत सुखका साधन ऐसा मोक्षका मार्ग सदा उपार्जन करना चाहिये। इस आकिंचन्य वृतको स्थिर करनेके लिये स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, और कर्ण इन पांचों इंद्रियोंके इष्ट विषय प्राप्त होने पर उनमें राग नहीं करना और अनिष्ट पदार्थोंके प्राप्त होनेपर द्वेष नहीं करना ये पांच भावनाएं हैं।

इस प्रकार अहिंसा आदि वृतोंका लक्षण फल और गुणोंको समझकर तथा वृतोंके अभावमें दोषोंकी प्राप्ति समझकर विचार करना चाहिये कि जिस प्रकार बध बंधन और पीडन मुझे अप्रिय हैं उसी प्रकार सब जीवोंको अप्रिय हैं जिस प्रकार मिथ्या वचन कटुक और कठोर वचन सुननेसे मुझे अभूत पूर्व और अत्यंत तीव्र दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार मेरे इष्ट पदार्थोंका वियोग होनेपर मुझे दुःख होता है उसी प्रकार सब जीवोंको होता है। जिस प्रकार किसी दूसरेके द्वारा मेरी स्त्रीका तिरस्कार होने पर मेरे हृदयमें अत्यंत तीव्र पीडा होती है उसी प्रकार सब जीवोंको होती है। जिस प्रकार मुझे परिग्रहोंकी प्राप्ति न होने पर उनकी इच्छाजन्य अत्यंत तीव्र दुःख होता है, उनकी प्राप्ति होनेपर रक्षा करनेका अत्यंत दुःख होता है और उनके नष्ट होने पर शोक उत्पन्न होनेका सबसे अधिक तीव्र दुःख

नितं विनष्टेषु शोकसमुत्थं दु:खमतितीव्रतरं भवति तथा च सर्वेदेहिनां अतो न हिनस्मि, नानृतं वदामि, नादत्तमाददे, नांगनां स्पृशामि, न परिग्रहमुपाददे इत्येवं प्रमत्तपरिणामयोगजनितं हिंसादिकं विहायाप्रमत्तपरिणामादहिंसादिव्रतधारणे यत्नः कर्तव्यः ।

समितिपालनं पूर्वमुक्तं । चतुर्विधकषायनिग्रहश्चोत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचेषु प्रतिपादितः ।

दंडस्त्रिविधः, मनोवाक्कायभेदेन । तत्र रागद्वेषमोहविकल्पात्मा मानसो दंडस्त्रिविधः, तत्र राग· प्रेमहास्यरतिमायालोभाः । द्वेषः क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्साः । मोहो मिथ्यात्वत्रिवेदसहिताः प्रेमहास्यादयः । अनृतोपघातपैशून्यपरुषाभिशंसनपरितापहिंसनभेदाद्वाग्दंडः सप्तविधः प्राणिवधचौर्यमैथुनपरिग्रहाऽऽरंभताडनोग्रवेषविकल्पात्कायदंडोऽपि च सप्तविधः । गुप्तात्मना प्रयतमानेन दंडत्यागो विधेयः ।

होता है उसी प्रकार सब जीवोंके होता है । इसलिये मैं न तो किसी जीवकी हिंसा करूंगा, न झूठ बोलूंगा न चोरी करूंगा, न स्त्रीका स्पर्श करूंगा और न परिग्रह ग्रहण करूंगा इसप्रकार प्रमत्त परिणामोंके संयोगसे उत्पन्न हुए हिंसा आदि कार्योंको छोडकर अप्रमत्त परिणामोंसे होनेवाले अहिंसा आदि व्रतोंके धारण करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये ।

समितियोंके पालन करनेका विधान पहिले कहा जा चुका है और चारो प्रकारके कषायोंका निग्रह करना उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव और शौचमें प्रतिपादन कर चुके हैं ।

मन वचन कायके भेदसे दंड तीन प्रकारका है और उसमें भी राग द्वेष मोहके भेदसे मानसिक दंड भी तीन प्रकारका है । प्रेम हास्य रति माया और लोभको राग कहते हैं, क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्साको द्वेष कहते हैं तथा मिथ्यात्व स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद प्रेम और हास्यादिक सब मोह कहलाता है । झूठ बोलना, वचनसे कहकर किसीके ज्ञानका घात करना, चुगली खाना, कठोर वचन कहना, अपनी प्रशंसा करना, संताप उत्पन्न करनेवाले वचन कहना और हिंसाके वचन कहना यह सात तरहका वचन दंड कहलाता है । प्राणियोंका बध करना, चोरी करना, आरंभ करना, ताडन करना, और उग्र वेष (भयानक रूप) धारण करना इस तरह काय

विषयाटवीषु स्वच्छन्दप्रधावमानेन्द्रियगजानां ज्ञानवैराग्योपवासाद्यंकुशाकर्षणेन वशीकरणमिन्द्रियजयः । स चास्रवानुप्रेक्षाया वक्ष्यते ।

संयमो ह्यात्महितस्तमनुतिष्ठन्निहैव पूज्यते । परत्र किमत्र वाच्यं । असंयतः प्राणिवधविषयमार्गेषु नित्यं प्रवृत्तो मूर्तिमदशुभकर्मैवायमिति साधुजनैर्विनिंद्यमानो दुष्कर्म संचिनुते ।

संयमिनो नैर्ग्रन्थ्यधारिणः पंचविधाः । पुलाकाः, बकुशाः, कुशीलाः, निर्ग्रन्थाः, स्नातकाश्चेति । तत्रोत्तरगुणभावनोपेतमनसः व्रतेष्वपि क्वचित्क-

दंड भी सात प्रकारका कहलाता है। अपने आत्माको गुप्त रखनेके लिये पापोंसे छिपाने वा बचानेके लिये सदा प्रयत्न करनेवाले मुनियोंको इन तीनों प्रकारके दंडोंका त्याग कर देना चाहिये।

विषयरूपी वनमें स्वतंत्र रीतिसे दौडनेवाले इंद्रियरूपी हाथियोंको ज्ञान वैराग्य उपवास आदि अंकुशोंसे खींचकर वश करना इंद्रियविजय कहलाता है। इस इंद्रियविजयका विस्तार आस्रवानुप्रेक्षामें कहेंगे।

यह निश्चय है कि संयम धारण करना आत्माका हित करनेवाला है इसलिये जो इस संयमको धारण करता है वह इस लोकमें भी पूज्य गिना जाता है फिर भला परलोककी तो बात ही क्या है वहां तो पूज्य होता ही है।

असंयमी पुरुष प्राणियोंकी हिंसा करना, विषय सेवन करना आदि मार्गोंमें ही सदा प्रवृत्त रहा करता है वह मूर्तिमान् साक्षात् अशुभ कर्म ही जान पडता है और इसीलिये सज्जनोंके द्वारा निंद्य गिना जाता है और अनेक दुष्कर्मोंको (पापरूप कर्मोंको) संचित करता रहता है।

निर्ग्रंथ (परिग्रहरहित) अवस्थाको धारण करनेवाले संयमी पुलाक वकुश कुशील निर्ग्रंथ और स्नातकके भेदसे पांच प्रकारके होते हैं। जिसप्रकार पुलाक (छिलका सहित चावल) बिल्कुल शुद्ध नहीं हो सकता उसीप्रकार जो बिल्कुल शुद्ध न हों अर्थात् जिनके

दाचित्परिपूर्णतामपरिप्राप्नुवंतोऽविशुद्धपुलाकसादृश्यात्पुलाका इत्युच्यंते । नैर्ग्रन्थ्यमुपस्थिता अखंडितव्रताः शरीरोपकरणविभूषणानुवर्तिनो वृद्धियशःकामाः शातगौरवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्च छेदशवलयुक्ताः वकुशाः । शवलपर्यायवाची वकुशशब्द इति । कुशीला द्विविधा "प्रतिसेवनाकुशीला", कषायकुशीलाश्चेति तत्राविविक्तपरिग्रहाः परिपूर्णमूलोत्तरगुणाः कथंचिदुत्तरगुणविराधिन प्रतिसेवनाकुशीला ग्रीष्मे जंघाप्रक्षालनादिसेवनवदिति । वशीकृतान्यकषायोदयाः

मनमें उत्तर गुणोंके धारण करनेकी भावना विल्कुल न हो और व्रतोंमें भी किसी जगह किसीसमय पूर्णता प्राप्त न कर सकें ऐसे मुनियोंको पुलाक मुनि कहते हैं। जिन्होंने निर्ग्रंथ अवस्था धारणकी है तथा जिनके वृत अखंडित वा पूर्ण हैं परंतु जो शरीर और उपकरणोंकी सुंदरताका अनुराग रखते हैं (प्रभावनाके लिए) अपने यशकी वृद्धि चाहते हैं, परिवार अर्थात् अपने संघसे कभी अलग रहना नहीं चाहते इसलिये परिवारसे (संघसे) उत्पन्न हुए हर्षरूपी छेदसे जो चित्र वर्णता (चित्रलाचरण) धारण करते हैं और जो अच्छी तरह रहने वा सुंदरतामें ही अपना गौरव समझते हैं उन्हें वकुश कहते हैं। शवल अर्थात् चित्रविचित्र वा अनेक रंगवालेको ही वकुश कहते हैं। भावार्थ— जो रागसहित चारित्र धारण करे उसे वकुश कहते हैं।

कुशील दो प्रकारके होते हैं एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरे कषाय कुशील। जो परिग्रहोंसे अलग नहीं हुए हैं अर्थात् कमंडलु पीछी संघ गुरु आदिसे जिन्होंने अपना मोह नहीं छोडा है, जिनके मूलगुण और उत्तरगुण दोनों ही परिपूर्ण हैं परंतु किसी तरह जो उत्तरगुणोंकी विराधना कर डालते हैं उनको प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। प्रतिसेवना कुशील मुनि गर्मियोंके दिनोंमें जंघाप्रक्षालन आदि कर लेते हैं यही उनकी उत्तरगुणोंकी विराधना है। जिनके अन्य सब कषायोंका उदय वश हो गया है केवल संज्वलन कषायका उदय बाकी है उनको कषायकुशील कहते हैं। जिसप्रकार पानीमें लकडीकी रेखा शीघ्र ही नष्ट हो जाती

संज्वलनमात्रतंत्राः कषायकुशीला इति। यथोदके दंडराजिराशेव विलयमुपयाति तथाऽनभिव्यक्तोदयकर्माण ऊर्ध्वं मुहूर्तादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदर्शनभाजो निर्ग्रंथा इति। ज्ञानावरणादिघातिकर्मक्षयादाविर्भूतकेवलज्ञानाद्यतिशयविभूतयः सयोगिशैलेशिनो नवलब्ध्यास्पदाः केवलिनः स्नातका इति। एते प्रकृष्टाप्रकृष्टमध्यमचारित्रभेदे सत्यपि नैगमनयापेक्षया पंचापि निर्ग्रन्था इत्युच्यंते। यथा षोडशत्रयोदशदशवर्णिकादिषु सुवर्णशब्दोऽविशिष्टो वर्त्तते तथा निर्ग्रन्थशब्दोऽपि। सम्यग्दर्शनं निर्ग्रंथरूपं च भूषावेशायुधरहितं तत्सामान्ययोगात्सर्वेषु पुलाकादिषु निर्ग्रन्थशब्दो युक्तः।

पुलाकादिनिर्ग्रन्था उत्तरोत्तरगुणप्रकर्षवृत्तिविशेषाः संयमादिभिरष्टाभिरनुयोगैर्व्याख्येयाः। तद्यथा—संयमः, श्रुतं, प्रतिसेवना, तीर्थं, लिंगं, लेश्या,

है उसीप्रकार जिनके कर्मोंका उदय व्यक्त वा प्रकट नहीं है और एक मुहूर्तके बाद ही जिन्हें केवल ज्ञान प्रगट होनेवाला है उनको निर्ग्रंथ कहते हैं। ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मोंके नाश होनेसे जिनके केवलज्ञान आदि आतिशय और विभूतियां प्रगट हो गई हैं जो सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थानके स्वामी हैं और क्षायिक नौ लब्धियोंको धारण करते हैं ऐसे केवलज्ञानियोंको स्नातक कहते हैं। यद्यपि इनमें किसीके उत्तम चारित्र है किसीके मध्यम है और किसीके जघन्य है इसप्रकार इनके चारित्रमें भेद है तथापि नैगम नयकी अपेक्षासे पाचों ही निर्ग्रंथ कहे जाते हैं। जिसप्रकार सोलह ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है और तेरह तथा दश ताव लगा हुआ सोना भी सोना कहलाता है उसीप्रकार निर्ग्रंथ शब्द भी समझना चाहिए। सम्यग्दर्शन और आभूषण, वेष (वस्त्र) तथा शस्त्रोंसे रहित निर्ग्रंथपना ये दोनों ही साधारण रीतिसे सब मुनियोंमें रहते हैं इसलिये पुलाक आदि सब तरहके मुनियोंमें निर्ग्रंथ शब्द चारितार्थ होता है।

उत्तरोत्तर गुणोंकी अधिकता और चारित्रकी विशेषता धारण करनेवाले पुलाकादि निर्ग्रंथोंका संयम आदि आठ अनुयोगोंके द्वारा व्याख्यान करना चाहिये। यही बात आगे दिखलाते हैं। संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठों भेदोंके

उपपाद, स्थानमिति विकल्पतः पुलाकादयः साध्याः। तत्र संयमे पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवन्ति। कषायकुशीलाः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोः परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययोश्च भवन्ति। निर्ग्रन्था स्नातकाश्चैकस्मिन्नेव यथाख्यातसंयमे भवन्तीति। श्रुते पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिन्नाक्षरदशपूर्वधराः कषायकुशीला निर्ग्रन्थाश्चतुर्दशपूर्वधराः। जघन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु, वकुशकुशीलनिर्ग्रन्थाना श्रुतमष्टौ प्रवचनमातरः। स्नातका अपगतश्रुता केवलिनः। प्रतिसेवनायां पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगाद्बला-

द्वारा पुलाकादिकोंको सिद्ध करना चाहिये और वह इस तरह, संयमके द्वारा पुलाक वकुश और प्रतिसेवना कुशील ये सदा सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमोंमें रहते हैं। कषायकुशील सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसांपराय इन चार संयमोंमे रहते हैं। निर्ग्रंथ और स्नातक एक ही यथाख्यात संयममें रहते हैं। श्रुतके द्वारा—पुलाक वकुश और प्रतिसेवनाकुशीलके उत्कृष्ट श्रुतज्ञान अभिन्नाक्षर दश पूर्वतक होता है। कषाय कुशील और निर्ग्रंथोंके चौदह पूर्व तक होता है। जघन्य पुलाकके आचारवस्तुतक श्रुतज्ञान होता है। (आचारवस्तु आचारांगका एक भाग है] वकुश कुशील और निर्ग्रंथोंके जघन्य श्रुतज्ञान अष्ट प्रवचनमातृका तक होता है। [आचारांगमें एक अधिकार पांच समिति और तीन गुप्तिके व्याख्यान करनेका है उस अधिकार तक अष्ट प्रवचनमातृका कहते हैं] स्नातकोंके कोई श्रुतज्ञान नहीं होता क्योंकि वे केवली होते हैं। प्रतिसेवनाके द्वारा—प्रतिसेवना विराधनाको कहते हैं। पुलाक मुनिके पांचों मूलगुण [महाव्रत] और रात्रिभोजन त्याग इन छह व्रतोंमें से दूसरेकी जबर्दस्तीसे किसी एकमें विराधना होती है[1]। वकुश दो प्रकारके हैं एक उपकरण वकुश और दूसरे शरीर वकुश। जिसके चित्तमें पीछी, कमंडलु, बंधन आदि

1 इसका अभिप्राय यह है कि इन व्रतोंकी प्रतिज्ञा मन वचन काय कृत कारित अनुमोदनसे होती है उसमें सामर्थ्यकी हीनतासे किसी अंशमे भंग हो जाता है।

दन्यतमं प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । वकुशो द्विविधः, उपकरणवकुशः, शरीरवकुशश्चेति । तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तो वहु-
विशेषोपयुक्तोपकरणाकाङ्क्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणवकुशो भवति । शरीर-संस्कारसेवी शरीरवकुशः । प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविरा-
धयन्नुत्तरगुणेषु काञ्चिद्विराधना प्रतिसेवते । कषायकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाना प्रतिसेवना नास्ति । तीर्थे-सर्वेषां तीर्थकराणां तीर्थेषु भवन्ति । लिंगे, द्रव्यभा-
वभेदाल्लिंगं द्विविधं, भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंचाऽपि निर्ग्रन्था लिंगिनो भवन्ति, द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः । लेश्यायां पुलाकस्योत्तरास्तिस्रो लेश्या भवंति

धर्मोपकरणकी अभिलाषा रहती है जो अनेक तरहके चित्रविचित्र परिग्रहोंको (पीछी कमंडलु पुस्तक बंधन आदि परिग्रहोंको, धारण करता है विशेष उपयोगी बहुतसे उपकरणोंकी आकांक्षा रखता है और उनके संस्कारसे विराधना करता रहता है ऐसे मुनिको उपकरण वकुश कहते हैं। शरीरके संस्कारोंकी सेवा करनेवाला मुनि शरीर वकुश कहलाता है। प्रतिसेवना कुशील नामका मुनि मूलगुणोंकी विराधना तो नहीं करता किन्तु उत्तरगुणोंकी कुछ विराधना करता है। कषायकुशील, निर्ग्रंथ और स्नातकोंके विराधना नहीं होती। तीर्थके द्वारा—ये सब तरहके मुनि समस्त तीर्थकरोंके तीर्थोंमें होते हैं। लिंग दो प्रकारका है एक भाव लिंग और दूसरा द्रव्य लिंग। भावलिंगकी अपेक्षासे पांचों प्रकारके सब ही मुनि निर्ग्रंथ लिंगको धारण करते हैं तथा द्रव्यलिंगकी अपेक्षासे सबका अलग अलग विभाग कर लेना चाहिए।

१—त्याग की वस्तुको कारण पाकर ग्रहण कर लेना और फिर तत्काल ही सावधान होकर उसका त्याग कर देना प्रतिसेवना वा विराधना कहलाती है।

२—द्रव्य लिंगकी अपेक्षासे—कोई आहार करता है कोई उपवास करता है, कोई तप करता है कोई उपदेश करता है, कोई अध्ययन करता है, कोई तीर्थ विहार करता है, कोई अनेक आसनोंसे ध्यान करता है, किसीके दोष लगता है, किसीके नहीं लगता, कोई प्रायश्चित्त लेता है, कोई आचार्य हैं, कोई निर्यापक हैं, कोई केवली हैं इत्यादि बाह्य प्रवृत्तिकी अपेक्षा अनेक तरहसे लिंग भेद होता है।

वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोः षडपि, कषायकुशीलस्य परिहारविशुद्धस्य चतस्र उत्तराः, सूक्ष्मसांपरायस्य निर्ग्रन्थस्नातकयोश्च शुक्लैव केवला भवति, अयोगिनः शैलेशितां प्रतिपन्ना अलेश्याः । उपपादे, पुलाकस्योत्कृष्ट उपपादोऽष्टादशसागरोपमोत्कृष्टस्थितिषु देवेषु सहस्रारे, वकुशप्रतिसेवनाकुशीलयोर्द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिष्वारणाच्युतकल्पयोः, कषायकुशीलनिर्ग्रन्थयोस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमस्थितिषु सर्वार्थसिद्धौ च सर्वेषामपि जघन्यः सौधर्मकल्पे द्विसागरोपमस्थितिषु, स्नातकस्य निर्वाणमिति । स्थानेऽसंख्येयानि संयमस्थानानि कषायनिमित्तानि भवन्ति । तत्र सर्वजघन्यानि लब्धिस्थानानि पुलाककषायकुशी-

लेश्याके द्वारा–पुलाकके पीत पद्म शुक्ल ये तीन लेश्याएं होती हैं। वकुश और प्रतिसेवना कुशीलके छहों लेश्याएं होती हैं। कषायकुशील और परिहारविशुद्धिवालेके कापोत पीत पद्म और शुक्ल ये चारों लेश्याएं होती हैं। सूक्ष्मसांपराय निर्ग्रंथ और स्नातकके एक शुक्ल ही लेश्या होती है। मोक्षरूपी पर्वतके स्वामीपनेको प्राप्त हुए अयोगकेवली लेश्या रहित होते हैं अर्थात् उनके कोई लेश्या नहीं होती। उपपादके द्वारा–पुलाक मुनिका उत्कृष्ट उपपाद अठारह सागरकी उत्कृष्ट आयुवाले देवोंमें सहस्रार स्वर्गतक होता है। भावार्थ– पुलाक मुनि शरीर छोडकर अधिकसे अधिक सहस्रार स्वर्गतक उत्पन्न हो सकता है। वकुश और प्रतिसेवना कुशील मुनि बाईस सागरकी आयु पाकर आरण और अच्युत स्वर्गतक उत्पन्न हो सकते हैं। कषाय कुशील और निर्ग्रंथ जातिके मुनि तेतीस सागरकी आयु पाकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हो सकते हैं। इन सबका जघन्य उपपाद दो सागरकी आयु लिये हुए सौधर्म स्वर्ग है अर्थात् ये मुनि कमसे कम दो सागरकी आयु पाकर सौधर्म स्वर्गमें तो उत्पन्न होते ही हैं। स्नातक मुक्त ही होता है। स्थानके द्वारा–कषायोंके निमित्तसे संयमके असंख्यात स्थान होते हैं उनमें से सबसे जघन्य लब्धिस्थान पुलाक और कषाय कुशीलके होते हैं वे दोनों ही असंख्यात स्थानतक तो साथ साथ रहते हैं परंतु फिर पुलाक अलग हो जाता है उसके बाद कषाय कुशील असंख्यात स्थानतक अकेला ही जाता है। उसके बाद कषायकुशील, प्रतिसेवना कु-

लयोस्तौ युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छतः, ततः पुलाको व्युच्छिद्यते । कषायकुशीलस्ततोऽसंख्येयानि गच्छत्येकाकी ततः कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलवकुशा युगपदसंख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति, ततो वकुशो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीलो व्युच्छिद्यते, ततोऽप्यसंख्येयानि स्थानानि गत्वा कषायकुशीलो व्युच्छिद्यते, अत उदूर्ध्वमकषायस्थानानि निर्ग्रन्थः प्रतिपद्यते, सोऽसंख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते, अत उदूर्ध्वमेकस्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोतीत्येषां संयमलब्धिरनन्तगुणा भवतीति । अथ परीषहजयप्रकरणं प्रस्तौति ।

संयतेन तपस्विना दर्शनचारित्ररक्षणार्थं परिषोढव्याः परीषहाः । उक्तं हि—

परिषोढव्या नित्यं दर्शनचारित्ररक्षणे निरतैः । संयमतपोविशेषास्तदेकदेशाः परीषहाख्याः स्युः ॥

शील और वकुश असंख्यात स्थानतक साथ साथ जाते हैं फिर वकुश वहीं रह जाता है उसके वाद असंख्यात स्थानतक जाकर प्रतिसेवना कुशील ठहर जाता है उससे आगे भी असंख्यात स्थान जाकर कषाय कुशील रह जाता है। इसके वाद अकषाय स्थान हैं उन्हें निर्ग्रंथ प्राप्त करता है। वह भी असंख्यात स्थान जाकर अलग हो जाता है उसके वाद एक स्थान ऊपर जाकर स्नातक मुक्त होता है। इन सबके उत्तरोत्तर संयमकी प्राप्ति अनंतगुनी होती है।

इसप्रकार संयमका वर्णन किया।

अब आगे परीषहजय प्रकरणको कहते हैं—संयमी तपस्वीको सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की रक्षा करनेकेलिये परिषहोंको सहन करना चाहिए। लिखा भी है—परिषोढव्या इत्यादि। दर्शन और चारित्रकी रक्षा करनेके लिये तत्पर रहनेवाले मुनियोंको सदा परिषहोंका सहन करना चाहिये। क्योंकि ये परीषहें संयम और तप दोनोंका ही विशेषरूप हैं तथा उन्हीं दोनोंका एक देश हैं।

इसप्रकार शास्त्रोंमें लिखा है और इसलिये इस ग्रंथमें ये परिषहें संयम और तप दोनोंके

इत्युक्तत्वात्संयमतपसोर्मध्ये परीषहा उच्यन्ते । कर्मागमद्वाराणि संवृण्वंतो जैनेन्द्रान्मार्गान्मा च्योष्महीति पूर्वमेव परीषहान्विजयन्तो जितपरीषहाः संतस्तैरनभिभूयमानाः प्रधानसंवरमाश्रित्याप्रतिबंधेन क्षपकश्रेण्यारोहणसामर्थ्यं प्रतिपद्यन्ते । अभिन्नोत्साहाः सकलसांपरायिकप्रध्वंसनशक्तयो ज्ञानध्यानपरशुच्छिन्नमूलानि कर्माणि विधूय प्रस्फोटितपक्षरेणव इव पतत्रिण उद्र्ध्वं व्रजंतीत्येवमर्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानीति क्षुधादयो

मध्यमें कही गई हैं। जो साधु कर्मोंके आनेके मार्गको बंदकर देते हैं तथा " मैं श्रीजिनेंद्रदेव के कहे हुए मार्गसे कभी च्युत न होऊं " इसलिये जो पहलेसे ही परिषहोंको जीतते रहते हैं इसतरह परिषहोंको जीतकर जो कभी परिषहोंसे तिरस्कृत नहीं होते और मुख्य संवरका आश्रय लेकर विना किसी रुकावटके क्षपकश्रेणी चढनेकी सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। जिसप्रकार पक्षी अपने पंखोंपर लगी हुई धूलको झाडकर ऊपरको उड जाते हैं उसीप्रकार जिनका उत्साह सदा पूर्ण रहता है और जो समस्त सांपराय आस्रवको नाश करनेकी शक्ति रखते हैं ऐसे मुनिराज अपने ज्ञान और ध्यानरूपी कुल्हाडीसे जड काटकर कर्मोंको गिरा देते हैं—नष्ट कर डालते हैं और फिर मुक्त होकर ऊपरको गमन कर जाते हैं इसीके लिये (मुक्त होनेके लिए) परिषहोंका सहन करना आवश्यक है।

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, बध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन ये बाईस परिषहें कही जाती हैं। ये परिषहें बाह्य और अभ्यंतर द्रव्योंके परिणामोंसे प्रगट होती हैं तथा शरीर और मनको सबसे कठिन पीडा देती हैं इसलिये इनका विजय करनेके लिये विद्वान और मोक्षकी इच्छा करनेवाले संयमी तपस्वीको अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। वह प्रयत्न किस प्रकार करना चाहिए यही आगे बतलाते हैं—

द्वाविंशतिपरीषहाः । त एते बाह्याभ्यंतरद्रव्यपरिणामाः शारीरमानसप्रकृष्टपीडाहेतवस्तद्विजये विदुषा संयतेन तपरिवना मोक्षार्थिना प्रयत्नः कार्यः । त-
यथा–निवृत्तसंस्कारविशेषस्य शरीरमात्रोपकरणसन्तुष्टस्य तपःसंयमविक्षेपं परिहरतः कृतकारितानुमतसंकल्पितोद्दिष्टसंक्लिष्टक्रियागतप्रत्यादत्तपूर्वकर्मपश्चा-
त्कर्मदशविधदोषविप्रमुक्तैषणस्य देशकालजनपदव्यवस्थापेक्षस्यानशनाध्वरोगतपःस्वाध्यायश्रमवेलातिक्रमावमोदर्यासद्वेद्योदयादिभ्यो नानाऽऽहारेन्धनोप-
रमे जठरान्त्रदाहिनीमारुतांदोलिताऽग्निशिखेव समंताच्छरीरेन्द्रियहृदयसंक्षोभकरी क्षुदुत्पद्यते । तस्याः प्रतीकारं त्रिप्रकारमकाले संयमविरोधिभिर्वा
द्रव्यैः स्वयमकुर्वतोऽन्येन क्रियमाणमसेवमानस्यमनसा वाऽनभिसंदधतो दुस्तरेयं वेदना महांश्च कालो दीर्घमह इति विषादमनापद्यमानस्य त्वगस्थि-

जिन्होंने शरीरके विशेष संस्कार सब छोड दिये हैं, जो केवल शरीर मात्रको ही धर्मका उपकरण मानकर उसीसे संतुष्ट रहते हैं, जो तप और संयमके विघ्नोंको सब तरहसे दूर करते रहते हैं। कृत, कारित, अनुमत, संकल्पित, उद्दिष्ट, संक्लिष्ट, क्रियागत, प्रत्यादत्त, पूर्वकर्म, पश्चात्कर्म, इन दश प्रकारके दोषोंमेंसे कोई भी दोष लग जानेसे जो उसी समय आहारका त्याग कर देते हैं तथा जो देश काल और देशकी व्यवस्थाकी भी अपेक्षा रखते हैं उनके उपवास, मार्गका परिश्रम, रोगका परिश्रम, तपश्चरणका परिश्रम, स्वाध्यायका परिश्रम, आहारके समयका उल्लंघन हो जाना, अवमोदर्य अर्थात् कम भोजन करना, और असाता वेदनीय कर्मका उदय इन सब कारणोंके द्वारा अनेक आहाररूपी इंधनोंसे वंचित रह जानेपर (कितने ही दिनतक आहार न मिलनेपर) पेटकी आंतोंकी दाहिनी ओरकी वायुके आंदोलनसे बढी हुई अग्निकी शिखाके समान चारो ओरसे शरीर, इंद्रिय, और हृदयको क्षोभ उत्पन्न करनेवाली क्षुधा उत्पन्न होती है उस क्षुधाका प्रतीकार मन वचन काय तीनोंसे असमयमें संयमकी विराधना करनेवाले द्रव्योंसे न तो वे स्वयं करते हैं न करनेवाले अन्य किसीको करने देते हैं और न मनमें कभी भी उस क्षुधाका प्रतीकार करनेके लिए विचार करते हैं, "यह क्षुधाकी वेदना वा भूखका दुःख बडा ही कठिन है, समय बहुत बडा है और अभी दिन बहुत

सिरावितानमात्रकलेवरस्यापि सतः आवश्यकक्रियादिषु नित्योद्यतस्य क्षुद्वशप्राप्तानर्थचारकबंधस्थमनुष्यपंजरगततिर्यक्प्राणिनः क्षुदभ्यर्दितान्परतंत्रानपेक्षमाणस्य ज्ञानिनो धृत्यंभसा शमकुंभभारितेन क्षुदग्निं शमयतस्तत्कृतपीडां प्रत्यविगणनं क्षुज्जय इत्युच्यते ।

जलस्नानावगाहनपरिषेकत्यागिनः पतत्रिवदध्रुवासनावसथस्यातिलवणस्निग्धरूक्षविरुद्धाहारग्रैष्मातपपित्तज्वरानशनादिभिरुदीर्णां शरीरेन्द्रियोन्माथिनीं पिपासां प्रत्यनाद्रियमाणप्रतीकारमनसो निदाघे पटुतपनकिरणसंतापिनोऽप्यटव्यामासन्नेष्वपि ह्रदेष्वप्कायिकजीवपरिहारेच्छया जलमनाददानस्य सलिल

बाकी है" इसप्रकारका विषाद वा खेद भी कभी नहीं करते, शरीरमें केवल चमडा, हड्डी, और नसोंका जालमात्र रह जानेपर भी आवश्यक कार्योंमें सदा तत्पर रहते हैं। क्षुधाके कारण जिन्हें अनेक अनर्थ प्राप्त हुए हैं ऐसे जेलखाने वा हिरासतमें रोके हुए मनुष्य अथवा पिंजडोंमें पडे हुए पशु पक्षी आदि भूखसे पीडित रहनेवाले और परतंत्र रहनेवालोंके दुःखोंका सदा विचार करते रहते हैं ऐसे ज्ञानी मुनिराज शांत परिणामरूपी घडेमें भरे हुए धैर्यरूपी जलसें क्षुधारूपी अग्निको शांत करते रहते हैं और इस तरह उस क्षुधासे उत्पन्न हुई पीडाको बिल्कुल नहीं जानते उसको क्षुधाविजय अथवा क्षुधा परीषहका जीतना कहते हैं।

जो मुनिराज पानीसे स्नान करना, पानीमें अवगाहन करना, वा पानीका छिडकना आदि बातोंके त्यागी हैं, पक्षियोंके समान न तो जिनका कोई आसन ही निश्चित है और न कोई स्थान ही निश्चित है, भोजनमें अधिक लवण खा लेनेसे, चिकने रूखे अथवा और किसी तरहके विरुद्ध आहारका संयोग मिल जानेसे, वा गर्मी धूप पित्तज्वर उपवास आदि अनेक कारणोंके द्वारा जो शरीर और इंद्रियोंको अत्यंत त्रास देनेवाली प्यास लगती है उसके प्रतीकार करनेका विचार वे कभी मनमें भी नहीं लाते, गर्मीका समय है, सूर्यकी तेज किरणें जला रही हैं वनमें सरोवर भी पास है तो भी जलकायिक जीवोंके बचाव करनेकी इच्छासे कभी जल ग्रहण नहीं करते, जल सींचनेके विना मुरझाई हुई लताके समान मुरझाई हुई वा ग्लानि करने



सैकविवेकम्लानां लतामिव ग्लानिमुपगतां गात्रयष्टिमवगणय्य तपःपरिपालनपरस्य भिक्षाकालेऽपींगिताकारादिभिर्योग्यमपि पानं पातुं परमचोदयतः परमधैर्यकुंभधारितशीतलसुगन्धिप्रतिज्ञातोयेन विध्यापयतस्तृष्णाग्निशिखां संयमपरत्वं पिपासासहनमित्यवसीयते ।

परित्यक्तवाससः पक्षिवदनवधारिताऽऽलयस्य शरीरमात्राधिकरणस्य शिशिरवसंतजलदागमादिकालवशाद् वृक्षमूले पथि गुहादिषु पतितप्रालेयतुषारलवव्यतिकरशिशिरपवनाभ्याहतमूर्तेस्तत्प्रतिक्रियासमर्थद्रव्यान्तराग्न्यायनभिसंधानान्नारकदुःसहशीतवेदनाऽनुस्मरणात् तत्प्रतिचिकीर्षायां परमार्थविलोपभयाद्विद्यामंत्रौषधपर्णवल्कलत्वक्तृणाजिनादिसंबंधात् व्यावृत्तमनसः परकीयमिव देहं मन्यमानस्य धृतिविशेषप्रावरणस्य गर्भागारेषु । धूपप्रवेकपुष्पप्रकर-

योग्य बुरी दशाको प्राप्त हुई शरीररूपी लकडीको कुछ भी न गिनते हुए तपश्चरणके पालन करनेमें ही तत्पर रहते हैं, भिक्षा करनेके समय भी किसी इशारे वा आकारसे योग्य पानीको पीनेके लिये भी प्रेरणा नहीं करते और परम धैर्यरूपी घडेमें भरे हुए शीतल सुगंधित प्रतिज्ञारूपी जलसे जो प्यासरूपी अग्निकी शिखाको बुझाते हैं उनके संयममें तत्पर रहनेवाला पिपासा विजय अथवा पिपासा परिषहका सहन करना कहलाता है ।

जिन्होंने वस्त्रमात्रका त्याग करदिया है, पक्षियोंके समान जिनका कोई स्थान निश्चित नहीं है, जाडे गर्मी और वर्षाऋतुमें वृक्षके नीचे चौहटे तथा गुफा आदिकोंमें रहनेसे जाडेके दिनोंमे जो बहुतसा वर्फ वा ओस पडती है, तथा बहुतसे ओले बरसते हैं उनकी ठंडी वायुसे जिनका शरीर अत्यंत ठंडा हो रहा है उस ठंडकको दूर करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले अग्नि आदि अन्य द्रव्योंकी भरपूर अनिच्छा होनेसे नारकियोंकी शीत वेदनाके घोर दुःखोंका स्मरण करनेसे तथा उस ठंडकको दूर करनेका उपाय करनेमें परमार्थके विगडनेका भय होनेसे विद्या, मंत्र, औषध, पत्ते, छाल, चमडा, तृण आदि पदार्थोंके संबंधसे जिनका चित्त विल्कुल हट गया है, जो शरीरको विल्कुल दूसरा (आत्मासे भिन्न) मानते हैं, जिन्होंने एक प्रकारका अटल धैर्य रूपी वस्त्र ही ओढ रक्खा है, मुनि होनेके पहिले जो ऐसे भीतरी घरोंमे रहते थे जिनमें

प्ररूपितप्रदीपप्रभेषु वरांगनानवयौवनौष्णघनस्तननितंबभुजान्तरतर्जितशीतेषु निवासं सुरतसुखाकरमनुभूतमसारत्वावबोधादस्मरतो विषादविरहितस्य संयमपरिपालनं शीतक्षमेति भाष्यते ।

प्रचण्डपटीयसा भास्करकिरणसमूहेन सन्तापितशरीरस्य तृष्णानशनपित्तरोगघर्मश्रमप्रादुर्भूतौष्ण्यस्य खेदशोषदाहाऽभ्यर्दितस्य जलभवनजलावगाहनानुलेपपरिषेकार्द्रावनितलोत्पलदलकदलीपत्रोत्क्षेपमारुतजलतूलिकाचन्दनद्रवचन्द्रपादकमलकल्हारमुक्ताहारादिपूर्वानुभूतशीतलद्रव्यप्रार्थनाऽपेतचेतस

चारो ओर धूप जल रही थी, पुष्पोंके ढेर लग रहे थे, दीपकका प्रकाश हो रहा था और नव यौवन उत्तम स्त्रियोंके उष्ण स्तन नितंब और भुजाओंके मध्य भागमें रहनेसे शीत दूर ही से भाग रहा था ऐसे घरोंमें सुरतसुखका आनंद लेते हुए निवास करते थे परंतु अब उस अनुभूत सुखमें भी कुछ सार न होनेसे कभी उसका स्मरण तक नहीं करते हैं तथा इस प्रकारकी शीत वेदनाको सहन करते हुए भी कभी विषाद नहीं करते हैं और इस तरह संयमका परिपालन पूर्ण रीतिसे करते हैं उसको शीतविजय अथवा शीत परिषहका सहन करना कहते हैं।

अत्यंत उष्ण और बहुत तेज सूर्यकी तेज किरणोंसे जिनका शरीर सब संतप्त हो गया है, प्यास, उपवास, पित्त, रोग, धूप, परिश्रम आदि कारणोंसे जिनके शरीरमें उष्णता प्रगट हो रही है जो खेद शोष और दाहसे मार्दित हो रहे हैं, मुनि होनेके पहिले जो जलभवनमें रहते थे, जलमें अवगाहन करते थे, शरीरपर ठंडा लेप लगाते थे, शरीरको गुलाबजल आदिसे छिडकते थे, जमीनपर छिडकावकर बैठते थे, कमलोंके दल, केलोंके पत्ते बिछाते थे, ऊपरसे वायु झलते थे, जलकी बावडीमें क्रीडा करते थे, चंदनका लेप करते थे, चंद्रमाकी चांदनीमें बैठते थे, कमल कमोदनी, और मोतियोंके हार पहिनते थे, इत्यादि बहुतसे शीतल पदार्थोंको काममें लाते थे परंतु अब भोगे हुए पदार्थोंसे भी जिन्होंने अपना चित्त बिल्कुल हटा लिया है, जो सदा यही विचार करते रहते हैं कि मैंने परवश होकर अनेकबार अत्यंत तीव्र उष्णवेदनाएं सहन

उष्णवेदनातितीव्रा बहुकृत्वः परवशादवाप्ता इदं पुनस्तपो मम कर्मक्षयकारणमिति तद्विरोधिनीं क्रियां प्रत्यनादराच्चारित्ररक्षणमुष्णसहनमिति समाम्नायते ।

प्रत्याख्यातशरीराच्छादनस्य क्वचिदप्रतिबद्धचेतसः परकृतायतनगुहागह्वरादिषु रात्रौ दिवा वा दंशमशकमक्षिकापिशुकपुत्तिकामत्कुणकीटपिपीलिका-वृश्चिकादिभिस्तीक्ष्णपातैर्भक्ष्यमाणस्यातितीव्रवेदनोत्पादकैरव्यथितमनसः स्वकर्मविपाकमनुचिन्तयतो विद्यामंत्रौषधादिभिस्तन्निवृत्तिं प्रति निरुत्सुकस्याऽऽश-रीरपतनादपि निश्चितात्मनः परबलप्रमर्दनं प्रति वर्त्तमानस्य मदांधगंधसिंधुरस्य रिपुजनप्रेरितविविधशस्त्रप्रतिघातादपराङ्मुखस्य निष्प्रत्यूहविजयोपलंभनं-

कीं परंतु अब स्वयं इस वेदनाको सहन करना तो मेरा तपश्चरण है जो कि कर्मोंके नाश करने-का कारण है इसी लिये जो उष्णताको दूर करनेवाली क्रियाओंके प्रति कभी आदर भाव नहीं करते और इस तरह अपने चारित्रकी रक्षा पूर्ण रीतिसे करते हैं इसको उष्णविजय अथवा उष्ण परिषहको जीतना वा सहन करना कहते हैं ।

जिन्होंने सब तरहके शरीरके आच्छादनोंको त्याग करदिया है, जिनका हृदय किसी एक जगह बंधा हुआ नहीं है, दूसरोंके बनाये हुए वसतिका, गुफा, कोटर, आदि स्थानोंमे रह-नेसे रात्रि वा दिनमें डांस, मच्छर, मक्खी, पिस्सू, मधुमक्खी, खटमल, कीडे, चींटी और विच्छू आदि तीक्ष्ण जानवर जिन्हें काट रहे हैं और अत्यंत तीव्र वेदना दे रहे हैं तथापि जि-नका हृदय कभी व्यथित वा खिन्न नहीं होता, जो सदा अपने कर्मोंके उदयका चिंतवन करते रहते हैं, विद्या मंत्र औषधि आदिके द्वारा उन जानवरोंको जो कभी दूर करनेकी इच्छा नहीं करते, शरीरका नाश होने तक भी जो अपने आत्मामें ही निश्चल रहते हैं जिस प्रकार जो दू-सरेके बलको मर्दन करनेके लिये (चूर करनेकेलिये) तैयार है जिसकी सेनामें मदोन्मत्त गंधसिं-धुर नामके हाथी हैं और जो शत्रुओंके द्वारा चलाये हुए अनेक तरहके शस्त्रोंसे भी कभी विमुख नहीं होता ऐसे किसी राजाका विजय निर्विघ्न होता है उसी प्रकार जो कर्मरूपी शत्रुओंकी से-नाका पराभव करनेके लिये प्रयत्न करना दंशमशकबाधासहन अथवा दंशमशक परीषहका

मिव कर्म्मारातिपृतनापराभवं प्रति प्रयतनं दंशमशकादिबाधासहनमप्रतीकारमित्याख्यायते । दंशमशकमात्रग्रहणमुपलक्षणार्थं, तेन दंशमशकादिपरितापकारणस्य सर्वस्यैवेदमुपलक्षणं, यथा काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामिति ।

गुप्तिसमित्यविरोधपरिग्रहनिवृत्तिपरिपूर्णब्रह्मचर्यमप्रार्थितमोक्षसाधनं चारित्रानुष्ठानं यथाजातरूपमसंस्कृतमविकारं मिथ्यादर्शनाविष्टविद्विष्टं परममांगल्यं नाग्न्यमभ्युपगतस्य स्त्रीरूपाणि नित्याशुचिवीभत्सकुणपभावेन पश्यतो वैराग्यभावनावरुद्धमनोविक्रियस्यासंभावितमनुष्यत्वस्य नाग्न्यदोषासंस्पर्शात्परीषह-

जीतना कहलाता है। यहांपर दंशमशकका ग्रहण उपलक्षणसे किया है जैसे 'कौवेसे दहीकी रक्षा करना' यह उपलक्षण है इसका अभिप्राय यह है कि कौवेसे तथा कुत्ता विल्ली आदि सबसे दहीकी रक्षा करना उसी प्रकार डांस मच्छरकी परीषह सहन करनेका अभिप्राय डांस, मच्छर विच्छू मक्खी आदि सभी जानवरोंकी परीषह सहन करना है।

जो गुप्ति समितियोंका कभी विरोध नहीं करता, परिग्रहका बिल्कुल त्याग कर देता है और ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है, विना प्रार्थना किये ही जो मोक्षका साधन है, चारित्रका अनुष्ठान करनेवाला है, जिसका स्वरूप पैदा हुएके समान स्वाभाविक है, विना संस्कार किया हुआ और विकार रहित है, मिथ्यादर्शनसे जकडे हुए लोगोंका विरोधी है और परम मंगलरूप है ऐसे नाग्न्यको (नग्न अवस्थाको) जो धारण करते हैं जो स्त्रियोंके स्वरूपको सदा अपवित्र, वीभत्स और घृणित भावसे देखते हैं वैराग्य भावनाओंके द्वारा जिनके मनके विकार सब रुक गये हैं जो अपनी मनुष्य पर्यायका कभी विचार नहीं करते केवल आत्मामें ही लीन रहते हैं उनके नग्न रहनेसे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका स्पर्श न होनेसे नग्न परीषहके विजय होने की सिद्धि होती है अर्थात् नग्न परिषहका विजय करना वा सहन करना कहलाता है। इसीलिए नग्न अवस्था धारण करना उत्तमसे उत्तम कल्याण अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिका कारण कहा जाता है। जो लोग नग्न अवस्था धारण नहीं कर सकते वे मनके विकारोंको रोक नहीं सकते

जयसिद्धिरिति जातरूपधारणमुत्तमश्रेयःप्राप्तिकारणमित्युच्यते । इतरे पुनर्मनोविक्रियां निरोद्धुमसमर्थास्तत्पूर्वकामंगविकृतिं, निगूहितुकामाः कौपीनफलकचीवराद्यावरणमातिष्ठन्तेऽङ्गसंवरणार्थमेव, तन्न कर्मसंवरणकारणं ।

संयतस्य क्षुधाद्याऽऽबाधासंयमपरिरक्षणेंद्रियदुर्जयत्वव्रतपरिपालनभारगौरवसर्वदाऽप्रमत्तत्वदेशभाषांतरानभिज्ञत्वविषमचपलसत्वप्रचुरभीमदुर्गनियतैकविहारत्वादिभिररतिं प्रादुष्यन्ती [२] धृतिविशेषान्निवारयत. संयमे रतिभावनाद्विषयसुखरतिमतिविषमाहारसेवेव विपाककटुकेति चिन्तयतोऽरतिपरीषहबाधाऽभावादरतिपरीषहजय इति निश्चीयते ।

एकान्ते भवनारामादिप्रदेशे रागद्वेषयौवनदर्परूपमदविभ्रमोन्मादमद्यपानाऽऽवेशादिभिः प्रमदासु बाधमानासु तदक्षिवक्त्रभ्रूविकारशृंगाराकारविहार-

इसीलिये उन विकारोंके कारण उत्पन्न हुए शरीरके विकारोंको छिपानेकी इच्छासे शरीरको ढकनेके लिए कोपीन, लंगोटी, कपडा आदि शरीर ढकनेके वस्त्रोंको ग्रहण करते हैं। परंतु उनकी इस क्रियासे आते हुए कर्म कभी नहीं रुक सकते।

जो मुनि भूख प्यास आदिकी बाधायें उत्पन्न होना, संयमकी रक्षा करना, इंद्रियोंका दुर्जयपना, व्रतोंके पालन करनेके भारसे गौरव धारण करना, सदा अप्रमत्त वा प्रमाद रहित रहना, अनेक देशोंकी भाषाओंको न जानना, विषम तथा चंचल प्राणियोंका तथा अत्यंत भयानक पदार्थोंका संसर्ग होना और दुर्गम एक क्षेत्रमें नियमरूपसे विहार करना आदि कारणोंके द्वारा जो अरति उत्पन्न होती है उसे विशेष धैर्यसे निवारण करते हैं और जो संयममें प्रेमरूप भावना होनेके कारण विषयसुखसे उत्पन्न हुई रतिको अत्यंत विषम आहार ग्रहण करनेके समान फल देनेके समय अत्यंत कडवी अथवा दुःखदायक समझते हैं उनके अरति परिषहकी बाधा कभी नहीं हो सकती इसीलिये उनके अरति परिषहका जीतना अथवा सहन करना कहलाता है ॥ ७ ॥

किसी वसतिका अथवा वगीचा आदि एकांत स्थानमें रागसे, द्वेषसे, यौवनके दर्पसे, रूप

हावविलासहासलीलाविजृंभितकटाक्षविक्षेपसुकुमारस्निग्धमृदुपीनोन्नतस्तनकलशनितान्तताम्राधरपृथुजघनरूपगुणाभरणगन्धवस्त्रमाल्यादीन्प्रत्यनगृहीतमनो-
विप्लुतेर्दर्शनाभिलाषनिरुत्सुकस्य स्निग्धमृदुविशदसुकुमाराभिधानतंत्रीवंशमिश्रमधुरगीतश्रवणनिवृत्तादरश्रोत्रस्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियहृदयविकारस्य ललित-
स्मितमृदुकथितसविकारवीक्षणप्रहसनमदमंथरगमनमन्मथशरव्यापारविफलीकरणचरणस्य संसारार्णवव्यसनपातालरौद्रदु:खागाधावर्त्तकुटिलाध्यायिनः स्त्रै-
णानर्थनिवृत्तिः स्त्रीपरीषहजय इति कथ्यते । अन्यवादिपरिकल्पिता देवताविशेषा ब्रह्मादयस्तिलोत्तमादिदेवगणिकारूपसंपद्दर्शनलोललोचनविकाराः और-

के मदसे, अथवा विभ्रम उन्माद और मद्यपान आदिके आवेशसे अनेक स्त्रियां आकर सतावें तो उससमय भी उन स्त्रियोंके, नेत्र टेडी भोओंके विकार, शृंगार, आकार, विहार, हाव, भाव, विलास, हास, लीला, पूर्वके फेंके हुए कटाक्ष, सुकुमार कोमल चिकने और बडे उठे हुए स्तन-रूपीकलश, अत्यंत लाल अधर, बडे बडे जघन, रूप, गुण, आभरण, गंध वस्त्र माला आदेसे भी जिनके मनमें कभी विकार प्रगट नहीं होता, जो उनके देखनेकी भी कभी इच्छा नहीं करते, स्निग्ध कोमल विशद और सुकुमार नामकी वीणाओंकी आवाजमें मिले हुए मधुर गीतोंके सुननेसे भी जो अपनें कानोंको विल्कुल दूर हटा लेते हैं, जो कछुएके शरीरके समान इंद्रिय और हृदयके विकारोंको संकुचित कर लेते हैं, मनोहर हास्य, मधुर भाषण, साविकार वीक्षण, हंसी ठट्ठा, मदोन्मत्त होकर धीरे धीरे गमन करना, और कामदेवके वाणोंके व्यापार आदि सबको निष्फल करनेवाला जिनका चारित्र है, और जो सदा यही विचार किया करते हैं कि यह संसार महासागर है, संकटरूप पाताल और सब नारकीय रौद्र दुःख स्वरूप अगाध भ्रमणों के द्वारा कुटिल है इसप्रकारका विचार करते हुए जो स्त्रियोंके अनर्थोंसे अलग रहते हैं उनके स्त्रीपरिषहजय अर्थात् स्त्रीपरिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है । अन्य वादियों-के कल्पना किए हुए ब्रह्मा आदि विशेष देवताओंके भी चंचल नेत्रोंमें तिलोत्तमा आदि देव

रीषहपकाशोद्धर्तुमात्मानं समर्थाः ।

दीर्घकालाऽभ्यस्तगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगतबंधमोक्षपदार्थतत्त्वस्य कषायनिग्रहपरस्य भावनार्पितमनसः संयमायतनाधिभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेर्गुरुणा-ऽभ्यनुज्ञातस्य नानाजनपदव्याहारव्यवहाराभिज्ञस्य ग्राम एकरात्रं नगरे पंचरात्रं प्रकर्षेणावस्थातव्यमित्येवं यातस्य वायोरिव निःसंगतामुपगतस्य देश-कालप्रमाणोपेतमध्वगमनमनुभवतः वद्धेद्धक्षमस्य भीमाटवीप्रदेशेषु निर्भयत्वात्सिंहस्येव सहायकृत्यमनपेक्षमाणस्य परुषशर्कराकंटकादिव्यधनजातपादखे-दस्यापि सतः पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमस्मरतः सम्यक् चर्यादोषं परिहरतः चर्यापरीषहजयो वेदितव्यः ।

गणिकाओंकी रूप संपत्ति देखकर विकार उत्पन्न हो आया था और वे स्त्रीपरिषह रूपी कीचडसे अपने आत्माका उद्धार नहीं कर सके थे ॥ ८ ॥

जिन्होंने गुरुकुलमें (आचार्यके संघमें) बहुत दिनतक रहकर ब्रह्मचर्यका अभ्यास किया है, जो बंध मोक्ष आदि पदार्थों और तत्त्वोंको अच्छीतरह जानते हैं, कषायोंके निग्रह करनेमें सदा तत्पर रहते हैं, जिनका मन सदा भावनाओंमें ही लगा रहता है, जो संयम पालन करनेकेलिये और तीर्थक्षेत्र आदि धर्मायतनोंकी भक्ति करनेके लिये अन्य देशोंमें भी विहार करते हैं, अन्य देशोंमें जानेके लिये जिन्होंने गुरुसे आज्ञा प्राप्त कर ली है, जो अनेक देशोंके आहार व्यवहारको अच्छीतरहसे जानते हैं, " अधिकसे अधिक गांवमें एक रात रहेंगे और नगरमें पांच रात रहेंगे " यही समझकर जो गमन करते हैं, जो वायुके समान परिग्रह रहित हैं, देश कालके प्रमाणके अनुसार प्राप्त हुए मार्गके गमनका जिन्हें पूर्ण अनुभव है, जो क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ हैं, भयानक वनोंमें भी सिंहके समान निर्भय होकर गमन करते हैं तथा किसी तरहकी भी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते, कठिन बालू कांटे आदिके द्वारा पैर फट जानेसे जिनके पैरोंमें खेद हो रहा है तो भी पहिलेके रथ घोडा आदि सवारियोंपर किये हुए गमनको कभी स्मरणतक नहीं करते, इसप्रकार जो चर्याके (चलनेके) दोषोंको अच्छीतरह दूर करते

श्मशानोद्यानशून्यायतनगिरिगुहागह्वरादिष्वनभ्यस्तपूर्वेषु निदितसंयमक्रियस्य धैर्यसहायस्योत्साहवतो निषद्यां विदधतः प्रादुर्भूतोपसर्गोग्ररोगविकारस्यापि ततस्तदविदेशादविचलतो मंत्रविद्यादिलक्षणप्रतीकारानपेक्षमाणस्य क्षुद्रजन्तुप्रायविषमदेशाश्रयात्काष्ठोपलनिश्चलस्यानुभूतमृदुसंस्तरणादिस्पर्शसुखस्य मनागप्यस्मरतः प्राणिपीडापरिहारोद्यतस्य ज्ञानध्यानभावनाधीनधियः संकल्पितवीरासनोत्कुटिकासनादिस्थिरासनदोषजयान्निषद्याविजयोऽवगम्यते ।

स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिखेदितस्य खरविषमप्रचुरशर्कराकपालसंकटातिशीतोष्णेषु मौहूर्तिकीं निद्रामनुभवतो यथाऽऽकृतैकपार्श्वदंडायतादिशायिनः सं-

हैं उनके चर्यापरिषहजय अथवा चर्या परिषहको जीतना वा सहन करना कहलाता है ॥ ९ ॥

जो श्मशान, उद्यान, सूना मकान, पर्वतकी गुफा, और कोटर आदि ऐसे स्थानोंमें जाकर विराजमान होते हैं जहां कभी भी पहिले विराजमान न हुए हों, जो संयमकी सब क्रियाएं जानते हैं, धैर्य ही जिनका सहायक है जो बडे उत्साही हैं, उपसर्ग और उग्र रोगोंके विकार उत्पन्न होने पर भी उस स्थानसे कभी चलायमान नहीं होते, मंत्र विद्या आदि कारणोंके द्वारा जो कभी उसका प्रतिकार नहीं चाहते, अनेक छोटे छोटे जंतुओंके होनेसे तथा विषम (ऊंचा नीचा) स्थान होनेसे जो लकडी और पत्थरके समान निश्चल रहते हैं, पहिले अनुभव किये हुए कोमल बिछोने आदिके स्पर्शके सुखको जो कभी मन तकमें नहीं लाते, सदा प्राणियोंकी पीडा दूर करनेके लिए ही तत्पर रहते हैं, जिनकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानकी भावनाके ही आधीन रहती है, और जो प्रतिज्ञा किए हुए वीरासन उत्कुटिकासन आदिमें सदा तल्लीन रहते है ऐसे मुनियोंके आसनके दोषोंका विजय होनेसे निषद्यापरिषहसहन अथवा निषद्यापरिषहका जीतना कहते हैं ॥ १० ॥

जो स्वाध्याय, ध्यान, और मार्गके परिश्रमसे खेदखिन्न हैं, कठिन, ऊंची नीची, बहुतसी रेतीवाली जिसमें बहुतसे कपाल वा टुकडे पडे हुए हैं जो अत्यंत शीत वा अत्यंत उष्ण है ऐसी भूमिके ऊपर जो मुहूर्तभर निद्राका अनुभव करते हैं, सीधे लेटकर वा किसी एक कर्वटसे लेट

जातबाधाभि शेषस्य संयमार्थमस्पन्दमानस्यानुतिष्ठतो व्यन्तरादिभिर्वा वित्रास्यमानस्य पलायनं प्रति निरुत्सुकस्य मरणभयनिर्विशंकस्य निपतितदारुवद् व्य-पगतासुवच्च परिवर्तमानस्य द्वीपिशार्दूलमहोरगादिदुष्टसत्वपरिचरितोऽयं प्रदेशोऽचिरादतो निर्गमनं श्रेयः कदा नु रात्रिर्विरमतीति विषादमनाददानस्य सुखप्राप्तावप्यपरितुष्यतः पूर्वानुभूतनवनीतवन्मृदुशयनमननुस्मरतः सम्यगागमोदितशयनादप्रच्यवतः शय्यासहनमिति तत्प्रत्येतव्यं ।

तीव्रमोहाऽऽविष्टमिथ्यादृष्टचनार्यम्लेच्छखलपापाचारमत्तोद्दृप्तशंकितप्रयुक्त 'मा' शब्दपरुषावज्ञानाक्रोशादीन्कर्णमूले गतान् हृदयशूलोद्भावकान् क्रोध-

कर दंडेके समान निद्रा लेते हैं, विशेष बाधा वा उपद्रव उपस्थित होनेपर भी संयम पालन करनेके लिए जो किसी तरहकी हलन चलन क्रिया नहीं करते, व्यंतरादि देव अनेक तरहकी पीडा देते हैं तथापि जो भागनेकी विल्कुल इच्छा नहीं करते, जिन्हें मरनेका डर विल्कुल नही हैं, पडी हुई लकडीके समान अथवा मरे हुए मुरदेके समान जो अपना शरीर निश्चल रखते हैं "यह स्थान गेंडा, सिंह, सर्प, अजगर आदि दुष्ट जीवोंसे भरा हुआ है इसालिये यहांसे शीघ्र ही दूसरी जगह चला जाना अच्छा है यह रात कब पूरी होगी" इत्यादि विषाद कभी नहीं करते, सुख मिलनेपर भी जो हर्ष नहीं मानते, पहिले अनुभव की हुई मक्खनके समान कोमल शय्याका जो स्मरण नहीं करते और जो आगमके अनुसार कहे हुए उत्तम निर्दोष शयन करनेसे कभी अलग नहीं होते ऐसे मुनियोंके शय्या सहन अथवा शय्या परिषहका जीतना कहलाता है ॥ ११ ॥

जो कानके पास जाते ही हृदयमें शूल उत्पन्न करदें, और क्रोधरूपी अग्निकी शिखाको खूब बढा दें ऐसे तीव्र मोहनीय कर्मके उदयसे घिरे हुए मिथ्यादृष्टि, अनार्य, म्लेच्छ, दुष्ट पापाचारी मदोन्मत्त और महाअभिमानी और सशंकित जीवोंके कठोर वचन, धिकारके वचन और निंदा करनेवाले तथा गाली आदि बुरे वचनोंको तथा उनके बुरे अभिप्रायोंको सुनते हुए भी जिनका मन सदा दृढ रहता है, यद्यपि बुरे वचन कहनेवालेको भस्म करनेकी सामर्थ्य रखते हैं तथापि पर-

ज्वरन्तरिक्षाप्रवर्द्धनकराणभिप्रायान् शृण्वतोऽपि दृढमनसो दुर्भाषिणो भस्मसात्कर्तुमपि समर्थस्य परमार्थावहितचेतसः शब्दमात्रश्राविणस्तदर्थान्वीक्षणविनिवृत्तव्यापारस्य स्वकृताशुभकर्मोदयो ममैष यतोऽमीषां मां प्रति द्वेष इत्येवमादिभिरुपायैरनिष्टवचनसहनमाक्रोशपरीषहजय इति निर्णीयते ।

ग्रामोद्याननगराटवीपुरेषु नक्तं दिवा चैकाकिनो निरावरणमूर्तेः समन्तात्पर्यटद्भिश्चौरारक्षकम्लेच्छचारपुरुषवधिरपूर्वोपकारिद्विषत्परलिंगिभिराहितक्रोधैस्ताडनाकर्षणबन्धनशस्त्राभिघातादिभिर्मार्यमाणस्यानुत्पन्नवैरस्यावश्यं प्रपातुकमेवेदं शरीरं कुशलद्वारेणानेनापनीयते न मम व्रतशीलभावनाभूषणमिति भाव-

मार्थकी ओर चित्त लगे रहनेसे उस बुरे वचन कहनेवालेकी ओर वा उसके अभिप्रायोंकी ओर कभी आंख उठाकर देखते तक नहीं, जो सदा यही विचार करते हैं कि " यह मेरे ही अशुभ कर्मोंका उदय है जो ये लोग मुझसे द्वेष करते हैं " इस प्रकारके उपायोंसे अनिष्ट वचनोंको सहन करना आक्रोश परिषह जय अथवा आक्रोश परिषहको जीतना वा सहन करना कहते हैं ॥ १२ ॥

जो गांव, उद्यान, नगर, वन, और पुरमें रात दिन अकेले रहते हैं तथा जिनका शरीर बिलकुल आवरण रहित हैं उन मुनियोंको चारों ओर फिरते हुए चोर, लुटेरे, म्लेच्छ, जासूस, वहिरे, जिनका पहिले कुछ अपकार हो चुका है और स्वाभाविक द्वेष करनेवाले अन्यमती लोग क्रोधित होकर ताडना करते हैं, खींचते हैं, बांधते हैं और शस्त्रोंकी चोटसे मारते हैं तथापि जिन्हें वैर उत्पन्न नहीं होता, वे शुद्ध भावोंसे यही विचार करते हैं कि " यह शरीर अवश्य ही नष्ट होनेवाला है यह कुशलतापूर्वक इसे नष्ट कर रहा है कुछ मेरे व्रतशील और भावनाओंका नाश तो नहीं करता इसप्रकार जिनके भाव शुद्ध रहते हैं, शरीरको जलादेने पर भी जो सुगंध छोडते हुए चन्दनके समान अपने परिणामोंको सदा निर्मल रखते हैं, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेमें ही तत्पर रहते हैं, जिनकी बुद्धि सदा दृढ रहती है और जिनके क्षमा रूपी औषधि ही सबसे बडा बल रहता है और जो मारनेवालेको भी मित्रके समान ही देखते

शुद्धस्य दह्यमानस्यापि सतः सुगन्धमुत्सृजतश्चन्दनस्येव शुभपरिणामस्य स्वकर्मनिर्जरामभिसंदधानस्य क्षमतेः क्षमौषधिविलस्य मारकेषु सुहृदिस्ववामर्षापोहभावनं बधमर्षणमित्याम्नायते ।

क्षुदध्वपरिश्रमतपोरोगादिभिरप्रच्यवितवीर्यस्य शुष्कपादपस्येव निरार्द्रमूर्तेरुन्नतास्थिस्नायुजालस्य निम्नाक्षपुटपरिशुष्काधरक्षामपांडुकपोलस्य चर्मवत्संकुचितांगोपांगत्वचः शिथिलजानुगुल्फकटिबाहुयंत्रस्य देशकालक्रमोपपन्नकल्पादायिनो वाचंयमस्य मौनिसमस्य वा शरीरसन्दर्शनमात्रव्यापारस्योर्जित-

हैं ऐसे मुनियोंके जो इर्षा द्वेष दूर करनेकी भावना रहती है उसे बधमर्षण अथवा वध परिषहका जीतना कहते हैं ॥ १३ ॥

क्षुधा, मार्गका परिश्रम, तप और रोगादिकके कारण भी जिनकी शक्ति कम नहीं हुई है, सूके वृक्षके समान जिनके शरीरमें आर्द्रता वा शिथिलता विल्कुल नहीं आई है परंतु जिनकी हड्डी और नसोंका समूह नवा भी नहीं है ज्योंका त्यों उन्नत रहता है, जिनके दोनों नेत्र नीचेकी ओर रहते हैं अधर सूके रहते हैं तथा कपोल दुवले और सफेद रहते हैं, चमडेके समान जिनके अंग और उपांगोंका चमडा संकुचित हो गया है, जंघाएं एडियां कमर और भुजाएं जिनकी शिथिल हो गई है, जो देश कालके क्रमके योग्य आहार ग्रहण करते हैं, जिन्होंने बोलना बंद कर दिया है अर्थात् मौन धारण कर लिया है, जो केवल शरीरको दिखाकर ही वापिस चले जाते हैं, जिनकी शक्ति बहुत बढी हुई है, जिनका चित्त सदा ज्ञानको बढानेमें ही लगा रहता है, प्राणोंका नाश होने पर भी जो वसातिका आहार और औषधियोंको दीन होकर, मुखकी आकृति विगाडकर अथवा शरीरकी किसी संज्ञासे इशारेसे कभी याचना नहीं करते, आहार लेनेके समय भी विजलीकी चमकके समान जो बहुत शीघ्र दिखाई देकर चले जाते हैं, जिसप्रकार रत्नके व्यापारियोंको बहुत दिनमें अच्छी मणियोंका दर्शन होता है इसी प्रकार जो अपने शरीरको दिखलाना भी उदारता समझते हैं, वंदना वा पडगाहन करनेवालेके

बलस्य प्रज्ञाऽऽपायितचेतसः प्राणात्ययेऽपि वसत्याहारभेषजानि दीनाभिधानमुखवैवर्ण्यांगसंज्ञादिभिरयाचमानस्य भिक्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवदुपलक्षितमूर्तेः बहुषु दिवसेषु रत्नवणिजो मणिसन्दर्शनमिव स्वशरीरप्रकाशमकृपणं मन्यमानस्य बन्दमानं प्रति स्वकराविकासनमिव पाणिपुटधारणमदीनमिति गणयतो याचनासहनमवबीयते । अयत्ने पुनः कालदोषाद्दीनानाथपाखंडिबहुले जगत्यमार्गैरनात्मवद्भिर्याचनमनुष्ठीयते ।

वायुवदसंगानेकदेशचारिणोऽप्रकाशितवीर्यस्याभ्युपगतैककालभोजनस्य सकृन्मूर्तिसन्दर्शितव्रतकालस्य 'देहि' इत्यसभ्यवाक्प्रयोगादुपरतस्यानुपात्तविग्रहप्रतिक्रियस्याद्येदं श्वइदमिति व्यपेतसकल्पस्यैकस्मिन् ग्रामे लब्धे सति ग्रामान्तरान्वेषणनिरुत्सुकस्य पाणिपुटमात्रपात्रस्य बहुषु दिवसेषु बहुषु च

यहां जो हाथोंको पसारकर करपत्र आहार करते हैं उसको भी वे अदीनभाव समझते हैं इसप्रकार याचना नहीं करना याचनासहन अथवा याचनापरिषहका जीतना कहलाता है । आजकल काल दोषसे दीन अनाथ और पाखंडी बहुतसे हो गये हैं और वे संसारमें मोक्षमार्गका स्वरूप और आत्माका स्वरूप न जाननेके कारण याचना करते हैं ॥ १४ ॥

जो वायुके समान विना किसीको साथ लिए अथवा विना किसी परिग्रहके अनेक देशोंमें विहार करते हैं, जो अपनी शक्ति कभी प्रकाशित नहीं करते, जिनके दिनमें एक ही बार भोजन करनेकी प्रतिज्ञा रहती है, आहारके समय किसीके घर जाकर एकबार शरीर दिखलाना (पडगाहन न करने पर लौट आना) ही जिनका व्रत रहता है, " दे दीजिए " इत्यादि असभ्य शब्दोंके प्रयोग करनेका (किसीसे मांगनेका) जिनके सर्वथा त्याग रहता है, जो शरीरकी कोई प्रतिक्रिया नहीं करते, " आज ऐसा है कल ऐसा होगा " इसप्रकारके संकल्पका जिनके सर्वथा त्याग रहता है, एक गांवमें आहार न मिलने पर भी जो दूसरे गांवमें ढूंढनेके लिए कभी नहीं जाते, जिनके पास केवल हाथ ही पात्र रहते हैं अन्य कुछ नहीं, बहुत दिनोंतक और बहुतसे घरोंमें आहार न मिलने पर भी जो अपने हृदयमें कभी संक्लेश परिणाम नहीं करते, " यह दाता नहीं है अमुक गांवमें अमुक मनुष्य दानशूर है बडा दानी है और

ष्वेहेषु भिक्षामनवाप्याप्यसंक्लिष्टचेतसो नाऽयं दाता तत्राऽन्यो दानशूरोऽतिधन्यो वदान्योऽस्तीति व्यपगतपरीक्षस्य लाभादप्यलाभो मे परं तप इति सन्तुष्टस्यालाभविजयोऽवसेयः ।

दुःखाधिकरणमशुचिभाजनं जीर्णवस्त्रवत्परिहेयं पित्तमारुतकफसन्निपातनिमित्तानेकामयवेदनाऽभ्यर्दितमन्यदीयमिव विग्रहं मन्यमानस्योपेक्षकत्वा-दाप्रक्षयुतेरिचकित्सान्यावृत्तचेष्टस्य शरीरयात्राप्रसिद्धये व्रणानुलेपनवद्युक्तमाहारमाचरतो विरुद्धाहारसेवावैरस्यवैषम्यजनितवातादिविकाररोगस्य युग-

अत्यंत धन्य मनुष्य है" इसप्रकारकी परीक्षा जो कभी नहीं करते, और जो "आहार मिल-नेकी अपेक्षा आहार न मिलना ही मेरे लिए परम तपश्चरण है" इसप्रकार मानते हुए आहार न मिलनेसे ही परम संतुष्ट रहते हैं ऐसे मुनियोंके अलाभ विजय अथवा अलाभ परीषहका जीतना कहलाता है ॥ १५ ॥

यह शरीर दुःखोंका आधार है, अपवित्रताका पात्र है, जीर्णवस्त्रके समान त्याग करदेने योग्य है, पित्त और कफके संयोगके कारण अनेक रोगोंकी वेदनासे कदर्थित है और आत्मासे विलकुल भिन्न है इसप्रकार जो शरीरके स्वरूपको मानते हैं, शरीरकी ओर उपेक्षा होनेसे जो उसके नाश होनेतक चिकित्सा (इलाज) करनेकी चेष्टा कभी नहीं करते, धर्मसाधन करनेके लिये शरीरका टिकना आवश्यक है इसीलिये जो घावपर लेप करनेके समान योग्य और शास्त्रानुसार आहार ग्रहण करते हैं, विरुद्ध आहार ग्रहण करनेके तथा नीरस और विषम आहार ग्रहण करनेसे वायु आदिके अनेक रोग जिनके हो गये हैं, एक साथ सैकडों व्याधियोंका प्रकोप होनेपर भी जो कभी उनके वश नहीं होते, जल्ल, औषधि प्राप्त आदि अनेक तपोविशेषसे उत्पन्न हुई ऋद्धियोंके संयोग होनेपर भी शरीरसे निस्पृह होनेके कारण जो कभी उन व्याधियोंके प्रतिकार करनेकी इच्छा नहीं करते "यह सब पाहिले किये हुए पाप कर्मोंका फल है इस उपायसे (इन रोगोंके कारण अर्थात् वे पाप कर्म अपना राग रूप फल देकर नष्ट हो जांयगे इसलिये)

यदनेकशतसंख्यान्याधिप्रकोपे सत्यऽपि तद्वशवर्तितां विजहतो जल्लौषधिप्राप्त्याद्यनेकतपोविशेषर्द्धियोगे सत्यपि शरीरनिःस्पृहत्वात्प्रतीकारानपेक्षिणः पूर्वकृतपापकर्मण: फलमिदमनेनोपायेनाऽनृणी भवामीति चिन्तयतो रोगसहनं सम्पद्यते।

यथाऽभिनिवृत्ताधिकरणशायिनः शुष्कतृणपरुषशर्कराभूमिकंटफलकशिलातलादिषु प्रासुकेष्वसंस्कृतेषु व्याधिमार्गगमनशीतोष्णजनितश्रमविनोदार्थं शय्यां निषद्यां वा भजमानस्य संस्कृतशुष्कतृणादिबाधितमूर्तेरुत्पन्नकंडूविकारस्य दुःखमनभिचिन्तयतस्तृणादिस्पर्शबाधाभिरवशीकृतता तृणस्पर्शसहनमवगन्तव्यं।

जलजन्तुपीडापरिहाराय स्नानप्रतिज्ञस्य स्वेदपंकदिग्धसर्वांगस्य बादरनिगोदप्रतिष्ठितजीवदयार्थं च शरीरसंस्कारविरमणार्थं च परित्यक्तोद्वर्तनस्य सि-

मैं उन कर्मोंके ऋणसे छूट जाऊंगा" इसप्रकार जो बार बार चिंतवन करते हैं उनके रोग सहन अथवा रोग परीषहका जीतना कहते हैं ॥ १६ ॥

जो स्वाभाविक प्राप्त हुए अधिकरण पर सोते वा बैठते हैं, प्रासुक और विना संस्कार किये हुए सूके तृण, कठिन पत्थरकी भूमि, कांटे और पत्थरके टुकड़े वाली शिलाभूमियोंपर व्याधि, (मार्गका चलना) और शीत उष्णसे उत्पन्न हुए परिश्रमको दूर करनेके लिये सोते हैं अथवा बैठते हैं विना संस्कार किये हुए तृणादिकोंसे जिनके शरीरपर अनेक तरहकी बाधाएं आरही हैं। खुजलीका विकार प्रगट हो रहा है तथापि जो उसके दुःखका कभी चिंतवन नहीं करते तथा तृण आदिके स्पर्शसे उत्पन्न हुई बाधाके जो कभी वश नहीं होते इसलिये उनके तृणस्पर्श सहन अथवा तृणस्पर्श परीषहका जीतना कहलाता है।

जलकाय और जलचर जीवोंकी पीडा दूर करनेके लिये जिनके स्नान न करनेकी प्रतिज्ञा है, पसीना और धूलिसे जिनका सब शरीर मलिन हो रहा है, बादर निगोद प्रतिष्ठित जीवोंकी दया पालन करनेकेलिये तथा शरीरका संस्कार दूर करनेकेलिये जिन्होंने उवटन आदि करना सब छोड दिया है, सीपरोग खुजली और दादसे जिनका सब शरीर भर रहा है, नाखून

ध्मकच्छुदद्रूदीर्णकायस्य नखरोमश्मश्रुकेशविकृतसहजवाह्यमलसम्पर्ककारणानेकत्वग्विकारस्य स्वागमलापचये परमलापचये वा प्राणिहितचेतसः संकल्पितसम्यग्ज्ञानचारित्रविमलसलिलप्रक्षालनेन कर्ममलपंकापनोदायैवोद्यतस्य पूर्वानुभूतस्नानानुलेपनादिस्मरणपराङ्मुखचित्तवृत्तेर्मलधारणमाख्यायते । केशलुंचने तत्संस्काराकरणे महान्खेदः संजायते तत्सहनमपि मलधारणेऽन्तर्भवतीति।

चिरोषितब्रह्मचर्यस्य महातपस्विनः स्वपरसमयनिश्चयज्ञस्य हितोपदेशपरस्य कथामार्गकुशलस्य बहुकृत्वः परवादिविजयिनः प्रणामभक्तिसंभ्रमाऽऽ-

रोम, दाढी मूछोंके बाल आदिके विकारोंसे उत्पन्न हुए तथा स्वाभाविक बाह्य मलका संबंध होनेसे जिनके शरीरके चमड़ेपर अनेक विकार हो गये हैं अपने शरीरका मल दूर करनेके लिये अथवा दूसरेका मल दूर करनेके समय जिनका हृदय सदा प्राणियोंके हित करनेमें ही लगा रहता है, कल्पना किये हुए सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी निर्मल जलसे धोकर कर्म मलरूपी कीचडको दूर करनेकेलिये जो सदा तत्पर रहते हैं और पहिले अनुभव किये हुए स्नान उवटन लेपनका स्मरण करनेसे जिनके चित्तकी वृत्ति सदा परान्मुख रहती है। भावार्थ—जो पहिले किये हुए स्नानादिका कभी स्मरण नहीं करते उन मुनियोंके मलधारण अथवा मलपरीषहका जीतना कहलाता है। केशोंका लोंच करने और उन बालोंका संस्कार कभी न करनेमें भी बड़ा भारी खेद होता है इसलिये उस खेदको सहन करना भी मल परीषहको जीतनेमें ही शामिल है ॥ १८ ॥

जो बहुत कालसे ब्रह्मचारी हैं, महा तपस्वी हैं, अपने मतके शास्त्र और परमतके शास्त्रोंका जिन्होंने खूब अच्छी तरह निर्णय वा निश्चय किया है, जो सदा हितोपदेश देनेमें तत्पर रहते हैं, प्रथमानुयोगकी कथाएं कहनेमें जो बहुत ही कुशल हैं, जिन्होंने कई बार परवादियोंका विजय किया है, "प्रणाम भक्ति, और शीघ्रताके साथ आसन देना आदि सत्कारके कार्य मेरे लिये कोई नहीं करता "इसप्रकारका चिंतवन जो कभी नहीं करते, मान अपमानमें जिनका

सनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोतीत्येवमचिन्तयतो मानापमानयोः समानमनस सत्कारपुरस्कारनिराकांक्षस्य श्रेयोध्यायिनः सत्कारपुरस्कारजयो वेदितव्यः। सत्कारः प्रशंसादिकः, पुरस्कारो नाम नन्दीश्वरादिपर्वयात्रात्मकक्रियारंभादिष्वग्रतः करणमामंत्रणं वा ।

अंगपूर्वप्रकीर्णकविशारदस्य कृत्स्नग्रन्थार्थधारिणोऽनुत्तरवादिनस्त्रिकालविषयार्थविदः शब्दन्यायाऽध्यात्मनिपुणस्य मम पुरस्तादितरे भास्करप्रभाभिभूतोद्योतवन्नितरामवभासत इति विज्ञानमदनिरासः प्रज्ञापरीषहजयः प्रत्येतव्यः ।

अज्ञोऽयं न किंचिदपि वेत्ति पशुसम इत्येवमाद्यधिक्षेपवचनं सहमानस्याध्ययनार्थग्रहणपराभिभवादिष्वनासक्तबुद्धेश्चिरप्रव्रजितस्य विविधतपोविशेषभारा-

चित्त सदा समान रहता है, जो सत्कार पुरस्कारकी कभी इच्छा नहीं करते और सबके कल्याणका ही सदा चिंतवन करते रहते हैं उन मुनियोंके सत्कार पुरस्कारजय अथवा सत्कार पुरस्कार परीषहका जीतना कहा जाता है। प्रशंसा आदि करना सत्कार कहलाता है और नंदीश्वर आदि पर्वके दिनोंमें अथवा रथयात्रा वा तीर्थयात्रा आदि क्रियाओंके प्रारंभमें सबसे आगे करना अथवा आमंत्रण देना पुरस्कार कहलाता है ॥ १९ ॥

जो अंग पूर्व और प्रकीर्णकोंमें अत्यंत निपुण हैं, समस्त ग्रंथोंके अर्थकी जिन्हें धारणा है कोई भी प्रतिवादी जिनके सामने उत्तर नहीं दे सकता, जो तीनों कालोंके समस्त विषयोंके पदार्थोंको जानते हैं, जो व्याकरण शास्त्र, न्याय शास्त्र, और अध्यात्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रोंमें निपुण हैं, " मेरे सामने अन्य सब वादी लोग सूर्यकी प्रभाके सामने तिरस्कृत हुए खद्योतके समान सदा प्रतीत होते रहते हैं" इसप्रकारके ज्ञानके अभिमानसे जो सदा अलग रहते हैं उनके प्रज्ञापरिषहजय अर्थात् प्रज्ञा परिषहका जीतना समझना चाहिए ॥ २० ॥

" यह मूर्ख है कुछ नहीं जानता, पशुके समान है" इत्यादि आक्षेपके वचनोंको जो सदा सहन करते रहते हैं, अध्ययन करनेके लिए दूसरेके द्वारा किए हुए तिरस्कार आदिमें भी जिनकी बुद्धि कभी आसक्त नहीं होती, जो बहुत दिनके दीक्षित हैं, अनेक तरहके विशेष विशेष

क्रातमूर्तेः सकलसामर्थ्याप्रमत्तस्य विनिवृत्तानिष्टमनोवाक्कायचेष्टस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यत इत्येवं मनस्यसन्दधतोऽज्ञानपरीषहजयोऽवगन्तव्यः ।

सयमिप्रधानस्य दुष्करतपोऽनुष्ठायिन परमवैराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदार्थतत्त्वस्यार्हदायतनसाधुधर्मपूजकस्य चिरन्तनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते महोपवासाद्यनुष्ठायिनां प्रातिहार्यविशेषा प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमिदमनर्थकेय प्रव्रज्या विफलं व्रतपालनमित्येवं मानसमनादधानस्य दर्शनविशुद्धियोगाददर्शनपरीषहसहनमवसातव्यं ।

एवं परीषहानसंकल्पितोपस्थितान् सहमानस्यासंक्लिष्टचेतसो रागादिपरिणामास्रवाभावान्महान् संवरो भवति । एते सर्वेपि परीषहा· कर्मोदयजनितास्तद्यथा—

तपश्चरणके भारसे जिनका शरीर आक्रांत हो रहा है, जो सब तरहकी सामर्थ्यमें अप्रमत्त हैं, "मैंने अनिष्ट मन वचन कायकी चेष्टाएं सब दूर कर दी हैं तथापि मुझे अवधिज्ञान मनःपर्यय ज्ञान आदि आतिशय ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती" इसप्रकारका विचार जो अपने मनमें कभी नहीं लाते, उनके अज्ञान परिषहका जीतना समझना चाहिये ॥ २१ ॥

जो संयमियोंमें प्रधान हैं अत्यंत कठिन कठिन तपश्चरण करनेवाले हैं, परम वैराग्यकी भावनासे जिनका हृदय अत्यंत शुद्ध है, जो समस्त पदार्थ और तत्त्वोंके स्वरूपको जानते हैं, अरहंत, अरहंतके आयतन, साधु और धर्मकी सदा पूजा करते रहते हैं "मैं बहुत दिनका दीक्षित हूं तथापि मुझे अबतक कोई ज्ञानका आतिशय प्राप्त नहीं हुआ है, महोपवास आदि तपश्चरण करनेवालोंको विशेष विशेष प्रातिहार्य प्रगट होते हैं यह बात केवल प्रलापमात्र है, यह दीक्षा लेना बिल्कुल व्यर्थ है, और व्रत पालन करना भी निष्फल है" इसप्रकार जो अपने मनमें कभी विचार नहीं करते इसलिये सम्यग्दर्शनकी शुद्धता होनेसे ऐसे मुनियोंके अदर्शन परिषह सहन अथवा अदर्शन परिषहका जीतना कहलाता है ॥ २२ ॥

इसप्रकार विना संकल्पके उपस्थित हुई परिषहोंको जो सदा सहन करते हैं और अपने

ज्ञानावरणे प्रज्ञाऽज्ञाने, दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ, चारित्रमोहे मानकषायोदये नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः, अरतिवेदयोररतिस्त्रीपरीषहौ, वेदनीये क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकचर्याशय्यावधरोगतृणस्पर्शमलाः ।

एकस्मिन् जीव एकस्मिन् काले एकादय परीषहा आ एकोनविंशतेर्युगपद्भवन्ति । तद्यथा–शीतोष्णपरीषहयोरेकतरः, शय्याचर्यानिषद्यानाचान्यतम एव भवति । श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञाप्रकर्षे सत्यवध्यभावापेक्षयाऽज्ञानोपपत्ते सहावस्थाविरोधो न भवति ।

मिथ्यादृग्सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टि संयता संयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतेषु सप्तसु गुणस्थानेषु सर्वे परीषहाः सन्ति । अदर्शनपरीषहं वि-

हृदयमें जो कभी संक्लेश परिणाम नहीं करते उनके रागादि परिणामोंके द्वारा होनेवाले कर्मास्रवका अभाव होनेसे महान् संवर होता है । ये सब परिषहें कर्मोंके उदयसे प्रगट होती हैं यही बात आगे दिखलाते हैं—ज्ञानावरण कर्मके उदयसे प्रज्ञा और अज्ञान परिषहें होती हैं, दर्शनमोहनीय कर्मके उदयसे अदर्शन परिषह होती है । अंतराय कर्मके उदयसे अलाभ परिषह होती है, चारित्रमोहनीय मान कषायके उदयसे नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार परिषह होती हैं, अरति कर्मके उदयसे अरति परीषह और वेद कर्मके उदयसे स्त्रीपरीषह होती है । वेदनीय कर्मके उदयसे क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, बध, रोग, तृणस्पर्श, और मल परीषहें होती हैं ।

एक ही जीवके एक ही समयमें एक साथ एकसे लेकर उनईस परीषह तक हो सकती हैं शीत उष्ण इन दो परीषहोंमेंसे कोई भी एक हो सकती है, शय्या चर्या निषद्या इन तीनोंमेंसे कोई भी एक हो सकती है (इसप्रकार तीन परीषह छूट सकती हैं) श्रुत ज्ञानकी अपेक्षा बुद्धिकी तीव्रता होनेसे प्रज्ञा परीषह और अवधिज्ञानके अभाव होनेकी अपेक्षासे अज्ञान परीषहकी उत्पत्ति होती है इसलिए इन दोनोंके एक साथ होनेमें कोई किसी तरहका विरोध नहीं आता।

मिथ्यादृष्टि सासादन सम्यग्दृष्टि सम्यक् मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत प्रमत्त

नाऽपूर्वकरण एकविंशतिपरीषहा भवन्ति । अरतिपरीषहमन्तरेण सवेदानिवृत्तौ विंशतिपरीषहा स्युः । अवेदानिवृत्तौ स्त्रीपरीषहे नष्टे एकोनविंशतिपरीषहा भवेयुः । तस्यैव मानकषायोदयक्षयान्नाग्न्यनिषद्याऽऽक्रोशयाचनासत्कारपुरस्कारा विनश्यन्ति । तेषु विनष्टेषु अनिवृत्तिसूक्ष्मसांपरायोपशान्तकषायक्षीणकषायेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चतुर्दश परीषहाः सन्ति । क्षीणकषाये प्रज्ञाऽज्ञानालाभा विनश्यन्ति । सयोगिभट्टारकस्य ध्यानानलनिर्दग्धघातिकर्मेन्धनस्यानन्ताप्रतिहतज्ञानादिचतुष्टयस्यान्तरायाभावान्निरन्तरमुपचीयमानशुभपुद्गलसन्ततेर्वेदनीयाख्यं कर्म विद्यमानमपि प्रक्षीणघातिसहायबलं स्वप्रयोजनोत्पादनं

संयत और अप्रमत्त संयत इन सातों गुणस्थानोंमें सब परीषहें होती हैं। अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थानमें अदर्शन परीषहको छोडकर शेष इकईस परीषहें होती हैं। नौवें गुणस्थानमें जहांतक वेदकी निवृत्ति नहीं होती वहांतक अरति परीषहको छोडकर बाकी बीस परीषहें होती हैं, जहां वेदकी निवृत्ति हो जाती है वहां स्त्रीपरीषह भी नष्ट हो जाती है इसलिये वहां उनईस परीषहें होती हैं उसी नौवें गुणस्थानमें मानकषायके उदयका नाश हो जानेपर नाग्न्य निषद्या, आक्रोश याचना और सत्कार पुरस्कार परीषहें नष्ट हो जाती हैं इन पांचों परिषहोंके नाश हो जानेपर शेषके अनिवृत्ति करण गुणस्थानमें तथा सूक्ष्मसांपराय उपशांत कषाय और क्षीणकषाय इन चारों गुणस्थानोंमें बाकीकी चौदह परीषहें होती हैं। क्षीणकषाय गुणस्थानमें प्रज्ञा अज्ञान और अलाभ परीषहें नष्ट हो जाती हैं। जिन्होंने ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मरूपी इंधनको जला दिया है जिनके अप्रतिहत अनंत ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट हुआ है, अंतराय कर्मके अभाव होनेसे जिनके निरंतर शुभ पुद्गल वर्गणाओंका समुदाय बढता जा रहा है ऐसे भट्टारक सयोगि केवली भगवानके यद्यपि वेदनीय कर्म विद्यमान है तथापि उसके बलको सहायता देनेवाले घातिया कर्मोंका नाश हो जानेसे उसमें अपना प्रयोजन उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नहीं रही है। जिसप्रकार मंत्र औषधि आदिके बलसे जिसकी मारण शक्ति (प्राण हरण करनेकी शक्ति) नष्ट कर दी गई है ऐसा विष खा लेने पर भी वह किसीको मार नहीं सकता अथवा

प्रत्यसमर्थं, यथा—विषद्रव्यं मंत्रौषधिवलादुपक्षीणमारणशक्तिकमुपयुज्यमानं न मारणाय समर्थं, यथा छिन्नमूलतरुः कुसुमफलप्रदो न भवति, यथोपेक्षावतोरनिवृत्तिसूक्ष्मसाम्पराययोर्मैथुनपरिग्रहसंज्ञा, यथा च परिपूर्णज्ञान एकाग्रचिन्तानिरोधाऽभावेपि कर्मरजोविधूननफलसंभवाद्ध्यानोपचारस्तथा क्षुधारोगवधादिवेदनासद्भावपरीषहाभावे वेदनीयकर्मोदयद्रव्यपरीषहसद्भावादेकादश जिने संतीत्युपचारो युक्त, वेदकर्मोदयसद्भावे एकादश जिने सन्ति घातिकर्मवलसहायरहितं वेद्य फलवन्न भवति तेनैकादश जिने सन्ति। एव सति स्यादस्ति स्यान्नास्तीति स्याद्वाद उपपन्नो भवति। तथा च शतकस्य प्रदेश-

जिसप्रकार जिसकी जड काट डाली गई है ऐसा वृक्ष फल और फूल नहीं दे सकता अथवा जिसप्रकार उपेक्षा बुद्धि रखनेवाले मुनियोंके नौवें दशवें गुणस्थानमें मैथुन और परिग्रह संज्ञा केवल नाममात्रको होती है अथवा जिसप्रकार पूर्ण केवलज्ञानके होनेपर एकाग्र चिंता निरोध रूप ध्यानका अभाव होनेपर भी कर्मरूपी रजके नाश होने रूप फलकी संभावना होनेसे ध्यानका उपचार किया जाता है उसीप्रकार क्षुधा रोग और वध आदि वेदनाओंके सद्भावरूप परीषहोंका अभाव होनेपर भी केवल वेदनीय कर्मके उदयरूप द्रव्य परीषहका सद्भाव होनेसे तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिनेंद्र भगवानके ग्यारह परीषहें उपचारसे कही जाती हैं। वेदनीय कर्मके उदयका सद्भाव होनेसे जिनेंद्रदेवके ग्यारह परीषह हैं और घातिया कर्मोंके वलकी सहायताके विना वेदनीय कर्म अपना कुछ फल नहीं देसकता इसलिये जिनेंद्रदेवके ग्यारह परीषहें नहीं हैं इसप्रकार स्यादास्ति स्यान्नास्ति अर्थात् परीषह हैं भी और नहीं भी हैं इसप्रकारका स्याद्वाद मत प्रगट होता है। यही बात प्रदेश बंधके कथन करते समय सौ भागोंमेंसे वेदनीयके विशेष भागोंका कारण कथन करते हुए कही गई है " जम्हा वेदणीयस्स दुःखोदयस्स णाणावरणादि उपकरणकरणं तम्हा वेदणीयस्सेव सुहुदुःखोदयो दीसदे" अर्थात् सुख दुःख देनेवाले वेदनीय कर्मके सहायक ज्ञानावरणादि घातिया कर्म हैं इसीलिये अर्थात् उन घातिया

वन्धे वेदनीयस्य भागविशेपकारणकथनेऽप्युक्तं—;" जम्हा वेदणीयस्स सुहदुक्खोदयस्स णाणावरणादि उ करण हरणं तम्हा वेदणी स्सेव सुहदुक्खजो दयो-]
हीयदे " इति। तस्माद्वेदनीयं घातिकर्मोदय विना फलवन्न भवतीति सिद्ध।

नरकतिर्यग्गत्यो· सर्वे परीषहाः, मनुष्यगतावाद्यभंगा भवन्ति देवगतौ घातिकर्मोत्थपरीषहैः सह वेदनीयोत्पन्नक्षुत्पिपासावधैः सह चतुर्दश भवन्ति इन्द्रियकायमार्गणयो· सर्वे परीषहा सन्ति, वैक्रियकद्वितयस्य देवगतिभंगा तिर्यग्मनुष्यापेक्षया द्वाविंशतिः। शेपयोगाना वेदादिमार्गणाना च स्वकीय-गुणस्थानभंगा भवन्ति।

तपोवर्णनम्।

रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तप·, अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यत इति तपः। तद्द्विविधं, बाह्यमाभ्यन्तरं च। अनशनादिवाह्यदशा-

कर्मोंकी सहायतासे ही वेदनीय कर्मका सुख दुःखोदय दिखाई पडता है।" इससे यह सिद्ध है कि घातिया कर्मोंके उदयके विना वेदनीय कर्म अपना फल नहीं दे सकता।

नरक और तिर्यंच गतिमें सव परीषह होती हैं। मनुष्यगतिमें ऊपर कहे अनुसार होती हैं। देव गतिमें घातिया कर्मोंके उदयसे होनेवाली सात परीषहें और वेदनीयकर्मके उदयसे होने वाला क्षुधा पिपासा और बध इसप्रकार चौदह परीषह होती हैं। इंद्रिय और कायमार्गणामें सब परीषहें होती हैं वैक्रियक और वैक्रियकमिश्रयोगमें देवगतिकी अपेक्षा देवगतिके अनुसार और तिर्यंच मनुष्योंकी अपेक्षा बाईस होती हैं। शेष योग मार्गणामें तथा वेद आदि सब मार्गणाओंमें अपने अपने गुणस्थानकी अपेक्षा लगा लेना चाहिये।

इसप्रकार परीषहोंका प्रकरण पूर्ण हुआ॥

आगे तपश्चरणका वर्णन करते हैं—रत्नत्रयको प्रगट करनेके लिये इच्छाका निरोध करना तप कहलाता है अथवा कर्मोंका नाश करनेके लिये मोक्षमार्गका विरोध न करते हुए तपश्चरण

पेक्षत्वात्परप्रत्ययलक्षणत्वाच्च बाह्यं, तत् षड्विधं, अनशनावमोदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदात् । अभ्यन्तरमपि षड्विधं, प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदात् ।

तत्राऽनशनं नाम यत्किंचिद्दृष्टफलं मंत्रसाधनाद्यनुद्दिश्य क्रियमाणमुपवसनमनशनमित्युच्यते । तच्च संयमप्रसिद्धिरागद्वेषाद्युच्छेदबहुकर्मनिर्जरणशुभध्यानागमावाप्त्यर्थं । तद्द्विविधमवधृतानवधृतकालभेदात् । तत्रावधृतकालं सकृद्भोजनचतुर्थषष्ठाष्टमदशपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरेष्वशनपानखाद्यस्वाद्यलक्षणचतुर्विधाहारनिवृत्तिः । अनवधृतकालमादेहोपरमात् ।

करना तप है। वह तप दो प्रकारका है एक वाह्यतप और दूसरा अभ्यंतर तप। अनशन आदि वाह्य द्रव्योंकी अपेक्षासे अथवा अन्य लोगोंको प्रत्यक्ष होनेसे वाह्य तपश्चरण कहलाता है। वह वाह्य तपश्चरण छह प्रकारका है अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और और कायक्लेश ये उसके नाम हैं। प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यानके भेदसे अभ्यंतर तपश्चरण भी छह प्रकारका है।

किसी प्रत्यक्ष फलकी अपेक्षा न रखकर और मंत्रसाधन आदि उद्देशोंके विना जो उपवास किया जाता है उसे अनशन कहते हैं। वह अनशन प्राणसंयम और इंद्रिय संयमकी प्रसिद्धि के लिये राग द्वेष आदि कषायोंको नाश करनेकेलिये बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करनेके लिये शुभध्यान और आगमकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। वह अनशन वा उपवास दो प्रकारका है एक नियमित समय तक और दूसरा अनियमित समय तक। दिनमें एकवार भोजन करना एक दिन दो दिन तीन दिन चार दिन पांच दिन पंद्रह दिन एक महीने दो महीने छह महीने और वर्षदिन तक अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करदेना नियमित समय तकका उपवास कहलाता है। तथा शरीर छूटने तक उपवास धारण करना अनियमित समय तकका उपवास कहलाता है।

आत्मीयप्रकृत्यौदनस्य चतुर्थभागेनार्द्धेन ग्रासेन वोनाहारनियमोऽवमोदर्यं, आवमोदर्यमिति च। तत्किमर्थं निद्राजयार्थं दोषप्रशमनार्थमतिमात्राऽऽहारजातविहितस्वाध्यायभयार्थमुपवासश्रमसमुद्भूतवातपित्तप्रकोपपरिहीयमानसंयमसंरक्षणार्थं च।

स्वकीयतपोविशेषेण रसरुधिरमांसशोषणद्वारेणेन्द्रियसंयमं परिपालयतो भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारसप्तवेश्मैकरथ्यार्द्धग्रामदातृजनवेषगृहभाजनभोजनादिविषयसंकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम्।

शरीरेन्द्रियरागादिवृद्धिकरक्षीरदधिघृतगुडतैलादिरसत्यजनं रसपरित्याग इत्युच्यते। तत्किमर्थं दुर्दान्तेंद्रियतेजोहानिः संयमोपरोधनिवृत्तिरित्येवमाद्यर्थं।

अपने लिये स्वाभाविक जितना भोजन चाहिये उससे चौथाई भाग कम आहार लेनेका नियम लेना अथवा एक गास आधा गास कम लेनेका नियम लेना अवमोदर्य कहलाता है। निद्राको जीतनेके लिये दोषोंको शांत करनेके लिये अधिक आहारसे उत्पन्न होनेवाले स्वाध्यायके विघ्नोंको दूर करनेके लिये और उपवासोंके परिश्रमसे उत्पन्न होनेवाले वात पित्तके प्रकोपसे कम होनेवाले संयमकी रक्षा करनेके लिये अवमोदर्य तपश्चरण किया जाता है।

अपने विशेष तपश्चरणके द्वारा अथवा शरीरका रस रुधिर मांस आदिको सुखाकर इंद्रिय संयमको पालन करनेवाले तथा आहारके लिये गमन करते हुए मुनियोंके एक घर, सात घर एक गली, आधा गांव, दान देनेवाले दाताका वेष घर पात्र और भोजन आदिके विषयमें संकल्प करना वृत्तिपरिसंख्यान नामका तपश्चरण कहलाता है। यह तपश्चरण केवल भोजनकी आशा और लालसा दूर करनेके लिये किया जाता है।

शरीर इंद्रिय और रागादि कषायोंको बढानेवाले दूध, दही, घी, गुड, तेल आदि रसोंका त्याग करना रसपरित्याग तप कहलाता है। अत्यंत प्रबल इंद्रियोंका तेज घटानेके लिये और संयमकी रुकावटें दूर करनेके लिये यह रसपरित्याग तपश्चरण किया जाता है।

ध्यानाध्ययनविघ्नकरस्त्रीपशुषण्ढकादिपरिवर्जितगिरिगुहाकन्दरपितृवनशून्यागाराऽऽरामोद्यानादिप्रदेशेषु विविक्तेषु जन्तुपीडारहितेषु संवृतेषु संयतस्य शयनासनं विविक्तशयनासनं नाम। तत्किमर्थमाबाधात्ययब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रसिद्ध्यर्थमसभ्यदर्शनेन तत्सहवासेन वा अनितत्रिकालविषयरागद्वेषमोहापोहार्थं वा। वृक्षमूलाभ्रावकाशाऽऽतापनयोगवीरासनकुक्कुटासनपर्यंकार्द्धपर्यंकगोदोहनमकरमुखहस्तिशुण्डामृतकशयनैकपार्श्वदंडधनुःशय्यादिभिः शरीरपरिखेदः कायक्लेश इत्युच्यते। तत्किमर्थं वर्षाशीताऽऽतपविषमसंस्थुलाऽऽसनविषमशय्यादिषु शुभध्यानपरिचयार्थं दुःखोपनिपाततितिक्षार्थं विषय-

ध्यान और अध्ययनमें विघ्न करनेवाले स्त्री, पशु, नपुंसक आदिसे रहित ऐसी पर्वतकी गुफाएं, कंदरा, श्मशान, सूने मकान, वन और उद्यान आदि एकांत, जीवोंकी पीडासे रहित और आछन्न (ढके हुए) स्थानोंमें मुनियोंका शयन आसन करना (सोना, बैठना) विविक्त शय्यासन तप कहलाता है। निर्बाध पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिए स्वाध्याय तथा ध्यानकी सिद्धिके लिए और असभ्य लोगोंके दर्शन करनेसे अथवा उनका सहवास करनेसे तीनों कालोंमें उत्पन्न हुए राग द्वेष और मोहको दूर करनेके लिये यह विविक्त शय्यासन तप किया जाता है।

वृक्षके नीचे, अथवा चौहटेमें आतापनयोग धारण करना, वीरासन, कुक्कुटासन, पर्यंकासन, अर्धपर्यंकासन, गोदोहन आसन, मकरमुखासन, हस्तिशुंडासन, मृतकशयन, एक करवटसे सोना, दंडके समान सोना, और धनुषके समान सोना इत्यादि कार्योंके द्वारा शरीरको क्लेश पहुंचाना काय क्लेश तप कहलाता है। वर्षाऋतु शीत ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें विषम स्थल विषम आसन लगाकर बैठना तथा विषम स्थानमें सोना आदि कार्योंमें शुभ ध्यान बराबर बने रहनेके लिये, उपस्थित हुए अनेक दुःखोंको सहन करनेके लिए, विषय सुखोंकी लालसा दूर करनेके लिए और अपने मनकी प्रभावना होनेके लिये कायक्लेश तपश्चरण किया जाता है। यदि कायक्लेश तपश्चरण न किया जाय तो ध्यानके प्रारंभमें तो सुखपूर्वक ध्यान हो सकता

सुखानभिष्वंगाथ प्रवचनप्रभावनार्थं च कायक्लेशानुष्ठानं क्रियते। इतरथा हि ध्यानप्रवेशकाले सुखोचितः स्यात् द्वन्द्वोपनिपाते सति समाधानं न स्यात् एवं षड्विधं बाह्यलक्षणमुक्तं।

उत्तरमाभ्यन्तरमुच्यते। यतोऽन्यैस्तीर्थैरनभ्यस्तं ततोऽस्याऽऽभ्यन्तरत्वं, प्रायश्चित्तादितपो हि बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वादन्तःकरणव्यापाराच्चाभ्यंतरं। तत्र कर्तव्यस्याकरणे वर्जनीयस्यावर्जने यत्पापं सोऽतीचारस्तस्य शोधनं प्रायश्चित्तं। तत्किमर्थं प्रमाददोषव्युदासो भावप्रसादो नैःशल्यमनवस्थाव्यावृत्तिर्मर्यादात्यागः संयमदार्ढ्यं चतुर्विधाराधनमित्येवमादीनां सिद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं। तद्दशविधं, आलोचनं, प्रतिक्रमणं, तदुभयं, विवेकः, व्युत्सर्गः, तपः, छेदः, मूलं, परिहारः, श्रद्धानमिति। तत्रैकान्तनिषण्णायापरिश्राविणे श्रुतरहस्याय गुरवे प्रसन्नमनसे विद्यायोग्योपकरणग्रहणादिषु प्रश्नविनयमन्तरेण प्रवृत्तस्य,

है परंतु किसी उपद्रवके उपस्थित होनेपर समाधान नहीं रह सकता इसलिये कायक्लेश तपश्चरण करना ही चाहिए। इसप्रकार छह प्रकारका बाह्य तपश्चरण कहा।

अब आगेका अभ्यंतर तपश्चरण कहते हैं। अन्यमती लोग इस अभ्यंतर तपश्चरणका अभ्यास नहीं करते इसीलिये इसको अभ्यंतर तप कहते हैं अथवा प्रायश्चित्त आदि तपश्चरणोंमें किसी भी बाह्य द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करनी पडती केवल अंतःकरणमें ही व्यापार करना पडता है इसलिये भी इसको अभ्यंतर तप कहते हैं। किसी करने योग्य कार्यके न करनेपर और त्याग करने योग्य पदार्थके त्याग न करनेपर जो पाप होता है उसे अतीचार कहते हैं उस पापको वा अतीचारको शुद्ध करना प्रायश्चित्त कहलाता है। प्रमादसे उत्पन्न दोषोंको दूर करनेके लिए अपने परिणामोंको निर्मल रखनेके लिये, शल्योंसे अलग रहनेके लिए, अनवस्था वा चंचलता दूर करनेके लिये, मर्यादाको कायम रखनेके लिये, संयमको दृढ रखनेके लिये और चारो प्रकारकी आराधनाओंके आराधन करनेकेलिये यह प्रायश्चित्त नामका तपश्चरण किया जाता है। वह प्रायश्चित्त आलोचन, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धानके भेदसे दश प्रकारका है। जो (आचार्य) एकान्त

विदितदेशकालस्य शिष्यस्य सविनयमात्मप्रमादनिवेदनमालोचनमित्युच्यते। तस्य दश दोषा भवन्ति आकम्पितं, अनुमापितं, यद्दृष्टं, वादरं, सूक्ष्मं, छन्नं शब्दाऽऽकुलितं, बहुजनं, अव्यक्तं, तत्सेवितमिति। तत्रोपकरणेषु दत्तेषु प्रायश्चित्तं मे लघु कुर्यादिति विचिन्त्य भगदानं प्रथम आकंपितदोषः। प्रकृत्या पित्ताधिकोऽस्मि दुर्बलोऽस्मि ग्लानोऽस्मि नाऽलमहमुपवासादिकं कर्तुं यदि लघु दीयेत तद्दोषनिवेदनं करिष्य इति वचनं द्वितीयोऽनुमापितदोष.। अन्याद्दष्टदोषगूहनं कृत्वा दृष्टदोषनिवेदनं मायाचारस्तृतीयो यद्दृष्टदोषः। आलस्यात्प्रमादाज्ञानाद्वाऽल्पापराधावबोधनिरुत्सुकस्य स्थूलदोषप्रतिपादनं तुर्यो वादरदोष.। महा

स्थानमें बैठे हुए हैं, जो सुने हुए दोषोंको कभी किसीके सामने प्रगट नहीं करते, शास्त्रोंके रहस्यको अच्छीतरह जानते हैं और जिनका चित्त प्रसन्न है ऐसे गुरुके समीप जाकर विद्याके योग्य उपकरण आदिको ग्रहण करनेका प्रश्न वा विनय किए विना ही देश कालको जाननेवाले शिष्यका विनयपूर्वक अपना प्रमाद निवेदन करना आलोचन कहलाता है। उस आलोचनाके आकंपित, अनुमापित, यदृष्ट, वादर, सूक्ष्म, छल, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवित ये दश दोष हैं। "यदि मैं कोई उपकरण भेंट करूंगा तो मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा" यही समझकर कुछ भेट देना पहिला आकंपित दोष है। "मेरी प्रकृति अधिक पित्तवाली है, मैं दुर्बल हूं, रोगी हूं, उपवास आदि करनेकी मेरी सामर्थ्य नहीं है यदि मुझे थोडा प्रायश्चित्त दिया जायगा तो मैं अपना दोष निवेदन करूंगा" इसप्रकारके वचन कहना दूसरा अनुमापित दोष है। जो दोष किसी दूसरेको दिखाई नहीं पडे हैं उन्हें तो छिपा लेना और दिखाई देने योग्य अथवा जो दूसरोंने देख लिए हैं ऐसे दोषोंको निवेदन करना, इसप्रकारका मायाचार करना तीसरा यदृष्ट दोष है। आलस्य, प्रमाद, वा अज्ञानसे छोटे छोटे अपराधोंके जाननेमें चित्त न लगाना और स्थूल दोषोंको निवेदन करना चौथा वादर दोष है। बडे भारी कठिन प्रायश्चित्तके भयसे अथवा 'यह सूक्ष्म दोषोंको भी दूर कर डालता है' इसप्रकारके अपने गुणोंकी प्रसिद्धि होनेकी इच्छासे बडे बडे दोषोंको छिपाकर थोडेसे प्रमादरूप आ-

दुश्चरप्रायश्चित्तभयाद्वाऽहो सूक्ष्मदोषपरिहारकोऽयमिति स्वगुणाख्यापनचिकीर्षया वा महादोपसंवरणं कृत्वा तनुप्रमादाचारनिवेदनं पंचमः सूक्ष्मदोषः। ईदृशे व्रतातिचारे सति नुः किं स्यात्प्रायश्चित्तमित्युपायेन गुरूपासना षष्ठश्छन्नदोष। पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकेषु कर्मसु महति यतिसमवाय आलोचनशब्दाकुले पूर्वदोषकथनं सप्तमः शब्दाकुलितदोषः। गुरूपपादितं प्रायश्चित्तं किमिदं युक्तमागमे स्यान्न वेति यावल्लघु प्रतिपादयति तावद्वा शंकमानस्याऽन्यसाधुपरिप्रश्नोऽष्टमो बहुजनदोषः। यत्किंचित्प्रयोजनमुद्दिश्याऽऽत्मना समानायैव प्रमादाचरितमावेद्य महदपि गृहीतं प्रायश्चित्तं न फलकरमिति नवमोऽव्यक्त-

चरणोंका निवेदन करना पांचवां सूक्ष्म दोष है। " इसप्रकारके व्रतोंमें अतीचार लगनेसे मनुष्यको क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिये " इसतरह अपना दोष न कहकर उपायांतरसे पूछना अथवा पूछनेके लिए गुरुकी उपासना करना छठा छन्न दोष है। जहांपर पाक्षिक अर्थात् पन्द्रह दिनकी, चातुर्मासिक अर्थात् चार महीनेकी वा सांवत्सारिक अर्थात् एक वर्षकी आलोचना हो रही है और सब मुनियोंकी आलोचना एक साथ हो रही है ऐसे शब्दोंके समुदायमें पहिले दोषोंका कहना सातवां शब्दाकुलित दोष हैं। " गुरुने जो प्रायश्चित्त बतलाया है वह ठीक है, या नहीं, आगममें कहा है वा नहीं " इसप्रकार जबतक थोडा प्रायश्चित्त देता रहे तबतक शंकाकर अन्य साधुओंसे पूछना आठवां बहुजन दोष है। अपना कुछ भी प्रयोजन विचारकर अपने समान किसी मुनिसे अपने प्रमादरूप आचरण कहना नौवां अव्यक्त दोष है इस अव्यक्त दोषके होते हुए अपने समान किसी मुनिसे वह बडा भारी प्रायश्चित्त ग्रहण कर ले तो भी उसका कुछ फल नहीं होता है। किसी दूसरे मुनिको जो प्रायश्चित्त दिया गया है उसे देखकर विचार करना कि " मेरे व्रतोंमें लगा हुआ अतीचार इन्हीं मुनिराजके अपराधके समान है अथवा मेरा अतीचार भी ठीक ऐसा ही है इसलिये जो प्रायश्चित्त इसको दिया गया है वही मेरे लिये ठीक है अब मुझे यह प्रायश्चित्त शीघ्र ही ले लेना चाहिये " इसप्रकार विचारकर अपने अपराधोंको छिपाना दशवां तत्सेवित नामका दोष है। जो अपराध लगा हो उसे बहुत दिनतक

दोष. । अस्यापराधेन ममातीचारः समानस्तमयमेव वेत्त्यस्मै यद्दत्तं तदेव मे युक्तं लघुकर्तव्यमिति स्वदुश्चरितसंवरणं दशमस्तत्सेवितदोषः । आत्मन्यपराधं चिरमनवस्थाप्य निकृतिभावमन्तरेण बालवदृजुबुद्धेर्दोषान्निवेदयतो न ते दोषा भवन्त्यन्यच्च संयतालोचनमेकांते द्विविषयमिष्टं, संयतकालोचनं प्रकाशे त्रपाश्रयमिष्टं, लज्जापरपरिभवादिगणनया निवेद्यातिचारं न शोधयेदपरीक्षितायऽव्ययोऽधमर्णवदवसीदति । महदपि तपः कर्मानालोचनपूर्वकं नाभिप्रेतफलप्रदं सामदेहगतौषधिवत् । कृताऽऽलोचनोऽपि गुरुमतं प्रायश्चित्तमकुर्वाणो विनिश्चितमंत्रानुष्ठानशून्यराज्यवन्महती शाश्वतीं च संपदं न प्राप्नोति कृतालोचनचित्तगतं प्रायश्चित्तं परिमृष्टदर्पणगतरूपवत्परिभ्राजते ।

नहीं रखना चाहिये विना किसी मायाचारके बालकके समान सरल बुद्धिसे जो दोषोंको निवेदन करते हैं उनके ऊपर लिखे दोषोंमेंसे कोई दोष नहीं होते। दूसरी बात यह है कि यदि कोई मुनि आलोचना करेगा तो एकान्तमें करेगा और गुरु तथा वह शिष्य दो ही वहां रहेंगे तीसरा नहीं परंतु यदि आर्जिका आलोचना करेगी तो प्रकाशमें करेगी एकांत स्थानमें नहीं, तथा वहांपर तीन जने रहने चाहिये। यदि कोई मुनि वा आर्जिका लज्जा अथवा दूसरेके तिरस्कारके डरसे अतिचारको निवेदनकर उनका प्रायश्चित्त न ले दोषोंको न शोधे तो जो अपनी आमदनी और खर्चका हिसाब नहीं रखता ऐसे किसी कर्जदारके समान वह दुःख पाता है। जिसप्रकार श्वास रहित शरीरमें प्राप्त हुई औषधि अपना फल नहीं देती उसीप्रकार आलोचना किये विना बडा भारी किया हुआ तपश्चरण भी इच्छानुसार फल नहीं देता। जिसप्रकार निश्चय किये हुए मंत्रके अनुसार न चलनेवाले राजाको कोई वडी भारी और सदा टिकनेवाली संपदा प्राप्त नहीं होती उसीप्रकार आलोचना करनेपर भी यदि गुरुके दिये हुए प्रायश्चित्तको न करे तो भी उसे सबसे भारी और सदा टिकनेवाली मोक्षरूप संपदा नहीं मिलती। आलोचना करनेपर हृदयमें आया हुआ जो प्रायश्चित्त है वह मजे हुए दर्पणमें प्राप्त हुए रूपके समान बहुत अच्छा शोभायमान होता है। भावार्थ—प्रायश्चित्त करनेसे सब व्रत निर्मल शोभायमान होते हैं।

आस्थितानां योगानां धर्मकथादिव्याक्षेपहेतुसन्निधानेन विस्मरणे सत्यालोचनं पुनरनुष्ठाय कस्य संवेगनिर्वेदपरस्य गुरुविरहितस्याल्पापराधस्य पुनर्न करोमि मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमादिभिर्दोषान्निवर्तनं प्रतिक्रमणं ।

किंचित्कर्माऽऽलोचनमात्रादेव शुद्धयत्यपरं प्रतिक्रमणेनेतरं दुःस्वप्नादिकं तदुभयसंसर्गेण शुद्धिमुपयाति । आलोचनप्रतिक्रमणपूर्वं गुरुणाऽभ्यनुज्ञातं शिष्येणैव कर्तव्यं तदुभयं पुनर्गुरुणैवानुष्ठेयं ।

संसक्तेषु द्रव्यक्षेत्रान्नपानोपकरणादिषु दोषान्निवर्तयितुमक्षममानस्य तद्द्रव्यादिविभजनं निवेकः । अथ वा शक्त्यनतिगूहनेन प्रयत्नेन परिहरतः कुतश्चित्कारणादप्रासुकग्रहणग्राहणयोः प्रासुकस्यापि प्रत्याख्यातस्य विस्मरणात्प्रतिगृहे च स्मृत्वा पुनस्तदुत्सर्जनं विवेकः ।

धर्मकथा आदिमें कोई विघ्नके कारण उपस्थित हो जानेपर यदि कोई मुनि अपने स्थिर योगोंको भूलजाय तो वे पहिले आलोचना करते हैं और फिर वे यदि संवेग वैराग्यमें तत्पर रहें गुरु समीपमें न हो तथा छोटासा अपराध लगा हो तो " मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा यह मेरा पाप मिथ्या हो " इसप्रकार दोषोंसे अलग रहना प्रतिक्रमण कहलाता है।

कोई कर्म केवल आलोचना करनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं, कोई अकेले प्रतिक्रमणसे ही शुद्ध हो जाते हैं और दुःस्वप्न आदि कितने ही दोष तदुभय अर्थात् आलोचना और प्रतिक्रमण दोनोंके संबंधसे शुद्ध होते हैं । प्रतिक्रमण आलोचना पूर्वक ही होता है और गुरुकी आज्ञानुसार शिष्य स्वयं उसे करलेता है परंतु तदुभय गुरुके द्वारा ही किया जाता है।

किसी मुनिका हृदय किसी द्रव्य क्षेत्र अन्न पान अथवा उपकरणमें आसक्त हो और किसी दोषको दूर करनेके लिये गुरु उन मुनिको वह पदार्थ प्राप्त न होने दें उस पदार्थको उन मुनिसे अलग करलें तो वह विवेक नामका प्रायश्चित्त कहलाता है। अथवा अपनी शक्तिको न छिपाकर प्रयत्न पूर्वक जीवोंकी बाधा दूर करते हुए भी किसी कारणसे अप्रासुक पदार्थ को ग्रहण कर लें अथवा जिसका त्याग कर चुके हैं ऐसे प्रासुक पदार्थको भी भूलकर ग्रहण

दुःस्वप्नदुश्चिन्तनमलोत्सर्जनाऽऽगमातीचारनदीमहाटवीरणादिभिरन्यैश्चाप्यतीचारे सति ध्यानमवलंब्य कायमुत्सृज्यान्तर्मुहूर्तदिवसपक्षमासादिकालावस्थानं व्युत्सर्ग इत्युच्यते ।

सत्वादिगुणालंकृतेन कृतापराधेनोपवासैकस्थानाचाम्लनिर्विकृत्यादिभिः क्रियमाणं तप इत्युच्यते । भयोन्मादत्वरणविस्मरणानवबोधाशक्तिव्यसनादिभिर्महाव्रतातीचारे सत्यनन्तरोक्तषड्विधप्रायश्चित्तं भवति । चिरप्रव्रजितस्य सहजबलस्य स्वभावशूरस्य गर्वितस्य कृतदोषस्य दिवसमासादिभागेन प्रव्रजनं छित्वा छिन्नकालादिनाऽवस्था छेदो नाम ।

करलें और फिर स्मरण हो आनेपर उन सबका त्याग कर दें तो वह भी विवेक प्रायश्चित्त कहलाता है ।

कोई दुःस्वप्न हो जाय, किसीका बुरा चिंतवन हो जाय, मल छूट जाय, आगममें अतिचार लगजाय अथवा नदी, महावन युद्ध और अन्य किसी कारणसे अतिचार लगजाय तो ध्यान लगाकर और शरीरसे ममत्व छोडकर अन्तर्मुहूर्ततक एक दिनतक पंद्रहादिनतक वा एक महीनेतक ज्योंके त्यों खडे रहना अथवा बैठे रहना व्युत्सर्ग कहलाता है ।

जो शारीरिक वा मानसिक बल आदि गुणोंसे परिपूर्ण हैं और जिनसे कुछ अपराध हुआ है ऐसे मुनि उपवास, एकाशन, आचाम्ल, निर्विकृत्य (दूध आदि रसोंसे रहित) आदिके द्वारा जो तपश्चरण करते हैं उसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं । भय, उन्माद, शीघ्रता, भूल, अज्ञान, शक्तिहीनता और व्यसनादिके द्वारा महाव्रतोंमें अतीचार लगनेपर ऊपर कहे हुए आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेकव्युत्सर्ग और तप ये छहो प्रकारके प्रायश्चित्त होते हैं ।

जो साधु बहुत दिनके दीक्षित हैं, स्वाभाविक बलशाली हैं, स्वभावसे ही शूरवीर हैं और बडे अभिमानी हैं परंतु जिनसे कुछ अपराध हो चुका है ऐसे मुनियोंकी एक दिनकी दीक्षा अथवा एक महीनेकी वा अधिक दिनोंकी दीक्षा कम कर देना और फिर उनकी दीक्षा कम

पार्श्वस्थादीनां मूलं प्रायश्चित्तं, तद्यथा—पार्श्वस्थः, कुशीलः, संसक्तः, अवसन्नः, मृगचारित्र इति । तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः । क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्यानयकारी कुशीलः । मंत्रवैद्यकज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः । जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसो ऽवसन्नः । त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छन्दविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छन्द इति वा । एते पंच श्रमणा जिनधर्मबाह्याः । एवमुक्तपार्श्वस्थादिपंचविधोन्मार्गस्थितस्यापरिमितापराधस्य सर्वं पर्यायमपहाय पुनर्दीक्षादानं मूलमित्युच्यते ।

कर देनेके बाद जितने दिनोंकी दीक्षा कायम रहती है उतने ही दिनोंके दीक्षित मुनियोंके साथ रखना छेद नामक प्रायश्चित्त है ।

पार्श्वस्थ आदि मुनियोंके लिये मूल नामका प्रायश्चित्त होता है वही आगे दिखलाते हैं—पार्श्वस्थ, कुशील, संसक्त, अवसन्न, और मृगचारित्र ये पांच प्रकारके मुनि जिनधर्मसे वहिष्कृत होते हैं। जो मुनि वसतिकाओंमे रहते हैं, उपकरणोंसे ही अपनी जीविका चलाते हैं, परंतु मुनियोंके समीप रहते हैं उन्हें पार्श्वस्थ कहते हैं। जिनका आत्मा क्रोधादि कषायोंसे कलुषित है जो व्रत गुण तथा शील पालन करनेसे रहित हैं और जो संघका बुरा करनेवाले हैं उनको कुशील कहते हैं। जो मंत्र वैद्यक वा ज्योतिषशास्त्रसे अपनी जीविका करते हैं और राजा आदिकोंकी सेवा करते हैं उन्हें संसक्त कहते हैं । जो जिनवचनोंको जानते तक नहीं, जिन्होंने चारित्रका भार सब छोड दिया है, जो ज्ञान और चारित्र दोनोंसे भ्रष्ट हैं और चारित्रके पालन करनेमें आलस करते हैं उन्हें अवसन्न कहते हैं । जिन्होंने गुरुका संघ छोड दिया है जो अकेले ही स्वच्छंद रीतिसे विहार करते हैं और जो जिनेंद्र देवके वचनोंको दूषित करनेवाले हैं उनको मृगचारित्र अथवा स्वच्छंद कहते हैं ये पांचों ही मुनि जिनधर्मसे वाह्य हैं । ये ऊपर कहे हुए पांचों प्रकारके पार्श्वस्थ आदि मुनि मिथ्यामार्गमें रहते हैं और अपरिमित

परिहारोऽनुपस्थानपारंचिकभेदेन द्विविधः । तत्राऽनुपस्थानं निजपरगणभेदाद् द्विविधं । प्रमादादन्यमुनिसंबंधिनमृषि छात्रं गृहस्थं वा परपाखंडिप्रतिबद्धचेतनाचेतनद्रव्यं वा परस्त्रियं वा स्तेनयतो मुनीन् प्रहरतो वाऽन्यदप्येवमादिविरुद्धाचरितमाचरतो नवदशपूर्वधरस्यादित्रिकसंहननस्य जितपरीषहस्य दृढधर्मिणो धीरस्य भवभीतस्य निजगुणानुपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवति । तेन ऋष्याश्रमाद् द्वात्रिंशद्दण्डान्तरं विहितविहारेण बालमुनीनपि वंदमानेन प्रतिवन्दनाविरहितेन गुरुणा सहाऽऽलोचयता शेषजनेषु कृतमौनव्रतेन विधृतपराङ्मुखपिच्छेन जघन्यतः पंचपंचोपवासा उत्कृष्टतः षण्मासोपवासाः कर्त-

अपराध करते हैं इसलिये उनकी मुनि अवस्थाकी सब पर्यायका त्याग कर अर्थात् उनकी समस्त दीक्षाका छेदकर फिरसे दीक्षा देना मूल नामका प्रायश्चित्त कहलाता है ।

परिहारनामक प्रायश्चित्त अनुपस्थान और पारंचिक भेदसे दो प्रकारका है । उसमें अनुपस्थान भी निजगण और परगणके भेदसे दो प्रकारका है । प्रमादसे अन्य मुनि संबंधी ऋषि, विद्यार्थी, गृहस्थ वा दूसरे पाखंडीके द्वारा रोके हुए चेतनात्मक वा अचेतनात्मक द्रव्य अथवा परस्त्री आदिको चुरानेवाले, मुनियोंको मारनेवाले अथवा और भी ऐसे ही ऐसे विरुद्ध आचरण करनेवाले परंतु नौ वा दश पूर्वोंके जानकार, पाहिले तीन संहननोंको धारण करनेवाले, परीषहोंको जीतनेवाले, धर्ममें दृढ रहने वाले, धीर वीर और संसारसे डरनेवाले मुनियोंके निजगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है । जिनको यह प्रायश्चित्त दिया जाता है वे मुनियोंके आश्रमसे वत्तीस दंडके अंतरसे बैठते हैं, बालक मुनियोंको (कम उम्रके अथवा थोडे दिनके दीक्षित मुनियोंको) भी वे बंदना करते हैं परंतु बदलेमें कोई मुनि उन्हें बंदना नहीं करता, वे गुरुके (आचार्यके) साथ सदा आलोचना करते रहते हैं, शेषलोगोंके साथ वे बात चीत नहीं करते, मौनव्रत धारण किये रहते हैं, अपनी पीछीको उल्टी रखते हैं, कमसे कम पांच पांच उपवास और अधिकसे अधिक छह छह महीने तकके उपवास करते रहते हैं और इस प्रकार दोनों प्रकारके उपवास बारह वर्ष तक करते हैं। यह निजगणानुपस्थापन प्रायश्चित्त है ।

व्याः, उभयमप्याद्वादशवर्षादिति । दर्पादनन्तरोक्तान्दोषानाचरतः परगणोपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवतीति । स सापराधः स्वगणाचार्येण परगणाचार्यं प्रति प्रहेतव्यः, सोऽप्याचार्यस्तस्यालोचनमाकर्ण्य प्रायश्चित्तमदत्वाऽऽचार्यांतरं प्रस्थापयति, सप्तमं यावत् पश्चिमश्च प्रथमाऽऽलोचनाऽऽचार्यं प्रति प्रस्थापयति, स एव पूर्वः पूर्वोक्तप्रायश्चित्तेनैनमाचरयति ।

परिहारस्य प्रथमभेदो द्विविधो गतः । पारंचिकमुच्यते, तीर्थकरगणधरगणिप्रवचनसंघाद्यासादनकारकस्य नरेन्द्रविरुद्धाचरितस्य राजानमभिमतामा-

जो अभिमानसे ऊपर लिखे दोषोंको करते हैं उनके परगणानुपस्थापन नामका प्रायश्चित्त होता है। उसकी क्रिया यह है कि अपने संघके आचार्य ऐसे अपराधीको दूसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं, वे दूसरे संघके आचार्य भी उनकी आलोचना सुनकर प्रायश्चित्त दिये विना ही किसी तीसरे संघके आचार्यके समीप भेजते हैं इसीप्रकार सातसंघोंके आचार्योंके समीप उन्हें भेजते हैं अंतके अर्थात् सातवें संघके आचार्य उन्हें पहिले आलोचना सुननेवाले आचार्यके समीप भेजते हैं तब वे पहिले ही आचार्य उन्हें ऊपर लिखा हुआ (निजगणानुपस्थापनमें लिखा हुआ) प्रायश्चित्त देते हैं इसप्रकार निजगणानुपस्थापन और परगणानुपस्थापन ये दोनों ही परिहारके भेद कहे। अब पारंचिक नामके परिहारको कहते हैं। जो मुनि तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, शास्त्र और संघ आदिकी झूठी निंदा करनेवाले हैं, राज्यविरुद्ध आचरण करते हैं, जिन्होंने किसी राजाको माननेवाले अथवा किसी राजाको प्रिय ऐसे मंत्री आदिको दीक्षा दी है जिन्होंने राजकुलकी स्त्रियोंका सेवन किया है अथवा ऐसे ही ऐसे अन्य दोषोंके द्वारा जिन्होंने धर्ममें दोष लगाया है ऐसे मुनियोंके पारंचिक प्रायश्चित्त होता है। उसकी क्रिया यह है कि आचार्य पहिले चारो प्रकारके मुनियोंके संघको इकट्ठा करते हैं और फिर उस अपराधी मुनिको बुलाकर घोषणा करते हैं कि यह मुनि महा पापी है अपने मतसे बाह्य है इसलिये वं-

त्यादीनां दत्तदीक्षस्य नृपकलत्रवनितासेवितस्यैवमाद्यन्यैर्दोषैश्च धर्मदूषकस्य पारंचिकं प्रायश्चित्तं भवति । चातुर्वर्ण्यश्रमणाः संघं संभूय तमाहूय एष महापातकी समयवाह्यो न वंद्य इति घोषयित्वा दत्वाऽनुपस्थानं प्रायश्चित्तं देशान्निर्घाटयन्ति ।

मिथ्यात्वं गत्वा स्थितस्य पुनरपि गृहीतमहाव्रतस्याऽऽप्ताऽऽगमपदार्थानां श्रद्धानमेव प्रायश्चित्तं, तदेतद्दशविधं, देशकालशक्तिसंयमाद्यविरोधेनाल्पानल्पापराधानुरूपं दोषप्रशमनं चिकित्सितवद्विधेयं । जीवस्याऽसंख्येयलोकमात्रपरिमाणाः परिमाणविकल्पा अपराधाश्च तावंत एव न तेषां तावद्विकल्पं प्रायश्चित्तमस्ति व्यवहारनयापेक्षया पिंडीकृत्य प्रायश्चित्तविधानमुक्तं ।

कषायेन्द्रियविनयनं विनयः, अथवा रत्नत्रयस्य तद्वता च नीचैर्वृत्तिर्विनयः, स चतुःप्रकारः । ज्ञानविनयो दर्शनविनयश्चारित्रविनय उपचारविनय-

दना करनेके अयोग्य है इसप्रकार घोषणाकर तथा अनुपस्थान नामका प्रायश्चित्त देकर उसे देशसे निकाल देते हैं।

जिन्होंने अपना मिथ्यात्व छोड दिया है, महाव्रत धारण कर लिये हैं और आप्त आगम पदार्थोंका श्रद्धान कर लिया है उनके श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त कहा जाता है। इसप्रकार दश प्रकारका प्रायश्चित्त कहा। देश, काल, शक्ति, और संयममें किसी तरहका विरोध न आने पावे और छोटा बडा जैसा अपराध हो उसके अनुसार वैद्यके समान दोषोंका शमन करना चाहिये। प्रत्येक जीवके परिणामोंके भेदोंकी संख्या असंख्यातलोक मात्र है, और अपराधोंकी संख्या भी उतनी ही है परंतु प्रायश्चित्तके उतने भेद नहीं कहे हैं। प्रायश्चित्तके ऊपर लिखे भेद तो केवल व्यवहार नयकी अपेक्षासे समुदायरूपसे कहे गये हैं।

कषाय और इंद्रियोंको नम्र करना विनय है अथवा रत्नत्रय और रत्नत्रयको धारण करनेवालेके प्रति अपनी नम्र वृत्ति रखना उनके साथ उद्धतपना न करना, नम्रतासे रहना विनय है। वह विनय चार प्रकार है—ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय। जो आलस रहित है जिसका मन शुद्ध है और जो देश काल आदिकी विशुद्धिके भेद प्रभेद जान-

श्चेति । तत्राऽनलसेन शुद्धमनसा देशकालादिविशुद्धिविधानविचक्षणेन सबहुमानेन यथाशक्ति निषेव्यमाणो मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादिर्ज्ञानविनयः। सामायिकादौ लोकविन्दुसारपर्यंते श्रुतसमुद्रे ये यथा भगवद्भिरुपदिष्टाः पदार्थास्तेषां तथाश्रद्धाने निःशंकितत्वादिलक्षणोपेतता दर्शनविनयः। ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यवतो दुश्चरचरणश्रवणानन्तरमुद्भिन्नरोमाचाभिव्यज्यमानान्तर्भक्तेः पर प्रसादमस्तकाञ्जलिकरणादिभिर्भावयतश्चानुष्ठातृत्वं चारित्रविनयः। उपचारविनयो द्विविधः, प्रत्यक्षः परोक्ष इति। तत्राऽऽचार्योपाध्यायस्थविरप्रवर्तकगणधरादिषु पूजनीयेष्वभ्युत्थानमभिगमनमंजलिकरणं वंदनाऽनुगमनं रत्नत्रयबहुमानः सर्वकालयोग्यानुरूपक्रिययाऽनुलोमता सुनिगृहीतत्रिदंडता सुशीलयोगता धर्मानुरूपकथा कथनश्रवणभक्तिताऽर्हदायतनगुरुभक्तितादोषवर्द्धनं गुण-

नेमें चतुर है ऐसा पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार आदर सत्कार पूर्वक मोक्षके लिये ज्ञानका ग्रहण करना अभ्यास करना स्मरण करना आदि रीतिसे ज्ञानकी सेवा करता है उसे ज्ञान विनय कहते हैं। सामायिकसे लेकर लोकविंदुसार पर्यंत श्रुतज्ञानरूपी महासागरमें भगवान जिनेंद्रदेवने जो पदार्थोंका स्वरूप कहा है उनका उसीप्रकार श्रद्धान करना, तथा निःशंकित आदि आठो अंगोंका पालन करना दर्शन विनय है। जो ज्ञान दर्शन चारित्र तप और वीर्य इन पांचों आचारोंका पालन करते हैं बडे बडे कठिन चारित्रको सुनकर भी रोमांच प्रगट हो जानेसे जिनके अंतरंगकी भक्ति बाहर प्रगट हो रही है और प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोडकर मस्तक नवाकर भावना करते हैं ऐसे मुनि जो चारित्रका पालन करते हैं उसे चारित्र विनय कहते हैं। उपचार विनय दो प्रकारका है एक प्रत्यक्ष और दूसरा परोक्ष। आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध साधु, उपदेशादि देकर जिनमतकी प्रवृत्ति करनेवाले गणधरादिक तथा और भी पूज्य पुरुषोंके आनेपर खडे होना, उनके सामने जाना, हाथ जोडना, वंदना करना, चलते समय उनके पीछे पीछे चलना, रत्नत्रयका सबसे अधिक आदर सत्कार करना, समस्त कालके योग्य अनुरूप क्रियाके अनुकूल चलना, मन वचन काय तीनों योगोंका निग्रह करना, सुशीलता धारण करना, धर्मानुकूल कथाओंका कहना सुनना तथा भक्ति रखना, अरहंत जिनमंदिर

वृद्धसेवाऽभिलाषाऽनुवर्तनं पूजनं । यदुक्तं—"गुरुस्थविरादिभिर्नान्यथा तदित्यनिशं भावनं समेष्वनुत्सेको हीनेष्वपरिभवः जातिकुलधनैश्वर्यरूपविज्ञानबललाभर्द्धिषु निरभिमानता सर्वत्र क्षमापरता मितहितदेशकालाऽनुगतवचनता कार्याकार्यसेव्यासेव्यवाच्यावाच्यज्ञातृता इत्येवमादिभिरात्मानुरूपः प्रत्यक्षोपचारविनयः ।" परोक्षोपचारविनय उच्यते, परोक्षेष्वप्याचार्यादिष्वंजलिक्रियागुणसंकीर्तनानुस्मरणाऽऽज्ञानुष्ठायित्वादिः कायवाङ्मनोभिरवगन्तव्यः रागप्रहस-

और गुरुमें भक्ति रखना, दोषोंका वा दोषियोंका त्याग करना, गुणोंसे वढे हुए मुनियोंकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखना उनके अनुकूल चलना और उनकी पूजा करना प्रत्यक्ष उपचार विनय है। कहा भी है " वृद्ध मुनियोंके साथ अथवा गुरुके साथ कभी भी प्रतिकूल न होनेकी सदा भावना रखना, बराबरवालोंके साथ कभी अभिमान न करना, हीन लोगोंका कभी तिरस्कार न करना, जाति, कुल, धन, ऐश्वर्य, रूप, विज्ञान, वल, लाभ और ऋद्धियोंमें कभी अभिमान न करना, सब जगह क्षमा धारण करनेमें तत्पर रहना, थोडे, हितरूप, और देश काल-के अनुसार वचन कहना, कार्य अकार्य, सेव्य असेव्य, (सेवन और न सेवन करने योग्य) तथा कहने और न कहने योग्यका ज्ञान होना इत्यादि क्रियाओंके द्वारा अपने आत्माको प्रवृत्त करना प्रत्यक्ष उपचार विनय है।" अब आगे परोक्ष उपचार विनयको कहते हैं। आचार्य आदिके परोक्ष रहते हुए भी मन वचन कायसे उनके लिए हाथ जोडना, उनके गुणोंका वर्णन करना स्मरण करना और उनकी आज्ञा पालन करना आदि परोक्षोपचार विनय है। राग पूर्वक वा हंसी पूर्वक अथवा भूलकर भी कभी किसीकी पीठका मांस भक्षण नहीं करना चाहिए अर्थात् पीछे कभी किसीकी बुराई वा निंदा नहीं करनी चाहिए। यह सब परोक्षोपचार विनय कहलाता है। जिनके हृदयमें मंत्र औषधि उपकरण यश सत्कार और लाभ आदिकी अपेक्षा नहीं है जिनकी बुद्धि वास्तवमें निस्पृह है। जिनके इस लोक सम्बन्धी फलकी इच्छा विल्कुल नहीं है और जो केवल कर्मोंको नाश करनेकी इच्छा रखते हैं उन्हें ज्ञानका लाभ होने

नविस्मरणैरपि न कस्यापि पृष्ठमांसभक्षणकरणीयमेवमादिः परोक्षोपचारविनयः प्रत्येतव्यः । मंत्रौषधोपकरणयशःसत्कारलाभाद्यनपेक्षितचित्तेन परमार्थविस्पृहमतिनैहलौकिकफलनिरुत्सुकेन कर्मक्षयकांक्षिणा ज्ञानलाभाऽऽचारविशुद्धिसम्यगाराधनादिसिद्ध्यर्थं विनयभावनं कर्तव्यं ।

वैयावृत्त्यमुच्यते । कायपीडादुष्परिणामव्युदासार्थं कायचेष्टया द्रव्यांतरेणोपदेशेन च व्यावृत्तस्य यत्कर्म तद्वैयावृत्त्यं । तद्दशविधं, आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञवैयावृत्त्यभेदेन । यस्मात् सम्यग्ज्ञानादिपंचाचाराधारादाहृत्य व्रतानि स्वर्गापवर्गसुखकल्पकुजबीजानि भव्या आत्महितार्थमाचरन्ति स आचार्यः । विनयेनोपेत्य यस्माद् व्रतशीलभावनाऽधिष्ठानादागमं श्रुताभिधानमधीयते स उपाध्यायः । आचाम्लवर्द्धनसर्वतोभद्रसिंहनि-

केलिए, आचरणोंकी विशुद्धता होनेके लिए और आराधनाओंका अच्छीतरह आराधन करनेके लिए तथा ऐसे ही ऐसे और भी श्रेष्ठ कार्योंके लिए विनय करनेकी भावना रखनी चाहिए । इस विनयको धारण करनेसे मोक्षका द्वार खुला रहता है ।

अब आगें वैयावृत्यको कहते हैं । शरीरकी पीडा अथवा दुष्ट परिणामोंको दूर करनेकेलिये शरीरकी चेष्टासे, किसी अन्य द्रव्यसे, अथवा उपदेश देकर प्रवृत्त होना अथवा कोई भी क्रिया करना वैयावृत्य है । वह वैयावृत्य आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ साधु, और मनोज्ञकी सेवा चाकरीके भेदसे दश प्रकारका होता है । भव्य पुरुष अपने आत्माका कल्याण करनेके लिये सम्यग्ज्ञान आदि पंचाचारोंके आधाररूप जिन आचार्योंसे स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाले कल्पवृक्षके वीजरूप व्रतोंको लेकर आचरण करते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं। व्रत शील और भावनाके आधाररूप जिन मुनिसे श्रुतज्ञान रूपी आगमका अध्ययन करते हैं उन्हें उपाध्याय कहते हैं । आचाम्लवर्द्धन, सर्वतोभद्र, सिंहनिष्क्रीडित, शतकुंभ, मंदरपंक्ति, विमानपंक्ति, नंदीश्वरपंक्ति, जिनगुणसंपत्ति, श्रुतज्ञान, कनकावली, मुक्तावली, मृदंगमध्य, वज्रमध्य, कर्मक्षपण, और त्रैलोक्यसार आदि महाउपवास करनेवाले तपस्वी कहलाते हैं। जो श्रुतज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेमें तत्पर हैं, और व्रत भावनाओंके पालन करनेमें निपुण हैं

क्रीडितशातकुंभमन्दरपंक्तिविमानपंक्तिनन्दीश्वरपंक्तिजिनगुणसंपरितश्रुतज्ञानकनकावलिमुक्तावलिमृदंगमध्यवज्रमध्यकर्मक्षपणत्रैलोक्यसारादिमहोपवासानुष्ठायी तपस्वी। श्रुतज्ञानशिक्षणपरोऽनुपरतव्रतभावनानिपुणः शैक्षः। रुजादिभिः क्लिष्टशरीरो ग्लानः। स्थविराणां सन्ततिर्गणः। दीक्षकस्याऽऽचार्यस्य शिष्यस्याऽऽम्नायः कुलं। चातुर्वर्ण्यश्रमणनिवहः संघः। चिरकालभावितप्रव्रज्यागुणः साधुः। अभिरूपो मनोज्ञः, आचार्याणां संमतो वा दीक्षाभिमुखो वा मनोज्ञ, अयं वा विद्वान् वाग्मी महाकुलीन इति यो लोकस्य संमतः स मनोज्ञस्तस्य ग्रहणं प्रवचनस्य लोके गौरवोत्पादनहेतुत्वादसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा संस्कारोपेतरूपत्वान्मनोज्ञः। आचार्यादीनां व्याधिपरीषहमिथ्यात्वाद्युपनिपाते सत्यप्रत्युपकाराशया प्रासुकौषधभुक्तिपानाऽऽश्रयपीठफलकसंस्तरादिभिर्धर्मो-

उन्हें शैक्ष कहते हैं। रोगादिके द्वारा जिनका शरीर क्लेशित है उन्हें ग्लान कहते हैं। वृद्ध मुनियोंके समुदायको गण कहते हैं। दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंकी परंपराको कुल कहते हैं। ऋषि मुनि यति अनगार इन चारो प्रकारके मुनियोंके समुदायको संघ कहते हैं। जो बहुत दिनके दीक्षित हों उन्हें साधु कहते हैं। जो सुंदर हों उन्हें मनोज्ञ कहते हैं अथवा जो आचार्यको मान्य हो अथवा दीक्षा लेनेके संमुख हो उसे मनोज्ञ कहते हैं अथवा जो विद्वान हो, वक्ता हो, महाकुलीन हो इसप्रकार लोकमें जो मान्य हो उसे मनोज्ञ कहते हैं। मनोज्ञ ग्रहण करनेका यह भी अभिप्राय है कि संसारमें जो अपने मतका गौरव उत्पन्न करनेका कारण हो ऐसा असंयत सम्यग्दृष्टी भी मनोज्ञ कहलाता है। अथवा जो संवेगादिक संस्कार सहित हैं उन्हें भी मनोज्ञ कहते हैं। ऊपर लिखे हुए आचार्य आदिके व्याधि परीषह आजानेपर अथवा मिथ्यात्वका सम्बन्ध हो जानेपर विना किसी प्रत्युपकारकी इच्छाके प्रासुक औषध, भोजन, पान, आश्रय, आसन, काष्ठासन विछौना आदि धर्मोपकरणोंके द्वारा उस व्याधि वा परीषहको दूर करना मिथ्यात्वको दूर करना, सम्यग्दर्शन स्थापन करना आदि वैयावृत्य कहलाता है। यदि औषध भोजन पान आदि वाह्य सामाग्रियोंका मिलना असंभव हो तो अपने शरीरके द्वारा कफ नाकका मल तथा अंतर्मल आदिको दूर करना और उनके अनुकूल प्रवृत्ति करना

पकरणैस्तत्प्रतीकारः सम्यक्त्वप्रत्यवस्थापनमित्येवमादि वैयावृत्यं । वाह्यस्यौषधभुक्तिपानादेरसंभवे स्वकायेन श्लेष्मसिंघाणकांतर्मलाद्यपकर्षणादि तदानुकू-ल्यानुष्ठानं च वैयावृत्यमिति कथ्यते, तत्पुनः किमर्थं समाध्याध्यानं विचिकित्साऽभावः प्रवचनवात्सल्यं सनाथता चेत्येवमाद्यर्थं ।

स्वाध्यायो भण्यते । स्वस्मै हितोऽध्यायः स्वाध्यायः, स च वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशभेदेन पंचविधः । तत्र निरपेक्षात्मना मुमुक्षुणा विदितवेदितव्येन निरवद्यस्य ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य वा पात्रं प्रति प्रतिपादनं वाचनेत्युच्यते । आत्मोन्नतिप्रकटनार्थं पराभिसंधनार्थमुपहाससंघर्षप्रहस-नादिवर्जितः संशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा ग्रन्थस्यार्थस्य तदुभयस्य परं प्रति पर्यनुयोगः पृच्छना । अधिगतपदार्थप्रक्रियस्य तप्तायःपिंडवदर्पित-

वैयावृत्य कहलाता है। समाधि, ध्यान, विचिकित्सा (ग्लानि) का अभाव साधर्मियोंके साथ प्रेमभाव और सबको सनाथ बनाये रखनेके लिये वैयावृत्य किया जाता है।

अब आगे स्वाध्यायको कहते हैं। अपने आत्माका हित करनेवाला अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वह स्वाध्याय वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेशके भेदसे पांच प्रकारका होता है। जिसकी आत्मामें किसी तरहकी अपेक्षा नहीं है, जो केवल मोक्षकी इच्छा रखता है और जानने योग्य सब विषय जिसे मालूम हैं ऐसे किसी मनुष्य वा मुनिके द्वारा किसी योग्य पात्रके लिए निर्दोष ग्रंथ अथवा अर्थ अथवा ग्रंथ (पाठ) अर्थ दोनों ही प्रतिपादन करना वाचना है। अपने आत्माकी उन्नति प्रकाशित करनेके लिए अथवा अन्य किसीको समझानेके लिए उपहास, संघर्ष, प्रहसन आदिको (हंसी मजाक आदिको) छोडकर संशय दूर करनेके लिए अथवा स्वयं पदार्थका स्वरूप निश्चय करनेके लिए कोई ग्रंथ (पाठ) अर्थ अथवा ग्रंथ अर्थ दोनों ही किसी दूसरेसे पूछना पृच्छना कहलाती है। जिन्हें पदार्थोंकी प्रक्रियाएं सब मालूम हैं और तपाये हुए लोहेके गोलेके समान जिनका चित्त उन्हीं पदार्थोंमें लगा हुआ है ऐसे मुनि जो उन पदार्थोंको अपने मनमें बार बार चिंतवन करते हैं उसको अनुप्रेक्षा कहते हैं। व्रती सब समाचारोंको (श्रेष्ठ आचरणोंको) जाननेवाले और इसलोक

चेतसो मनसाऽभ्यासोऽनुप्रेक्षा । व्रतिनो विदितसमाचारस्येहलौकिकफलनिरपेक्षस्य द्रुतविलम्बितपदाक्षरच्युतादिघोषदोषविशुद्धं परिवर्तनमाम्नायः । दृष्टप्रयोजनपरित्यागादुन्मार्गनिवर्तनार्थं सन्देहव्यावर्तनार्थमपूर्वपदार्थप्रकाशनार्थं धर्मकथाद्यनुष्ठानं धर्मोपदेशः । किमर्थोऽयं स्वाध्याय', प्रज्ञातिशय' प्रशस्ताध्यवसायः प्रवचनस्थिति', संशयोच्छेदः, परवादिशंकाऽभावः, प्रभावना, परमसंवेगः, तपोवृद्धिः, अतीचारविशुद्धिः, कषायेन्द्रियजयः, परमोपायः, इत्येवमाद्यर्थं स्वाध्यायोऽनुष्ठेयः ।

कायोत्सर्ग उच्यते । विविधाना बाह्याभ्यन्तराणां बन्धहेतूना दोषाणामुत्तमस्त्यागो व्युत्सर्गः । आत्मनाऽनुपात्तस्यैकत्वमनापन्नस्याहारादेस्त्यागो बाह्योपधिव्युत्सर्गः । क्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वहास्यरत्यरतिशोकभयादिदोषनिवृत्तिराभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः, कायत्यागश्चाऽभ्यन्तरोपधिव्युत्सर्गः । स द्वि-

संबंधी फलकी अपेक्षासे रहित मुनिका शीघ्रता वा धीरताके कारण पद वा अक्षरोंका छूट जाना आदि घोकनेके दोषोंसे रहित शुद्ध पाठका बार बार वांचना वा घोकना आवृत्ति करना आम्नाय कहलाता है। किसी प्रत्यक्ष प्रयोजनका त्यागकर मिथ्यामार्गको दूर करनेके लिए किसी संदेहको दूर करनेके लिए अथवा अपूर्व पदार्थोंको प्रकाशित करनेके लिए धर्मकथा आदिका कहना उपदेश देना धर्मोपदेश है । यह स्वाध्याय, बुद्धिको बढाना, श्रेष्ठज्ञान प्राप्त करना, शास्त्रज्ञानको स्थिर रखना, संशयोंको दूर करना, परवादियोंकी शंकाका निरास करना, जिनमतकी प्रभावना करना, परम वैराग्य धारण करना, तपकी वृद्धि करना, अतीचारोंकी विशुद्धि करना, कषाय तथा इंद्रियोंको जीतना, और परम मोक्षका उपाय करना आदि कार्योंके लिए सदा करते रहना चाहिए ।

अब आगे कायोत्सर्ग कहते हैं। अनेक तरहके बाह्य तथा आभ्यंतर बंधके कारणरूप दोषोंका उत्तम रीतिसे त्याग करना व्युत्सर्ग है। जिसे आत्मा स्वयं ग्रहण नहीं करता और न जो आत्माके साथ मिलकर एक रूप होता है ऐसे आहार आदिका त्याग करना बाह्योपधि व्युत्सर्ग है। क्रोध मान माया लोभ मिथ्यात्व हास्य रति अरति शोक और भय आदि दोषोंको

विधः । यावज्जीवं, नियतकालश्चेति । तत्र यावज्जीवं त्रिविधः । भक्तप्रत्याख्यानेंगिनीमरणप्रायोपगमनभेदात् । तत्र भक्तप्रत्याख्यानं जघन्येनान्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टेन द्वादशवर्षाणि, अवान्तरो मध्यम उभयोपकारसापेक्षं भक्तप्रत्याख्यानमरणं । परप्रतीकारनिरपेक्षमात्मोपकारसापेक्षमिंगिनीमरणं । उभयोपकारनिरपेक्षं प्रायोपगमनं । नियतकालो द्विविधः, नित्यनैमित्तिकभेदेन । नित्य आवश्यकादयः । नैमित्तिकः पार्वणी क्रिया निषद्याक्रियादयश्च । क्रियाकरणे वन्दनायाः कायोत्सर्गस्य च द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति । तत्र वन्दनाया अनादृतं, स्तब्धं, प्रविष्टं, परपीडितं, दोलायितं, उन्मस्तकं, कच्छपरंगितं, मत्स्योद्वर्तनं, मनोदुष्टं, वेदिकाबंधं, भेष्यत्वं, भीषितं, ऋद्धिगौरवं, शेषगौरवं, स्तेनितं, प्रत्यनीकं, क्रोधादिशल्यं, तर्जितं, शब्दितं, हेडितं, त्रिवलितं, कुंचितं

दूर करना अभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। शरीरका त्याग करना भी आभ्यंतरोपधिव्युत्सर्ग है। वह दो प्रकारका है एक जीवनपर्यंत तक और दूसरा किसी नियतसमयतक । उसमें भी जीवनपर्यंत तकका अभ्यंतरोपाधि व्युत्सर्ग भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनीमरण और प्रायोपगमनके भेदसे तीन प्रकारका है । उसमें भी भक्तप्रत्याख्यानका जघन्यसमय अंतर्मुहूर्त है, उत्कृष्ट बारह वर्ष है और अवांतरके भेदरूपसमय सब मध्यम हैं। स्वपर दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा रखकर जो मरण किया जाता है वह भक्तप्रत्याख्यानमरण है। जिसमें दूसरेके प्रतिकारकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्माके उपकारकी अपेक्षा हो उसे इंगिनीमरण कहते हैं । जिसमें दोनों प्रकारके उपकारकी अपेक्षा न हो उसे प्रायोपगमन कहते हैं । नियतकाल भी नित्य नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। आवश्यक आदि क्रियाओंका करना नित्य है, तथा पर्वके दिनोंमें होनेवाली क्रियाएं करना वा निषद्या क्रिया आदि करना नैमित्तिक है । क्रियाओंके करनेपर भी बंदना और कायोत्सर्गके बत्तीस बत्तीस दोष होते हैं। उनमेंसे बंदनाके अनादृत, स्तब्ध, प्रविष्ट, परपीडित, दोलायित, उन्मस्तक, कच्छपरंगित, मत्स्योद्वर्तन, मनोदुष्ट, वेदिका बंध, भेष्यत्व, भीषित, ऋद्धिगौरव, शेष गौरव, स्तेनित, प्रत्यनीक, क्रोधादिशल्य, तर्जित शब्दित, हेडित, त्रिवलित, कुंचित, आचार्यादिदर्शन, अदृष्ट, संघकरमोचन, आलब्ध, अना-

आचार्यादिदर्शनं, अदृष्टं, संज्ञकरमोचनं, आलब्धं, अनालब्धं, हीनं, अधिकं, मूकं, घर्घरं, चुरुलितमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति । व्युत्सृष्टबाहुयुगले चतुरंगुलान्तरितसमपादे सर्वांगचलनरहिते कायोत्सर्गेऽपि दोषाः स्यु.। घोटकपादं, लतावक्रं, स्तंभावष्टंभं, कुड्याश्रितं, मालिकोद्वहनं, शवरीगुह्यगूहनं, शृंखलितं, लंबितं, उत्तरितं, स्तनदृष्टिः, काकाऽलोकनं, खलीनितं, युगकन्धरं, कपित्थमुष्टि, शीर्षप्रकंपितं, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालनं, भ्रूक्षेपं, उन्मत्तं, पिशाचं, अष्टदिगवलोकनं, ग्रीवोन्नमनं, ग्रीवावनमन, निष्ठीवनं, अंगस्पर्शनमिति द्वात्रिंशद्दोषा भवन्ति ।

क्रिया कुर्वाणो वीर्यापगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन्पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्धया संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिक-

लब्ध, हीन, अधिक, मूक, घर्घर और चुरुलित ऐसे बत्तीस दोष होते हैं। इसीप्रकार जिसमें दोनों भुजाएं लंबी छोड दीं गई हैं, चार अंगुलके अंतरसे दोनों पैर एकसे रक्खे हुए हैं और शरीरके अंग उपांग सब स्थिर हैं ऐसे कायोत्सर्गके भी बत्तीस दोष होते हैं। उनके नाम ये हैं। घोटकपाद, लतावक्र,स्तंभावष्टंभ, कुड्याश्रित, मालिकोद्वहन, शवरीगुह्यगूहन, शृंखलित, लंबित, उत्तरित, स्तनदृष्टि, काकालोकन, खलीनित, युगकंधर, कपित्थमुष्टि, शीर्षप्रकंपित, मूकसंज्ञा, अंगुलिचालन, भ्रूक्षेप, उन्मत्त, पिशाच, पूर्वदिशावलोकन, आग्नेयदिशावलोकन, दक्षिणदिशावलोकन, नैऋत्यदिशावलोकन, पश्चिमदिशावलोकन, वायव्यदिशावलोकन, उत्तर दिशावलोकन, ईशानदिशावलोकन, ग्रीवोन्नमन, ग्रीवावनमन, निष्ठीवन और अंगस्पर्शन। क्रिया करते समय अपनी शक्तिको कभी नहीं छिपाना चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार खडे होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये। यदि खडे होनेकी सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासनसे बैठकर करना चाहिये। मन वचन काय तीनोंकी शुद्धतापूर्वक दोनों हाथोंका संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओंकी प्रतिज्ञाकर सामायिक दंडकका (सामायिक पाठका) उच्चारण करना चाहिये। उससमय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारणकर एक शिरोनति करना चाहिये। इसीप्रकार सामायिक दंडकके समाप्त होनेपर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये इसतरह शास्त्रोंमें

दंडकमुच्चारयेत्; तदावर्तत्रयं यथाजातं शिरोऽवनमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकालं जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदंडकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्तनं, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादशावर्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति । अथवैकस्मिन् प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्ताश्चतस्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणादाधिक्यमिति न दोषाय । उक्तं च—

दुउपादं जहाजादं बारसावत्तमेव च । चदुस्सिरंति सुद्धिं च किदियम्मं पउं बंदे ॥

वक्ष्यमाणक्रियाणां कालनियम उच्यते । दैवसिकस्य नियमस्याष्टोत्तरशतं, रात्रिकस्य तदर्द्धं, पाक्षिकस्य त्रिशतं, चातुर्मासिकस्य चतुःशतं सांवत्स-

लिखे हुए समयतक भगवान जिनेंद्रदेवके गुणोंका स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये इसीप्रकार दूसरे दंडकके प्रारंभ और अंतमें करना चाहिये । इसप्रकार एक एक कायोत्सर्गके बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं । अथवा एक एक प्रदक्षिणामें (दिशा बदलते समय) उसदिशासंबंधी चैत्य चैत्यालयके सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इसप्रकार चारो दिशाओंमें बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये । आवर्त और शिरोनतिका जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता । लिखा भी है । दुउपादं इत्यादि ।

अर्थात्–दो आसनोंसे यथाजात अवस्था धारणकर बारह आवर्त चार शिरोनति और मन वचन कायकी शुद्धि पूर्वक कालका नियमकर प्रभुकी बंदना करनी चाहिये ।

अब आगे कहनेवालीं क्रियाओंके समयका नियम बतलाते हैं–दिनमें होनेवाले नियमका एकसौ आठ उच्छ्वास, रात्रिमें होने वाले नियमका उससे आधा अर्थात् चौउन उच्छ्वास, पाक्षिकनियमका तीनसौ उच्छ्वास, और चातुर्मासिक (चौमासेके) नियमका चारसौ उच्छ्वास और वार्षिक नियमका पांचसौ उच्छ्वास इसप्रकार पांचों नियमोंमें कायोत्सर्गका यह प्रमाण है ।

रिकस्य पंचशतं, उच्छ्वासानामेषां पंचानां नियमात्तस्य कायोत्सर्गस्य प्रमाणं । अहिंसादिपंचनियमानामन्यतमस्यातीचारे सत्येकैकस्याष्टोत्तरशतं, गोचारस्य ग्रामान्तरगमनस्याऽर्हच्छ्रमणनिषद्यानामुच्चारप्रस्रवणयोश्च पंचविंशतिः, ग्रन्थप्रारंभे परिसमाप्तौ च स्वाध्याये वन्दनायां प्रणिधाने च सप्तविंशतिः । एवमुक्तोच्छ्वासप्रमाणेन कायोत्सर्गं कृत्वा अनुत्सुकः सन् किंचित्कालं धर्म्यं शुक्लं च ध्यायेत् । नामस्थापनाद्रव्यभावसंनिधानं पुण्यपापास्रवहेतुरतः चैत्यं चैत्यालयो गुरवो निषद्यास्थानादयश्च सम्यग्दृष्टीनां क्रियार्हा भवन्ति । अचेतनात्मका व्यपगतदानबुद्धयः कल्पवृक्षचिन्तामणयो यथा च देहिनां पुण्यानुरूपेणाभिलषितार्थप्रदायिनस्तथा जिनबिंबानि, भव्यजनभक्त्यनुरूपेण गीर्वाणनिर्वाणपदप्रदायीनि गारुडमुद्रया यथा गरलापहरणं तथा चैत्यालोक-

अहिंसा आदि पांचों नियमोंमेंसे किसी एकमें अतिचार लगनेपर प्रत्येकके एकसौ आठ उच्छ्वासका गोचार अर्थात् आहारकेलिये गमनकरने एक गांवसे दूसरे गांवतक जाने अरहंत देवके पंचकल्याणक अथवा समवसरण आदि क्षेत्राकी बंदनाकेलिये तथा साधुओंके समाधिस्थानकी बंदनाकेलिये जानेके मल मूत्र करने आदि कार्योंमें पच्चीस उच्छ्वास कायोत्सर्गका प्रमाण है, ग्रंथके प्रारंभ और समाप्तिमें स्वाध्याय, बंदना, और प्रणिधान करते समय सत्ताइस उच्छ्वास कायोत्सर्ग करना चाहिये । इसप्रकार ऊपर कहे हुए उच्छ्वासके प्रमाणसे कायोत्सर्ग कर विना किसी उत्सुकताके थोड़ी देर तक धर्मध्यान अथवा शुक्लध्यान करने चाहिये नाम स्थापना द्रव्य भावकी समीपता पुण्य पापका कारण है इसलिये जिनप्रतिमा चैत्यालय गुरु और साधुओंके समाधिस्थान आदि ही सम्यग्दृष्टियोंको क्रिया करने योग्य होते हैं— जिसप्रकार दान देनेकी बुद्धिसे रहित और अचेतन ऐसे कल्पवृक्ष तथा चिंतामणि रत्न अपने अपने पुण्य कर्मोंके अनुसार प्राणियोंको इच्छानुसार पदार्थ देते हैं उसीप्रकार जिनबिंब भी भव्य लोगोंकी भक्तिके अनुसार स्वर्ग और मोक्षपद देते हैं जिसप्रकार गरुडमुद्रासे विष दूर हो जाता है उसी प्रकार जिनबिंबके दर्शन करनेमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है । इसलिये जिनबिंबकी बंदना करनी चाहिये और जिनबिंबके आश्रय होनेसे चैत्यालयकी भी बंदना

नमात्रेणैव दुरितापहरणं भवत्यतश्चैत्यस्य तदाश्रयचैत्यालयस्याऽपि वन्दनाः कार्या ऐहिकार्थनिरपेक्षाः परानुग्रहबुद्धयोऽकारणबान्धवो मोक्षपरिभ्रष्टजनमार्गोपदेशकाः प्रत्यक्षनिस्तारकाश्च ततस्तेभ्यः सकाशात्सम्यक्त्वं ज्ञानाऽऽदानमणुव्रतं संयमो तपश्च भवति ।

तेन गुरूणां पुण्यपुरुषोषितनिरवद्यनिषद्यास्थानादीनामुच्यते क्रियाविधानं । परायत्तस्य सतः क्रियां कुर्वाणस्य कर्मक्षयो न घटते, तस्मादात्माधीनः सचैत्यादीन् प्रतिवन्दनार्थं गत्वा धौतपादस्त्रिप्रदक्षिणीकृत्येर्यापथकायोत्सर्गं कृत्वा प्रथममुपविश्याऽऽलोच्य चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय जिनेन्द्रचन्द्रदर्शनमात्रान्निजनयनचन्द्रकान्तोपलविगलदानन्दाश्रुजलधारापूरपरिप्लावितपक्ष्मपुटोऽनादिभवदुर्लभभगवदर्हत्परमेश्वरपरमभट्टारकप्रतिबिंबदर्शनज-

करनी चाहिये। आचार्य आदि गुरु लोग संसार संबंधी किसी कार्यकी अपेक्षा नहीं रखते उनकी बुद्धि सदा दूसरोंके अनुग्रह करनेमें ही लगी रहती है, वे विना ही कारणके सबके बंधु हैं, मोक्षमार्गसे भ्रष्ट हुए लोगोंको मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले हैं और संसारसे प्रत्यक्ष पारकर देने वाले हैं इसीलिये ऐसे गुरु जनोंसे ही सम्यग्दर्शन, ज्ञानका अभ्यास, अणुव्रत महाव्रत संयम और तप प्राप्त होता है। अतएव पुण्यपुरुषोंके द्वारा सेवन करने योग्य तथा निर्दोष ऐसे गुरु जनोंके निषद्या स्थान आदिकोंकी क्रियाओंका विधान कहते हैं। जो पराधीन होकर क्रियाएं करता है उसके कर्मोंका नाश कभी नहीं होता इसलिये केवल आत्माके आधीन होकर जिनबिंब आदिकोंकी प्रति बंदनाके लिये जाना चाहिये। पैर धोकर तीन प्रदाक्षिणा देकर ईर्यापथ कायोत्सर्ग करना चाहिये, और फिर बैठकर आलोचना करनी चाहिये। तदनंतर "मैं चैतन्यभक्ति कायोत्सर्ग करता हूं" इसप्रकार प्रतिज्ञाकर तथा खडे होकर श्री जिनेंद्रदेव रूपी चंद्रमाके दर्शन करने मात्रसे अपने नेत्ररूपीचंद्रकांतमणिसे निकलते हुए आनंदाश्रुके जलधाराके पूरसे जिसके नेत्रोंके दोनों पलक भीग गये हैं, अनादि संसारमें दुर्लभ ऐसे भगवान अरहंत परमेश्वर परम भट्टारकके प्रतिबिंबके दर्शन करनेसे उत्पन्न हुए उत्कृष्ट हर्षसे जिसका शरीर पुलकित हो गया है, तथा अत्यंत भक्तिके भारसे नम्रीभूत मस्तकपर जिसने अपने दोनों हाथरूपी कम-

नितहर्षोत्कर्षपुलकिततनुरतिभक्तिभरावनतमस्तकन्यस्तहस्तकुशेशयकुड्मलो दंडकद्वयस्यादावन्ते च प्राक्तनक्रमेण प्रवृत्त्य चैत्यस्तवनेन त्रिः परीत्य द्वितीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोच्य पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्योत्थाय पंच परमेष्ठिनः स्तुत्वा तृतीयवारेऽप्युपविश्याऽऽलोचनीयः । एवमात्माधीनता, प्रदक्षिणीकरणं, त्रिवारं, निष्पन्नत्रयं, चतुःशिरो, द्वादशावर्तकमिति क्रियाकर्म षड्विधं भवति । तत्र चतु शिरो दंडकद्वयान्ते प्रणतौ प्रदक्षिणीकरणे च दिक्चतुष्टयावनतौ चतुःशिरो भवति, अथवा शिरःशब्दः प्रधानवाची बन्दनाप्रधानभूता अर्हत्सिद्धसाधुधर्मा इति । उक्तं च राद्धान्तसूत्रे । "आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति ।" एवं देवतास्तवनक्रियायां चैत्यभक्तिं पंचगुरुभक्तिं च कुर्यात् ।

लोंका कुड्मल (जुडे हुए हाथ) रखलिया है ऐसे उस कायोत्सर्ग करनेवालेको दोनों दंडकोंके आदि अंतमें पहिले कहे हुए क्रमसे सब क्रियाएं करनी चाहिये, अर्थात् तीन तीन आवर्त और एकएक शिरोनाति करनी चाहिये । फिर जिनबिंबकी स्तुति करनी चाहिये । दूसरी वार भी बैठकर आलोचना करनी चाहिये तथा "मैं पंच गुरुभक्ति कायोत्सर्ग करता हूं" ऐसी प्रतिज्ञाकर खडे होकर पाचों परमेष्ठियोंकी स्तुति करनी चाहिये । तीसरी वारभी बैठकर आलोचना करनी चाहिये । इसप्रकार आत्माकी स्वाधीनता, तीन प्रदाक्षिणा करना, तीनवार बैठना तीन शुद्धि चार शिरोनाति और बारह आवर्त इसप्रकार छहतरहका क्रियाकर्म कहलाता है । उसमें भी चार शिरोनाति दोनो दंडकोंके आदि अंतमें, प्रणाम करते समय, प्रदाक्षिणा करते समय और चारों दिशाओंमें नमस्कार करते समय इसतरह चार चार करनी चाहिये । अथवा शिर शब्दका प्रधान अर्थ है अरहंत सिद्ध साधु और धर्म बंदनाके योग्य ये चारही प्रधान हैं । इन छह कर्मोंके लिये राद्धांतसूत्रमें भी लिखा है "आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति" अर्थात् आत्मा की स्वाधीनता (पदाहीणं) प्रदाक्षिणा करना, (त्रिखुत्तं) त्रिवारशुद्धि (तिऊणदं) तीनवार निषद्या वा बैठना, (चदुस्सिरं) चार शिरोनाति (वारसावत्तं) बारह आवर्त ये छह कर्म हैं इसप्रकार देवताकी स्तवन क्रिया करते समय चैत्य भक्ति

चतुर्दशीदिने तयोर्मध्ये सिद्धश्रुतशांतिभक्तिर्भवति । अष्टम्यां सिद्धश्रुतचारित्रशांतिभक्तयः । पाक्षिके सिद्धचारित्रशांतिभक्तय । सिद्धप्रतिमायाः सि-द्धभक्तिरेव, जिनप्रतिमायास्तीर्थंकरजन्मनश्च पाक्षिकी क्रिया, अष्टम्यादिक्रियासु दर्शनपूजा त्रिकालवन्दनायोगे शान्तिभक्तितः प्राक् चैत्यभक्तिं पंचगुरुभ-क्तिं च कुर्यात् । चतुर्दशीदिने धर्मव्यासंगादिना क्रियां कर्तुं न लभेत चेत्पाक्षिकेऽष्टम्याः क्रियाः कर्तव्याः । नन्दीश्वरदिने सिद्धनन्दीश्वरपंचगुरुशांतिभक्तयो-ऽभिषेकवन्दनायाः सिद्धचैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयः । स्थिरचलजिनप्रतिमाप्रतिष्ठाया सिद्धशांतिभक्ती भवतः । स्थिरप्रतिमायाश्चतुर्थस्थाने सिद्धभक्तिरालो-

और पंच गुरु भक्ति करनी चाहिये ।

चतुर्दशीके दिन (चैत्य भक्ति और पंच गुरु भक्तिके मध्यमें) सिद्धभक्ति, श्रुत तथा शांति भक्ति करनी चाहिये । अष्टमीके दिन सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति और शांति भक्ति करनी चाहिये । पाक्षिक कायोत्सर्गमें सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति, तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये सिद्धप्रतिमाकी बंदना करते समय सिद्ध भक्ति ही होती है । जिनप्रतिमाकी और तीर्थंकरोंके जन्मके दिन पाक्षिकी क्रिया करनी चाहिये अर्थात् सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । अष्टमी आदिकी क्रियाओंमें दर्शन पूजा करनी चाहिये, तीनों कालोंकी बंदना करनेके समय शांतिभक्तिसे पहिले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिये । चतुर्दशीके दिन धर्मक्रियाओंके व्यासंगसे यदि कोई क्रिया न कर सके तो उसे पाक्षिक कायोत्सर्गके समय अष्टमीके दिनकी क्रिया करनी चाहिये । नंदीश्वर पर्वोंके दिनोंमें सिद्धभक्ति नंदीश्वरभक्ति पंच-गुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । अभिषेक बंदनाके समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पंच-गुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । स्थिर और चल दोनों ही प्रकारकी जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठाके समय सिद्धभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । स्थिरप्रतिमाके चतुर्थस्थानमें सिद्धभक्ति, आलोचना सहित चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । चलप्रतिमाकी अभिषेक बंदना होती है । बडेभारी ऋषि तथा सामान्य ऋषियोंकी

चनासहिता चारित्रभक्तिश्चैत्यपंचगुरुशांतिभक्तयश्च कार्याः। चलप्रतिमाया अभिषेकवन्दना स्यात्। महत्तरस्य सामान्यर्षे सिद्धभक्तिपूर्विका वंदना। सिद्धान्तविदां सिद्धश्रुतभक्ती भवतः। आचार्याणां सिद्धाचार्यभक्ती। सिद्धांतवेदिनामाचार्याणां सिद्धश्रुतसूरिभक्तयः। प्रतिमायोगस्थितस्य मुनेर्लघीयसोऽपि सिद्धयोगशांतिभक्तयः। निष्क्रमणे सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयो भवन्ति प्रदक्षिणीकरणं योगभक्त्या। ज्ञानोत्पत्तौ सिद्धश्रुतचरणयोगशांतिभक्तयो योगभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। जिननिर्वाणक्षेत्रे सिद्धश्रुतचारित्रयोगपरिनिर्वाणशांतिभक्तयो निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणीकरणं। श्रीवर्द्धमानजिननिर्वाणदिने सिद्धनिर्वाणपंचगुरुशांतिभक्तयः निर्वाणभक्त्या प्रदक्षिणा। सामान्यर्षौ मृते शरीरस्य निषधिकास्थानस्य वा सिद्धयोगशांतिभक्तयः। सिद्धांतवेदिनां साधूनां सिद्धश्रु-

सिद्धभक्ति पूर्वक वंदना की जाती है। सिद्धांतके जानकार मुनियोंकी सिद्धभक्ति और श्रुत भक्ति की जाती है। आचार्योंकी सिद्धभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। सिद्धांतके जानकार आचार्योंकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति की जाती है। प्रतिमायोग धारण करनेवाले मुनि चाहे छोटे भी हों तो भी उनकी सिद्धभक्ति योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है। दीक्षाकल्याणकके समय सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति तथा शांतिभक्ति की जाती है और उससमय योगभक्तिके पाठ पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके समय सिद्ध भक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है और योगभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। तीर्थंकरके निर्वाणक्षेत्रमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति परिनिर्वाणभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा देनी चाहिये। श्रीवर्द्धमान जिनेंद्रदेवके निर्वाण होनेके दिन सिद्धभक्ति निर्वाणभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है तथा निर्वाणभक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा दी जाती है। सामान्य ऋषिके स्वर्गवासके समय सिद्धभक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है तथा उनके शरीरकी वा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति, योगभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। सिद्धांतवेत्ता मुनियोंके स्वर्गवासके समय, उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुत-

तयोगशांतिभक्तयः । उत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशांतिभक्तयः । सैद्धांतोत्तरयोगिनां सिद्धचारित्रयोगशान्तिभक्तयः । आचार्यस्य सिद्धयोगाचार्यशान्तिभक्तयः । सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशान्तिभक्तयः । उत्तरयोगिनामाचार्याणां सिद्धचारित्रयोगाचार्यशान्तिभक्तयः । उत्तरयोगिनः सैद्धांताचार्यस्य सिद्धश्रुतयोगाचार्यशान्तिभक्तयः । अनंतरोक्ता अष्टौ क्रियाः शरीरस्य निषद्यास्थानस्य च । श्रुतपंचम्यां सिद्धश्रुतभक्तिपूर्विकां वाचनां गृहीत्वा तदनु स्वाध्यायं गृह्णतः श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा गृहीतस्वाध्यायाः कृतश्रुतभक्तयः स्वाध्यायं निष्ठाप्य समाप्तौ शान्तिभक्तिं कुर्युः । संन्यासप्रारंभे सिद्ध-

भक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। उत्तर योगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति, योगभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांतोत्तरयोगियोंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। आचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। सैद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति, योगभक्ति, आचार्यभक्ति, शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी आचार्योंके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति चारित्रभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति शांतिभक्ति की जाती है। उत्तरयोगी सिद्धांताचार्यके स्वर्गवासके समय उनके शरीरकी तथा निषद्यास्थानकी सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति योगभक्ति आचार्यभक्ति और शांतिभक्ति की जाती है। (ऊपर कही हुई आठों क्रियाएं शरीर और निषद्यास्थान की भी होती हैं जैसी कि उपर दिखलाई जा चुकी हैं) श्रुतपंचमीके दिन सिद्धभक्ति तथा श्रुतभक्ति पूर्वक वाचना नामका स्वाध्याय ग्रहण करना चाहिये, उसके बाद स्वाध्यायकर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये फिर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्तिकर स्वाध्यायको पूर्णकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये।

संन्यासके प्रारंभके समय सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति कर वाचना ग्रहण कर फिर श्रुतभक्ति

श्रुतभक्ती कृत्वा गृहीतवाचनाः कृतश्रुतसूरिभक्तयः स्वाध्यायं गृहीत्वा श्रुतभक्तौ स्वाध्यायं निष्ठापयेयुः । वाचनानिष्ठापनेऽपीमां क्रियां कृत्वा समाप्तौ शान्तिभक्तिं कुर्वन्तु । संन्यासस्थितस्य स्वाध्यायग्रहणे महाश्रुतसूरिभक्ती कृत्वा गृहीतस्वाध्यायं महाश्रुतभक्तौ निष्ठापयन्तु । दैवसिकरात्रिगोचरीप्रतिक्रमणे सिद्धप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तीर्नियमेन कुर्यात् । योगग्रहणे मोक्षे च योगभक्तिः । पाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणे सिद्धचारित्रप्रतिक्रमणनिष्ठितकरणचतुर्विंशतितीर्थंकरभक्तिचारित्रालोचनागुरुभक्तयः बृहदालोचना गुरुभक्तिर्लघीयसी आचार्यभक्तिश्च करणीया । शेषप्रतिक्रमणे चारित्रालोचनाबृहदालोचनागुरुभक्तिं विना शेषाः कर्तव्याः । दीक्षाग्रहणे लुंचने च सिद्धयोगभक्ती कृत्वा लुंचनावसाने सिद्धभक्तिः करणीया । सिद्धयोगभक्ती कृत्वा प्रत्याख्यानं गृहीत्वाऽऽचार्यभक्तिं कृत्वाचार्यमभिवन्द्य सिद्धभक्तिं कृत्वा प्रत्याख्यानं मोचयेत् । श्रुतभक्तिमाचार्यभक्तिं च कृत्वा

तथा आचार्य भक्तिकर स्वाध्याय ग्रहणकर श्रुतभक्तिमें स्वाध्याय पूर्णकर देना चाहिये । वाचना करनेके समय भी यही क्रियाकर समाप्तिके समय शांतिभक्ति करनी चाहिये । संन्यासमें स्थित होकर स्वाध्याय ग्रहण करते समय महाश्रुतभक्ति तथा महाआचार्यभक्ति कर फिर स्वाध्याय ग्रहणकर महा श्रुतभक्तिमें ही स्वाध्याय करना चाहिये । देवासिक (दिनके) प्रतिक्रमणमें रात्रिके प्रतिक्रमणमें गोचरी प्रतिक्रमणमें नियमसे सिद्धप्रतिक्रमण निष्ठित चारित्रभक्ति और चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति करनी चाहिये। योग ग्रहण करते समय और समाप्तिके समय योगभक्ति की जाती है । पाक्षिकप्रतिक्रमण चातुर्मासिकप्रतिक्रमण और सांवत्सरिकप्रतिक्रमणमें सिद्धप्रतिक्रमण, तथा चारित्रप्रतिक्रमणके साथ साथ चारित्रभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकरभक्ति चारित्रआलोचना गुरुभक्ति बडीआलोचना गुरुभक्ति और फिर छोटी आचार्य भक्ति करनी चाहिये । बाकीके प्रतिक्रमणोंमें चारित्रआलोचना, बडीआलोचना और गुरुभक्तिके विना सब भक्तियां करनी चाहिये । दीक्षा ग्रहण करते समय और केशलोंच करते समय सिद्धभक्ति और योगभक्ति करके केशलोंचके अंतमें सिद्धभक्ति करनी चाहिये । फिर सिद्धभक्ति तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये तदनंतर आचार्यभक्ति करके आचार्य वंदना करनी चाहिये और फिर सिद्धभक्ति करके प्रत्याख्यानको छोडदेना

गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापने श्रुतभक्तिं करोतु । मंगलगोचरमध्यान्हे सिद्धचैत्यपंचगुरुशान्तिभक्तिं कुर्यात् । मंगलगोचरप्रत्याख्याने महासिद्धयोगभक्ती कृत्वा गृहीतप्रत्याख्यान आचार्यशान्तिभक्ती कुर्यात् । वर्षाकाले योगग्रहणे निष्ठापने च सिद्धयोगपंचचैत्यगुरुभक्तय: कार्या:, चैत्यभक्त्या प्रदक्षिणीकुर्वन् सालोचनव्युत्सर्गं चतसृषु दिक्षु कुर्यात् । सिद्धांतवाचनाग्रहणे सिद्धश्रुतभक्ती कृत्वा तदनु श्रुताचार्यभक्तिं कृत्वा गृहीतस्वाध्यायस्तन्निष्ठापने श्रुतशान्तिभक्ती करोतु । सिद्धांतस्यार्थाधिकाराणां समाप्तावेकैकं कायोत्सर्गं कुर्यात् । अर्थाधिकाराणां सुबहुमान्यत्वात्तेषामादौ सिद्धश्रुतसूरिभक्ती कृत्वा समाप्तावप्येतेन क्रमेण प्रवर्तिते सति षट् कायोत्सर्गा भवन्ति । गुरूणामनुज्ञया ज्ञानविज्ञानवैराग्यसम्पन्नो विनीतो धर्मशील स्थिरश्च भूत्वाऽऽचार्यपदव्या योग्य: साधुगुरु-

चाहिये । फिर श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय ग्रहणकर उस स्वाध्यायके करते समय श्रुतभक्ति करनी चाहिये । मंगलके विषयभूत मध्याह्नके समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति करनी चाहिये । मंगलके विषय भूत मध्यान्ह कालके प्रत्याख्यानके समय महासिद्धभक्ति तथा योगभक्ति करके प्रत्याख्यान ग्रहण करना चाहिये और फिर आचार्य भक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । वर्षाऋतुमें योग ग्रहण करते समय और निष्ठापन ग्रहण करते समय सिद्धभक्ति, योगभक्ति, पंचचैत्य, गुरुभक्ति करनी चाहिये फिर चैत्य भक्तिके साथ प्रदक्षिणा देकर चारों दिशाओंमें आलोचना पूर्वक कायोत्सर्ग करना चाहिये । सिद्धांतग्रंथोंके वाचनेके समय सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति करनी चाहिये और फिर श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति करके स्वाध्याय करना चाहिये और उसके निष्ठापनके समय श्रुतभक्ति तथा शांतिभक्ति करनी चाहिये । सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार समाप्त होनेके समय एक एक कायोत्सर्ग करना चाहिये । सिद्धांत ग्रंथोंके अर्थाधिकार सबसे अधिक मान्य हैं इसलिये उनके प्रारंभमें सिद्धभक्ति श्रुतभक्ति और आचार्यभक्ति करनी चाहिये तथा समाप्त होनेके समय भी ये ही क्रियायें कर अंतमें छह कायोत्सर्ग करने चाहियें जो ज्ञान वैराग्य विज्ञान सहित है विनीत है धर्मशील है और आचार्यपदके योग्य है उसे स्थिर होकर साधु तथा गुरुके समक्ष सिद्धभक्ति

समक्षे सिद्धाचार्यभक्तिं कृत्वाऽऽचार्यपदवीं गृहीत्वा शान्तिभक्तिं कुर्यात् । एवमुक्ता क्रिया यथायोग्यं जघन्यमध्यमोत्तमश्रावकैः संयतैश्च करणीयाः । किमर्थो व्युत्सर्गो निःसंगत्वं निर्भयत्वं जीविताशाव्युदासो दोषच्छेदो मोक्षमार्गभावनापरत्वमित्येवमाद्यर्थं ।

अथ ध्यानप्रस्ताव. । एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं, एकस्मिन् क्रियासाधनेऽग्रं मुखं यस्याश्चिन्ताया इत्येकाग्रचिन्ता । तस्या निरोधोऽन्यत्राऽसंचारस्तदेकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानं । तस्य योगश्चतुर्विधः, ध्यान, ध्येयं, ध्याता, फलमिति । तत्र ध्यानं चिन्ताप्रबंधलक्षणं । ध्येयमप्रशस्तप्रशस्तपरिणामकारणं । ध्याता कषायकलुषितो गुप्तेन्द्रियश्च । फलं संसारभ्रमणं स्वर्गापवर्गसुखं च । तदेतच्चतुरंगध्यानमप्रशस्तप्रशस्तभेदेन द्विविधं, श्रेयोधिकारेऽप्रशस्तोपन्यासः परिज्ञातस्य

और आचार्यभक्ति करके आचार्यपदवी ग्रहण करनी चाहिये और फिर शांतिभक्ति करनी चाहिये इसप्रकार जो क्रियाएं उपर कहीं हैं वे अपनी योग्यताके अनुसार उत्तम मध्यम जघन्य श्रावकों को तथा मुनियोंको करनी चाहिये । यह कायोत्सर्ग परिग्रहोंका त्याग करनेकेलिये निर्भयरहने केलिये जीवित रहनेकी आशाका त्याग करनेकेलिये दोषोंका नाश करनेके लिये और मोक्षमार्गकी भावनामें तत्पर रहनेकेलिये करना चाहिये ।

अब आगे ध्यानका प्रकरण लिखते हैं। एकाग्रचिन्ताका निरोध करना ध्यान है । जो चिंतवन किसी एक ही क्रियाके साधन करनेमें मुख्य हो उसे एकाग्रचिंता कहते हैं । उस एकाग्र चिंताका निरोध करना अर्थात् किसी एक मुख्य पदार्थको छोडकर अन्य सब पदार्थोंके चिंतवनका त्याग कर देना एकाग्रचिंतानिरोध कहलाता है और उसीको ध्यान कहते हैं । उस ध्यानका योग, ध्यान, ध्येय, ध्याता और फलके भेदसे चार प्रकारका होता है । चिंतवन करना ध्यान है । जो अशुभ तथा शुभ परिणामोंका कारण हो उसे ध्येय कहते हैं । कषायोंसे जिसका चित्त कलुषित है अथवा जो मन वचन काय तथा इंद्रियोंको वश करनेवाला है वह ध्याता वा ध्यान करनेवाला कहलाता है । उसका फल संसारमें परिभ्रमण करना अथवा स्वर्ग मोक्षके सुखोंकी प्राप्ति होना है । जिसके ऊपर लिखे हुए चार अंग हैं ऐसा ध्यान अशुभ और शुभके भेदसे

प्रहेयत्वोपपत्ते. । अप्रशस्तं द्विविधमार्त्तं रौद्रं चेति । तत्राऽऽर्त्तं बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदाद्द्विविकल्पं। तत्र परानुमेयं बाह्यं शोचनक्रन्दनविलपनपरिदेवन-विषयसंगपरिभवविस्मयादिलक्षणं। स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकार्त्तध्यानं, अ मनोज्ञसंप्रयोगमनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं, उत्पन्नस्य च विनाशसंकल्पाध्यवसानमिति चतुःप्रकारं । तद्यथा--अमनोज्ञं दु:खसाधनं, तच्च बाह्यमाध्यात्मिकमिति द्विविधं । तत्र बाह्यं चेतनकृतमचेतनकृतमिति द्विप्रकारं । तत्र चेतनकृतं देवमनुष्यतिर्यक्संपादितमसातं, अचेतनकृतं च विषकंटकाग्निशस्त्रक्षारशीतोष्णादिजनितदु:खं । आध्यात्मिककारणं शारीरं मानसमिति द्विविधं । तत्र शारीरं

दो प्रकारका है। यद्यपि यहांपर मोक्षमार्गका अधिकार है तथापि जानकर त्यागकर देनेके लिए ही अशुभ ध्यानोंका वर्णन किया है। आर्त और रौद्रके भेदसे अशुभध्यान दो प्रकारका है। उसमें भी बाह्य और अध्यात्मके भेदसे आर्तध्यान भी दो प्रकारका है। अन्य लोग जिसका अनुमान कर सकें उसे बाह्य कहते हैं। शोक करना, रोना, विलाप करना, खूब जोरसे रोना, विषयोंकी इच्छा करना, तिरस्कार करना तथा अभिमान करना आदि बाह्य आर्तध्यान कहलाता है। जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक आर्तध्यान कहते हैं। वह आध्यात्मिक आर्तध्यान चार प्रकारका होता है। अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न होनेके संकल्पका चिंतवन करना, अमनोज्ञ पदार्थके साथ सम्बन्ध उत्पन्न होनेपर उसके विनाश होनेके संकल्पका चिंतवन करना, मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका चिंतवन करना और मनोज्ञ पदार्थोंके साथ संबंध हो जानेपर उनके विनाश न होनेके संकल्पका चिंतवन करना। इन्हीं चारों आर्तध्यानोंका स्वरूप आगे बतलाते हैं। दुःखोंके कारणोंको अमनोज्ञ कहते हैं वह अमनोज्ञ बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें भी बाह्य अमनोज्ञ चेतनका किया हुआ और अचेतनका किया हुआ ऐसे दो प्रकारका है। देव मनुष्य और तिर्यंचोंके द्वारा दिया हुआ दुःख चेतनके द्वारा किया हुआ बाह्य अमनोज्ञ है और विष, कांटा, अग्नि, शस्त्र, क्षार, शीत, उष्ण आदिके द्वारा प्राप्त हुआ दुःख अचेतन कृत बाह्य

वातपित्तश्लेष्मवैषम्यसमुद्भवशिरोक्षिदंतकुक्षिशूलादिजनितं । मानसं चाऽरतिभयशोकभयजुगुप्साविषाददौर्मनस्यादिजनितमित्यादिदुःखसाधनममनोज्ञं, तेन संप्रयोगः स कथं नाम मे नोत्पद्यत इति चिन्ताप्रबंधः, संकल्पस्तस्याध्यवसानं तीव्रकषायानुरंजनं, एतदमनोज्ञसंप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं प्रथमार्तं । एतद्दुःखसाधनसद्भावे तस्य विनाशकांक्षोत्पन्नविनाशसंकल्पाध्यवसानं द्वितीयार्तं । मनोज्ञं नाम धनधान्यहिरण्यसुवर्णवस्तुवाहनशयनाऽऽसनस्रक्चन्दनवनितादिसुखसाधनं मे स्यादिति गर्द्धनं । मनोज्ञविप्रयोगस्यानुत्पत्तिसंकल्पाध्यवसानं तृतीयार्तं । सुखसाधनसद्भावे तेन विप्रयोगो मे न स्यादिति

अमनोज्ञ है। आध्यात्मिक अमनोज्ञ भी शारीरिक और मानसिकके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें वात पित्त श्लेष्माकी विषमतासे उत्पन्न हुई मस्तक आंख दांत और पेट आदिकी पीडासे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन शारीरिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है तथा अरति, शोक, भय, जुगुप्सा विषाद चित्तकी मलिनता आदिसे उत्पन्न हुआ दुःखका साधन मानसिक आध्यात्मिक अमनोज्ञ है। इन चारों प्रकारके अमनोज्ञोंका संबंध मेरे साथ उत्पन्न न हो इसप्रकारके संकल्पका बार बार चिंतवन करना और वह भी तीव्र कषायोंके संबंधसे चिंतवन करना अमनोज्ञ पदार्थके साथ संबंध उत्पन्न न होनेके संकल्पका चिंतवन नामका पहिला आर्तध्यान कहलाता है। इन दुःखोंके कारण उत्पन्न होनेपर उनके विनाश होनेकी इच्छा उत्पन्न होनेसे उनके विनाशके संकल्पका बार बार चिंतवन करना दूसरा आर्तध्यान है। धन धान्य हिरण्य [चांदी] सुवर्ण, वस्त्र, सवारी, शय्या, आसन, माला, चंदन, और स्त्री आदि सुखोंके साधनोंको मनोज्ञ कहते हैं। ये मनोज्ञ पदार्थ मेरे हों इसप्रकार चिंतवन करना मनोज्ञ पदार्थोंके वियोग होनेपर उनके उत्पन्न होनेके संकल्पका बार बार चिंतवन करना नामका तीसरा आर्तध्यान कहलाता है। सुखोंके साधन प्राप्त होनेपर "मेरे उनका वियोग कभी न हो" इसप्रकारका संकल्प करते रहना चौथा आर्तध्यान कहलाता है। ये चारों प्रकारके आर्तध्यान कृष्ण नील कापोत लेश्याओंके बलसे होते हैं तथा प्रमादसे ही उत्पन्न होते हैं। यह आर्तध्यान अप्रमत्तसे पहिले पहिले

संकल्पः उत्पन्नविनाशसंकल्पाध्यवसानं चतुर्थारौद्रं । एतच्चतुर्विधार्तध्यानं कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं प्रागप्रमत्तात्षड्गुणस्थानभूमिक मन्तर्मुहूर्तकालमतः परं दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावपरोक्षज्ञानत्वात्तिर्यग्गतिफलसंवर्त्तनीयमिति ।

रौद्रं च बाह्याऽऽध्यात्मिकभेदेन द्विविधं । तत्र परानुमेयं बाह्यं परुषनिष्ठुराऽऽक्रोशननिर्भर्त्सनबन्धनतर्जनताडनपीडनपरदारातिक्रमणादिलक्षणं । स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं तत्र हिंसानंदमृषानन्दस्तेयानन्दविषयसंरक्षणानन्दभेदाच्चतुर्विधं । तीव्रकषायानुरंजनं हिंसानन्दं प्रथमरौद्रं । स्वबुद्धिविकल्पितयुक्तिभिः परेषां श्रद्धेयरूपाभिः परवचनं प्रति मृषावचने संकल्पाध्यवसानं मृषानंदं द्वितीयरौद्रं । हठात्कारेण प्रमादप्रतीक्षया वा परस्वापहरणं प्रति संकल्पाध्यवसानं तृतीयरौद्रं । चेतनाचेतनलक्षणे स्वपरिग्रहे ममेवेदं स्वमहमेवास्य स्वामीत्यभिनिवेशात्तदपहारकव्यापादनेन संरक्षणं प्रति संकल्पाध्यवसानं संरक्षणानन्दं चतुर्थं

छह गुणस्थानोंमें होता है और अधिकसे अधिक अंतर्मुहूर्ततक होता है। इससे आगे वह दुर्धर है अर्थात् अंतर्मुहूर्तसे अधिक हो ही नहीं सकता। यह परोक्षज्ञान होनेसे क्षायोपशमिक भाव है तथा इसका फल तिर्यंच गतिकी प्राप्ति होता है।

रौद्रध्यान भी बाह्य और आध्यात्मिकके भेदसे दो प्रकारका है। उसमें भी अन्य लोग जिसे अनुमानसे जान सकें उसे बाह्य कहते हैं और कठोर वचन, मर्मभेदी वचन, आक्रोश (गाली गलौज) वचन, तिरस्कार करना, बांधना, तर्जन करना, ताडन करना तथा परस्त्री पर अतिक्रमण करना आदि बाह्य रौद्रध्यान कहलाता है। जिसे अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक रौद्रध्यान कहते हैं और हिंसानंद, मृषानंद, स्तेयानंद तथा विषयसंरक्षणानंदके भेदसे वह आध्यात्मिक रौद्रध्यान चार प्रकारका है। तीव्र कषायके उदयसे हिंसामें आनंद मानना पहिला रौद्रध्यान है। जिनपर दूसरोंको श्रद्धान हो सके ऐसी अपनी बुद्धिके द्वारा कल्पना की हुई युक्तियोंके द्वारा दूसरोंको ठगनेके लिये झूठ बोलनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना मृषानंद नामका दूसरा रौद्रध्यान है। जवर्दस्ती अथवा प्रमादकी प्रतीक्षापूर्वक दूसरेके धनको हरण करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना तीसरा रौद्रध्यान है। चेतन अचेतनरूप अ-

रौद्रं । चतुष्टयमपीदमिति कृष्णनीलकापोतलेश्याबलाधानं प्रमादाधिष्ठानं । प्राक्प्रमत्तात्पंचगुणस्थानभूमिकमन्तर्मुहूर्तकालमतःपरं दुर्धरत्वात् क्षायोपशमिकभावं परोक्षज्ञानत्वादौदयिकभावं वा भावलेश्याकषायप्राधान्यान्नरकगतिफलसंवर्तनीयमिति ।

उभयमप्येतदपध्यानं परिहरन्नपवर्गकामो भिक्षुः परिषहबाधासहिष्णुः शक्तिमदुत्तमसंहननान्वितः प्रशस्तध्यानप्रवणो गिरिगुहादरीकन्दरतरुकोटरसरित्पुलिनपितृवनजीर्णोद्यानशून्यगृहादीनामन्यतमस्मिन् प्रदेशे व्यालपशुमृगषण्ढकमनुष्यादीनामगोचरे तत्रत्यागंतुकजन्तुभिः परिवर्जितेऽत्युष्णातिशीतातिवातातिवर्षातपरहिते समन्तादिन्द्रियमनोविक्षेपहेतुनिराकरणभूते शुचावनुकूलस्पर्शिनि भूमितले यथा सुखमुपविष्टो बद्धपर्यंकासन स्वांके वामपाणितलस्यो-

पने परिग्रहमें 'यह मेरा परिग्रह है मैं इसका स्वामी हूं' इस प्रकार ममत्व रखकर उसके अपहरण करनेवालेका नाशकर उसकी रक्षा करनेके संकल्पका वार वार चिंतवन करना विषय संरक्षणानंद नामका चौथा रौद्रध्यान है। यह चारों ही प्रकारका रौद्रध्यान कृष्ण नील और कापोतलेश्याके बलसे होता है तथा प्रमाद पूर्वक होता है। प्रमत्त गुणस्थानसे पहिले पहिले पांच गुणस्थानोंमें होता है और अंतर्मुहूर्त तक होता है अंतर्मुहूर्तके आगे दुर्धर है अर्थात् इससे अधिक समय तक यह कभी धारण नहीं किया जा सकता। यह परोक्षज्ञानगोचर होनेसे क्षायोपशमिक भाव है अथवा भाव लेश्या और कषायोंकी प्रधानता होनेसे औदयिक भाव है। यह नरकगतिका फल देनेवाला है।

ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान दोनों ही अपध्यान हैं मोक्षकी इच्छा करनेवाले भिक्षुकको ये दोनों ही छोड देना चाहिये। इसके सिवाय उसे परीषहोंकी सब बाधाएं सहन करनी चाहिये उसे शक्तिशाली तथा उत्तम संहननोंका धारक होना चाहिए और शुभध्यान करनेमें निपुण होना चाहिए। जहां ध्यान किया जाय वह स्थान पर्वतकी गुफा, दरी, कंदरा, वृक्षके कोटर, नदियोंके किनारे, स्मशान, जीर्णवन, और सूने मकान आदिमेंसे कोई सा भी एक होना चाहिये परंतु वह ऐसा होना चाहिए जहां सर्प पशु जंगली जानवर नपुंसक और मनुष्य आदि

परि दक्षिणपाणितलमुत्तानं निधाय नेत्रे नात्युन्मीलयन्नातिमीलयन् दन्तैर्दन्ताग्राणि संदधानः प्राणापानप्रचारात्यंतनिग्रहे तीव्रदुःखाकुलचेतस एकाकारपरिणामो न जायते, ततो मन्दमन्दप्राणापानप्रचारः स्यादेवं द्रव्यक्षेत्रकालभावशुद्धिसंयुतस्तत्प्रतिपक्षदोषवर्जितः परमयोगी संसारलतामूलोच्छेदनहेतुभूतं प्रशस्तध्यानं ध्यायेत् ।

तद् द्विविधं, धर्म्यं शुक्लं चेति । तत्र धर्म्यध्यानं बाह्याध्यात्मिकभेदेन द्विप्रकारं । तत्र परानुमेयं बाह्यं सूत्रार्थगवेषणं दृढव्रतशीलगुणानुरागनिभृतकरचरणवदनकायपरिस्पंदवाग्व्यापार जृंभजृंभोद्गारक्षवथुप्राणापानोद्रेकादिविरमणलक्षणं भवति । स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं, तद्दशविधं, अपायविचयं, उपायविचयं, जीव-

न जा सकें, वहांके रहनेवाले तथा बाहरसे आनेवाले जीवोंसे रहित हो, अत्यंत उष्णता [गर्मी] अत्यंत सर्दी अत्यंतवायु अत्यंत वर्षा और अत्यंत धूपसे रहित हो जिसके चारों ओर इंद्रिय और मनको क्षोभ करनेवाले कोई पदार्थ न हों, जो पवित्र हो और जिसका स्पर्श अनुकूल हो ऐसे पृथ्वी तलपर सुखपूर्वक बैठना चाहिए। अपना आसन पर्यंकासन बांधकर बैठना चाहिए अपनी गोदपर बायें हाथकी हथेलीपर दायें हाथको ऊपरकी ओर हथेली कर रखना चाहिये नेत्रोंको न तो विल्कुल खुला ही रखना चाहिये और न विल्कुल बंद ही कर लेना चाहिये। दांतोंसे दांत मिला लेना चाहिए (इस तरह करनेसे ओठोंसे ओठ अपने आप मिल ही जायेंगे) प्राण और अपानके प्रचारका अत्यंत निग्रह करनेसे तीव्र दुःख होता है तथा आकुलित चित्त होता है इसलिए ऐसा करनेसे एकाकार परिणाम कभी नहीं हो सकते अतएव प्राण और अपानका प्रचार मंद मंद रीतिसे होते रहना चाहिए । इसप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भावकी शुद्धता पूर्वक प्रतिपक्षी दोषोंसे रहित परम योगीको संसाररूपी लताकी जड काटनेका कारण ऐसे शुभध्यानका चिंतवन करना चाहिये ।

वह ध्यान दो प्रकारका है एक धर्म्यध्यान और दूसरा शुक्लध्यान। उनमें भी बाह्य और आभ्यंतरके भेदसे धर्म्यध्यान भी दो प्रकारका है। जिसे अन्य लोग भी अनुमानसे जान सकें

विचयं, अजीवविचयं, विपाकविचयं, विरागविचयं, भवविचयं, संस्थानविचयं, आज्ञाविचयं, हेतुविचयं, चेति। एतद्दशविधमपि दृष्टश्रुतानुभूतदोषपरिवर्जनपरस्य मन्दतरकषायानुरंजितस्य भव्यवरपुंडरीकस्य भवति। तत्रापायविचयं नामानाद्यजवंजवे यथेष्टचारिणो जीवस्य मनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोपार्जितपापाना परिवर्जनं तत्कथं नाम मे स्यादिति संकल्पश्चिंताप्रबन्धः प्रथमधर्म्यं। उपायविचयं प्रशस्तमनोवाक्कायप्रवृत्तिविशेषोऽवश्यः कथं मे स्यादिति संकल्पो द्विती-

उसे बाह्य धर्म्यध्यान कहते हैं। सूत्रोंके अर्थकी गवेषणा (विचार वा मनन करना,) व्रतोंको दृढ रखना, शील गुणोंमें अनुराग रखना, हाथ पैर मुह आदि शररिका परिस्पंदन और वाग् व्यापारको बंद करना जंभाई लेना जंभाईके उद्गार प्रकट करना, छींकना, तथा प्राण अपानका उद्रेक आदि सब क्रियाओंका त्याग करना बाह्य धर्म्यध्यान है। जिसे केवल अपना ही आत्मा जान सके उसे आध्यात्मिक कहते हैं। वह आध्यात्मिक धर्म्यध्यान अपायविचय, उपायविचय, जीवविचय, अजीवविचय, विपाक विचय, विराग विचय, भवविचय, संस्थान विचय, आज्ञाविचय और हेतुविचयके भेदसे दश प्रकारका है। जिसने देखे सुने और अनुभव किये हुए दोष सब छोड दिये हैं जिसके कषायोंका उदय अत्यंत मंद है और जो अत्यंत श्रेष्ठ भव्य है उसीके यह दशों प्रकारका धर्म्यध्यान होता है। आगे उन्हींको दिखलाते हैं। "मेरा यह जीव अनादि कालसे इस संसारमें अपनी इच्छानुसार परिभ्रमण कर रहा है इसलिए मेरे मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुए पापोंका त्याग किस प्रकार होगा" इसप्रकार संकल्पकर बार बार चिंतवन करना पहिला अपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। "मेरे सदा और अवश्य रहनेवाली शुभ मन वचन कायकी विशेष प्रवृत्ति किस प्रकार होगी" इसप्रकारका संकल्पकर बार बार चिंतवन करते रहना दूसरा उपायविचय नामका धर्म्यध्यान है। यह जीव उपयोग लक्षणवाला है अर्थात् इसका लक्षण ही उपयोग है अथवा यह उपयोगस्वरूप है, द्रव्यार्थिक नयसे अनादि अनंत है (अनादि कालसे चला आया है और अनंत कालतक रहेगा)

मधर्म्यम् । जीवविचयं-जीव उपयोगलक्षणो द्रव्यार्थादनाद्यनन्तोऽसंख्येयप्रदेशः स्वकृतशुभाशुभकर्मफलोपभोगी गुणवानात्मोपात्तदेहमात्रः प्रदेशसंहरणविसर्पणधर्मा सूक्ष्मोऽव्याघात ऊर्ध्वगतिस्वभावोऽनादिकर्मबन्धनबद्धस्तत्क्षयान्मोक्षभागी गत्यादि-निर्देशादि-सदादि-प्रमाण नयनिक्षेपविषय इत्यादिजीवस्वभावानुचिंतनं तृतीयं धर्म्यं । विपाकविचयमष्टविधकर्माणि नामस्थापनाद्रव्यभावलक्षणानि मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पविस्तृतानि गुडखंडसिताऽमृतमधुरविपाकानि निंबकांजीविषहालाहलकटुकविपाकानि चतुर्विधबंधानि लतादार्वस्थिशैलस्वभावानि कासु कासु गतिषु योनिष्ववस्थासु च जीवानां विषया भवन्तीति वि-

असंख्यात प्रदेशी है अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मोंके फलको भोगनेवाला है, गुणी वा गुण-वाला है, आत्माके द्वारा प्राप्त हुए शरीरके प्रमाणके बराबर है, इसके प्रदेशोंमें संकोच विस्तार होना इसका धर्म वा स्वभाव है, यह सूक्ष्म है अव्याघाती [न किसीको रोकता है और न किसी-से रुकता है] है, ऊर्ध्व गमन करना इसका स्वभाव है, अनादि कालसे लगे हुये कर्मोंके बंधनसे बंधा हुआ है और उन कर्मोंके नाश हो जानेपर मोक्ष सुखका भोक्ता होता है । गति इंद्रिय आदि, नाम स्थापना आदि, निर्देश स्वामित्व आदि सत् संख्या आदि तथा प्रमाण नय निक्षेप आदिके गोचर है अर्थात् इसका स्वरूप इन सबसे जाना जाता है । इसप्रकार जीवके स्वभाव-का चिंतवन करना तीसरा जीवविचय नामका धर्म्यध्यान कहलाता है ।

कर्मोंके आठ भेद हैं तथा नाम स्थापना द्रव्य भावके भेदसे और मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके भेदसे उनके अनेक भेद होते हैं उनमेंसे शुभ कर्मोंका विपाक (उ-दय वा फल देना) गुड खांड (शक्कर) मिश्री और अमृतरूप उत्तरोत्तर मीठा वा श्रेष्ठ हुआ करता है और अशुभ प्रकृतियोंका विपाक नीम, कांजी, विष और हलाहलरूप कडवा वा बुरा दुःख देनेवाला होता है । उन कर्मोंका बंध भी लता (बेल) दारु [लकडी] अस्थि [हड्डी] और पर्वत स्वभावरूप चार प्रकारका होता है । ये सब कर्म किस किस गतिमें किस किस योनिमें और किस किस अवस्थामें जीवोंके विषयभूत होते हैं अर्थात् प्रत्येक गतिमें

पक्वविशेषानुचिन्तनं पंचमधर्म्यं । विरागविचयं शरीरमिदमनित्यमपरित्राणं विनश्वरस्वभावमशुचिदोषाधिष्ठितं सप्तधातुमयं बहुमलपूर्णमनवरतनिस्यंदितस्रोतोबिलमतिबीभत्समाधेयमशौचमपि पूतिगंधि सम्यग्ज्ञानिजनवैराग्यहेतुभूतं नास्त्यत्र किंचित्कमनीयमिन्द्रियसुखानि प्रमुखरसिकानि क्रियावसानविरसानि किंपाकपाकविपाकानि पराधीनान्यस्थानप्रचुरभंगुराणि यावद्यावदेषां रामणीयकं तावत्तावद्भोगिनां तृष्णाप्रसंगोऽनवस्थो यथाऽग्नेरिन्धनैर्जलनिधेः सरित्सहस्रेण न तृप्तिस्तथा लोकस्याप्येतैर्न तृप्तिरुपशान्तिश्चैहिकामुत्रिकविनिपातहेतवस्तानि देहिनः सुखानीति मन्यंते महाद्दुःखकारणान्यनात्मीयत्वाद्दिष्टान्य-

प्रत्येक योनिमें और प्रत्येक अवस्थामें किन किन कर्मोंका बंध उदय होता है वा किन किन कर्मोंकी सत्ता रहती है आदि कर्मोंके विशेष उदयका बार बार चिंतवन करना पांचवां विपाक विचय नामका धर्म्यध्यान है। यह शरीर अनित्य है कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकता, नाश होना इसका स्वभाव है. यह अपवित्र है, दोषोंका स्थान है, सातों धातुओंसे बना हुआ है, अनेक तरहके मलोंसे परिपूर्ण वा भरा हुआ है, इसके नवद्वाररूपी बिल सदा बहते रहते हैं, यह अत्यंत बीभत्स है आधेय है अपवित्र होकर भी दुर्गंधमय है सम्यग्ज्ञानी लोगोंको वैराग्य उत्पन्न होनेका कारण है और इसमें कोई भी पदार्थ वा कुछ भी भाग सुन्दर वा मनोहर नहीं है इंद्रियोंके सुख आरंभमें तो अच्छे लगते हैं परंतु अंतमें बडे ही नीरस हैं पके हुये किंपाक फलके समान ही इनका भी विपाक होता है ये इंद्रियोंके सुख सब पराधीन हैं और बीचमें ही अनेक बार नष्ट हो जाते हैं। जब जबतक ये सुंदर जान पडते हैं तब तबतक भोग करनेवालोंको इनकी तृष्णा बढती ही जाती है। जिसप्रकार इंधनसे अग्निकी तृप्ति नहीं होती और हजारों नदियोंके जलसे समुद्रकी तृप्ति नहीं होती उसीप्रकार संसारमें भी इन विषय सुखोंसे न कभी तृप्ति होती है और न कभी शांति होती हैं . ये विषय सुख इसलोक और परलोक दोनों लोकोंमें अनेक उपद्रव करनेवाले हैं तथा महादुःखके कारण हैं तथापि संसारी प्राणी इन्हें सुख-

१ पकनेपर किंपाक फल बहुत ही सुन्दर होता है परन्तु खानेमें विषके समान [illegible]

ध्वनिष्ठानीति वैराग्यकारणविशेषानुचिन्तनं षष्ठं धर्म्यं । भवविचयं सचित्ताचित्तमिश्रशीतोष्णमिश्रसंवृतविवृतमिश्रभेदासु योनिषु जरायुजाण्डजपोतोपपाद-सम्मूर्च्छनजन्मनो जीवस्य भवाद्भवान्तरसंक्रमणे इषुगतिपाणिमुक्तालांगलिकागोमूत्रिकाश्चतस्रो गतयो भवन्ति । तत्रेषुगतिरविग्रहैकसामयिकी ऋज्वी संसारिणा सिद्ध्यता च जीवानां भवति । पाणिमुक्तैकविग्रहा द्विसामयिकी संसारिणा भवति । लांगलिका द्विविग्रहा त्रिसामयिकी । गोमूत्रिका त्रिविग्रहा चतु:सामयिकी भवति । एवमनादिसंसारे संधावतो जीवस्य गुणविशेषानुपलब्धिरतस्तस्य भवसंक्रमणं निरर्थकमित्येवमादिभवसंक्रमणदोषानुचिंतनं सप्तमं

का कारण मानते हैं यद्यपि ये आत्मीय नहीं हैं आत्मासे बाह्य हैं तथापि लोग इन्हें इष्ट मानते हैं परंतु वास्तवमें देखा जाय तो ये अनिष्ट ही हैं इसप्रकार वैराग्यके विशेष विशेष कारणोंका चिंतवन करना छठा विरागविचय नामका धर्म्यध्यान है। सचित्त,अचित्त,मिश्र,शीत,उष्ण,मिश्र, संवृत,विवृत,मिश्र ये नौ योनियां हैं इनमें यह जीव जरायुज अंडज पोत उपपाद संमूर्च्छन रीतिसे जन्म लेकर एक भवसे दूसरे भवमें परिभ्रमण किया करता है उस समय अर्थात् एक भव छोडकर दूसरे भवमें जाते समय इषु गति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति ये चार गतियां होती हैं। इनमेंसे इषुगति कुटिलतारहित [मोडा रहित] होती है एक समयमें होती है और सीधी होती है तथा संसारी जीवोंके भी होती है और मुक्त होनेवाले जीवोंके भी होती है। पाणिमुक्तागति एकविग्रहा अर्थात् एक मोडा सहित होती है दो समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। लांगलिकागति द्विविग्रहा अर्थात् दो मोडा सहित होती है तीन समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है। गोमूत्रिकागति तीन विग्रहवाली [तीन मोडावाली] होती है चार समयमें होती है और संसारी जीवोंके ही होती है । इसप्रकार अनादि संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवके सम्यग्दर्शन आदि विशेष गुणोंकी प्राप्ति नहीं होती इसलिये इसका संसारमें परिभ्रमण करना व्यर्थ ही है इसप्रकार संसारमें परिभ्रमण करनेके दोषोंका बार बार चिंतवन करना सातवां भवविचय नामका धर्म्यध्यान है ।

धर्म्यं । यथावस्थितमीमांसा संस्थानविचयं तद्द्वादशविधं, अनित्यत्वमशरणत्वं संसार एकत्वमन्यत्वमशुचित्वमास्रवः संवरो निर्जरा लोको बोधिदुर्लभो धर्मस्वाख्यात इत्यनुप्रेक्षा । उक्तं हि—

समुदेति विलयमृच्छति भावो नियमेन पर्ययनयस्य । नोदेति नो विनश्यति भवनतया लिंगितो नित्यम् ॥

तत्रानित्यत्वमात्मना रागादिपरिणामात्मना कर्मणो कर्मभावेन गृहीतानि पुद्गलद्रव्याण्यगृहीतानि परमाण्वादीनि तेषां सर्वेषां द्रव्यात्मना नित्यत्वं, पर्यायात्मना संततमनुपरतभेदसंसर्गवृत्तित्वादनित्यत्वमिमानि हि शरीरेन्द्रियविषयोपभोगपरिभोगद्रव्याणि समुदायरूपाणि जलबुद्बुदवदनवस्थितस्वभावानि

संसारमें जो पदार्थ जिस अवस्थामें विद्यमान है उनका उसीप्रकार विचार वा मनन करना आठवां संस्थान विचय नामका धर्म्यध्यान है। वह अनित्यत्व, अशरणत्व, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म्यस्वाख्यातके भेदसे बारह प्रकारका है इन्हीं बारहोंको अनुप्रेक्षा कहते हैं। लिखा भी है —समुदेति इत्यादि।

पर्याय नयसे समस्त पदार्थ नियमरूपसे उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते रहते हैं परंतु द्रव्यार्थिक नयसे न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट ही होते हैं द्रव्यार्थिक नयसे सब पदार्थ नित्य हैं।

रागादिपरिणाम स्वरूप आत्माके द्वारा जो कर्मोंके योग्य पुद्गल द्रव्य कर्मरूपसे ग्रहण किये गये हैं अथवा परमाणु आदि जो पुद्गल द्रव्य आजतक ग्रहण नहीं किये हैं वे सब द्रव्य रूपसे नित्य हैं परंतु पर्याय नयसे सदा लगे हुए भेदरूप संसर्गके संबंधसे अनित्य हैं, शरीर और इंद्रियोंके विषयोंके उपभोग परिभोग करने योग्य समुदायरूप सब द्रव्य भी जलके बुद्बुदाके समान अनवस्थित स्वभाव हैं अर्थात् शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं। गर्भ आदि विशेष विशेष अवस्थाओंमें भी संयोग और वियोग सदा प्राप्त होते रहते हैं परंतु मोहनीय कर्मके उदयसे यह अज्ञानी जीव इस संसारमें सबको नित्य मानता है संसारमें आत्माके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग स्वभावके सिवाय और कुछ भी नित्य नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अनित्यानुप्रेक्षा है, इ-

गर्भादिष्वदस्याविशेषेषु सदोपलभ्यमानसंयोगविपर्ययाणि मोहोदयादज्ञानी नित्यतां मन्यते, न किंचित्संसारे ध्रुवमस्त्यात्मनो ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावादन्यदिति चिन्तनमनित्यत्वानुप्रेक्षा, एवमस्य चिन्तयतस्तेष्वभिष्वंगाभावाद् भुक्तोज्झितगन्धमाल्यादिष्विव वियोगकालेऽपि विनिपातो नोत्पद्यते ।

अशरणत्वं–शरणं द्विविधं, लौकिकं, लोकोत्तरं चेति । प्रत्येकं त्रिविधं जीवाजीवमिश्रकभेदात् । तत्र लौकिकं जीवशरणं राजा देवता, प्राकाराद्यजीवशरणं, प्राकारान्वितं ग्रामनगरादि मिश्रकं । लोकोत्तरं जीवशरणं पंच गुरवस्तत्प्रतिबिंबाद्यजीवशरणं सधर्मसाधुवर्गोपकरणं मिश्रकशरणं । यथा मृगशावकस्यैकान्ते बलवता क्षुधितेनामिषैषिणा व्याघ्रेणाभिद्रुतस्य न किंचिच्छरणमस्ति तथा जन्मजराव्याधिप्रियवियोगाप्रियसंयोगेप्सितालाभदारिद्र्यदौर्मनस्या-

सप्रकार इस भावनाके चिंतवन करने से उन पदार्थोंमें ममत्व बुद्धि नहीं होती और ममत्वबुद्धि के न होनेसे उपभोग कर छोडे हुए गंघ माला आदि पदार्थोंके समान उनका वियोग होने पर भी किसी तरहका क्लेश उत्पन्न नहीं होता है।

इस संसारमें शरण दो प्रकारका है एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर । तथा वे दोनोंही जीव, अजवि और मिश्रके भेदसे तीन तीन प्रकारके हैं । राजा देवता आदि लौकिक जीव-शरण हैं । कोट शहर पनाह आदि लौकिक अजीव शरण हैं और कोट खाई सहित गांव नगर आदि लौकिक मिश्र शरण हैं । अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये पांचो ही गुरु लोकोत्तर जीव शरण हैं इन अरहंत आदिके प्रतिबिंब आदि लोकोत्तर अजीव शरण हैं। धर्मसहित साधुओंका समुदाय तथा उनके उपकरण आदि लोकोत्तर मिश्र शरण हैं । जिसप्रकार किसी एकांत स्थानमें अत्यंत बलवान भूखा और मांसका लोलुपी बाघ किसी हिरणके बच्चेको पकड़ लेता है और फिर उसे कोई नहीं बचा सकता उसीप्रकार जन्म जरा (बुढापा) व्याधियां, इष्टका वियोग अनिष्टका संयोग, इष्टका लाभ न होना, दरिद्रता, दुर्मनस्कता (मनका चंचल रहना) आदिसे उत्पन्न हुए अनेक दुःखोंसे ग्रसित हुए इस प्राणीको कोई शरण नहीं है अर्थात् उन दुःखोंसे इसे कोई नहीं बचा सकता । यह अत्यंत पुष्ट किया हुआ वा पाला पोसा हुआ शरीर

विषमुत्थितेन दुःखेनाभिभूतस्य जन्तोः शरणं न विद्यते। परिपुष्टमपि शरीरं भोजनं प्रति सहायी भवति न व्यसनोपनिपाते सति। यत्नेन संचिता अर्थां न भवान्तरमनुगच्छन्ति। संविभक्तसुखदुःखाः सुहृदोऽपि न मरणकाले परित्रायन्ते बान्धवः समुदिताश्च रुजा परीतं न परिपान्ति। अस्ति चेत्सुचरितो धर्मो व्यसनमहार्णवे तरणोपायो भवति। मृत्युना नीयमानस्य सहस्रनयनादयोऽपि न शरणं तस्माद्भवव्यसनसंकटे धर्म एव शरणं सुहृदर्थोऽप्यनुयायी नान्यत्किंचिच्छरणमिति भावनमशरणानुप्रेक्षा। एवमस्य भावयतो नित्यमशरणोऽस्मीति भृशमुद्विग्नस्य सांसारिकेषु भावेषु ममत्वविगमो भवति, भगवदर्हत्सर्वज्ञप्रणीतागम एव प्रतिपन्नो भवेत्।

संसारस्य, संसारोऽसंसारो नो ससारस्तत्त्रितयव्यपायश्चेति चतुर्विधावस्था। तत्र संसारश्चतुसृषु गतिषु नानायोनिविकल्पासु परिभ्रमणं, शिवपदपरमा-

भी केवल भोजनकेलिये सहायक होता है परंतु किसी आपत्तिके आजानेपर यह बिल्कुल सहायता नहीं देता। बडे यत्नसे संचित किया हुआ धन भी दूसरे जन्ममें साथ नहीं जाता। सुख दुखको बाँटने वाले मित्रगण भी मरनेके समय रक्षा नहीं कर सकते और भाई बंधु सब मिलकर भी उस रोगी पुरुषको नहीं बचा सकते। इस संसारमें इस जीवको यदि कोई सहायक है तो अच्छीतरह आचरण किया हुआ धर्म ही है। यह धर्म ही संसाररूपी महासागरसे पार होनेका साधन है जिससमय मृत्यु इस जीवको ले जाने लगता है उससमय इंद्र भी इसकी रक्षा नहीं कर सकता इसीलिये संसारकी समस्त आपत्तियोंके समय एक धर्म ही शरण है मित्र और धन भी इस जीवके साथी नहीं हैं अतएव इस संसारमें कोई भी शरण नहीं है इसप्रकार चिंतवन करना अशरणानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे "मैं सदा अशरण हूं अर्थात् मेरा कोई शरण नहीं है" इस तरहकी भावनासे इस जीवका चित्त सदा उद्विग्न वा विरक्त रहता है और फिर विरक्त परिणाम होनेसे संसारके समस्त पदार्थोंसे उसका ममत्व छूट जाता है तथा भगवान सर्वज्ञ अरहंतदेवके कहे हुए आगममें उसका चित्त तल्लीन हो जाता है।

संसार, असंसार, नो संसार और त्रितयव्यपाय अर्थात् तीनोंसे रहित ये संसारकी चार

[मृतदुखप्रतिष्ठाऽसंसार', सयोगकेवलिनश्चतुर्गतिभ्रमणाभावात्संसारान्तप्राप्त्यभावान्नेषत्संसारो नोसंसार इति, तत्त्रितयव्यपायोऽयोगिकेवलिनो भवभ्रमणाभावात् सयोगकेवलिवत्प्रदेशपरिस्पन्दविगमात्संसारान्तावाप्त्यभावाच्च देहपरिस्पन्दाऽभावेऽपि देहिन- सततं प्रदेशचलनमस्ति ततः सदा संसार एव, सिद्धानामयोगिकेवलिना च नास्ति प्रदेशचलनं तद्योग्यकर्मसामाग्र्यभावादितरेषां त्रिधाऽवसीयते । स पुन' संसारः, अभव्यापेक्षयाऽनाद्यनिधनः, भव्यसामान्यार्पणयाऽनादिरुच्छेदवान्, भव्यविशेषविवक्षया क्वचित्सादि- सनिधनः । असंसारः सादिरनिधनः । तत्त्रितयव्यपायोऽन्तर्मुहूर्तकालः । नोसंसारो जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कृष्टेन देशोनपूर्वकोटिलक्ष- । सादिः सपर्यवसानः संसारो जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्तः उत्कृष्टेनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तनकालः । स च संसारो द्र-

अवस्थाएं हैं । अनेक भेदरूप योनियोंमें जन्म मरण करते हुए चारों गतियोंमें परिभ्रमण करना संसार कहलाता है । मोक्षपदरूप परमामृत सुखकी प्राप्ति होना असंसार है । सयोग केवली चारों गतियोंमें परिभ्रमण नहीं करते और उनके संसारका अंत भी हुआ नहीं है इसलिये उन्हें ईषत्संसार अथवा नोसंसार कहते हैं । तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् इन तीनोंसे रहित अयोग केवली हैं क्योंकि उनके संसारके परिभ्रमणका अभाव है सयोग केवलियोंके समान उनके प्रदेशोंका परिस्पंदन नहीं होता और उनके संसारका अंत नहीं हुआ है । शरीरके परिस्पंदनका अभाव होने पर भी संसारी जीवोंके सदा प्रदेश परिस्पंदन हुआ करता है । इसीलिये उनके सदा संसार रहता है । सिद्ध और अयोग केवलियोंके प्रदेश परिस्पंदन नहीं होता क्योंकि उनके प्रदेश परिस्पंदन होनेके लिये उसके योग्य कर्म रूप सामग्रीका अभाव है शेष जीवोंके मन वचन काय इन तीनों योगोंके द्वारा प्रदेश परिस्पंदन होता है । वह संसार अभव्य जीवकी अपेक्षासे अनादि तथा अनिधन है [आदि अंत दोनोंसे रहित है] भव्य सामान्यकी अपेक्षासे अनादि तो है परंतु नष्ट हो सकता है । भव्य विशेषकी अपेक्षासे क्वचित् सादि है परंतु सनिधन अर्थात् सांत है । असंसार अर्थात् मोक्ष सादि है परंतु अनिधन अर्थात् अंत रहित है । तत्त्रितयव्यपाय अर्थात् चौदहवें गुणस्थानका समय अंतर्मुहूर्त है नोसंसारका समय जघन्य, अंतर्मुहूर्त

व्यक्षेत्रकालभवभावभेदात् पंचविधो, द्रव्यनिमित्त. संसारो द्विविधः कर्मनोकर्मविवक्षाभेदात्कर्मद्रव्यसंसारो ज्ञानावरणादिविषयो नोकर्मद्रव्यसंसार औदारिकवैक्रियिकाऽऽहारकतैजसशरीराणामाहारशरीरेन्द्रियाऽऽनपानभाषामनःपर्याप्तीनां विषयः । क्षेत्रहेतुकः संसारो द्विविध , स्वक्षेत्रपरक्षेत्रविकल्पात् । लोकाकाशतुल्यप्रदेशस्यात्मनः कर्मोदयवशात्संहरणविसर्पणधर्मिणो हीनाधिकाकाशप्रदेशपरिमाणावगाहत्वं स्वक्षेत्रसंसारः । सम्मूर्च्छनगर्भोपपादजन्मनवयोनिविकल्पावलम्बन परक्षेत्रसंसारः । परमार्थव्यवहारभेदेन कालो द्विविधः । तत्र यावंतो लोकाकाशप्रदेशास्तावंतः कालाणवः परस्परं प्रबंधा एकैकस्मिन्नाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकव्यापिनो मुख्योपचारप्रदेशकल्पनाभावान्निरवयवाः, मुख्यप्रदेशकल्पना हि धर्माधर्मजीवाकाशेषु पुद्गलेषु च द्व्यणुकादिस्क-

है और उत्कृष्ट कुछ कम एक करोड पूर्व है। सादि और सांत संसारका समय जघन्य अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरावर्तन है। द्रव्य क्षेत्र काल भव भावके भेदसे संसार पांचप्रकारका है। द्रव्यनिमित्तिक संसार अर्थात् द्रव्यसंसार कर्म और नोकर्मकी विवक्षाके भेदसे दो प्रकार है। कर्म द्रव्य संसार ज्ञानावरण आदि कर्मोंके विषयभूत है और नोकर्म द्रव्यसंसार औदारिक वैक्रियिक आहारक ये तीन शरीर तथा आहार शरीर इंद्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके विषयभूत है। जिसमें क्षेत्र ही कारण हो उसको क्षेत्रसंसार कहते हैं वह स्वक्षेत्र और परक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। इस आत्माके प्रदेश लोकाकाशके प्रदेशोंके बराबर हैं परंतु कर्मोंके उदयके कारण उनमें संकोच विस्तार होनेकी शक्ति है। इसीलिये यह आत्मा कभी आकाशके थोडेसे प्रदेशोंमें ही अवगाहन करता है और कभी अधिक प्रदेशोंमें। इसीको स्वक्षेत्र संसार कहते हैं। संमूर्च्छन गर्भ उपपाद इन तीनों जन्म तथा नौ योनियोंके भेदोंका सहारा लेकर जन्म मरण करना परक्षेत्र संसार है। परमार्थ और व्यवहारके भेदसे काल भी दो प्रकारका है। लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतने ही कालाणु हैं वे परस्पर कभी बंध रूप नहीं होते अर्थात् मिलते नहीं, एक एक लोकाकाशके प्रदेशपर एक एक कालाणु है इसतरह वे कालाणु समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं, उनमें न तो मुख्य प्रदेश कल्पना है और न उपचारसे

न्धेषु परमाणुषूपचारप्रदेशकल्पना प्रचयशक्तियोगात् । विनाशहेत्वभावान्नित्याः, विविधपरिणामिषड्द्रव्यपर्यायपरिवर्तनहेतुत्वादनित्याः; कालाणवः स्पर्शगन्धवर्णयोगाभावादमूर्ताः, जीवप्रदेशवत्प्रदेशान्तरसंक्रमणाऽभावान्निष्क्रिया इति परमार्थकालः । व्यवहारकालः परमार्थकालवर्तनया लब्धकालव्यपदेशः परिणामादिलक्षणः । कुतश्चित्परिच्छिन्नोऽपरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतुः । भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति त्रिविधः कालः परस्परापेक्षत्वात्, यथा वृक्षपंक्तिमनुसरतो देवदत्तस्यैकैकं तरुं प्रति प्राप्तप्राप्नुवत्प्राप्स्यद्व्यपदेशस्तथा तत्कालाणूननुसरतां द्रव्याणां क्रमेण वर्तनापर्यायमनुभवतां भूतवर्तमानभविष्यद्व्यवहारसद्भावः ।

प्रदेश कल्पना है इसलिये वे कालाणु अवयवरहित हैं। धर्म, अधर्म, जीव, आकाश और द्व्यणुक आदि स्कंधरूप पुद्गलोंमें मुख्य प्रदेश कल्पना है तथा परस्पर मिलनेकी शक्ति होनेसे पुद्गल परमाणुमें उपचारसे प्रदेश कल्पना है। कालाणुमें किसी तरहकी प्रदेश कल्पना नहीं है, उनके नाश होनेका कोई कारण नहीं है इसलिये वे नित्य हैं और अनेक तरहसे परिणमनशील ऐसे छहों द्रव्योंकी पर्यायोंके परिवर्तनका कारण होनेसे अनित्य हैं। उनमें रूप रस गंध स्पर्शका संबंध नहीं है इसलिये अमूर्त हैं और जीवोंके प्रदेशोंके समान वे आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक जा आ नहीं सक्ते इसलिये निष्क्रिय वा क्रिया रहित हैं ऐसे उन कालाणुओंको परमार्थ काल कहते हैं। परमार्थकालकी वर्तनाके द्वारा जिसे कालसंज्ञाप्राप्त हुई है परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व जिसका लक्षण है अर्थात् इन तीनोंसे जो जाना जाता है उसे व्यवहार काल कहते हैं यह व्यवहारकाल किसी अन्यसे (सूर्योदयादिकसे) परिच्छिन्न है और अपरिच्छिन्न द्रव्योंके परिच्छेदका कारण है।

वह व्यवहार काल भूत वर्तमान और भविष्यतके भेदसे तीन प्रकारका है। जिसप्रकार अनेक वृक्षोंकी पंक्तियोंके अनुसार कोई देवदत्त नामका पुरुष चल रहा हो तो उसके लिए एक एक वृक्षके प्रति यह भाव उत्पन्न होता है कि इस वृक्षतक वह पहुंच गया इस वृक्षके समीप जा रहा हैं और इस वृक्षपर जायगा उसीप्रकार अनुक्रमसे वर्तमान पर्यायोंका अनुभव करते

तत्र परमार्थकाले भूतादिव्यवहारो गौणो व्यवहारकाले तु मुख्यः । किमत्र बहुनोक्तेन परमार्थकालेन कारणभूतेन तेन षट् द्रव्याणि कार्यरूपाणि ,परावर्त्यन्ते तेषां द्रव्याणां परिच्छेदकाः समयावलिकादयः । द्रव्यस्यैकपर्याय एकसमयो द्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानन्तपर्यायकलापाः द्वित्रिचतुःसंख्येया असंख्येया अनन्तसमया यथा प्रदीपः स्वपरप्रकाशकस्तथैव कालः स्वपरप्रवर्त्तकः, अथवा सर्वजघन्यगतिपरिणतस्य परमाणोः स्वावगाहाकाशप्रदेशव्यतिक्रमणं कालः परमनिरुद्धो निर्विभागः समय इति कालसंसारः ।

भवनिमित्तसंसारो द्वात्रिंशद्विधः पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः प्रत्येकं चतुर्विधाः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तभेदात् । वनस्पतिकायिका द्वेधा प्रत्येकशरीराः

हुए उन कालाणुओंके अनुसार रहनेवाले द्रव्योंके भूत वर्तमान भविष्यत व्यवहार प्रगट होता है। उसमें भी परमार्थकालमें भूत वर्तमान भविष्यत्का व्यवहार गौण रीतिसे होता है और व्यवहार कालमें इन तीनोंका व्यवहार मुख्य रीतिसे होता है। यहांपर बहुत कहनेसे क्या लाभ है केवल इतना समझ लेना चाहिये कि उस कारणभूत परमार्थ कालसे छहों द्रव्य कार्यरूप परिणत होते रहते हैं। उन द्रव्योंका परिच्छेद करनेवाले समय आवलिका आदि हैं। द्रव्यका एक पर्याय एक समयरूप है तथा दो तीन चार संख्यात असंख्यात अनंत पर्यायोंका समूह दो तीन चार संख्यात असंख्यात और अनंत समयरूप हैं। जिसप्रकार दीपक स्वप्रकाशक होकर परप्रकाशक है उसीप्रकार काल भी स्वप्रवर्तक होकर परप्रवर्तक है। अथवा सबसे जघन्यगतिरूप परिणत हुआ पुद्गलका परमाणु जितनी देरमें अपने रहने योग्य आकाशके प्रदेशका उल्लंघन करता है अर्थात् समीपवर्ती प्रदेश तक पहुंचता है उतने परम निरुद्ध और विभाग रहित कालको समय कहते हैं यह काल संसार है।

भव निमित्तक संसार बत्तीस प्रकारका है पृथिवीकायिक, जलकायिक,वायुकायिक और अग्निकायिक। ये चारों ही प्रकारके जीव सूक्ष्म पर्याप्तक,सूक्ष्म अपर्याप्तक,बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तकके भेदसे चार चार प्रकारके होते हैं सब सोलह भेद होते हैं। वनस्पतिकायिक दो प्रकारके

साधारणशरीराश्चेति । प्रत्येकशरीरा द्वेधा पर्याप्तकापर्याप्तकभेदात् । साधारणशरीरा आहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्त्युत्पादननिमित्तमाहारवर्गणायाः गृहीतपुद्गलपिंडास्तत्र यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र मरणमनंतानां यत्रैकश्चोत्पद्यते तत्राऽनंतानामुत्पत्तिर्भवति तेषां लिंगं गूढशिरादि । उक्तं च—

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च । साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥ १ ॥
जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं । चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं ॥ २ ॥
गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं । साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ ३ ॥

हैं एक प्रत्येक शरीर और दूसरा साधारण शरीर । पर्याप्तक अपर्याप्तकके भेदसे प्रत्येक शरीर भी दो प्रकारके हैं । आहार,शरीर,इंद्रिय,उच्छ्वास,निश्वास और पर्याप्तिके निमित्त कारण आहार वर्गणाके पुद्गलपिंड ग्रहण करनेवाले साधारण शरीर कहलाते हैं । उनमेंसे यदि एकका मरण हो तो सबका मरण हो जाता है और एककी उत्पत्ति हो तो अनंत जीवों की उत्पत्ति होती है । उन साधारण जीवोंका चिन्ह गूढशिरा आदि है । लिखा भी है—साहारण इत्यादि ।

भावार्थ— इन साधारण जीवोंका साधारण ही आहार होता है और साधारण ही श्वासोच्छ्वासका ग्रहण होता है साधारण जीवोंका लक्षण परमागममें साधारण ही कहा है ॥ १९१ ॥ साधारण जीवोंमें जहांपर एक जीव मरण करता है वहांपर अनंत जीवोंका मरण होता है और जहांपर एक जीव उत्पन्न होता है वहां अनंत जीव उत्पन्न होते हैं ॥ १९२ ॥ जिनका शिरा,संधि पर्व अप्रगट हों और जिसका भंग करने पर समान भंग हो और दोनों भंगोंमें परस्पर तंतु न लगा रहे छेदन करनेपर भी वृद्धि हो जाय उसको साधारण शरीर कहते हैं और इसके विपरीतको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८६ ॥ जिन वनस्पतियोंके मूल, कंद, त्वचा, प्रवाल (नये पत्ते) छोटीशाखा पत्र फूल फल तथा बीजोंको तोडनेसे समान भंग हो उनको साधारण कहते हैं और जिनका भंग समान न हो उनको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८७ ॥ जिन वनस्पतिके कंद मूल क्षुद्रशाखा या स्कंध-

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलवीजे। सममंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ ४ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंधस्स वावि वहलतरी। छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया दु तणुकदरी ॥ ५ ॥

ते च साधारणशरीराश्चतुर्धा सूक्ष्मवादरपर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात्। द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः प्रत्येकं द्वेधा, पर्याप्तकापर्याप्तकविकल्पात्। पंचेन्द्रियाश्चतुर्धा संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तकापर्याप्तकापेक्षयेति।

भावनिमित्तसंसारो द्वेधा स्वभावपरभावाश्रयात्। स्वभावो मिथ्यादर्शनकषायादिः परभावो ज्ञानावरणादिकर्मरसादिः। एवमेतस्मिन्ननेकयोनिकुलकोटिबहुशतसहस्रसंकटे संसारे परिभ्रमन्नयं जीवः कर्मयंत्रप्रेरितः पिता भूत्वा भ्राता पुत्रः पौत्रश्च भवति। माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति। किं बहुना स्वयमात्मनः पुत्रो भवतीत्येवमादिसंसारस्वभावचिन्तनं संसारानुप्रेक्षा। एवमस्य भावयतः संसारदुःखभयादुद्विग्नस्य ततो निर्वेदो भवति निर्विण्णश्च संसारप्रहाणाय प्रतियतते।

की छाल मोटी हो उनको साधारण कहते हैं और जिसकी छाल पतली हो उसको प्रत्येक कहते हैं ॥ १८८ ॥ (ये गोम्मटसार जीवकांडके गाथा हैं)

वे साधारण जीव सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक, वादर पर्याप्तक और वादर अपर्याप्तक के भेदसे चार प्रकारके हैं दो इंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय जीव भी पर्याप्तक अपर्याप्तकके भेदसे दो दो प्रकारके हैं। पंचेंद्रिय जीव संज्ञी पर्याप्तक, संज्ञी अपर्याप्तक, असंज्ञी पर्याप्तक और असंज्ञी अपर्याप्तकके भेदसे चार प्रकारके हैं इस प्रकार सब बत्तीस भेद होते हैं। भावनिमित्तक संसार के दो भेद हैं एक स्वभाव दूसरा परभाव। मिथ्यादर्शन कषाय आदि स्वभाव संसार है और ज्ञानावरणादि कर्मोंके रसादिक परभावसंसार है। इस प्रकार अनेक योनियां और लाखों कुल कोडियोंसे भरे हुए इस संसारमें परिभ्रमण करता हुआ यह जीव कर्मरूपी यंत्रोंसे प्रेरित होकर पिता होकर भाई हो जाता है, पुत्र हो जाता है तथा पौत्र हो जाता है माता होकर बहिन स्त्री और पुत्री हो जाता है। बहुत कहनेसे क्या? वह स्वयं मरकर अपना पुत्र हो जाता है। इस प्रकार संसारके स्वभावका चिंतवन करना संसारानुप्रेक्षा है।

अथैकत्वानुप्रेक्षावर्णनं । जन्मजरामरणाऽऽवृत्तिमहादुःखानुभवनं प्रति सहायानपेक्षत्वमेकत्वं । एकत्वमनेकत्वमेतदुभयं द्रव्यक्षेत्रकालभावविकल्पं । तत्र द्रव्यैकत्वं जीवादिष्वन्यतमद्रव्यविषयत्वेनाऽभेदत्वं । क्षेत्रैकत्वं परमाण्ववगाढप्रदेशः । कालैकत्वमभेदसमयः । भावैकत्वं मोक्षमार्गः । तथाऽनेकत्वमपि भेदविषयं, न हि किंचिदेकमेव निश्चितमस्ति अनेकमेव वा, एकमपि सामान्यार्पणया विशेषार्पणयाऽनेकमपि भवति। तत्र परिप्राप्तबाह्याभ्यंतरोपधित्याग- स्य सम्यग्ज्ञानादेकत्वनिश्चयमास्कन्दतः यथाख्यातचारित्रैकवृत्तेर्मोक्षमार्गभावेनैकत्वं तत्प्राप्तय एक एवाऽहं न कश्चिन्मे स्वः परो वा विद्यते, एक एव जायते एक एव म्रियते, न मे कश्चिज्जनः परजनो वा व्याधिजरामरणादीनि दुःखान्यपहरति, बंधुमित्राणि श्मशानं नाऽतिवर्तन्ते, धर्म एव मे सहायः

बार बार होनेवाले जन्म जरा मरणोंके महादुखोंके अनुभवके लिए सहायताकी अपेक्षा न रखना एकत्व है। एकत्व और अनेकत्व ये दोनों ही द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार प्रकारके हैं। जीवादिक पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थके विषयको लेकर अभेद बुद्धि रखना द्रव्य एकत्व है। परमाणुके रहने योग्य प्रदेशको क्षेत्र एकत्व कहते हैं। अभेदरूप समयको काल एकत्व कहते हैं। तथा मोक्षमार्गको भाव एकत्व कहते हैं। जिसप्रकार अभेद विषयको एकत्व कहते हैं उसीप्रकार भेद विषयको अनेकत्व कहते हैं। संसारमें न तो कोई भी पदार्थ एक है और न अनेक ही है किंतु सामान्यकी अपेक्षासे एक है और विशेषकी अपेक्षासे अनेक है। जिस जीवने बाह्य आभ्यंतर उपाधियोंका त्याग कर दिया है तथा सम्यग्ज्ञानसे एकत्वका निश्चय कर लिया है उसके एक यथाख्यात चारित्रकी वृत्ति धारण करनेसे मोक्षमार्गके भाव प्रगट होते हैं इसलिये उसके वह एकत्व कहलाता है। उस एकत्वकी प्राप्तिके लिए "इस संसारमें मैं अकेला हूं स्व और पर मेरा कोई नहीं है मैं अकेला ही जन्म लेता हूं और अकेला ही मरता हूं स्वजन और परजन कोई मनुष्य भी मेरी व्याधियां, बुढापा, और मरण आदिके दुःखोंको दूर नहीं कर सकता। बंधु मित्र आदि श्मशानसे आगे नहीं जा सकते एक धर्म ही मेरा सहायक है और वही ऐसा है जो कभी नाश न होगा" इसप्रकार चिंतवन करना एकत्वानुप्रेक्षा है।

सदाऽनपायीति चिन्तनमेकत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतः स्वजनेषु प्रीत्यनुबंधो न भवति, परजनेषु द्वेषानुबंधो नोपजायते, ततो निःसंगताऽभ्युपजायते, ततो निःसगतो मोक्षोऽवघटते । इत्येकत्वानुप्रेक्षा ।

अथाऽन्यत्वाऽनुप्रेक्षाकरणं । अन्यत्वं चतुर्धा व्यवतिष्ठते, नामस्थापनाद्रव्यभावाऽऽलंबनभेदात् । आत्मा जीव इति नामभेदः । काष्ठप्रतिमेति स्थापनाभेदः । जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति द्रव्यभेदः । एकस्मिन्नपि द्रव्ये बालो युवा मनुष्यो देव इत्यादि भावभेदः जीवकर्मणो बंधं प्रत्येकत्वे सत्यपि लक्षणभेदादन्यत्वं, जीवस्तावज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणः । वर्णगंधरसस्पर्शवन्तः पुद्गला इति लक्षणकृतो भेदः । प्रतिसमयमनंतानंताः कर्माणो योगवशादागत्य जीवप्रदेशेष्वन्योन्यप्रदेशाऽनुप्रविष्टाः सन्त कषायवशादवतिष्ठन्ते । समयं प्रत्यनंतानंताः कर्मपुद्गला जीवं परित्यज्य प्रच्यवंत इति बंधं प्रति भेदः । नोकर्म-

इसप्रकार चिंतवन करनेसे अपने कुटुंबी लोगोंसे प्रेम नहीं बढता और अन्य लोगोंमें द्वेष नहीं बढता । इसप्रकार राग द्वेषका अभाव होनेसे निःसंगता बढती है और निःसंगता बढनेसे मोक्ष प्राप्त होती है । इसप्रकार एकत्व अनुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

आगे अन्यत्वानुप्रेक्षा कहते हैं । नाम, स्थापना, द्रव्य, भावके अवलंबनके भेदसे अन्यत्व चार प्रकारका होता है । आत्मा है जीव है यह नाम भेद है । काष्ठ पाषाण आदिकी बनाई हुई प्रतिमा स्थापना भेद है । यह जीव द्रव्य है, अजीव द्रव्य है आदि द्रव्य भेद है । एक ही जीव द्रव्यमें बालक युवा मनुष्य देव आदि भाव भेद है । यद्यपि जीव कर्मोंका बंध होनेसे दोनों एक हो रहे हैं तथापि लक्षणभेदसे दोनों भिन्न भिन्न हैं । जीव ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगरूप है तथा पुद्गल वर्ण गंध रस स्पर्शवाला है । यह लक्षणसे दोनोंमें भेद हुआ । प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म परमाणु योगोंके निमित्तसे आते हैं तथा जीवके प्रदेशोंमे (दूध पानीके समान) परस्पर एक दूसरेके प्रदेशोंमें मिलकर एक हो जाते हैं कषायोंके निमित्तसे उनमें ठहरनेकी शक्ति हो जाती है इसलिये वे वहीं ठहर भी जाते हैं । इसीप्रकार प्रतिसमयमें अनंतानंत कर्म पुद्गल जीवको छोडकर अलग भी हो जाते हैं । इसप्रकार यह बंधके प्रति भेद सिद्ध होता है ।

पुद्गला अपि बन्धनगुणेन जीवे क्षीरनीरन्यायेनैकबन्धनबद्धा भूत्वा प्रतिक्षणं निर्जीर्यन्ते । जीवः स्वयं कर्मवशात्तत्प्रायोग्यशरीरं निर्माय शरीरस्थोऽपि यथा नखरोमदन्तास्थिषु न विद्यते तथा रुधिरवसाशुक्ररसश्लेष्मपित्तमूत्रपुरीषमस्तिष्कादिषु प्रदेशेष्वपि नास्ति एवं कर्मशरीरावयवेभ्यो जीवस्याऽन्यत्वं ततः कुशलपुरुषप्रयोगसन्निधौ शरीरादत्यंतव्यतिरेकेणाऽऽत्मनो ज्ञानादिभिरनंतैरहेयैर्मुक्तावस्थानं तदवाप्तय—ऐन्द्रियिकं शरीरमतींद्रियोऽहं, अज्ञं शरीरं ज्ञस्वभावोऽहं, अनित्यं शरीरमनित्योऽहं । आद्यन्तवच्छरीरमनाद्यनन्तोऽहं, बहूनि मे शरीरशतसहस्राण्यतीतानि संसारे परिभ्रमतः स एवाऽहमन्यस्तेभ्य इति

नोकर्म पुद्गल भी बंधन गुणसे जीवमें दूध पानीके समान एक बंधरूप हो जाते हैं और फिर प्रति क्षणमें निर्जीर्ण होते जाते हैं। यह जीव स्वयं कर्मोंके निमित्तसे उनके योग्य शरीर बनाता है परंतु वह उस शरीरमें रहकर भी जिसप्रकार नख, रोम और दांतोंकी हड्डियोंमें नहीं रहता उसीप्रकार रुधिर वसा शुक्ररस श्लेष्मा पित्त मूत्र पुरीष (विष्टा) और मास्तिष्क आदिके प्रदेशोंमें भी नहीं रहता। इसप्रकार यह जीव कर्मोंके द्वारा बने हुए शरीरसे बिल्कुल भिन्न रहता है। तथा किसी कुशल पुरुषके प्रयोग करनेपर (मोक्षके लिए उद्यम करनेपर) शरीरसे अत्यंत भिन्न होनेके कारण जो आत्मासे कभी भिन्न हो नहीं सकते ऐसे ज्ञान आदि अनंत गुणोंके साथ साथ मोक्ष स्थानमें जाकर प्राप्त होता है। उस मोक्षस्थानके प्राप्त होनेके लिए "यह शरीर इंद्रिमय है मैं अतींद्रिय हूं शरीर अज्ञान वा जड स्वरूप है परंतु मैं ज्ञान स्वरूप हूं यह शरीर अनित्य है मैं नित्य हूं, शरीरका आदि अंत दोनों हैं परंतु मेरा न आदि है, न अंत है संसारमें परिभ्रमण करते हुए मेरे बहुतसे शरीर व्यतीत हो गये परंतु मैं ज्योंका त्यों वही बना हुआ हूं और उन शरीरोंसे सर्वथा भिन्न हूं। हे अंग (हे जीव) यह मेरा आत्मा शरीरसे भी भिन्न है फिर धन धान्य आदि वाह्य परिग्रहोंकी तो बात ही क्या है अर्थात् उनसे तो भिन्न है ही।" इसप्रकार चिंतवन करना अन्यत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार मनको समाधान करनेवाले इस जीवके

शरीरादन्यत्वं मे। किमंग पुनर्बाह्येभ्यः परिग्रहेभ्य इति चिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा । एवमस्य मनः समादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते ततश्च श्रेयसे वर्तते । इत्यन्यत्वाऽनुप्रेक्षा ।

अथाऽशुचित्वाऽनुप्रेक्षा-शुचित्वं द्वेधा, लोकोत्तरं लौकिकं चेति । तत्रात्मनो विशुद्धध्यानजलप्रक्षालितकर्मकलङ्कस्य स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरशुचित्वं तत्साधनानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपांसि तद्वन्तश्च साधवस्तदधिष्ठानानि च निर्वाणभूम्यादिकानि तत्प्राप्त्युपायत्वाच्छुचित्व्यपदेशमर्हन्ति । लौकिकं शुचित्वं कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयसलिलाऽज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदादष्टविधं । तदिदं शरीरं शुचीकर्तुं न शक्यते कुतोऽत्यंताऽशुचित्वात् शरीरमिदमाद्युत्त-

शरीर आदिमें स्पृहा वा इच्छा नहीं होती और उन पदार्थोंकी इच्छा न होनेसे यह जीव अपने कल्याणमें लग जाता है। इसप्रकार यह अन्यत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

अब आगे अशुचित्वानुप्रेक्षा कहते हैं। पवित्रता दो प्रकारकी है एक लोकोत्तर और दूसरी लौकिक। जिसने विशुद्ध ध्यानरूपी जलसे अपने समस्त कर्ममल कलंक धो डाले हैं नष्ट कर दिए हैं ऐसे आत्माका अपने ही आत्मामें स्थिर रहना लोकोत्तर पवित्रता कहलाती है। उस लोकोत्तर पवित्रताके साधन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपश्चरण है तथा सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र तपश्चरणको धारण करनेवाले साधु जन उस पवित्रताके अधिष्ठान वा आधार हैं। अथवा उस लोकोत्तर पवित्रताके उपायभूत होनेसे निर्वाण भूमि आदि भी पवित्र कहलाती हैं। लौकिक पवित्रता काल, अग्नि, भस्म, मृत्तिका (मिट्टी) गोमय (गोबर) जल, अज्ञान और निर्विचिकित्साके भेदसे आठ प्रकार है। परंतु यह शरीर किसी तरहसे पवित्र नहीं किया जा सकता इसका भी कारण यह है कि वह अत्यंत अपवित्र है इस शरीरके आदिकारण और अंतके कारण दोनोंही अपवित्र हैं इसलिये यह शरीर भी अपवित्र है इसी बातको आगे दिखलाते हैं— शरीरके आदि कारण अर्थात् शरीर बननेके कारण शुक्र और शोणित हैं परंतु वे दोनों ही महा अपवित्र हैं। शरीरके उत्तर कारण आहारका परिणाम

राशुचिकारणादिभिरशुचि लक्ष्यते। तद्यथा—आद्यं तावत्करणं शरीरस्य शुक्रं शोणितं च तदुभयमत्यन्ताऽशुचि। उत्तरकारणमाहारपरिणामादिकवलाऽऽहारोपि ग्रस्तमात्रः श्लेष्माशयं प्राप्य श्लेष्मणा द्रवीकृतोऽधिकमशुचि भवति, ततः पित्ताशयं प्राप्य पच्यमान आम्लीकृतोऽशुचिरेव भवति, पक्वो वाताशयमवाप्य वायुना विभज्यमानः खलरसभावेन भिद्यते। खलभागो मूत्रपुरीषादिद्रवघनमलविकारेण विविच्यते, रसभागः शोणितमांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रभावेन परिणमते। सर्वेषां चैषामशुचीनां भाजनं शरीरमवस्करवदशक्यप्रतीकारं। खल्विदं शरीरं स्नानानुलेपनधूपप्रघर्षणवस्त्रमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुं अंगारवदाश्रितमपि द्रव्यमाश्वेवाऽऽत्मस्वभावमापादयति। शरीरजा अपि ,गोमयगोरोचनदन्तिदंतचमरीबालमृगनाभिखड्गविषाणमयूरपिच्छसर्पम-

आदि हैं यह आहार खानेके साथही श्लेष्माशयको प्राप्त होता है और वहांपर श्लेष्माके द्वारा कुछ द्रवीभूत होकर पतला होकर और अधिक अपवित्र हो जाता है। वहांसे पित्ताशयमें पहुंचता है और पककर कुछ खट्टासा होकर उससे भी अधिक अपवित्र हो जाता है। पककर वह आहार वाताशयमें पहुंचता है और वहां वायुसे विभक्त होकर (अलग अलग भागों में बटकर) खलभाग और रसभागोंमें बट जाता है। खलभाग मूत्र पुरीष (विष्टा) आदि पतले और कडे मलके विकारमें परिणत होकर अलग निकल जाता है। रसभाग शोणित (रक्त वा खून लोहू) मांस मेदा हड्डी मज्जा और शुक्ररूप परिणत हो जाता है इन सब अपवित्र पदार्थोंका पात्र यह शरीर है जो कि विष्टाके समान ऐसा अपवित्र है कि उसको पवित्र करनेका कोई उपाय हो ही नहीं सकता। इस शरीरकी अपवित्रता स्नान करने उबटन लगाने घिसने और वस्त्र माला आदिके पहननेसे भी कभी दूर नहीं हो सकती। जिस प्रकार अग्निमें जो चीज पड जाती है वह भी अग्नि रूप ही हो जाती है उसी प्रकार चन्दनादि जो पदार्थ इस शरीर पर लगाये जाते हैं वे भी शरीर रूपही अपवित्र हो जाते हैं। गोवर, गोरोचन, हाथीके दांत, चमरीगायके बाल, मृगनाभि (कस्तूरी) गेंडाके सींग, मोरकी पूंछ, सांपकी मणि और सीपके मोती आदि शरीरसे उत्पन्न हुए पदार्थ संसारमें पवित्र माने जाते हैं परंतु इस शरीरमें कुछ भी भाग

णिशुक्तिमुक्ताफलादयो लोकेषु शुचित्वमुपगताः । नास्त्यत्र पुनः शरीरे किंचित्कमनीयं शुचि वा न जलादीनां शुचिहेतुत्वं । सम्यग्दर्शनादि पुनर्भाव्यमानं जीवस्यात्यंतिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीति तत्त्वभावनमशुचित्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य संस्मरतः शरीरनिर्वेदो भवति निर्विण्णश्च जन्मोदधितरणाय चित्तं समाधत्त इत्यशुचित्वाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

अथाऽऽस्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । तद्वैराग्यार्थमास्रवोपक्षेपः, आस्रवा हीहाऽमुत्र चापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियादयः । अविरलसरलशाल्मलीसहकारवंशकुडंगप्रमथनस्वच्छसरोवरसलिलावगाहनमृदुसुखस्पर्शिमहीतलविहरणादिगुणसंपन्ना वनविहारिणो मदांधा महाकाया बलवन्तोऽपि वा-

पवित्र और सुंदर नहीं है न जलादि ही इसको पवित्रताके कारण हो सकते हैं । इस संसारमें केवल सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही ऐसे हैं कि जिनकी भावना करनेसे यह जीव अत्यंत पवित्र हो जाता है । इसप्रकार शरीरके वास्तविक तत्त्वका चिंतवन करना अशुचित्वानुप्रेक्षा है । इस प्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे शरीरसे वैराग्य उत्पन्न होता है और फिर विरक्त होकर यह जीव जन्म मरण रूपी महासागरके पार होनेकेलिये अपना चित्त लगाता है। इस प्रकार अशुचित्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे आस्रवानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—यहांपर अनुप्रेक्षाओंमें केवल वैराग्य प्रगट करनेके लिए ही आस्रव ग्रहण किया गया है। संसारमें कर्मोंके जितने आस्रव हैं वे सब इस लोक और परलोक दोनों जगह इस जीवके स्वाभाविक गुणोंका नाश करनेवाले हैं। ये इंद्रियां आदि किसी महानदीकी तीक्ष्ण जानेवाली धाराके समान हैं । देखो ! अत्यंत घने और सीधे ऐसे साल, आम, बांस और कुडंगके पेडोंका तोडना, स्वच्छ सरोवरके जलमें अवगाहन करना, मुलायम और जिसका स्पर्श सुख देनेवाला है ऐसी पृथ्वीपर विहार करना आदि अनेक गुणोंसे सुशोभित, वनमें विहार करनेवाले, मदांध, महाकाय (जिनका बहुत बडा शरीर है) और बहत बलवान हाथी कृत्रिम हाथिनीमें स्पर्शनेंद्रियके सुखके लिए आसक्त चित्त होकर मनुष्योंके

रेणा हस्तिबन्धकीषु स्पर्शनेन्द्रियप्रसक्तचित्ता मनुष्यविधेयतामुपगम्य वधबन्धदमनवाहनांकुशताडनपार्ष्णिघातादिजनितं तीव्रं दुःखमनुभवन्ति । नित्यमेव च स्वयूथस्वच्छन्दप्रचारसुखस्य वनवासस्याऽनुस्मरन्तो महान्तं खेदमवाप्नुवन्ति । तथैव जिह्वेन्द्रियविषयलोभात् स्रोतोवेगावगाहिमृतहस्तिशरीरस्था वायसा अपारसागरावर्तान्तःपातव्यसनमुपनिपतन्ते । मत्स्याश्चागाधसलिलसंचारिणो लोचनगोचरातीता रसनेन्द्रियवशंगता आमिषलोभेन लोहमास्वाद्य म्रियन्ते । घ्राणेन्द्रियलोलुपाश्चौषधगन्धलुब्धपन्नगा विनिपातमिच्छन्ति, मधुकराश्च दानगंधलुब्धा गजकर्णप्रलंबतामुपगम्य मरणमासादयन्ति । चक्षुरिन्द्रियविषयीकृता प्रदीपावलोकेन लोलाः पतंगा व्यसनप्रपाताऽभिमुखा भवन्ति । श्रोत्रेन्द्रियविषयसंगाकृष्टमनसो गीतध्वनिविषयंगविस्मृततृणग्रसना हरिणा अ-

वश हो जाते हैं और फिर मारना, बांधना, दमन करना, सवारी करना, अंकुशोंसे ताडना और पैरकी एडीसे मारना आदि अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए अनेक तीव्र दुःखोंका अनुभव करते हैं। वह प्रतिदिन अपने समूहमें स्वतंत्रता पूर्वक विहार करनेवाले वनवासके सुखका स्मरण करते हैं और बार बार उसका स्मरणकर अत्यंत दुःखी होते हैं। इसीतरह जिह्वा इंद्रियके विषयके लोभमें किसी नदीके प्रवाहके वेगमें पडे हुए मरे हाथीके शरीरपर बैठे हुए कौवे अपार महासागरके भीतर पहुंच जाते हैं और वहांपर अनेक तरहके दुःख उठाते हैं। इसीप्रकार अगाध जलमें रहनेवाली और नेत्रोंके द्वारा दिखाई न देनेवाली मछलियां भी केवल रसना इंद्रियके वश होकर मांसके लोभसे लोहेकी कीलका आस्वादन कर मर जाती हैं। घ्राण इंद्रियके लोलुपी सर्प औषधि मिली हुई सुगंधिके लोभमें आकर मरनेकी इच्छा करते हैं। भ्रमर भी हाथीके मदकी सुगंधके लोभमें पडकर हाथीके इधर उधर चलाये हुए कानोंकी चोट खाकर मर जाते हैं। चक्षु इंद्रियके विषयके वशीभूत हुए पतंग दीपकको देखकर चंचल हो जाते हैं और उसमें पडकर जल जाते हैं वा मर जाते हैं। जिनका मन श्रोत्र इंद्रियके विषयमें (मधुर रागमें) आसक्त हो गया है ऐसे हिरण भी गीतोंकी मधुर ध्वनिके रागमें खडे होकर हरी घासका खाना भी भूल जाते हैं और फिर बहेलियोंके द्वारा मारे जाते हैं। ये सब दुःख तो इन्हें

नर्थोन्मुखा भवन्ति । परत्र च नानाजातिपु बहुविधदु खप्रज्वलितासु पर्यटन्ति । तथा स्वयंप्रभांगसंगतसुखस्पर्शलाभलोभाऽऽकृष्टचित्तोऽश्वग्रीवो, विद्याधरचक्रवर्ती त्रिखंडाधिपतिः सपुत्रः सबाधवो निधनतामुपगत. । तथा च रसनेन्द्रियलोलुपः सुभूम' सकलचक्रवर्ती षट्खंडाधिपतिर्वणिग्वेषधारिणा जन्मान्तरवैरिणा समुद्रमध्ये अरणमुपगत. । तथा च वर्वरीविलातिकानृत्यावलोकनविहिताऽऽसक्तिर्दमितारिरर्द्धचक्रवर्ती सकलपरिजनसमेतो विराममुपजगाम । तथा च हस्तिपकमधुरगीतरवश्रवणसमक्तमतिरमृतमतिर्यशोधरमहाराजमहादेवी स्वकुलपरिभ्रष्टा कुष्ठाधिष्ठितशरीरा मृतिमुपगम्य नरकदु खभागिनी

इस लोकमें ही भोगने पडते हैं। तथा इनके सिवाय परलोकमें भी अनेक तरहके दुःखोंसे भरी हुई बहुतसी योनियोंमें उन्हें परिभ्रमण करना पडता है। (यह तो तिर्यंचोंका उदाहरण बतलाया। मनुष्योंमें भी अनेक बडे पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्हें एक एक इंद्रियकी आसक्तिसे अनेक तरहके दुःख भोगने पडे हैं) अश्वग्रीव विद्याधरोंका चक्रवर्ती राजा था और तीन खंडका स्वामी था परंतु उसका चित्त स्वयंप्रभाके अंगस्पर्शसे उत्पन्न हुए सुख और स्पर्शके लाभ होनेके लोभमें फंस गया था इसीलिये उसे पुत्र भाइयों सहित मरना पडा था। राजा सुभूम सकल चक्रवर्ती राजा था और छहों खंडोंका स्वामी था तथापि रसना इंद्रिय और घ्राण इंद्रियका लोलुपी होनेसे उसे बीच समुद्रमें जाकर वैश्यके भेषको धारण करनेवाले जन्मांतरके वैरीके हाथसे मर जाना पडा। इसीतरह अर्द्धचक्रवर्ती दमितारि भीलनीका नृत्य देखनेमें आसक्त होकर अपने सब कुटुंबियों समेत मरणको प्राप्त हुआ था। इसीप्रकार यशोधर महाराजकी अमृतमति नामकी महादेवी हाथीवानके (महावतके) मधुर गीतोंके शब्द सुननेमें आसक्त होकर अपने कुलसे भ्रष्ट होगई थी, उसका शरीर सब कोढसे भर गया था और मरकर उसे नरकके अनेक दुःख भोगने पडे थे। इसप्रकारके महापुरुष लोग भी विषके समान केवल एक एक इंद्रियके विषयोंसे नष्ट हो गये थे फिर पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी अभिलाषा करनेवालोंकी

बभूव । एवमेकैकेन्द्रियविषयैर्विषसमैस्तथाविधा अपि विनष्टाः किं पुनः पंचेन्द्रियविषयाभिलाषिण इत्येवमाद्यास्रवदोषाऽनुचिन्तनमास्रवाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य चिन्तयतः क्षमादिधर्मात् श्रेयस्त्वबुद्धिर्न प्रच्यवते । सर्वेऽप्येते आस्रवदोषाः कूर्मवत्संवृतेन्द्रियस्य न भवन्ति । इत्यास्रवाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

अथ संवराऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । आस्रवनिरोधः संवरः । यथा वणिङ्महार्णवे यानपात्रविवरद्वारजलास्रवपिधाने निरुपद्रवमभिलषितदेशान्तरं प्राप्नोति तथा मुनिरपि संसारार्णवे शरीरपोतस्येन्द्रियविषयद्वारकर्मजलास्रवं तपसा पिधाय मुक्तिवेलापत्तनं निर्विघ्नं प्राप्नोति इत्येवं संवरगुणाऽनुचिंतनं संवराऽनुप्रेक्षा । एवमस्य चिन्तयतः संवरे नित्योद्युक्तता भवति । इति संवराऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

तो बात ही क्या है ? इसप्रकार आस्रवके दोषोंका चिंतवन करना आस्रवानुप्रेक्षा है । इसतरह चिंतवन करनेसे क्षमादि धर्म ही कल्याणकारी जान पडते हैं और फिर उनसे अपनी बुद्धि कभी नहीं हटती । ये आस्रवके सब दोष कच्छपके समान इंद्रियोंका निरोध करनेवालोंके नहीं होते हैं । इसप्रकार आस्रव अनुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

आगे संवरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—आस्रवका रोकना ही संवर है । जिसप्रकार कोई वैश्य महासागरमें चलते हुए जहाजके छिद्रोंको या पानी जानेके मार्गको बंदकर फिर निर्विघ्न रीतिसे देशांतर पहुंचता है उसीप्रकार मुनिराज भी संसाररूपी महासागरमें पडे हुए शरीररूपी जहाजके कर्मरूपी जलके आनेके कारण ऐसे इंद्रियोंके विषयरूपी द्वारोंको तपश्चरणके द्वारा बंदकर निर्विघ्न रीतिसे मोक्षरूपी महानगरमें पहुंच जाते हैं । इसप्रकार संवरके गुणोंका चिंतवन करना संवरानुप्रेक्षा है । इसप्रकार चिंतवन करनेसे संवरमें सदा सावधानी और तत्परता रहती है । इसप्रकार संवरानुप्रेक्षाका वर्णन किया ।

आगे निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—कर्मोंका एकदेश नष्ट होना निर्जरा है । वह भी उदय और उदीरणाके भेदसे दो प्रकार की है । नरकादि गतियोंमें कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं उसको उदयसे होनेवाली निर्जरा कहते हैं और परिषहोंके जीतने वा तपश्चरण आदिसे जो

२४

अथ निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। कर्मैकदेशगलनं निर्जरा, सापि द्वेधा, उदयोदीरणाविकल्पात्। तत्र नरकादिषु कर्मफलविपाकोदयोद्भवा। परीषहजयादुदीरणोद्भवा। सा शुभाऽनुबंधा निरनुबंधा चेत्येवं निर्जराया गुणदोषभावनं निर्जराऽनुप्रेक्षा। एवमस्यानुस्मरतः कर्मनिर्जरायै वृत्तिर्भवति। इति निर्जराऽनुप्रेक्षावर्णनं।

अथ लोकाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते। जीवादिपदार्थाधिकरणं लोकः। समन्तादनंतानतस्यात्मप्रतिष्ठाऽऽकाशस्य बहुमध्यप्रदेशस्थितस्तनुवातघनानिलघनोदधिवेष्टितो लोकस्तन्मध्यगता त्रसनाडी, तन्मध्ये महामेरुस्तस्याध स्थिता नरकप्रस्तारा, मेरुपरिवृताः शुभनामानो द्वीपसमुद्रा द्विर्द्विर्विष्कंभा वलयाकृतयो,

कर्म विना फल दिये हुए नष्ट हो जाते हैं वह उदीरणासे होनेवाली निर्जरा कहलाती है। वह निर्जरा भी दो प्रकारकी है, एक वह कि जिससे शुभ कर्मोंका बंध हो और दूसरी वह जिससे किसी कर्मका बंध न हो। इसप्रकार निर्जराके गुण दोषोंका चिंतवन करना निर्जरानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे कर्मोंकी निर्जरा करनेमें प्रवृत्ति होती है। इसप्रकार निर्जरानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं जो जीवादि समस्त पदार्थोंका आधार है वह लोक कहलाता है। यह आकाश सब ओरसे अनंतानंत है और अपने ही आधार है। आकाशका अन्य कोई आधार नहीं है। उसी आकाशके अत्यंत मध्यवर्ती प्रदेशोंमें यह लोक विराजमान है। यह लोक तनुवात घनवात और घनोदधिवातसे घिरा हुआ है अर्थात् लोकके चारों ओर घनोदधिवात है उसके चारों ओर घनवात है उसके चारों ओर तनुवात है और उसके चारों ओर आकाश है। उस लोकाकाशके मध्यमें त्रसनाडी है उसके मध्यभागमें यहां मेरु पर्वत है। मेरुपर्वतके नीचे नरकोंके प्रस्तार हैं तथा मेरुके चारों ओर शुभ नामोंको धारण करनेवाले दूनी दूनी चौडाईवाले कंकणके आकारके (असंख्यात) द्वीप समुद्र हैं। मेरुके उपर स्वर्गोंके पटल हैं स्वर्गपटलोंके ऊपर सिद्धक्षेत्र है। इसप्रकार इस लोकके अधोलोक तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोकके

मेरोरुपरि स्वर्गपटलानि, तेषामुपरि सिद्धक्षेत्रं । एवमधस्तिर्यगूर्ध्वभेदभिन्नस्य चतुर्दशरज्जुनिस्तारदक्षिणोत्तरदिग्भागस्य वेत्रासनझल्लरीमृदंगसमानाऽऽकारस्य षड्द्रव्यनिचितस्याकृत्रिमस्यानादिनिधनस्य लोकस्य स्वभावपरिणामपरिणाहसंस्थानाऽनुचिंतनं लोकानुप्रेक्षा । एवमस्याध्यवस्यतस्तत्त्वज्ञानविशुद्धिर्भवति । इति लोकानुप्रेक्षावर्णनं ।

अथ बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । स्कन्धांडराऽऽवासपुलविशरीरेषु स्कंधा असंख्यातलोकमात्रा', एकैकस्मिन् स्कंधेऽसंख्यातलोकमात्रा अंडरा

भेदसे तीन भेद होते हैं यह समस्त लोक चौदह राजू ऊंचा है पूर्व पश्चिमकी ओर नीचे सात राजू चौडा है मध्यम एक राजू चौडा है ऊपर जाकर फिर पांच राजू चौडा है और सबसे ऊपर जाकर एक राजू चौडा है। दक्षिण उत्तरकी ओर सर्व जगह सात राजू लंबा है। अधोलोक वेंतके आसनके समान ऊपरसे सकरी और नीचेसे चौडी तिपाईके समान है मध्यलोक झालरके समान है और ऊर्ध्व लोक मृदंग वा पखावजके समान है। इसके सिवाय यह लोक छह द्रव्योंसे भरा हुआ है अकृत्रिम है और अनादि तथा अनिधन है। इसप्रकार लोकका स्वभाव लोकका परिमाण परिधि और उसका आकार चिंतवन करना लोकानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इसके मनन करनेसे तत्त्वज्ञानकी विशुद्धि होती है। इसप्रकार लोकानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

आगे बोधिदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं। स्कंध, अंडर, आवास, पुलवि और शरीरों में स्कंधोंकी संख्या असंख्यात लोकमात्र है। एक एक स्कंधमें असंख्यात लोकमात्र अंडर हैं। एक एक अंडरमें असंख्यात लोक प्रमाण आवास हैं। एक एक आवासमें असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि हैं। एक एक पुलविमें असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं और एक एक निगोद शरीरमें समस्त अतीत कालमें होनेवाले सिद्धोंसे अनंतगुणे जीव हैं। यह बात अन्य ग्रन्थोंमें भी (गोम्मटसारमें) लिखी है—एयणिओय इत्यादि।

एकैकस्मिन्नंडर आवासा असंख्यातलोकमिता एकैकस्मिन्नावासे पुलवयोऽसंख्यातलोकप्रमाणा., एकैकस्मिन्पुलवौ असंख्यातलोकप्रमितानि शरीराण्येकैकस्मिन्निगोदशरीरे जीवाः सर्वातीतकालसिद्धानामनंतगुणाः । उक्तं च—

एयणिगोयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा । सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण ॥

इत्येवं सर्वलोको निरन्तरं निचितः स्थावरैस्ततस्तत्र वालुकासमुद्रे पतितवज्रसिकताकणिकेव त्रसता दुर्लभास्तत्र च विकलेंद्रियाणां प्रचुरभूयिष्ठत्वात्पंचेंद्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छ्रलभ्या । तत्र च तिर्यक्षु पशुमृगपक्षिसरीसृपादिषु बहुषु सत्सु मनुष्यभवश्चतुष्पथे रत्नराशिरिव दुरासदस्तत्प्रच्यवे पुनस्तदुपपत्तिर्दग्धतरुपुद्गलतद्भावाऽऽपत्तिवद्दुर्लभा । तल्लाभे च कुदेशानां हिताहितविचारविरहितानां पशुसमानमानवाकीर्णानां बहुत्वात्सुदेशः पाषाणेषु म-

" अर्थात् एक निगोद शरीरमें द्रव्यप्रमाणसे जीवोंकी संख्या समस्त व्यतीत कालके सिद्धोंसे अनंतगुणी है । " इसप्रकार यह समस्त लोक स्थावर जीवोंसे सदा भरा रहता है । जिसप्रकार बालूके समुद्रमें पडे हुए हीराके कणोंका मिलना अत्यंत कठिन है उसीप्रकार इन स्थावर जीवोंमेंसे त्रसपर्याय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है । त्रसपर्यायमें भी विकलेंद्रियोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार गुणोंमें कृतज्ञता अत्यंत कठिनतासे मिलती है उसीप्रकार त्रसोंमें पंचेंद्रिय होना अत्यंत कठिन है । पंचेंद्रियोंमें भी पशु हिरण पक्षी सांप आदि तिर्यंचोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार किसी चौराये पर (चौरस्ते पर) रत्नोंकी राशि मिलना कठिन है उसीप्रकार पंचेंद्रियोंमें मनुष्यभव प्राप्त होना अत्यंत कठिन है । यदि मनुष्य जन्म मिलकर नष्ट होगया तो जिसप्रकार जिसकी लकडी जड आदि सब जलादी गई हैं ऐसा वृक्ष फिरसे नहीं उग सकता उसीप्रकार मनुष्य जन्मका फिरसे मिलना अत्यंत कठिन है । कदाचित् दुबारा मनुष्य जन्म मिल भी जाय तो जिन्हें हिताहितका कुछ विचार नहीं है और जो मनुष्योंका आकार धारण करनेवाले पशुओंके समान हैं ऐसे कुदेशोंमें रहनेवाले म्लेच्छोंकी संख्या बहुत है इसलिये जिसप्रकार पत्थरोंमें मणिका मिलना सुलभ नहीं है उसीप्रकार किसी सुपदेशमें उत्पन्न होना भी सुलभ नहीं

गिरिव न सुलभः । लब्धेऽपि सदेशे पापकर्मजीवकुलाकुलत्वाकुले जन्म वृद्धोपसेवादिरहिते विनयवत्कृच्छ्रलभ्यं । लोकस्य कुले हि जाति प्रायेण शीलवि-नयाचारसंपत्तिकरी भवति । सत्यामपि कुलसंपदि दीर्घायुरिन्द्रियबलरूपनीरोगत्वादीनि दुर्लभानि । सर्वेष्वपि तेषु लब्धेषु सद्धर्मप्रतिलंभो यदि न स्यात् व्यर्थं जन्म वदनमिव दृष्टिविकलं । तमेवमतिदुर्लभं सद्धर्मं कथं कथमप्यवाप्य विषयसुखे रंजनं भस्मार्थं चन्दनदहनमिव विफलं । विरक्तविषयसुखस्य त-पोभावनाधर्मप्रभावनासुखमरणादिलक्षणः समाधिर्दुर्लभस्तस्मिन्सति बोधिलाभः फलवान् भवतीति चिंतनं बोधिदुर्लभत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य भावयतो बो-धिं प्राप्य प्रमादो न कदाचिदपि भवति । इति बोधिदुर्लभाऽनुप्रेक्षावर्णनं ।

है। कदाचित सुप्रदेशमें भी मनुष्य जन्म प्राप्त होजाय तो भी यह लोक प्रायः पापकर्म करनेवाले जीवोंके समूहों से भरा हुआ है इसलिये जिसप्रकार वृद्धोंकी सेवा न करनेवालोंके विनयका प्राप्त होना कठिन है उसीप्रकार अच्छे कुलमें जन्म लेना बहुत ही कठिन है। अच्छा कुल मिल-नेपर भी प्रायः जीवोंकी जाति ही शील विनय आचार संपदा देनेवाली होती है। यदि कदा-चित् कुल संपदा आदि प्राप्त भी होजाय तो दीर्घ आयु, इंद्रिय, बल,रूप और नीरोगता आदि प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। उन समस्त संयोगके प्राप्त होने पर भी यदि सद्धर्म धारण करने-का लाभ न हो तो जिसप्रकार विना नेत्रोंके मुखमंडल व्यर्थ है उसीप्रकार उसका मनुष्य जन्म लेना भी व्यर्थ ही है। यदि वही अत्यंत दुर्लभ सद्धर्म जिस तिसतरहसे प्राप्त हो जाय और फिर भी वह जीव विषय सुखमें निमग्न रहे तो जिसप्रकार केवल भस्मके लिये चंदन का जलाना व्यर्थ है उसीप्रकार उसका सद्धर्म प्राप्त होना भी निष्फल है जो विषय सुखोंसे विरक्त होगया है उसके लिये भी तपश्चरणकी भावना, धर्मकी प्रभावना, और सुखमरण अर्थात् समाधिमरण रूप समाधि वा ध्यानकी प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। इन सब सामाग्रियोंके मिल जाने परभी रत्नत्रयका प्राप्त होजाना ही सफल गिना जाता है। इसप्रकार चिंतवन करना बोधिदुर्लभत्वानु-प्रेक्षा है। इसप्रकार इसके चिंतवन करनेसे रत्नत्रयको पाकर फिर कभी प्रमाद नहीं होता है। इसप्रकार बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षाका वर्णन किया।

अथ धर्मस्वाख्याताऽनुप्रेक्षावर्णनं विधीयते । चतुर्दशगुणस्थानानां गत्यादिचतुर्दशमार्गणास्थानेषु स्वतत्त्वविचारलक्षणो धर्मः । निःश्रेयसप्राप्तिहेतुरहो भगवद्भिरर्हद्भिः स्वाख्यात इति चिंतनं धर्मस्वाख्याततत्वाऽनुप्रेक्षा । एवमस्य चिंतयतो धर्मानुरागः सदा प्रतिपन्नो भवति । इत्येवं चिन्तनं संस्थानविचयमष्टमं धर्म्यं ।

अथाऽऽज्ञाविचयस्वरूपमुच्यते । आज्ञाविचयमतीन्द्रियज्ञानविषयं विज्ञातुं चतुर्षु ज्ञानेषु बुद्धिशक्त्यभावात्परलोकबंधमोक्षलोकालोकसदसद्विवेकवृद्धिप्रभावधर्माधर्मकालद्रव्यादिपदार्थेषु सर्वज्ञप्रामाण्यात्तत्प्रणीताऽऽगमव स्थितमवितथं नान्यथेति सम्यग्दर्शनस्वभावत्वान्निश्चयाचिंतनं नवमं धर्म्यं ।

आगे धर्मस्वाख्याततत्त्वानुप्रेक्षाका वर्णन करते हैं—गति आदि चौदह मार्गणा स्थानोंमें चौदह गुणस्थानोंके आत्मतत्त्वका विचार करना धर्म है। मोक्षकी प्राप्तिका उपाय भगवान अरहंत देवने ही बतलाया है इसप्रकार चिंतवन करना धर्मस्वाख्याततत्वानुप्रेक्षा है। इसप्रकार इस अनुप्रेक्षाके चिंतवन करनेसे धर्मानुराग सदा बढता रहता है। इसप्रकार बारह अनुप्रेक्षाओंका चिंतवन करना संस्थानविचय नामका आठवां धर्म्यध्यान है।

अब आगे आज्ञाविचयका स्वरूप कहते हैं। जो पदार्थ अतींद्रिय ज्ञानके गोचर हैं जिनमें बुद्धिकी शक्ति काम नहीं देती ऐसे परलोक बंध, मोक्ष, लोक अलोक वृद्धिको प्राप्त हुए सत् असत् विवेकका प्रभाव, धर्म अधर्म काल द्रव्य आदि पदार्थोंमें तथा चारों ज्ञानोंमें "संसारमें सर्वज्ञ प्रमाण है और उनकी प्रमाणतासे उनके वचनोंके अनुसार कहे हुए आगममें जो कुछ उनका स्वरूप कहा गया है वह सब सत्य है वह कभी अन्यथा रूप नहीं हो सकता" इसप्रकार सम्यग्दर्शनका स्वभाव होनेसे वास्तविक तत्वका चिंतवन करना आज्ञाविचय नामका नौवां धर्म्यध्यान है।

आगे हेतुविचयका स्वरूप कहते हैं। आगममें किसी तरहका विरोध आनेपर जो पुरुष विशेष विशेष नयोंकी मुख्यता और गौणतासे प्राप्त हुए अत्यंत कठिन स्याद्वादके द्वारा उस

अथ हेतुविचयस्वरूपमुच्यते । हेतुविचयमागमविप्रतिपत्तौ नयनिक्षेपगुणप्रधानभावोपनयदुर्धर्षस्याद्वादप्रतिक्रियाऽवलंबिनस्तर्कानुसारिरुचेः पुरुषस्य स्वसमयगुणपरसमयदोषविशेषपरिच्छेदेन यत्र गुणप्रकर्षस्तत्राऽभिनिवेशः श्रेयानिति स्याद्वादतीर्थंकरप्रवचने पूर्वापराविरोधहेतुपरिग्रहणसामर्थ्येन समवस्थानगुणानुचिंतनं हेतुविचयं दशमं धर्म्यं ।

सर्वमेतद्धर्मध्यानं पीतपद्मशुक्ललेश्याबलाधानमविरतादिसरागगुणस्थानभूमिकं द्रव्यभावात्मकसप्तप्रकृतिक्षयकारणं । आ अप्रमत्तादन्तर्मुहूर्तकालपरिवर्तनं परोक्षज्ञानत्वात् क्षायोपशमिकभावं स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्तनीयं । शेषैकविंशतिद्रव्यभावलक्षणमोहनीयोपशमक्षयनिमित्तमिति ।

विरोधका प्रतीकार करता है तथा न्यायानुसार ही जिसकी रुचि है ऐसा पुरुष अपने मतके विशेष गुण और परमतके विशेष दोषोंको अच्छी तरह समझकर जहां गुणोंकी अधिकता हो वहीं श्रद्धान करना उसीको मानना कल्याण कारी है इसप्रकार तीर्थंकरके कहे हुए स्याद्वाद स्वरूप आगममें पूर्वापर अविरोधरूप हेतुओंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्यसे उसमें रहनेवाले गुणोंका बार बार चिंतवन करना हेतुविचय नामका दशवां धर्म्यध्यान है ।

ये सब तरहके धर्म्यध्यान पीत पद्म और शुक्ललेश्याके बलसे होते हैं चौथे गुणस्थानसे लेकर सराग गुणस्थानतक होते हैं । द्रव्य भावरूप सातों प्रकृतियोंके (मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्त्व सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ) क्षय होनेके कारण हैं सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक होते हैं और अंतर्मुहूर्ततक ही होते हैं फिर बदल जाते हैं, परोक्षज्ञानके गोचर होनेसे क्षायोपशमिक भी हैं, स्वर्गमोक्षरूप फल देनेवाले हैं और बाकीकी मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतियोंके क्षय होनेके निमित्त कारण हैं ।

शुक्लध्यानके दो भेद हैं एक शुक्ल और दूसरा परमशुक्ल । उसमें भी शुक्लध्यान भी दो प्रकारका है एक पृथक्त्ववितर्कवीचार और दूसरा एकत्ववितर्कावीचार । परमशुक्ल भी दो प्रकारका है एक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और दूसरा समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति । इस समस्त

शुक्लध्यानं द्विविधं, शुक्लं, परमशुक्लमिति । शुक्लं द्विविधं पृथक्त्ववितर्कवीचारमेकत्ववितर्कावीचारमिति । परमशुक्लं द्विविधं, सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिसमुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिभेदात् । तल्लक्षणं द्विविधं, बाह्यमाध्यात्मिकमिति । गात्रनेत्रपरिस्पन्दविरहितं जंभजृंभोद्गारादिवर्जितमनभिव्यक्तप्राणापानप्रचारत्वमुच्छिन्नप्राणापानप्रचारत्वमपराजितत्वं बाह्यं, तदनुमेयं परेषामात्मनः स्वसंवेद्यमाध्यात्मिकं तदुच्यते । पृथक्त्वं नानात्वं, वितर्को द्वादशांगश्रुतज्ञानं, वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः, व्यंजनमभिधानं, तद्विषयोऽर्थः, मनोवाक्कायलक्षणो योगः, अन्येऽन्यतः परिवर्त्तनं संक्रांतिः। पृथक्त्वेन वितर्कस्यार्थव्यंजनयोगेषु संक्रांतिवीचारो यस्मिन्नस्तीति तत्पृथक्त्ववितर्कवीचारं प्रथमं शुक्लं । तद्यथा–अनादिसंभूतदीर्घसंसारस्थितिसागरे पारं जिगमिषुर्मुमुक्षुः स्वभाववि-

शुक्लध्यानका लक्षण भी दो प्रकारका है एक बाह्य और दूसरा आध्यात्मिक। शरीर और नेत्रोंको परिस्पंद रहित रखना, जंभाई जंभा उद्गार आदि नहीं होना, प्राणापानका प्रचार व्यक्त न होना अथवा प्राणापानका प्रचार नष्ट हो जाना और किसीके भी द्वारा जीता न जाना बाह्य शुक्लध्यान है। यह बाह्य शुक्लध्यान अन्य लोगोंको अनुमानसे जाना जा सकता है तथा जो केवल आत्माको स्वसंवेद्य हो वह आध्यात्मिक शुक्लध्यान कहा जाता है। नानात्व अथवा अनेकपनेको पृथक्त्व कहते हैं। द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। अर्थ, व्यंजन और योगोंकी संक्रांतिको वीचार कहते हैं। किसी पदार्थके नामको व्यंजन कहते हैं और उस व्यंजनके विषयभूत पदार्थको अर्थ कहते हैं। मन वचन कायके द्वारा आत्माके प्रदेशोंके परिस्पंदनको योग कहते हैं । एकसे दूसरेमें बदल जाना संक्रांति है। जिस ध्यानमें द्वादशांग श्रुतज्ञान अर्थ व्यंजन योगोंमें अनेक तरहसे संक्रमण करता है उसको पृथक्त्ववितर्कवीचार नामका प्रथम शुक्लध्यान कहते हैं। आगे इसीका खुलासा लिखते हैं। जब यह अनादि कालसे चले आये दीर्घ संसारकी स्थितिरूप महासागरके पार जानेकी इच्छा करनेवाला मोक्षार्थी जीव स्वभावसे प्राप्त हुए पुरुषाकारकी सामर्थ्यसे द्रव्य परमाणु अथवा भाव परमाणुमेंसे किसी एकका अवलंबनकर (उसका चिंतवनकर) बाकीके समस्त चिंतवनोंको रोक लेता है तथा उसीसमय महा

जृंभितपुरुषाकारसामर्थ्याद् द्रव्यपरमाणुं भावपरमाणुं वैकमवलंब्य संहृताऽशेषचिंताविक्षेपो महासंवरसंवृतः कर्मप्रकृतीनां स्थित्यनुभागौ ह्रासयन्नुपशमयन् क्षपयंश्च परमबहुकर्मनिर्जरास्त्रिषु योगेष्वन्यतमस्मिन्वर्तमान एकस्य द्रव्यस्य गुणं वा पर्यायं वा बहुनयगहननिलीनं श्रुतरविकिरणोद्योतबलेनान्तर्मुहूर्तकालं ध्यायति, ततः परमर्थान्तरं संक्रामत्यथ वास्यैवार्थस्य गुणं वा पर्यायं वा संक्रामति पूर्वयोगाद्योगान्तरं व्यंजनाद् व्यंजनान्तरं संक्रामति इति । अर्थार्थान्तरगुणगुणान्तरपर्यायपर्यायान्तरेषु योगत्रयं संक्रमणेन तस्यैव ध्यानस्य द्वाचत्वारिंशद्भंगा भवन्ति । तद्यथा—षण्णां जीवादिपदार्थानां क्रमेण ज्ञानवर्णगतिस्थितिवर्तनाऽवगाहनादयो गुणास्तेषां विकल्पाः पर्यायाः । अर्थादन्यो गुणान्तरं पर्यायादन्यः पर्यायान्तरं । एवमर्थार्थान्तरगुणगुणान्तरपर्यायपर्यायान्तरेषु

संवर करता है कर्मोंकी प्रकृतियोंकी स्थिति और अनुभागको घटाता है अथवा उन कर्म प्रकृतियोंका उपशम और क्षय करता है बहुतसे कर्मोंकी परम निर्जरा करता है मन वचन काय तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगमें स्थित रहता है और श्रुतज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके प्रकाशकी सामर्थ्यसे अंतर्मुहूर्ततक अनेक नयोंकी गहनतामें डूबे हुए किसी एक द्रव्यके गुण वा उसके पर्यायका ध्यान करता है। उसके बाद उस पदार्थसे बदलकर किसी दूसरे पदार्थका चिंतवन करता है अथवा उसी पदार्थके गुण वा पर्यायका संक्रमण करता है। पहिलेके योगसे किसी दूसरे योगपर संक्रमण करता है और एक व्यंजनसे दूसरे व्यंजनपर संक्रमण करता है। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर एक गुणसे दूसरे गुणपर और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर तीनों योगोंके द्वारा संक्रमण करनेसे इस प्रथम ध्यानके ब्यालीस भेद हो जाते हैं। वे ब्यालीस भेद इसप्रकार हैं —संसारमें जीवादिक छह द्रव्य हैं। ज्ञान, वर्ण, गतिसहकार, स्थितिसहकार, वर्तना और अवगाहन ये अनुक्रमसे उन द्रव्योंके गुण हैं तथा उनके भेदोंको पर्याय कहते हैं। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर संक्रमण करनेको अर्थांतर कहते हैं। एक गुणसे दूसरे गुणपर संक्रमण करनेको गुणांतर कहते हैं और एक पर्यायसे दूसरे पर्यायपर संक्रमण करनेको पर्यायांतर कहते हैं। इसप्रकार अर्थ अर्थांतर गुण गुणांतर और पर्याय पर्यायांतर इन छहोंमें तीनों योगों

२५

षट्सु योगत्रयसंक्रमादष्टादश भंगाः । अर्थाद् गुणगुणांतरपर्यायपर्यायान्तरेषु चतुर्षु योगत्रयसंक्रमणेन द्वादश भंगा भवन्ति । एवमर्थान्तरस्यापि द्वादशभंगा भवन्ति । सर्वे संपिंडिता द्वाचत्वारिंशद्भंगाः । एवंविधं प्रथमशुक्लध्यानमुपशांतकषायेऽस्ति, क्षीणकषायस्यादावस्ति । तत्र शुक्लतरलेश्याबलाधानमंतर्मुहूर्तकालपरिवर्तनं क्षायोपशमिकभावमुपात्तार्थव्यंजनयोगसंक्रमणं चतुर्दशदशनवपूर्वधरयतिवृषभनिषेव्यमुपशांतक्षीणकषायभेदात् स्वर्गापवर्गगतिफलसंवर्तनीयमिति ।

द्वितीयशुक्लध्यानमुच्यते । एकस्य भाव एकत्वं, वितर्को द्वादशांगं, अवीचारोऽसंक्रांतिः । एकत्वेन वितर्कस्य श्रुतस्यार्थव्यंजनयोगानामवीचारोऽस-

के संक्रमणके द्वारा अठारह भेद होते हैं। इसीतरह अर्थसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं। तथा अर्थांतरसे गुण गुणांतर पर्याय पर्यायांतर इन चारोंमें तीनों योगोंके संक्रमणके द्वारा बारह भेद होते हैं। इसप्रकार सब मिलकर ब्यालीस भेद होते हैं। इसप्रकारका यह प्रथम शुक्लध्यान उपशांत कषायमें रहता है और क्षीण कषायके प्रारंभमें रहता है। यह ध्यान शुक्लतर लेश्याके बलसे होता है और अंतर्मुहूर्तकालके बाद बदल जाता है। यह क्षायोपशमिक भाव है, प्राप्त हुए अर्थ व्यंजन योगोंके संक्रमणपूर्वक होता है चौदह पूर्व वा दश पूर्व अथवा नौ पूर्व धारण करनेवाले उत्तम मुनियोंके द्वारा सेवन (धारण) करने योग्य है और उपशांतकषाय तथा क्षीणकषायके भेदसे स्वर्ग और मोक्ष फलको देनेवाला है।

आगे दूसरे शुक्लध्यानको कहते हैं। एकके भावको एकत्व कहते हैं। द्वादशांग श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं। संक्रमण न करनेको अवीचार कहते हैं। जिस ध्यानमें श्रुतज्ञानके अर्थ व्यंजन योगोंका एकरूपसे ही ध्यान किया जाय, किसी तरहसे अर्थ व्यंजन योगोंका संक्रमण न हो उसको एकत्व वितर्कावीचार नामका दूसरा शुक्ल ध्यान कहते हैं। यह ध्यान किसी एक योगसे अर्थ गुण पर्यायोंमेंसे किसी एकके चिंतवनमें स्थित रहता है, पहिलेके समान समस्त

क्रातिर्यस्मिन्ध्याने तदेकत्ववितर्कावीचारं ध्यानं । एकयोगेनार्थगुणपर्यायेष्वन्यतमस्मिन्नवस्थानं पूर्ववत्पूर्वधरयतिवृषभनिषेव्यं । द्रव्यभावात्मकज्ञानदर्शनावरणान्तरायघातिकर्मत्रयवेदनीयप्रभृत्यघातिकर्मसु केषांचिद्भावकर्मविनाशनसमर्थमुत्तमतपोऽतिशयरूपं पूर्वोक्तक्षीणकषायावशिष्टकालभूमिकमर्थव्यंजनयोगसंक्रमणविषयचिन्ताविक्षेपरहितं असंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरणं भवति । एवंविधे द्वितीयशुक्लध्याने घातित्रयविनाशनानन्तरं क्षायिकज्ञानदर्शनसम्यक्त्वचारित्रदानलाभभोगोपभोगवीर्यातिशयशक्तिगभस्तिप्रज्वलितकेवलिजिनभास्करोदयो व्यतिक्रान्तछद्मस्थज्ञानदर्शनशरीरभाषान्तःकरणप्रकृतिः संजायते । स खलु केवलिजिनकुंजरो भगवांस्तीर्थंकर इतरो वा कृतकृत्यः सिद्धसाध्यो बुद्धबोध्योऽत्यंताऽपुनर्भवलक्ष्मीपरिष्वक्तात्माचिन्त्यज्ञानवैराग्यैश्वर्यमाहात्म्यः सर्वे-

पूर्वोंको धारण करनेवाले उत्तम यतियोंके द्वारा धारण किया जाता है । इस ध्यानमें द्रव्यभाव स्वरूप ज्ञानावरण दर्शनावरण और अंतराय इन तीनों घातिया कर्मोंमेंसे तथा वेदनीय आदि अघातिया कर्मोंमेंसे कितने ही भावकर्मोंके नाश करनेकी सामर्थ्य है । यह उत्तम तपश्चरणका अतिशय स्वरूप है पहिले कहे हुए क्षीणकषायके समयसे बाकी बचे हुए समयमें यह दूसरा शुक्लध्यान होता है । अर्थ व्यंजन योगोंके संक्रमणमें होनेवाली समस्त चिंताओंके (चिंतवनके) विस्तारसे रहित है । तथा कर्मोंकी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा करनेवाला है । इस प्रकारके दूसरे शुक्लध्यानमें तीनों घातिया कर्मोंके नाश होनेके बाद क्षायिक ज्ञान, क्षायिकदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिकवीर्यकी अतिशयशक्तिरूप किरणोंके द्वारा केवली भगवान जिनेंद्रदेव रूपी सूर्यके उदयका प्रकाश होता है तथा छद्मस्थ ज्ञान दर्शन शरीर भाषा और अंतःकरणका नाश हो जाता है । उस समय वे जिनेंद्रदेव केवली भगवान तीर्थंकर अथवा सामान्य केवली कृतकृत्य (समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाले) सिद्धसाध्य (समस्त साध्योंको सिद्ध करनेवाले) और बुद्धबोध्य (समस्त जानने योग्य पदार्थोंके जानकार वा सर्वज्ञ) होजाते हैं जिसमें जन्म मरणका अत्यंत अभाव है ऐसी मोक्षरूपी लक्ष्मीमें उनका आत्मा तल्लीन होजाता है, ज्ञान वैराग्य

लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽभिवंद्यश्चोत्कर्षेण देशोनपूर्वकोटिकालं विहरति सयोगिभट्टारकः स यदांतर्मुहूर्तशेषायुष्कः समस्थितवेदनामगोत्रश्च भवति तदा वादरकाययोगे स्थित्वा क्रमेण वादरमनोवचनोच्छ्वासनिःश्वासं वादरकाययोगं च निरुध्य ततः सूक्ष्मकाययोगे स्थित्वा क्रमेण सूक्ष्ममनोवचनोच्छ्वासनिश्वासं निरुद्ध्य सूक्ष्मकाययोगः स्यात्तस्यैव सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपातिध्यानं भवति। तच्छुक्लं सामान्येन तृतीय परमशुक्लाऽपेक्षया प्रथमं यदा पुनरन्तर्मुहूर्तशेषायुष्कस्तदधिकस्थितिकर्मत्रयः सयोगिजिनस्तदात्मोपयोगातिशयः कर्मारातिशातनसमर्थः सामायिकखड्गसहायो विशिष्टक्रियो महासंवरसंवृतो लघुकर्मपरिपातनश्च भूत्वा शेषकर्मरेणुपरिशातनशक्तिस्वभावात्समयैकदंडके चतुःसमये दंडकपाटलोकप्रतरपूरणाभिः स्वात्मप्रदेशविसर्पणे जाते तावद्भिरेव समयै-

और ऐश्वर्यका माहात्म्य प्रगट हो जाता है। वे लोकके समस्त इंद्रोंके द्वारा पूज्य वंदनीय और दर्शनीय हो जाते हैं और ऐसी अवस्थामें अधिकसे अधिक कुछकम एक करोड पूर्वतक विहार करते रहते हैं। उन सयोग केवली परम भट्टारक भगवान जिनेंद्रदेवकी आयु जब अंतर्मुहूर्तकी रह जाती है तथा वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति आयुके बराबर ही होती है तब वे वादरकाय योगमें विराजमान रहते हैं फिर वे अनुक्रमसे वादर मन वचन श्वासोच्छ्वास और वादर काय योगका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगमें विराजमान रहते हैं उसी समय वे अनुक्रमसे सूक्ष्म मन वचन और श्वासोच्छ्वासका निरोध करते हैं और सूक्ष्म काययोगको धारण करते हैं उसीसमय उनके सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामका शुक्लध्यान होता है। यह ध्यान सामान्य शुक्लध्यान की अपेक्षा तीसरा है और परम शुक्लध्यानकी अपेक्षा पाहिला है। परंतु जब उनका आयु अंतर्मुहूर्त ही रह जाता है और वेदनीय नाम गोत्रकी स्थिति अधिक होती है तब वे केवलिसमुद्घात करते हैं। उस समय उन सयोगी भगवानके आत्मोपयोगका अतिशय प्राप्त होता है, कर्मरूपी शत्रुओंको क्षीणकरनेमें वे समर्थ होते हैं, सामायिकरूपी तलवार ही उनकी सहायक होती है और वे उस समय एक विशेष क्रिया करते हैं। उस समय उनके यहां संवर होता है छोटे छोटे कर्मोंको नाश कर डालते हैं और बाकीके कर्मपरमाणुओंको क्षीण करनेकी स्वा-

पूर्वशरीरपरिमाणो भूत्वाऽतर्मुहूर्तेन पूर्ववत्क्रमेण योगनिरोधं विधाय प्रथम-
रूपसंहृतविरूपणं आयुष्यसमीकृताऽघातित्रयस्थितिर्निवर्तिततसमुद्घातक्रियः
परमशुक्लध्यानं निष्ठापयन् ततः समये द्वितीयपरमशुक्लध्यानं प्रारब्धुमर्हति।
तत्पुनरत्यंतपरमशुक्लं समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसर्वकायवाङ्मनोयोगप्रदेशपरिस्पंदक्रियाव्यापारतया समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तीत्युच्यते। तत्र ध्याने सर्वास्र-
वनिरोधे सति सर्वशेषकर्मपरिशातनसामर्थ्योत्पत्तिमतोऽयोगिकेवलिनः संपूर्णशीलगुणं सर्वसंसारदुःखज्वालापरिष्वंगच्छेदजननं साक्षान्मोक्षकारणं भवति। स

भाविक शक्ति उनमें हो जाती है। उस समय उनके आत्माके प्रदेश पहिले समयमें दंड रूप
दूसरे समयमें कपाटरूप तीसरे समयमें लोकप्रतररूप और चौथे समयमें लोकपूरण रूप हो
जाते हैं इसतरह उनके आत्माके प्रदेश फैल जानेपर फिर उतनेही समय उपसंहार रूप हो जाते
हैं अर्थात् पांचवें समयमें लोकप्रतररूप छठे समयमें कपाटरूप सातवें समयमें दंडरूप और
आठवें समयमें शरीर प्रमाण हो जाते हैं।

प्रदेशोंके इन उपसंहार विस्तारमें तीन अघातिया कर्मोंकी स्थिति आयुके समान कर
लेते हैं। इसप्रकार समुद्घात क्रियाको पूर्णकर अपने पहिले शरीरके परिमाणके बराबर होकर
अंतर्मुहूर्तमें ही पहिलेके समान योगोंका निरोध करते हैं तथा इसतरह प्रथम परमशुक्लध्यान-
को पूर्णकर उसीसमयमें दूसरे परमशुक्लध्यानका प्रारंभ करते हैं। इस दूसरे परम शुक्लध्यानमें
प्राणापानका प्रचार (श्वासोच्छ्वासका चलना) समस्त मन वचन कायके योग और प्रदेशों
का परिस्पंदन आदि क्रियाओंके व्यापार सब नष्ट हो जाते हैं इसीलिये इसको समुच्छिन्न-
क्रियानिवृत्ति कहते हैं। इस ध्यानमें समस्त आस्रवोंका निरोध हो जाता है और बाकीके
समस्त कर्मोंको नाश करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। ऐसे उन अयोगकेवलीके समस्त
संसारके दुःखोंकी ज्वालाके स्पर्श तकको नाश करनेवाले और साक्षात् मोक्षके कारण ऐसे
समस्त शील और गुण प्रगट हो जाते हैं। फिर उसीसमय वे अयोगकेवली भगवान् ध्यान-

पुनरयोगकेवली भगवांस्तदा ध्यानानलसंनिर्दग्धसर्वमलकलंकेन्धनो निरस्तकिट्टपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मस्वभावस्तदनंतरं पूर्वप्रयोगादाविद्धकुलालचक्रवदसंगत्वादपगतलेपालांबुवत्तथा बंधच्छेदादेरंडबीजवत्तथागतिपरिणामादग्निशिखावदूर्ध्वं गच्छतीत्यालोकांतादूर्ध्वमुपग्रहकारणधर्मास्तिकायाऽभावादलोकं न गच्छति। एवमुक्तधर्म्यशुक्लयो राद्धांतसद्भावविषयसामान्ययोर्विषयं प्रत्यभेदः, अयं तु विशेषः—धर्मध्यानं सकषायपरिणामस्यैकस्मिन्वस्तुनि चिरकालं न तिष्ठति रथ्याऽवस्थितप्रदीपवत्। शुक्लध्यानं पुनर्वीतरागपरिणामस्यैकस्मिन् वस्तुनि धर्मध्यानावस्थानकालात्संख्येयगुणमचंचलत्वादवतिष्ठते मणिप्रदीपवत्।

रूपी अग्निके द्वारा समस्त कर्ममलकलंकरूपी ईंधनको जला डालते हैं और फिर उनके आत्माका स्वभाव जिस कनक पाषाणमेंसे किट्ट कालिमा आदि सब नष्ट हो गया है ऐसे स्वच्छ सुवर्णके समान निर्मल हो जाता है उसके बाद वे फिराये हुए कुम्हारके चाकके समान मोक्षके लिये पहिलेका प्रयोग होनेसे, जिसका मिट्टीका सब लेप उतर गया है ऐसी तूंबीके समान बंध रहित होनेसे, रेंडीके बीजके समान बंधन टूट जानेसे और अग्निकी शिखाके समान ऊपरकी ओर गमन करनेका स्वभाव होनेसे ऊपरको गमन करते हैं और लोकके ऊपर जा विराजमान होते हैं। गमन करनेमें धर्मद्रव्य सहायक है और वह लोकाकाशके आगे, है नहीं, इसलिये वे अलोकाकाशमें नहीं जाते। इसप्रकार ऊपर कहे हुए धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानका विषय सिद्धांतके अनुसार साधारण है इसलिये विषयकी अपेक्षासे तो इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है यदि इन दोनोंमें कोई विशेषता है तो यह है कि धर्म्यध्यान सकषाय परिणामवालेके होता है और इसीलिये गलीमें रक्खे हुए दीपकके समान वह बहुत देरतक किसी एक पदार्थके चिंतवनमें नहीं ठहर सकता, चंचल रहता है तथा शुक्लध्यान वीतराग परिणामवालेके होता है और धर्म्यध्यानकी स्थितिके समयसे संख्यातगुणा निश्चल ठहरता है इसलिये मणिके दीपकके समान वह एक ही पदार्थमें अर्थात् एक ही पदार्थके चिंतवनमें ठहर जाता है।

एवमुक्तं द्वादशविधं तपः सर्वार्थसाधनं, तत एव हि ऋद्धयः संजायंते। ताश्चर्द्धयो बुद्धिक्रियाविक्रियातपोबलौषधरसक्षेत्रभेदादष्टविधाः। तत्र बुद्धिम-हर्द्धिनाम-बुद्धिरवगमो तद्विषया बुद्धिऋद्धिरष्टादशविधा। केवलमवधिर्मनःपर्ययज्ञानं बीजबुद्धिः कोष्ठबुद्धिः पादानुसारित्वं संभिन्नश्रोतृत्वं दूराऽऽस्वादन-स्पर्शनघ्राणदर्शनश्रवणसमर्थता दशपूर्वित्वं चतुर्दशपूर्वित्वं चाष्टांगमहानिमित्तज्ञता प्रज्ञाश्रवणत्वं प्रत्येकबुद्धिता वादित्वं चेति। तत्र द्रव्यक्षेत्रकालभावकरण क्रमव्यवधानाऽभावे युगपदेकस्मिन्नेव समये त्रिकालवर्तिसर्वद्रव्यगुणपर्यायपदार्थावभासकं केवलज्ञानं। द्रव्यक्षेत्रकालभावैः प्रत्येकं विज्ञायमानदेशपरमसर्वभे-दभिन्नमवधिज्ञानाऽऽवरणक्षयोपशमनिमित्तं रूपिद्रव्यविषयमवधिज्ञानं। द्रव्यादिभेदैः प्रत्येकमवगम्यमानर्जुविपुलमतिविकल्पं मनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोप-

इसप्रकार समस्त पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला यह बारह प्रकारका तपश्चरण कहा। इसी तपश्चरणसे अनेक ऋद्धियां प्रगट होती हैं। वे ऋद्धियां बुद्धि, क्रिया, विक्रिया, तप, बल, औषध, रस और क्षेत्रके भेदसे आठ प्रकारकी हैं। बुद्धि ज्ञानको कहते हैं इसलिये ज्ञानविषयक ऋद्धियोंको बुद्धिमहर्द्धि कहते हैं। उस बुद्धि ऋद्धिके नीचे लिखे अठारह भेद हैं। केवलज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, बीजबुद्धि, कोष्ठबुद्धि, पदानुसारित्व, संभिन्नश्रोतृत्व, दूरास्वादन-सामर्थ्य, दूरस्पर्शनसामर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य, दूरश्रवणसामर्थ्य, दशपूर्वित्व, चतुर्दशपूर्वित्व, अष्टांगमहानिमित्तज्ञता, प्रज्ञाश्रवणत्व, प्रत्येकबुद्धिता और वादित्व। द्रव्यक्षेत्र, काल भाव तथा इंद्रियोंके क्रम और व्यवधानके विना एक साथ एक ही समयमें भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंके समस्त द्रव्य गुण और पर्यायरूप पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाला के-वलज्ञान कहलाता है। जो अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न होता है, रूपी पदार्थ ही जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसके प्रत्येक भेदकी सीमा नियत है ऐसा देशावधि परमावधि और सर्वावधिके भेदसे तीन प्रकारका अवधिज्ञान है। जो मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशय होनेसे उत्पन्न होता है रूपी द्रव्यके अनंतवे भाग जिसका विषय है और द्रव्य क्षेत्र काल भावके द्वारा जिसका प्रत्येक भेद जाना जाता है ऐसा ऋजुमति और विपुल म-

शमकारणं रूपिद्रव्यानंतभागविषयं मनः पर्ययज्ञानं । सुकृष्टसुमतीकृते क्षेत्रे सारवति कालादिसहायापेक्षं बीजमेकमुप्तं यथाऽनेककोटिबीजप्रदं भवति तथा नोइन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति संख्येयशब्दस्थानंताप्रतिबद्धस्यानंतलिंगैः सहैकपदस्य ग्रहणादनेकार्थप्रतिपत्तिर्बीजबुद्धिः । कोष्ठाऽगारिकस्थापितानामसंकीर्णानामविनष्टानां भूयसां धान्यबीजानां यथा कोष्ठावस्थानं तथा परोपदेशादवधारितानामर्थग्रंथबीजानां भूयसामव्यतिकीर्णानां बुद्धवस्थानं कोष्ठबुद्धिः । पादानुसारित्वं त्रेधा प्रतिसार्यनुसार्युभयसारिभेदात् । तत्र बीजपदादधःस्थितान्येव पदानि बीजपदस्थितिलिंगेन जानाति प्रतिसारि, उपरिस्थितान्येव जानात्यनुसारि, उभयपार्श्वे स्थितानि पदानि नियमेनानियमेन वा जानात्युभयसारि । एवमेकस्य पदस्यार्थं परत उपश्रुत्यादावंते मध्ये वाऽशेष-

तिके भेदसे दो प्रकारका मनःपर्ययज्ञान है । जिसप्रकार किसी उपजाऊ भूमिके अच्छे जोते हुए खेतमें अच्छे समयपर वोया हुआ एकही वीज अनेक करोड वीजोंको उत्पन्न कर देता है उसीप्रकार नोइंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर किसी एकही पदका ग्रहण कर लेनेसे अनंत लिंगोंके साथ साथ अनंत अर्थोंसे भरे हुए संख्यात शब्दोंके अनेक अर्थोंका ज्ञान होजाता है आत्माकी ऐसी शक्तिको वीजबुद्धि नामकी ऋद्धि कहते हैं। जिसप्रकार किसी कोठेमें भरे हुए नाश न होनेवाले भिन्न भिन्न बहुतसे धानोंके वीजोंका समूह उस कोठेमें भरा रहता है उसीप्रकार दूसरोंके उपदेशसे धारण किये हुए भिन्न भिन्न बहुतसे अर्थ ग्रंथ और वीजोंके समूह बुद्धिरूपी कोठामें भरे रहते हैं। आत्माकी ऐसी शक्तिको कोष्ठबुद्धि कहते हैं।

पादानुसारित्वके तीन भेद हैं—प्रतिसारी अनुसारी और उभयसारी। वीजोंके पदोंमें रहनेवाले चिन्होंके द्वारा उस बीजपदके नीचे नीचेके पदोंको जान लेना प्रतिसारी है। ऊपर ऊपरके पदोंको जान लेना अनुसारी है। तथा दोनों ओर रहनेवाले पदोंको नियमित अथवा अनियमित रीतिसे जान लेना उभयसारी है। इसप्रकार दूसरेसे किसी एक पदके अर्थको सुनकर उस ग्रंथके आदि अंत मध्यका अर्थ धारण कर लेना अथवा समस्त ग्रंथका अर्थ धारण कर लेना प-

श्रुतार्थावधारणं पदानुसारित्वं । द्वादशयोजनाऽऽयामे नवयोजनविस्तारे चक्रधरस्कंधावारे गजवाजिखरोष्ट्रमनुष्यादीनामक्षरानक्षररूपाणां नानाविधशब्दानां युगपदुत्पन्नानां तपोविशेषबललाभाऽऽपादितसर्वजीवप्रदेशप्रकृष्टश्रोत्रेन्द्रियपरिणामात्सर्वेषामेककाले ग्रहणं तत्प्रतिपादनसमर्थत्वं च संभिन्नश्रोतृत्वं । तपःशक्तिविशेषाऽऽविर्भावितासाधारणरसनेन्द्रियश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभापेक्षस्यावधृतनवयोजनक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टक्षेत्रायातस्य रसास्वादनसामर्थ्यं दूरास्वादनमेवं शेषेष्वपीन्द्रियविशेषेष्ववधृतक्षेत्राद्बहिर्बहुयोजनविप्रकृष्टदेशादायातेषु ग्रहणसामर्थ्यं योज्यं । रोहिण्यादिपंच-

दानुसारित्व नामकी ऋद्धि है। बारह योजन लंबे नौ योजन चौडे चक्रवर्तीकी सेना ठहरनेके स्थानमें हाथी, घोडे, गधे, ऊंट, और मनुष्य आदिकोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक ऐसे अनेक तरहके मिले हुए शब्द एक साथ उत्पन्न होते हैं उन सबको जो विशेष तपश्चरणका बल प्राप्त होनेसे समस्त जीवोंके प्रदेशोंमें उत्कृष्ट श्रोत्रेंद्रियका परिणाम प्राप्त होता है उससे एकही कालमें ग्रहण कर लेना तथा उन सबको प्रतिपादन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होजाना संभिन्नश्रोतृत्व नामकी ऋद्धि है। तपश्चरणकी विशेष शक्ति उत्पन्न होनेके कारण जिन्हें रसनेंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतरायका असाधारण क्षयोपशम प्राप्त हुआ है तथा अंगोपांग नाम कर्मका लाभ प्राप्त हुआ है ऐसे मुनिराजके रसनेन्द्रियका विषय जो नौ योजन क्षेत्रतक निश्चित है उसके बाहर अनेक योजनकी दूरीवाले क्षेत्रसे आये हुए रसके आस्वादन करनेका सामर्थ्य उत्पन्न होना दूरास्वादन सामर्थ्य नामकी ऋद्धि है। इसीप्रकार स्पर्शनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय नेत्रेन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रियका विषय जितने दूर क्षेत्र तक नियत है उससे बाहर बहुतसे योजन दूर देशसे आये हुए स्पर्श गंध रूप और शब्दोंको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होना अनुक्रमसे दूरस्पर्शनसामर्थ्य, दूरघ्राणसामर्थ्य, दूरदर्शनसामर्थ्य और दूरश्रवणसामर्थ्य नामकी ऋद्धियां हैं।

इस संसारमें रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं और अनुगत अंगुष्ठ प्रदेशन आदि सातसौ क्षुल्लक विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवता हैं वे सब देवता अपने रूप

शतमहाविद्यादेवताभिरङ्गुष्ठप्रसेनादिकसप्तशतक्षुल्लकविद्यादेवताभिस्ताभिरागताभिः प्रत्येकमात्मीयरूपसामर्थ्याविष्करणकथनकुशलाभिर्वेगवतीभिरचलि-
तचारित्रस्य दशपूर्वदुस्तरसमुद्रोत्तारणं दशपूर्वित्वं श्रुतकेवलिनां चतुर्दशपूर्वित्वं । अष्टौ महानिमित्तान्यांतरिक्षभौमांगस्वरव्यंजनलक्षणच्छिन्नस्वप्ननामानि ।
तत्र रविशशिग्रहनक्षत्रताराभगणोदयास्तमयादिभिरतीतानागतफलप्रतिभागप्रदर्शनमांतरिक्षं । भुवो घनसुषिरस्निग्धरूक्षादिविभावनेन पूर्वादिदिक्सूत्रविन्या-
सेन वा वृद्धिहानिजयपराजयादिविज्ञानं भूमेरंतर्निहितसुवर्णरजतादिसंसूचनं च भौमं । तिर्यग्मनुष्याणां सत्त्वस्वभाववातादिप्रकृतिरसरुधिरादिधातुशरीरव-
र्णगन्धनिम्नोन्नतांगप्रत्यंगदर्शनस्पर्शनादिभिस्त्रिकालभाविसुखदुःखादिविभावनमंगं । नरनारीखरपिंगलोलूककपिवायसशिवाश्वगालावीनामक्षरानक्षरात्मक-

की सामर्थ्य प्रगट करने और कथन करनेमें अत्यंत कुशल हैं तथा उनका वेग अत्यंत तीव्र है ऐसी देवताओंके आनेपर भी जिनका चारित्र विचलित नहीं होता ऐसे मुनिराजके दशपूर्व रूपी अथाह समुद्रको पार करदेनेवाली (दश पूर्वका ज्ञान उत्पन्नकरानेवाली) दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि है। इसीप्रकार श्रुतकेवलीके चतुर्दशपूर्वित्व नामकी ऋद्धि होती है। आगे अष्टांग महानिमित्त ऋद्धिको कहते हैं। आंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण, छिन्न और स्वप्न ये आठप्रकारके महा निमित्त कहलाते हैं उनमें सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र और तारा आदि नक्षत्रोंके उदय अस्त होने आदिसे अतीत अनागत फलका कोईसा भी भाग जानलेना आंतरिक्ष नामका निमित्तज्ञान है। पृथ्वीके घन (कठिन) सुषिर [पोला] स्निग्ध रूक्ष [रूखा चिकना] आदि होनेवाले परिणामसे अथवा पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंमें सूत रखकर वृद्धि हानि जय पराजय आदिका ज्ञान होना अथवा भूमिके भीतर रक्खे हुए सोना चांदी आदि पदार्थोंका जानलेना भौम नामका निमित्त ज्ञान है। तिर्यंच मनुष्योंका स्वभाव वात पित्त आदि प्रकृति, रस रुधिर आदि धातु, शरीरका वर्ण गंध नीचाई ऊंचाई, अंग प्रत्यंगका देखना छूना आदिके द्वारा भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालोंमें होनेवाले सुख दुःखादिकोंको जान लेना अंग नामका निमित्त ज्ञान है। स्त्री, पुरुष, गधा, सांप, उल्लू, बंदर, कौआ, बकरा, गी-

माशुभशब्दश्रवणेनेष्टानिष्टफलाविर्भावकः स्वरः । शिरोमुखग्रीवादिषु तिलकमशकलक्ष्मव्रणादिवीक्षणेन त्रिकालहिताहितवेदनं व्यंजनं । पाणिपादतलवक्षःस्थलादिषु श्रीवृक्षस्वस्तिकभृंगारकलशकुलिशादिलक्षणवीक्षणात् त्रैकालिकस्थानमानैश्वर्यादिविशेषणं लक्षणं । वस्त्रशस्त्रोपानदासनशयनादिषु देवमानुषराक्षसकृतविभागैः शस्त्रकंटकमूषिकादिकृतच्छेददर्शनात् कालत्रयविषयलाभालाभसुखदुःखादिसूचनं छिन्नं । वातपित्तश्लेष्मोदयरहितस्य पश्चिमरात्रिविभागे चन्द्रसूर्यधराद्रिसमुद्रमुखप्रवेशनसकलमहीमंडलोपगूहनादिशुभस्वप्नदर्शनात् घृततैलाभ्यक्तात्मीयदेहखरकरभारूढापाग्दिग्गमनाद्यशुभस्वप्नदर्शनादागामिजीवि-

दड आदि जीवोंके अक्षरात्मक तथा अनक्षरात्मक शुभ अशुभ शब्दोंको सुनकर इष्ट अनिष्ट फलोंको प्रगट करनेवाला स्वर नामका निमित्त ज्ञान है। मस्तक मुंह और ग्रीवा [गरदन] आदि स्थानोंमें तिल मस्सा वा अन्य कोई चिन्ह अथवा घाव आदि देखकर तीनों कालोंका हिताहित जानना व्यंजन नामका निमित्त ज्ञान है। हाथकी हथेली पांवके तलवे और वक्षः स्थल छाती आदि शरीरके अंगोंमें श्रीवृक्ष स्वास्तिक [सांथिया] भृंगार वा झारी कलश (घडा] और वज्र आदिके लक्षण देखकर तीनों काल संबंधी स्थान मान ऐश्वर्य आदि जान लेना लक्षण नामका निमित्त ज्ञान है। वस्त्र, शस्त्र, उपानत् [जूता] आसन शयन शस्त्र कांटा चूहे आदिके द्वारा छिद्र होना देखकर तीनकाल संबंधी लाभ हानि सुख दुख आदि जान लेना छिन्न नामका निमित्तज्ञान है। बात पित्त श्लेष्माके उदयसे रहित मनुष्यके रात्रिके पिछिले भागमें चंद्रमा सूर्य पृथ्वी पर्वत समुद्र मुखप्रवेशन (किसी बैल आदिका मुखमें प्रवेश करना) समस्त पृथ्वी मंडलका छिपना आदि शुभ स्वप्न दिखाई दे अथवा घी तेलसे मर्दन किया हुआ अपना शरीर गधा अथवा ऊंटपर चढाकर, दक्षिण दिशाकी ओर गमन करना आदि अशुभ स्वप्न दिखाई दें तो उन्हें देखकर वा जानकर आगामी कालमें जीवित रहने मरने वा सुख दुःखादिकको प्रगट करनेवाला स्वप्न नामका निमित्तज्ञान है। वह स्वप्न नामका निमित्तज्ञान छिन्न और मालाके भेदसे दो प्रकारका है। हाथी सिंहका बच्चा आदिका देखना छिन्न है और पूर्वापर

तमरणसुखदुःखाऽऽविर्भाविकः स्वप्नः । स च द्विविधः, छिन्नमालाविकल्पेन । गजेन्द्रसिंहपोतादिकैश्छिन्नः पूर्वापरसंबंधानां भावानां दर्शनं माला । एतेषु महानिमित्तेषु कौशलमष्टांगमहानिमित्तज्ञता ।

अतिसूक्ष्मार्थतत्त्वविचारगहने चतुर्दशपूर्विण एव विषयेऽनुपयुक्ते पृष्टेऽनधीतद्वादशांगचतुर्दशपूर्वस्य प्रकृष्टश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूताऽसाधारणप्रज्ञाशक्तिलाभान्निःसंशयनिरूपणं प्रज्ञाश्रवणत्वं । सा च प्रज्ञौत्पत्तिकी वैनयिकी कर्मजा पारिणामिकी चेति चतुर्विधा । तत्र जन्मांतरविनयजनितसं-

संबंध रखनेवाले पदार्थोंका देखना माला है। इन महानिमित्तोंमें कुशल होना अष्टांगमहानि-मित्तज्ञता नामकी ऋद्धि है। जो मुनि चौदह पूर्वोंमें कहे हुए अत्यंत सूक्ष्म पदार्थोंमें रहनेवाले तत्त्वोंके (उनमें रहनेवाले भावोंके) विचार करने योग्य गहन विषयोंमें उपयुक्त न हों और उसी विषयको कोई पूछे तथा द्वादशांग और चौदह पूर्व उन्होंने पढे भी न हों तो भी श्रुतज्ञा-नावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण बुद्धिकी असाधारण शक्तिका लाभ प्रगट होनेसे उसका संशय दूर कर देना प्रज्ञाश्रवणत्व नामकी ऋद्धि है। वह प्रज्ञा औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकीके भेदसे चार प्रकारकी है। उनमेंसे जो प्रज्ञा जन्मांतरके विनयसे उत्पन्न हुए संस्कारोंसे प्रगट होती है उसको औत्पत्तिकी कहते हैं। विनयपूर्वक द्वादशांग पढनेसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है वह वैनयिकी प्रज्ञा है। अत्यंत घोर तपश्चरणकी सामर्थ्यसे गुरुके उपदेशके विना उत्पन्न हुई प्रज्ञा कर्मजा कहलाती है। अपनी अपनी जाति विशेषसे उत्पन्न हुई प्रज्ञा पारिणामिकी कहलाती है। इसप्रकार प्रज्ञाश्रवणत्व ऋद्धिका स्वरूप समझना चाहिये। परोपदेशके विना केवल अपनी विशेष शक्तिसे ही ज्ञान और संयमके भेद प्रभेदोंमें निपुणता प्राप्त होना प्रत्येक बुद्धिता नामकी ऋद्धि है। यदि इंद्रादिक भी आकर अपना विरोधी बना हो तथापि अपनी बुद्धि और प्रतापके द्वारा उसे निरुत्तर कर

स्कारसमुत्पन्नौत्पत्तिकी । विनयेन द्वादशांगानि पठतः समुत्पन्ना वैनयिकी । दुश्चरतपश्चरणबलेन गुरूपदेशमंतरेण समुत्पन्ना कर्मजा । स्वकीयस्वकीयजातिविशेषेण समुत्पन्ना पारिणामिकी चेति ।

परोपदेशमन्तरेण स्वशक्तिविशेषादेव ज्ञानसंयमविधाने नैपुण्यं प्रत्येकबुद्धिता ।

शक्रादिष्वपि प्रतिबंधकेषु सत्स्वप्रतिहततया प्रतिभया निरन्तराभिधानं पररंध्रान्वेषणं च वादित्वं । इति बुद्धिऋद्धिप्रकरणं ।

अथ क्रियर्द्धिः । क्रियाविषया ऋद्धिर्द्विविधा, चारणत्वमाकाशगामित्वं चेति । तत्र चारणाऽनेकविधा, जलजंघातंतुपुष्पपत्रबीजश्रेण्यग्निशिखाद्यालंबन-

देना तथा उसके दोषोंको ढूंढ निकालना वादित्व नामकी ऋद्धि है। इसप्रकार बुद्धि नामकी ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ ।

आगे क्रिया ऋद्धिको कहते हैं—क्रिया ऋद्धि दो प्रकारकी है एक चारणत्व ऋद्धि और दूसरी आकाशगामित्व ऋद्धि । उनमेंसे जल, जंघा, तंतु, पुष्प, पत्र, बीज, श्रेणी और अग्निकी शिखा आदिका सहारा लेकर गमन करना चारणऋद्धि है और वह ऊपर लिखे सहारोंके भेदोंसे ही अनेक तरहकी हो जाती है। बावडी तालाब आदि जलाशयोंमें भी अप्कायिक जीवोंकी विराधना न करते हुए भूमिके समान पैरोंको उठाने रखनेकी कुशलता प्राप्त हो जाना जलका सहारा लेनेवाली जलचारण ऋद्धि है। भूमिके ऊपर चार अंगुल ऊंचे आकाशमें जंघाचारण ऋद्धिवाले चलते हैं वे अपनी जंघाओंको बडी शीघ्रताके साथ उठाने रखनेमें चतुर होते हैं और सैकडों योजन तक बडी शीघ्रतासे पहुंच जाते हैं। इसीप्रकार और क्रिया ऋद्धि वाले भी समझ लेने चाहिये । आकाशगामिनी ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि पर्यंक आसनसे बैठकर अथवा अन्य किसी आसनसे बैठकर कायोत्सर्ग शरीरको धारण कर पैरोंको उठा कर रख कर भी आकाशके ऊपर गमन करनेमें निपुण होते हैं अथवा विना पैरों-

गमनाः । जलमुपादाय वाप्यादिष्वप्कायिकजीवानविराधयंतो भूमाविव पादोद्धारनिक्षेपकुशला जलचारणाः । भूमेरुपर्याऽऽकाशे चतुरंगुलप्रमाणे जंघोत्क्षेपनिक्षेपशीघ्रकरणपटवो बहुयोजनशताऽऽशुगमप्रवणा जंघाचारणाः एवमितरे बोद्धव्याः । पर्यंकावस्था वा निषण्णा वा कायोत्सर्गशरीरा वा पादोद्धारनिक्षेपणा वा ताभ्यामंतरेण वाकाशे गमनकुशला आकाशगामिनः । इति क्रियर्द्धिः ।

विक्रियागोचरा ऋद्धिरनेकविधा । अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्यं, ईशत्वं, वशित्वं, अप्रतिघातः, अंतर्धानं, कामरूपित्वमादि । तत्राऽणुशरीरविकरणमणिमा । बिसच्छिद्रमपि प्रविश्याऽऽसीत तत्र चक्रवर्तिपरिवारविभूतिं सृजेत् । मेरोरपि महत्तरशरीरविकरणं महिमा । वायोरपि लघुतरशरीरता लघिमा । वज्रादपि गुरुतरदेहता गरिमा । भूमौ स्थित्वाऽङ्गुल्यग्रेण मेरुशिखरदिवाकरादिस्पर्शनसामर्थ्यं प्राप्तिः । अप्सु भूमाविव गमनं भूमौ

को उठाये रक्खे भी आकाशगमन करनमें निपुण होते हैं। इसप्रकार क्रिया ऋद्धिका वर्णन किया।

अब आगे विक्रिया ऋद्धिको कहते हैं विक्रिया ऋद्धिके अनेक भेद हैं और अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व, अप्रतिघात, अंतर्धान, और कामरूपत्व आदि उनके नाम हैं। छोटा शरीर बनानेकी शक्तिको अणिमा कहते हैं। अणिमा ऋद्धिको धारण करनेवाला कमलनालके छिद्रमें भी प्रवेश कर सकता है और वहीं पर चक्रवर्तीके परिवारकी विभूतिको उत्पन्न कर सकता है। मेरु पर्वतसे भी बडा शरीर बनानेकी शक्तिको महिमा कहते हैं। वायुसे भी हलके शरीर बनानेकी शक्तिको लघिमा कहते हैं वज्रसे भी भारी शरीर बनानेकी शक्तिको गरिमा कहते हैं। पृथ्वीपर ठहरकर भी उंगलीके अग्रभागसे ही मेरु पर्वतका शिखर अथवा सूर्य आदिको छूनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो जाना प्राप्ति है। पानीमें पृथ्वीके समान चलनेकी शक्ति होना तथा पृथ्वीपर पानीके समान उछलने डूबनेकी शक्ति होना प्राकाम्य है। कोई कोई आचार्य अनेक तरहकी क्रिया गुण वा द्रव्यके आधीन होनेवाले सेना आदि पदार्थोंको अपने शरीरसे भिन्न अथवा अभिन्न रूप बनानेकी शक्ति प्राप्त होनेको प्राकाम्य

जल इवोन्मज्जननिमज्जनकरणं प्राकाम्यं, अनेकजातिक्रियागुणद्रव्याधीनं स्वागाद् भिन्नमभिन्नं च निर्माणं प्राकाम्यं सैन्यादिरूपमिति केचित्। त्रैलोक्यस्य प्रभुत्वमीशित्वं। सर्वजीववशीकरणलब्धिर्वशित्वं। अद्रिमध्ये वियतीव गमनमप्रतिघातः। अदृश्यरूपताऽन्तर्धानं। युगपदनेकाऽऽकाररूपविकरणशक्तिः कामरूपित्वमिति, यथाऽभिलषितैकमूर्ताद्याकारं स्वागस्य मुहुर्मुहुः करणं कामरूपित्वमिति वा। इति विक्रियर्द्धिप्रकरणं।

तपोतिशयर्द्धिः सप्तविधा। उग्रदीप्ततप्तमहाघोरतपोघोरपराक्रमाः घोरब्रह्मचर्याः अघोरगुणब्रह्मचारिण इति। तत्रोग्रतपसो द्विविधाः, उग्रोग्रतपस, अवस्थितोग्रतपसश्चेति। तत्रैकमुपवासं कृत्वा पारणं विधाय द्विदिनमुपोष्य तत्पारणानन्तरं पुनरप्युपवासत्रयं कुर्वन्त्येवमेकोत्तरवृद्ध्या यावज्जीवं त्रिगुप्तिगुप्ताः

कहते हैं। तीनों लोकोंका प्रभाव प्राप्त हो जाना ईशित्व है। समस्त जीवोंको वश करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाना वाशित्व है। पर्वतके भीतर होकर आकाशके समान गमन करनेकी शक्तिको अप्रतिघात कहते हैं। अदृश्यरूप हो जानेकी शक्तिको अंतर्धान कहते हैं। एक ही साथ अनेक आकार अथवा अनेक रूप बनानेकी शक्तिको कामरूपित्व कहते हैं अथवा अपनी इच्छानुसार अपने शरीरको बार बार एक मूर्त पदार्थके आकाररूप परिणत करनी कामरूपित्व कहलाती है। इसप्रकार विक्रिया ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे तप ऋद्धिको कहते हैं। उग्रतप, दीप्ततप, तप्ततप, महातप, घोरतप, घोरपराक्रम और घोरब्रह्मचर्य, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारी ये सात प्रकारकी तपोतिशय ऋद्धियां होती हैं। इनमें उग्रतप नामकी ऋद्धि भी उग्रोग्रतप और अवस्थितोग्र तपके भेदसे दो प्रकारकी है। कोई मुनि एक उपवासकर पारणा करें फिर दो उपवासकर पारणा करें फिर तीन उपवासकर पारणा करें इसप्रकार उत्तरोत्तर एक एक अधिक उपवास अपने जीवन पर्यंततक करते रहें तथा मन वचन काय तीनों गुप्तियोंको बराबर पालन करते रहें उनके उग्रोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिए। दीक्षा लेते समयका उपवासकर पारणा करें फिर उपवास पारणा उपवास पारणारूपसे बराबर करते रहें। फिर कुछ दिनतक दो उपवास पारणारूपसे करते रहें फिर

संतो ये केचिदुपवसंति त उग्रोग्रतपसः। दीक्षोपवासं कृत्वा पारणानंतरमेकांतरेण चरतां केनाऽपि निमित्तेन षष्ठोपवासे जाते तेन विहरतामष्टमोपवास-संभवे तेनाचरतामेवं दशद्वादशादिक्रमेणाधो न निवर्तमानानां यावज्जीव येषां विहरणं तेऽवस्थितोग्रतपसः। महोपवासकरणेऽपि प्रवर्द्धमानकायवाङ्मनो-बला दुर्गंधरहितवदनाः पद्मोत्पलादिसुरभिनिःश्वासाः प्रतिदिनप्रवर्द्धमानाऽच्युतमहादीप्तिशरीरा दीप्ततपसः। तप्तायःकटाहपतितजलकणवदाशु शुष्का-

तीन उपवास पारणारूपसे करते रहें इसप्रकार छह उपवासतक पहुंच जांय। छह छह उपवासके बाद पारणाका अभ्यास हो जानेपर आठ आठ उपवास और फिर पारणा करते रहें फिर अनु-क्रमसे दश दश फिर बारह बारह उपवासके बाद पारणा करते रहें इसप्रकार करते हुए जीवन पर्यंततक विहार करते रहें बीचमें किसी भी समय अपने चलते हुए उपवासकी संख्या कम न करें उनके अवस्थितोग्रतप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये। अनेक बडे बडे उपवास करने पर भी जिनके मन वचन कायका बल सदा बढता रहता है, जिनका मुंह सदा दुर्गंधरहित रहता है जिनका निःश्वास कमलके पुष्पके समान सुगंधित रहता है और जिनके शरीरकी महाकांति प्रतिदिन बढती ही जाती हैं कभी घटती नहीं उनके दीप्त तप नामकी ऋद्धि कही जाती है। जिसप्रकार तपायी हुई लोहेकी कढाईमें पडी हुई जलकी एक बूंद शीघ्र ही सूख जाती है उसीप्रकार अल्पाहार ग्रहण करनेसे जिनके भोजन करनेपर भी वह अन्न मल रुधिर आदि धातु उपधातुरूप परिणत नहीं होता उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये अथवा जो अणिमा आदि तथा जलचारण आदि आठों गुणोंसे परिपूर्ण हैं, जिनके शरीरकी प्रभा देदी-प्यमान हो रही है, जो अनेक तरहकी अक्षीण ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं, समस्त औष-धि ऋद्धियां जिन्हें प्राप्त हैं जिनके पाणिपात्रपर (हाथपर) आया हुआ सब तरहका आहार अमृतरूप हो जाता है जिनके देवोंके सब इंद्रियोंसे भी अनंतगुणा बल है और जो आशीविष

त्सा॑ऽऽहारतया मलरुधिरादिभावपरिणामविरहिताभ्यवहरणास्तप्ततपसः । अणिमादिजलचारणाद्यष्टगुणालंकृता विस्फुरितकायप्रभा विविधौषधर्द्धियुक्ताः स-र्वौषधर्द्धिप्राप्ता अमृतीकृतपाणिमात्रनिपतितसर्वाहाराः सर्वामरेंद्रेभ्योऽनंतबला आशीर्विषदृष्टिविषर्द्धिसमन्वितास्तप्ततपसश्च । सकलविद्याधारिणो मतिश्रुताऽव-धिमनःपर्ययज्ञानाऽवगतत्रिभुवनगतव्यापारा महातपसः । वातपित्तश्लेष्मसंनिपातसमुद्भूतज्वरकासाक्षिशूलकुष्टप्रमेहादिविविधरोगसंतापितदेहा अप्यप्रच्यु-ताऽनशनादितपसोऽनशने षण्मासोपवासाः, अवमौदर्ये एककवलाहाराः, वृत्तिपरिसंख्याने चतुरगोचरावग्रहा । रसपरित्यागे उष्णजलधौतोदनभोजिनः विविक्तशयनाऽऽसने भीमश्मशानगिरिगुहादरीकंदरशून्यग्रामादिषु प्रदुष्टयक्षराक्षसपिशाचप्रनृत्यत्प्रेतवेतालरूपविकारेषु परुषशिवारुतानुपरतसिंहव्याघ्रादिव्या-

दृष्टिविष ऋद्धियोंको धारण करनेवाले हैं उनके तप्ततप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये । जो समस्त विद्याओंको धारण करनेवाले हैं तथा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानसे जो तीनों लोकोंके समस्त व्यापारोंको जानते हैं उनके महातप नामकी ऋद्धि है । वात पित्त श्लेष्माके सन्निपातसे उत्पन्न हुए ज्वर, कास, नेत्र शूल कोढ प्रमेह आदि अनेक तरहके रोगोंसे जिनका शरीर संतप्त हो रहा है तथापि जिन्होंने अनशन आदि तपश्चरणोंको नहीं छोडा है । अनशन तपश्चरणमें जो छह छह महीनेका उपवास करते हैं अवमौदर्य तपश्चरणमें जो केवल एक कवलका (एक ग्रास वा गस्सा) आहार लेते हैं वृत्तिपरिसंख्यान तपश्चरणमें जो आहारके लिए केवल चार घर तक ही जाते हैं । रसपरित्यागमें जो गर्म जलसे धोये हुए चांवलोंका ही आहार लेते हैं विविक्तशय्यासनमें जो भयानक श्मशान, पर्वतोंकी गुफा दरी कंदरा वा सूने गांवोंमें निवास करते हैं अथवा जहांपर अत्यंत दुष्ट यक्ष राक्षस पिशाच आदि प्रेत वेताल आदिका विकृतरूप धारणकर नृत्य कर रहे हैं जहां गीदड रो रहे हैं सिंह बाघ भरे हुए हैं तथा गरज रहे हैं हाथी चिंघाड रहे हैं अन्य घातक जानवरोंके भीषण शब्द हो रहे हैं और चोर डाकू आदि फिर रहे हैं ऐसे भयानक और एकांत स्थानमें रुचिपूर्वक निवास करते हैं । कायक्लेश तपश्चरणमें जो अत्यंत तीव्र शीत पडनेवाले

ह्मृगभीषणस्वनघोरचौरादिप्रचलितेष्वभिरुचितावासाः, कायक्लेशेऽतितीव्रशीतातपवर्षनिपातप्रदेशेष्वभ्रावकाशातापनवृक्षमूलयोगग्राहिणः । एवमाभ्यंतरतपोविशेषेष्वप्युत्कृष्टतपोऽनुष्ठायिनो घोरतपसः । त एव गृहीततपोयोगवर्द्धनपराः । त्रिभुवनोपसंहरणमहीवलयग्रसनसकलसागरसलिलसंशोषणजलाग्निशिलाशैलादिवर्षणशक्तयो घोरपराक्रमाः । चिरोषितास्खलितब्रह्मचर्याऽऽवासाः प्रकृष्टचारित्रमोहक्षयोपशमात्प्रणष्टदुःस्वप्ना घोरब्रह्मचारिणः, अथवा अघोरगुणब्रह्मचारिण इति पाठे अघोरं शांतं गुणः ब्रह्मचारित्रं येषां ते अघोरगुणब्रह्मचारिणः । शांतिपुष्टिहेतुत्वाद्येषां तपोमाहात्म्येन डमरेतिमारिदुर्भिक्षवैरकलहवधबंधनरोगादिप्रशमनशक्तिः समुत्पद्यते तेऽघोरगुणब्रह्मचारिणः । इति तपोऋद्धिः ।

प्रदेशोंमें खुले मैदानमें निवास करते हैं अत्यंत तीव्र उष्णतावाले प्रदेशोंमें योग धारण करते हैं और अत्यंत तीव्र वर्षा पडनेवाले प्रदेशोंमें वृक्षके नीचे योग धारण करते हैं। इसीप्रकार जो अभ्यंतर तपश्चरणोंमें भी विशेष विशेष समस्त तपश्चरणोंको उत्कृष्ट रीतिसे पालन करते हैं उनके घोर तप नामकी ऋद्धि समझनी चाहिये । वे ही घोर तप ऋद्धिको धारण करनेवाले जो मुनि ग्रहण किए हुए तपोयोगको बढानेमें तत्पर हैं जिनमें तीनों लोकोंको उपसंहार करने, समस्त पृथिवीमंडलको ग्रास करने, समस्त महासागरोंके जलको सोखने, जल, अग्नि, शिला और पर्वत आदिकी वर्षा करनेकी शक्ति है उनके घोरपराक्रम नामकी ऋद्धि कही जाती है । जिन्होंने बहुत दिनतक कभी स्खलित न होनेवाले ब्रह्मचर्यमें निवास किया है और चारित्रमोहनीय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जिनके दुःस्वप्न सब नष्ट हो गये हैं वे घोरब्रह्मचारी गिने जाते हैं । अथवा इस ऋद्धिको धारण करनेवालेका नाम अघोर गुण ब्रह्मचारी भी है अघोर शांतको कहते हैं जिनका ब्रह्मचारित्र शांत है उनको अघोरगुण ब्रह्मचारी कहते हैं । ऐसे मुनि शांति और पुष्टिके कारण होते हैं इसीलिये जिनके तपश्चरणके माहात्म्यसे उग्र ईति मारी दुर्भिक्ष वैर कलह वध बंधन और रोग आदिको शांत करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाय उन्हें अघोरगुण ब्रह्मचारी कहते हैं । इसप्रकार तपोऋद्धिका वर्णन किया।

अथ बलर्द्धिः । बलालंबनादृद्धिस्त्रिविधा, मनोवाक्कायविषयभेदात् । तत्र श्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमप्रकर्षे सति खेदमंतरेणांतर्मुहूर्ते सकलश्रुतार्थचिंतनेऽवदाता मनोबलिनः । मनोजिह्वाश्रुतावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमातिशये सत्यंतर्मुहूर्ते सकलश्रुतोच्चारणसमर्थाः सततमुच्चैरुच्चारणे सत्यपि श्रमविरहिता अहीनकंठाश्च वाग्बलिनः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमप्रकर्षादाविर्भूताऽसाधारणकायबलत्वान्मासिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकादिप्रतिमायोगधारणेऽपि श्रमक्लेशविरहितास्त्रिभुवनमपि कनीयस्यांगुल्योद्धृत्याऽन्यत्र स्थापयितुं समर्थाश्च कायबलिनः । इति बलर्द्धिः ।

अथौषधर्द्धिप्रकरणं । औषधर्द्धिरष्टविधा । असाध्यानामप्यामयानां सर्वेषां विनिवृत्तिहेतुरामर्शक्ष्वेलजलमलविट्सर्वौषधिप्राप्ताऽऽस्यविषदृष्टयविष-

आगे बल ऋद्धिको कहते हैं—मन वचन कायके भेदसे बल तीन प्रकारका है इसलिये उनके अवलंबनसे यह ऋद्धि भी तीन प्रकारकी है । श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कृष्टता होनेपर विना किसी खेदके अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त श्रुतज्ञानके पदार्थोंके चिंतवन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना मनोबल नामकी ऋद्धि है । मन नोइंद्रियावरण जिह्वेंद्रियावरण श्रुतज्ञानावरण और वीर्यांतराय कर्मोंका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेपर अंतर्मुहूर्तमें ही समस्त श्रुतज्ञानके पद वाक्योंके उच्चारण करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होना तथा सदा ऊँचे स्वरसे उच्चारण करनेपर भी किसी तरहका परिश्रम न होना और कंठ मंद न होना वाग्बल नामकी ऋद्धि है । वीर्यांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम होनेके कारण जो असाधारण शारीरिक बल प्रगट होता है उस शारीरिक बलसे एकमहीने, चारमहीने और एक वर्ष आदिका प्रतिमा योग धारण करने पर भी जिनके किसी तरहका श्रम और क्लेश नहीं होता तथा जिनमें तीनों लोकोंको भी हाथकी छोटी उंगलीसे उठाकर किसी दूसरी जगह स्थापन करनेकी सामर्थ्य होती है उनके कायबल ऋद्धि कही जाती है । इसप्रकार बल ऋद्धिका वर्णन किया ।

आगे औषधि ऋद्धिको कहते हैं । औषधि ऋद्धि आठ प्रकार है—आमर्श, क्ष्वेल, जल्ल, विट्, सर्वौषधि, आस्यविष और दृष्ट्यविष उसके नाम हैं । इन ऋद्धियोंको धारण करने-

विकल्पात् । आमर्शः संस्पर्शो हस्तपादाद्यामर्शः सकलौषधिं प्राप्तो येषां त आमर्शौषधिप्राप्ताः, क्ष्वेलो निष्ठीवनं, उपलक्षणं चैतत्तेन श्लेष्मलालाविपुटसिंहाणकादयश्चौषधिं प्राप्ता येषां ते क्ष्वेलौषधिप्राप्ताः। स्वेदालंबनो रजोनिचयो जल्लः स औषधिं प्राप्तो येषां ते जल्लौषधिप्राप्ताः कर्णदंतनासिकादिसमुद्भवो मल औषधिं प्राप्तो येषां ते मलौषधिप्राप्ताः। विडुच्चारः शुक्रमूत्रं चौषधिं प्राप्तो येषां ते विडौषधिप्राप्ताः। अंगप्रत्यंगनखदंतकेशादिरवयवस्तत्संस्पर्शी वाटवादिः सर्वौषधिं प्राप्तो येषां ते सर्वौषधिप्राप्ताः उग्रविषसंपृक्तोऽप्याहारो येषामास्यगतो निर्विषो भवति, यदीयवचःश्रवणाद्वा महाविषपरीता अपि

वाले मुनियोंके आमर्श आदि संसारके समस्त असाध्य रोगोंको भी दूर कर देते हैं। आमर्श स्पर्शका नाम है जिनके हाथ पैर आदिका स्पर्श ही सब तरहकी औषधियोंको प्राप्त हो जाता है अर्थात् उसीसे सब रोग दूर हो जाते हैं वे मुनि आमर्शौषधि नामकी ऋद्धिको धारण करनेवाले हैं। क्ष्वेल थूकको कहते हैं यह शब्द यहांपर उपलक्षण है थूकसे श्लेष्मा लाला (लार) विपुट (पसीनेकी बूंद) सिंहाणक (नाकका मल) आदि सब लेने चाहिए। जिनके थूक लार नाकका मल पसीना आदि सब सब तरहकी औषधिरूप परिणत हो जांय उनके क्ष्वेलौषधि ऋद्धि समझनी चाहिए। पसीना आनेसे जो शरीरपर धूल वा मैल जम जाता है उसको जल्ल कहते हैं। जिनके शरीरका वह पसीनेका मैल ही सबतरहकी औषधिरूप हो जाय वे मुनि जल्ल ऋद्धिको धारण करनेवाले कहे जाते हैं। जिनके कान नाक दांत आदिसे उत्पन्न हुआ मल ही औषधिरूप हो जाय वे मलौषधि नामकी ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। विट् उच्चार अथवा शुक्र और मूत्रको कहते हैं जिनका शुक्र मूत्र ही औषधिका काम दे वे विडौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। जिनके अंग प्रत्यंग नख दंत केश आदि शरीरके अवयव अथवा उन अवयवोंको स्पर्श करनेवाली वायु ही समस्त औषधियोंका काम दे वे सर्वौषधि ऋद्धि प्राप्त मुनि हैं। उग्र विषसे मिला हुआ भी आहार जिनके मुखमें जानेपर विष रहित हो जाय अथवा जिनके वचनोंको सुनकर महाविषमें डूबे हुए मनुष्य भी विषरहित हो जांय वे आस्याविष ऋद्धिवाले मुनि कहलाते हैं। जि-

निर्विषा भवंति त आस्यविषाः । येषामालोकनमात्रादेवातितीव्रविषदूषिता अपि विगतविषा भवंति ते दृष्टयविषाः । अथवा आशीविषमविषं येषां ते आस्यविषाः, दृष्टिविषाणां विषमविषं येषां ते दृष्टयविषाः । इत्यौषधर्द्धिप्रकरणं ।

अथ रसर्द्धिप्रकरणं समुच्यते । रसर्द्धिप्राप्ताः षड्विधाः, आस्यविषाः, दृष्टिविषाः, क्षीरास्राविणः, मध्वास्राविणः, सर्पिरास्राविणः, अमृतास्राविणश्चेति । प्रकृष्टतपोबला यतयो यं ब्रुवते म्रियस्वेति स तत्क्षणादेव महाविषपरीतो म्रियते त आस्यविषाः आशीर्विषा इति केचित्तत्राप्ययमेवार्थस्तदाऽऽशासनादेव म्रियमाणत्वात् । उत्कृष्टतपसो यतयः क्रुद्धा यमीक्षंते स तदैवोग्रविषपरीतो म्रियते ते दृष्टिविषाः । विरसमप्यशनं येषां निक्षिप्तं क्षीररसवीर्यपरि-

नके दर्शन करनेमात्रसे ही अत्यंत तीव्रविषसे दूषित हुए जीव विषरहित हो जांय वे दृष्ट्यविष ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि हैं। अथवा जिनके लिए आशीविष भी विष न हों वे आस्यविष ऋद्धिवाले हैं और जिनकी आंखोंमें विष है जिनको देखलें वे मर जांय ऐसे दृष्टिविष जीवोंका विष भी जिनके लिये विष न हो वे दृष्ट्यविष ऋद्धिको धारण करनेवाले हैं। इसप्रकार औषधि ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे रसऋद्धिको कहते हैं। रसऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि छह प्रकारके हैं आस्यविष, दृष्टिविष, क्षीरास्रावी, मध्वास्रावी, सर्पिरास्रावी और अमृतस्रावी। उत्कृष्ट तपश्चरणके बलसे जो मुनि किसीको " तू मर जा " कह दें तो वह उसीसमय महाविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनियोंको आस्यविष ऋद्धिधारी मुनि कहते हैं। कोई कोई आचार्य इस ऋद्धिका नाम आशीविष ऋद्धि कहते हैं इसका भी वही अर्थ है जो ऊपर लिख चुके हैं क्योंकि ऐसे मुनियोंके बुरा आशीर्वाद देनेसे ही वह मर जाता है। उत्कृष्ट तपश्चरणवाले मुनि क्रोधित होकर जिसको देख लें वह उसीसमय उग्रविषसे दूषित होकर मर जाय ऐसे मुनि दृष्टिविष ऋद्धिधारी कहलाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस भोजन भी दूधकी शक्तिशाला हो जाय अथवा जिनके वचन दूधके समान दुर्बल और कृश मनुष्योंको संतुष्ट कारक हों, वे क्षीरास्रावी ऋद्धिवाले गिने

णामिता भजते, येषां वा वचनानि क्षीरवत्क्षीणानां तर्पकाणि भवंति ते क्षीराऽऽस्राविणः। येषां पाणिपुटे पतित आहारो नीरसोऽपि मधुररसवीर्यपरिणामिता भजते येषां वा वचांसि श्रोतॄणां दुःखार्दितानामपि मधुरगुणं पुष्णंति ते मध्वाऽऽस्राविणः येषां पाणिपात्रगतमन्नं रूक्षमपि सर्पिरसवीर्यविपाकमवाप्नोति, सर्पिरिव येषां भाषितानि प्राणिनां संतर्पकाणि भवंति ते सर्पिरास्राविणः। येषां करपुटप्राप्तं भोजनं यत्किंचिदमृतमास्कंदति, येषां वा व्याहृतानि प्राणिनाममृतवदनुग्राहकाणि भवंति। इति रसर्द्धिप्रकरणं॥

अथ क्षेत्रर्द्धिप्राप्ता द्वेधा, अक्षीणमहानसा., अक्षीणमहालयाश्चेति। लाभांतरायक्षयोपशमप्रकर्षप्राप्तेभ्यो यतिभ्यो भिक्षा दीयते ततो भोजनाचक्रधर-

जाते हैं। जिनके हाथपर रक्खा हुआ नीरस आहार भी मधुर रसकी शक्तिवाला (मीठा पुष्टिकारक) हो जाय अथवा जिनके वचन सुननेवाले अत्यंत दुखी जीवोंको भी मधुर गुणरूप परिणत हो जांय उन मुनियोंको मध्वास्रावी ऋद्धिधारी कहते हैं। जिनके हाथपर आया हुआ रूखा अन्न भी घीके समान रसवाला और शक्तिशाली हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन घीके समान प्राणियोंको तृप्त करनेवाले हों वे सर्पिरास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं। जिनके हाथ पर आया हुआ कुछ भी भोजन अमृतके समान वा अमृतरूप हो जाय अथवा जिनके कहे हुए वचन अमृतके समान प्राणियोंका उपकार करें वे अमृतास्रावी ऋद्धिधारी मुनि हैं। इसप्रकार रसऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

आगे क्षेत्रऋद्धिको कहते हैं। क्षेत्रऋद्धिको प्राप्त होनेवाले मुनि दो प्रकारके हैं एक अक्षीणमहानस और दूसरे अक्षीणमहालय। लाभांतराय कर्मका उत्कृष्ट क्षयोपशम प्राप्त होनेवाले जिन मुनियोंको आहार दिया जाय और उस बचे हुए भोजनमेंसे चक्रवर्तीकी सब सेना भी भोजन कर जाय तो भी उस दिन वह भोजन कम न हो ऐसे मुनिराज अक्षीणमहानस ऋद्धिको धारण करनेवाले कहलाते हैं। अक्षीणमहालय ऋद्धिको धारण करनेवाले मुनि जहां विराजमान हों और वह स्थान चाहे चार हाथ लंबा चौडा ही हो तो भी उसमें समस्त देव

स्कंधावारोऽपि यदि भुंजीत तद्दिवसे नान्नं क्षीयते तेऽक्षीणमहानसाः। अक्षीणमहालयलब्धिं प्राप्ता यतयो यत्र हस्तचतुष्टयमात्रावासे वसंति तत्र देवमानुषतिर्यग्योनयः सर्वेऽपि निवसेयुः परस्परमबाधमानाः सुखमासते तेऽक्षीणमहालया इति।

एवमुक्तं तपःसामर्थ्यं, तपस्विभिरध्युषितानि क्षेत्राणि तीर्थत्वमुपगतानि। परस्परविरोधिनोऽपि प्राणिनो जातिविरोधं कारणविरोधं विमुच्यते शांतांतरंगा भवंति तपःसामर्थ्यात्। किं बहुना तपः किं न साधयत्यपि तु सर्वमेव साधयति। तदेवोक्तम्—

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

तपो यस्य न विद्यते स चंचापुरुषो यथा मुंचंति तं सर्वे गुणाः, नासौ मुंचति संसारं, उपधित्यागः पुरुषहितो यतोयत. परिग्रहादपेतस्ततस्ततः सं-

मनुष्य तिर्यंच समा जांय परस्पर किसीको बाधा न हो, सब सुखपूर्वक बैठ जांय वे अक्षीण-महालय ऋद्धि धारी गिने जाते हैं। इसप्रकार क्षेत्र ऋद्धिका प्रकरण समाप्त हुआ।

इसप्रकार तपश्चरणकी सामर्थ्य निरूपण की। तपस्वी लोग जिस जिस स्थानमें निवास करते हैं वे तीर्थ कहलाते हैं। तपश्चरणके प्रभावसे परस्पर विरोध रखनेवाले जीव भी अपना जन्मसे उत्पन्न वैर अथवा किसी कारणसे उत्पन्न हुआ वैर छोडकर अपने हृदयको शांत बना लेते हैं। बहुत कहनेसे क्या? तपश्चरणसे क्या सिद्ध नहीं होता? किंतु सब कुछ सिद्ध हो जाता है। यही बात शास्त्रोंमें भी लिखी है—"यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्। तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्" अर्थात् जो दूर हो जिसका आराधन करना कठिन हो, और जो बहुत दूरपर हो वह सब तपश्चरणसे सिद्ध हो जाता है। इस संसारमें तपश्चरण ही ऐसा है। जिसको कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जिसके तपश्चरण नहीं है वह चंचापुरुषके (केवल पुरुषके आकारके) समान है उसे समस्त गुण तो छोड देते ही हैं परंतु वह संसारको कभी नहीं छोड सकता।

१ बुद्धि १८ क्रिया ६ विक्रिया ११ तप ७ बल ३ औषध ८ रस ६ क्षेत्र सब मिलकर ६४ ऋद्धियां होती है।

यतो भवति । ततोऽस्य खेदो व्यपगतो भवति । परिग्रहपरित्याग एवैहिकामुत्रिकपरमसुखकारणं निरवद्यमनःप्रणिधानं । पुण्यनिधानं । परिग्रहो बलवती सर्वदोषप्रसवयोनिः । नह्यस्या उपधिभिरतृप्तिरस्ति सलिलैरिव सलिलनिधेर्वडवाग्नेः । उक्तं हि—

अनेकाऽऽधेयदुष्पूर आशागर्त्तश्चिरादहो । चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते ॥

अपि च—

कः पूरयति दुष्पूरमाशागर्तं दिने दिने । यत्रास्ते प्रस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते ॥

इससंसारमें उपधियोंका (अंतरंग बाहिरंग परिग्रहोंका) त्याग कर देना ही मनुष्यका हित करनेवाला है । जैसा जैसा यह परिग्रहोंको छोडता जाता है वैसा ही वैसा इसका संयम बढता जाता है और संयमकी वृद्धि होनेसे इसका खेद दूर होता है । परिग्रहोंका त्याग करना ही इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवाला है इसीसे मन सब तरहके दोषोंसे रहित होकर स्थिर होता है और यही परिग्रहका त्याग पुण्यका खजाना है । यह परिग्रह समस्त दोषोंको उत्पन्न करनेवाली जबर्दस्त योनि है । जिसप्रकार पानीसे समुद्रकी वडवानल अग्नि बुझती नहीं उसीप्रकार इन परिग्रहोंसे यह जीव कभी तृप्त नहीं होता है । लिखा भी है—“ अनेकाधेय दुष्पूर आशागर्तश्चिरादहो । चित्रं यत्क्षणमात्रेण त्यागेनैकेन पूर्यते ” अर्थात् यह बडे आश्चर्यकी बात है कि यह आशारूपी गढा जो कि अनेक दिनोंमें भी संसारमें रहनेवाले समस्त पदार्थोंसे भी नहीं भरा जाता वह एक त्यागसे (समस्त पदार्थोंका त्याग कर देनेसे) क्षणमात्रमें भर जाता है । तथा “ कः पुरयति दुष्पूरमाशागर्तं दिने दिने । यात्रास्ते प्रस्तमाधेयमाधारत्वाय कल्पते ” अर्थात् “ किसीसे न भरा जानेवाला इस आशारूपी गढेको भला कौन भर सकता है क्योंकि इसमें प्रतिदिन डाला हुआ समस्त आधेय ही आधार बन जाता है । भावार्थ—ज्यों ज्यों आशाएं पूर्ण की जाती हैं त्यों त्यों वे और बढती जाती हैं । ” इसलिये परि-

परिग्रहसंग एव दुःखभयादिकं जनयतीति । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु संस्कारापोहाय ' ममेदं ' भावाऽभाव आकिंचन्यं । शरीरादपि निर्ममत्वात्परमनिर्वृतिमवाप्नोति यथा यथा पोषयति तथा तथा-लाम्पट्यं तज्जनयति, तपस्यप्यनादरो भवति । शरीरादिषु कृताऽभिष्वंगस्य संसारे सर्वकालमभिष्वंग एव मयाऽनुभूताङ्गना सुरूपेति सविलासेति कलागुणविशारदेति स्मरणं, तत्कथाश्रवणं रतिपरिमलाधिवासितस्त्रीसंग्रशयनाऽऽसनमित्येवमादि पूर्वरतानुचिंतनवर्जनं परिपूर्णब्रह्मचर्यमित्याख्यायते । ब्रह्मचर्यमनुपालयंतं हिंसादयो दोषा न संस्पृशंति । नित्याऽभिरतगुरुकुलवासमधिवसति गुणसंपदः । वरांगनाविलासविभ्रमविधेयकृत पापैरपि विधेयीक्रियते । अजितेंद्रियता हि लोके प्राणिनामपमानविधायी ।

ग्रहोंका समागम ही इस संसारमें दुःख और भय आदिकोंको उत्पन्न करनेवाला है।

प्राप्त हुए शरीरादिकोंमें संस्कारोंको दूर करनेके लिए " यह मेरा है " ऐसे परिणामोंका अभाव होना आकिंचन्य है। शरीरादिकोंमें ममत्व बुद्धिका अभाव होनेसे परम वैराग्य प्राप्त होता है। जैसा जैसा यह शरीर पुष्ट किया जाता है वैसी वैसी ही इससे लंपटता उत्पन्न होती रहती है और वैसा वैसा ही तपश्चरणमें अनादर उत्पन्न होता रहता है। शरीरादिकोंमें ममत्व रखनेवाले पुरुषके संसारमें भी सदा ममत्व बना ही रहता है।

" मेरी भोगी हुई स्त्री बडी रूपवती थी सबतरहके विलासोंमें निपुण थी, और कलागुणोंमें चतुर थी " इसप्रकारके स्मरणका त्याग करना, स्त्रियोंकी कथाओंके सुननेका त्याग करना तथा ' यह शयन वा आसन उपभोगके समय जिसके शरीरमें अनेक तरहके सुगंधित पदार्थ लग रहे हैं ऐसी स्त्रीसे संबंध रखनेवाला है ' इसप्रकारके पूर्व भोगे हुए उपभोगोंके चिंतवनका त्याग करना परिपूर्ण ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको हिंसा आदि कोई भी दोष नहीं छू सकते, गुणरूपी संपदाएं सदा तल्लीन होकर गुरुकुलमें निवास करनेवाले उस ब्रह्मचारीमें ही आकर निवास करती हैं। जो वेश्याओंके विलास और हावभावोंसे दूर रहता है वह पापोंसे भी बहुत दूर रहता है। संसारमें जितेंद्रिय न होना ही प्राणियोंका अपमान करनेवाला है।

क्षइत्येवमुत्तमक्षमाया उत्तममार्दवस्योत्तमार्जवस्योत्तमशौचस्योत्तमसत्यस्योत्तमसंयमस्योत्तमतपस उत्तमत्यागस्योत्तमाकिंचन्यस्योत्तमब्रह्मचर्यस्य तत्प्रतिपक्षाणां च गुणदोषविचारपूर्विकायां क्रोधादिनिवृत्तौ सत्यां तन्निबंधनकर्मास्रवाऽभावान्महान् संवरो भवति ।

तत्त्वार्थराद्धान्तमहापुराणेष्वाचारशास्त्रेषु च विस्तरोक्तम् ।
आख्यात्समासादनुयोगवेदी चारित्रसारं रणरंगसिंहः ॥

इति सकलाऽऽगमसंयमसंपन्नश्रीमज्जिनसेनभट्टारकश्रीपादपद्मप्रसादाऽऽसादित-
चतुरनुयोगपारावारपारगधर्मविजयश्रीमच्चामुण्डरायमहाराजविरचिते
भावनासारसंग्रहे चारित्रसारेऽनगारधर्मः समाप्तः ।

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

इसप्रकार उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आर्किचन्य और उत्तम ब्रह्मचर्यके गुण तथा इनके प्रतिपक्षियोंके दोषोंका विचार करनेसे क्रोध मान आदि विकारोंका त्याग हो जाता है और क्रोधमान विकारोंका त्याग होनेसे क्रोधादिके द्वारा आनेवाले कर्मोंके आस्रवका अभाव हो जाता है तथा आसूवका अभाव होनेसे महान् संवर होता है ।

चारों अनुयोगोंके जानकार तथा रणांगणमें सिंहके समान ऐसे वीर महाराजा चामुंडरायने जिसका वर्णन तत्त्वार्थसूत्र सिद्धांत ग्रंथ और महापुराण आदि आचार ग्रंथोंमें बडे विस्तारके साथ कहा है ऐसे चारित्रसारको संक्षेपसे निरूपण किया है ।

इसप्रकार समस्त शास्त्र और संयमको धारण करनेवाले श्रीमज्जिनसेन भट्टारकके श्रीचरण कमलोंके प्रसादसे चारों अनुयोगरूपी महासागरके पार पहुंचानेवाले और धर्मके विजयका झंडा उडानेवाले श्रीमच्चामुंडराय महाराजके बनाये हुए भावनासार संग्रहके अंतर्भूत चारित्रसारमें मुनिधर्मका वर्णन समाप्त हुआ ॥

चारित्रसार

समाप्त ।